5.5

मार्क्स एंगेल्स

Deepak Adhikari
Kichanas
Nepal

T. P. Sharma Upadhyaya

संकलित रचना
६१

दुनिया के मज़दूरो, एक हो!

L.L. Sharma

कार्ल मार्क्स
फ़्रेडरिक एंगेल्स

संकलित रचनाएं

(चार भागों में)

भाग ३



प्रगति प्रकाशन • मास्को

К. Маркс и Ф. Энгельс

ИЗБРАННЫЕ ПРОИЗВЕДЕНИЯ

Часть III

На языке хинди

विषय-सूची

पृष्ठ

फ़्रेडरिक एंगेल्स

वानर के नर बनने की प्रक्रिया में श्रम की भूमिका[1]

अर्थशास्त्रियों का दावा है कि श्रम समस्त सम्पदा का स्रोत है। वास्तव में ही वह स्रोत ही है, लेकिन प्रकृति के बाद। वही इसे वह सामग्री प्रदान करती है जिसे वह सम्पदा में परिवर्तित करता है। पर वह इससे भी कहीं बड़ी चीज़ है। वह समूचे मानव-अस्तित्व की प्रथम मौलिक शर्त है, और इस हद तक प्रथम मौलिक शर्त है कि एक अर्थ में हमें यह कहना होगा कि स्वयं मानव का सृजन भी श्रम ने ही किया।

लाखों वर्ष पूर्व, पृथ्वी के इतिहास के भूविज्ञानियों द्वारा तृतीय कहे जाने वाले महाकल्प की एक अवधि में, जिसे अभी ठीक निश्चित नहीं किया जा सकता है, पर जो सम्भवतः इस तृतीय महाकल्प का युगान्त रहा होगा, कहीं उष्ण कटिबन्ध के किसी प्रदेश में—सम्भवतः एक विशाल महाद्वीप में जो अब हिन्द महासागर में समा गया है—पुरुषाभ वानरों की विशेष रूप से अतिविकसित जाति रहा करती थी। डार्विन ने हमारे इन पूर्वजों का लगभग यथार्थ वर्णन किया है। उनका समूचा शरीर बालों से ढंका हुआ था, उनके दाढ़ी और नुकीले कान थे, और वे समूहों में पेड़ों पर रहा करते थे।[2]

सम्भवतः उनकी जीवन-विधि (जिसमें पेड़ों पर चढ़ते समय हाथों और पांवों की क्रिया भिन्न होती है) का ही यह तात्कालिक परिणाम था कि समतल भूमि पर चलते समय वे हाथों का सहारा कम लेने लगे और अधिकाधिक सीधे खड़े होकर चलने लगे। **वानर से नर में संक्रमण का यह निर्णायक पग था।**

सभी वर्तमान पुरुषाभ वानर सीधे खड़े हो सकते हैं और केवल पैरों के बल चल सकते हैं, पर तभी जब सख़्त ज़रूरत हो, और बड़े भोंडे ढंग से

ही। उनके चलने का स्वाभाविक ढंग आधा खड़े होकर चलना है, और उसमें हाथों का इस्तेमाल शामिल होता है। इनमें से अधिकतर मुट्ठी की गिरह को ज़मीन पर रखते हैं, और पैरों को खींच कर शरीर को लम्बी बांहों के बीच से झुलाते हैं, जिस तरह लंगड़े लोग बैसाखी के सहारे चलते हैं। सामान्यतः वानरों में हम आज भी चौपायों की तरह चलने से लेकर पांवों पर चलने के बीच की सभी संक्रमणकालीन मंज़िलें देख सकते हैं। पर उनमें से किसी के लिए भी पांवों के सहारे चलना एक आरज़ी तदबीर से ज़्यादा कुछ नहीं है।

हमारे लोमश पूर्वजों में सीधी चाल के पहले नियम बन जाने और उसके बाद अपरिहार्य बन जाने का तात्पर्य यह है कि बीच के काल में हाथों के लिए लगातार नये नये काम निकलते गये होंगे। वानरों तक में हाथों और पांवों के उपयोग में एक प्रकार का विभाजन पाया जाता है। जैसा कि पहले ही उल्लेख किया जा चुका है, चढ़ने में हाथों का उपयोग पैरों से भिन्न ढंग से किया जाता है। जैसा कि निम्न जातीय स्तनधारी जीवों में आगे के पंजे के इस्तेमाल के बारे में देखा जाता है, हाथ प्रथमतः आहार संग्रह तथा ग्रहण के काम आते हैं। बहुत-से वानर वृक्षों में अपने लिए घोंसले बनाने के लिए हाथों का इस्तेमाल करते हैं अथवा शिंपांज़ी की तरह वर्षा-धूप से रक्षा के लिए तरुशाखाओं के बीच छत-सी बना लेते हैं। दुश्मन से बचाव के लिए वे अपने हाथों से डण्डा पकड़ते हैं या दुश्मन पर फलों अथवा पत्थरों की वर्षा करते हैं। बन्दी अवस्था में वे मनुष्यों के अनुकरण से सीखी कई सरल क्रियाएं अपने हाथों से करते हैं। लेकिन ठीक यहीं हम देखते हैं कि पुरुषाभ से पुरुषाभ वानरों के अविकसित हाथ और लाखों वर्षों के श्रम द्वारा अति परिनिष्पन्न मानव-हाथ के बीच कितनी विपुल दूरी है। हड्डियों और मांसपेशियों की संख्या और उनका सामान्य विन्यास दोनों में एक ही होता है। परन्तु निम्नतम प्राकृत मानव के हाथ सैकड़ों ऐसी क्रियाएं सम्पन्न कर सकते हैं जिनका अनुकरण किसी भी वानर के हाथ नहीं कर सकते। किसी भी वानर के हाथ पत्थर की भोंडी से भोंडी छुरी भी आज तक नहीं गढ़ सके हैं।

अतः आरम्भ में वे क्रियाएं अत्यन्त सरल रही होंगी जिनके लिए हमारे पूर्वजों ने वानर से मानव में संक्रमण के हज़ारों वर्षों में अपने हाथों को अनुकूलित करना धीरे-धीरे सीखा होगा। फिर भी निम्नतम प्राकृत मानव भी, वे प्राकृत मानव भी जिनमें हम अधिक पशुतुल्य अवस्था में प्रतीपगमन तथा उसके साथ ही साथ शारीरिक विह्रसन का घटित होना मान ले सकते

हैं, इन अन्तर्वर्त्ती जीवों से कहीं श्रेष्ठ हैं। मानव-हाथों द्वारा पत्थर की पहली छुरी बनाये जाने से पहले शायद एक ऐसी अवधि गुज़री होगी जिसकी तुलना में ज्ञात ऐतिहासिक अवधि नगण्य-सी लगती है। किन्तु निर्णायक पग उठाया जा चुका था। **हाथ मुक्त हो गया था** और अब से अधिकाधिक दक्षता एवं कुशलता प्राप्त कर सकता था, तथा इस प्रकार प्राप्त उच्चतर नमनीयता आनुवंशिक होती थी और पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ती जाती थी।

अतः हाथ केवल श्रमेन्द्रिय ही नहीं है, **वह श्रम की उपज भी है**। श्रम के द्वारा ही, नित नयी क्रियाओं के लिए अनुकूलन के द्वारा ही, इस प्रकार उपार्जित पेशियों, स्नायुओं – और दीर्घतर अवधियों में हड्डियों – के विशेष विकास की आनुवंशिकता के द्वारा ही, तथा इस आनुवंशिक पटुता के नये, अधिकाधिक जटिल क्रियाओं में नित पुनरावृत्त उपयोग के द्वारा ही मानव-हाथ ने वह उच्च परिनिष्पन्नता प्राप्त की है जिसकी बदौलत राफ़ायल की सी चित्रकारी, थोर्वाल्दसेन की सी मूर्तिकारी और पागानीनी का सा संगीत आविर्भूत हो सका।

परन्तु हाथ अपने आप में ही अस्तित्वमान् न था। वह तो एक पूरी, अति जटिल शरीर-व्यवस्था का एक अंग मात्र था। और जिस चीज़ से हाथ लाभान्वित हुआ, उससे वह पूरा शरीर भी लाभान्वित हुआ जिसकी हाथ ख़िदमत करता था। यह दो प्रकार से हुआ।

पहली बात यह कि शरीर उस नियम के परिणामस्वरूप लाभान्वित हुआ जिसे डार्विन विकास के अन्तःसम्बन्ध का नियम कहते थे। इस नियम के अनुसार किसी जीव के अलग-अलग अंगों के विशेष रूप उनसे प्रगटतः असम्बद्ध अन्य अंगों के कतिपय रूपों के साथ लाज़िमी तौर पर जुड़े हुए होते हैं। जैसे, उन सभी पशुओं में, जिनमें कोशिका केन्द्रकों के बग़ैर लाल रक्त कोशिकाएं होती हैं और जिनमें सिर का पृष्ठभाग दुहरी सन्धि (अस्थिकंद) के द्वारा प्रथम कशेरुक के साथ जुड़ा होता है, निरपवाद रूप में अपने बच्चों को स्तनपान कराने के लिए दुग्ध ग्रन्थियां भी होती हैं। इसी तरह जिन स्तनधारी जीवों में फटा खुर होता है उनमें उसके साथ ही जुगाली के लिए बहुल जठर भी नियमित रूप से पाया जाता है। कतिपय रूपों में परिवर्तन के साथ शरीर के अन्य भागों में भी परिवर्तन होते हैं, यद्यपि इस सह-सम्बन्ध की हम कोई व्याख्या नहीं कर सकते। नीली आंखों वाली बिलकुल सफ़ेद बिल्लियां सदा, अथवा प्रायः ही बहरी होती हैं। मानव-हाथ के शनैः

शनैः अधिकाधिक परिनिष्पन्न होने और उसी अनुपात में पैरों के सीधी चाल के लिए अनुकूलित होने की, इस अन्तःसम्बन्ध की बदौलत, निस्सन्दिग्ध रूप से शरीर के अन्य भागों में प्रतिक्रिया उत्पन्न हुई, पर इस क्रिया की अभी इतनी कम जांच-पड़ताल की गयी है कि हम यहां तथ्य को सामान्य शब्दों में प्रस्तुत करने से अधिक कुछ नहीं कर सकते।

इससे कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण है शेष शरीर पर हाथ के विकास की प्रत्यक्ष प्रदर्श्य प्रतिक्रिया। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, हमारे पूर्वज, पुरुषाभ वानर यूथचारी थे। प्रगट है कि सबसे अधिक सामाजिक पशु – मनुष्य – का व्युत्पत्ति-सम्बन्ध किन्हीं अयूथचारी निकटतम पूर्वजों से स्थापित करने की चेष्टा असम्भव है। हाथ के विकास के साथ, श्रम के साथ आरम्भ होनेवाली प्रकृति पर विजय ने प्रत्येक अग्रगति के साथ मानव के क्षितिज को व्यापक बनाया। मनुष्य को प्राकृतिक वस्तुओं के नये नये और अब तक अज्ञात गुणधर्मों का लगातार पता लगता जा रहा था। दूसरी ओर, श्रम के विकास ने पारस्परिक सहायता, सम्मिलित कार्यकलाप के उदाहरणों को बढ़ाकर और प्रत्येक व्यक्ति के लिए इस सम्मिलित कार्यकलाप की लाभप्रदता स्पष्ट करके समाज के सदस्यों को एक दूसरे के निकटतर लाने में लाज़िमी तौर पर मदद की। संक्षेप में, विकसित होते मानव उस बिन्दु पर पहुंचे जहां उन्हें एक दूसरे से **कुछ कहने की ज़रूरत** महसूस होने लगी। इस वाक्-प्रेरणा ने अपने अंग को उत्पन्न किया – वानर के अविकसित कण्ठ का मूर्च्छना के ज़रिये धीरे-धीरे पर निश्चित रूप से कायापलट हुआ, जिससे कि लगातार और भी विकसित मूर्च्छना पैदा हो, और मुख के प्रत्यंग एक-एक कर नये-नये संहित अक्षरों का उच्चारण करना धीरे-धीरे सीखते गये।

पशुओं के साथ तुलना करने से सिद्ध हो जाता है कि यह व्याख्या ही एकमात्र सही व्याख्या है कि श्रम से और श्रम के साथ भाषा की उत्पत्ति हुई। अधिक से अधिक विकसित पशु भी एक दूसरे से बात करने की अपनी अति स्वल्प आवश्यकता संहित वाणी की सहायता के बिना ही कर सकते हैं। प्राकृतिक अवस्था में, मानव वाणी न बोल सकने अथवा न समझ सकने के कारण कोई पशु दिक़्क़त नहीं महसूस करता। किन्तु मनुष्य द्वारा पालतू बना लिये जाने पर बात बिलकुल और ही होती है। मानव की संगति के कारण कुत्तों और घोड़ों में संहित भाषण ग्रहण करने की ऐसी शक्ति विकसित हो गयी है कि वे, अपने विचार-वृत्त की सीमा के अन्दर, किसी भी भाषा को

समझ लेना आसानी से सीख लेते हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने मानव के प्रति प्यार और कृतज्ञता जैसे आवेग—जो पहले उनके लिए एकदम अनजान थे—महसूस करने की क्षमता विकसित कर ली है। ऐसे जानवरों से अधिक लगाव रखने वाला कोई भी व्यक्ति यह माने बिना शायद ही रह सकता है कि ऐसे कितने ही जानवरों की मिसालें मौजूद हैं जो अब यह महसूस करते हैं कि उनका बोल न सकना एक ख़ामी है, यद्यपि उनके स्वरांगों के एक ख़ास दिशा में अति विशेषीकृत होने के कारण यह ख़ामी दुर्भाग्यवश अब दूर नहीं की जा सकती। पर जहां ये अंग मौजूद हैं, वहां कुछ सीमाओं के भीतर यह असमर्थता भी मिट जाती है। कहने की ज़रूरत नहीं कि पक्षियों के मुखांग मनुष्य के मुखांगों से अधिकतम भिन्न होते हैं, फिर भी पक्षी ही एकमात्र जीव हैं जो बोलना सीख लेते हैं। और सबसे कर्कश स्वर वाला पक्षी—तोता—सबसे अच्छा बोल सकता है। यह आपत्ति नहीं की जानी चाहिये कि तोता जो बोलता है, उसे समझता नहीं है। यह सही है कि मानवों के साथ रहने और बोलने के सुख मात्र के लिए तोता लगातार घंटों तक टांय-टांय करता जायेगा और अपना सम्पूर्ण शब्दभण्डार लगातार दुहराता रहेगा। पर अपने विचार-वृत्त की सीमा के अन्दर, वह जो बोलता है उसे समझना भी सीख सकता है। किसी तोते को इस तरह से गालियां बोलना सिखा दीजिये कि उसे इनके अर्थ का थोड़ा आभास हो जाये (उष्ण देशों की यात्रा से लौटने वाले जहाज़ियों का यह एक प्रिय मनोरंजन का साधन है), इसके बाद उसे छेड़िये। आप देखेंगे कि वह इन गालियों का बर्लिन के कुंजड़ों के समान ही सटीक उपयोग करेगा। ऐसा ही छोटी-मोटी चीज़ें मांगना सिखा देने पर भी होता है।

पहले श्रम, उसके बाद और तब उसके साथ वाणी—ये ही दो सबसे सारभूत उद्दीपनाएं थीं जिनके प्रभाव से वानर का मस्तिष्क धीरे-धीरे मनुष्य के मस्तिष्क में बदल गया, जो सारी समानता के बावजूद वानर के मस्तिष्क से कहीं बड़ा और अधिक परिनिष्पन्न है। मस्तिष्क के विकास के साथ-साथ ही उसके सबसे निकटस्थ करण, ज्ञानेन्द्रियों का विकास हुआ। जिस तरह वाणी के क्रमिक विकास के साथ अनिवार्य रूप से श्रवणेन्द्रिय का तदनुरूप परिष्कार होता है, ठीक उसी तरह से समग्र रूप में मस्तिष्क के विकास के साथ-साथ सभी ज्ञानेन्द्रियों का परिष्कार होता है। उक़ाब मनुष्य से कहीं अधिक दूर तक देख सकता है, परन्तु मनुष्य की आंखें चीज़ों में बहुत कुछ ऐसा

देख सकती हैं जो उक़ाब की आंखें नहीं देख सकतीं। कुत्ते में मनुष्य की अपेक्षा कहीं अधिक तीव्र घ्राणशक्ति होती है, परन्तु वह उन गन्धों के सौवें भाग की भी अनुभूति नहीं कर सकता जो मनुष्य के लिए भिन्न-भिन्न वस्तुओं की निश्चित द्योतक होती हैं। और स्पर्शशक्ति, जिसका कच्चे से कच्चे आरम्भिक रूप में भी बन्दर के पास अभाव होता है, श्रम के माध्यम से, केवल स्वयं मानव-हाथ के विकास के संग-संग ही विकसित हुई है।

श्रम और वाणी पर मस्तिष्क और उसके सहवर्ती ज्ञानेन्द्रियों के विकास, चेतना की बढ़ती स्पष्टता, विविक्त विचारणा तथा विवेक की शक्ति की प्रतिक्रिया ने श्रम और वाणी दोनों को ही और भी विकास करते जाने की नित नवीन उद्दीपना प्रदान की। मनुष्य के अन्तिम रूप से वानर से भिन्न हो जाने के साथ इस विकास का अपनी परिणति पर पहुंचना तो दूर रहा, कुल मिलाकर वह प्रबल प्रगति ही करता गया। हां, विभिन्न जनगण और विभिन्न कालों में इस विकास की मात्रा और दिशा भिन्न-भिन्न रही हैं और जहां-तहां स्थानीय अथवा अस्थायी पश्चाद्गति के कारण उसमें व्यवधान भी पड़ा। पूर्ण विकसित मानव के उदय होने के साथ एक नये तत्त्व, अर्थात् **समाज** के मैदान में आ जाने से इस विकास को एक ओर तो अग्रगति की प्रबल प्रेरणा मिली और दूसरी ओर अधिक निश्चित दिशाओं में पथनिर्देशन प्राप्त हुआ।

पेड़ों पर चढ़ने वाले एक वानर-दल से मानव-समाज के उदित होने में निश्चय ही लाखों वर्ष – जिनका पृथ्वी के इतिहास में मनुष्य-जीवन के एक क्षण से अधिक महत्त्व नहीं है* – गुज़र गये होंगे। परन्तु उसका उदय होकर रहा। और यहां फिर वानर-दल एवं मानव-समाज में हम क्या चरित्रगत अन्तर पाते हैं? अन्तर है **श्रम**। वानर-दल अपने लिए भौगोलिक अवस्थाओं द्वारा अथवा पास-पड़ोस के अन्य वानर-दलों के प्रतिरोध द्वारा निर्णीत आहार-क्षेत्र में ही आहार प्राप्त करके सन्तुष्ट था। वह नये आहार-क्षेत्र प्राप्त करने के लिए नयी जगहों में जाता था और संघर्ष करता था। परन्तु ये

---

*इस विषय के एक प्रमुख अधिकारी विद्वान सर विलियम टामसन ने हिसाब लगाया है कि जब पृथ्वी इतनी काफ़ी ठण्डी हो गई कि उस पर पौधे और पशु जीवित रह सकें, तब से **दस करोड़ से कुछ ही ज्यादा** वर्ष गुज़रे होंगे। (**एंगेल्स का नोट।**)

आहार-क्षेत्र प्रकृत अवस्था में उसे जो कुछ प्रदान करते थे, उससे अधिक इनसे कुछ प्राप्त करने की उसमें क्षमता न थी। हां, उसने अचेतन रूप से अपने मल-मूत्र द्वारा मिट्टी को उर्वर अवश्य बनाया। सभी सम्भव आहार-क्षेत्रों पर वानर-दलों द्वारा क़ब्ज़ा होते ही वानरों की संख्या में और वृद्धि नहीं हो सकती थी; इन पशुओं की संख्या अधिक से अधिक यथावत् रह सकती थी। परन्तु सभी पशु बहुत-सा आहार बरबाद करते हैं, इसके अतिरिक्त वे खाद्य-पूर्त्ति की आगामी पौध को अंकुर रूप में ही नष्ट कर देते हैं। शिकारी अगले वर्ष मृग-शावक देने वाली हिरणी को नहीं मारता, परन्तु भेड़िया उसे मार डालता है। तरु-गुल्मों के बढ़ने से पहले ही उन्हें चर जाने वाली यूनान की बकरियों ने देश की सभी पहाड़ियों को नंगा बना दिया है। पशुओं की यह "लुटेरू अर्थ-व्यवस्था" उन्हें सामान्य खाद्यों के अतिरिक्त अन्य खाद्यों को अपनाने को मजबूर करके पशु-जातियों के क्रमिक रूपान्तरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती है, क्योंकि इसकी बदौलत उनका रक्त भिन्न रासायनिक संरचना प्राप्त करता है और समूचा शारीरिक गठन क्रमशः बदल जाता है। दूसरी ओर पहले क़ायम हो चुकने वाली जातियां धीरे-धीरे विनष्ट हो जाती हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस लुटेरू अर्थ-व्यवस्था ने वानर से मनुष्य में हमारे पूर्वजों के संक्रमण में प्रबल भूमिका अदा की है। बुद्धि और अनुकूलन-क्षमता में औरों से कहीं आगे बढ़ी हुई वानर जाति में इस लूटेरू अर्थ-व्यवस्था का परिणाम इसके सिवा और कुछ न हो सकता था कि भोजन के लिए काम में लायी जाने वाली वनस्पतियों की संख्या लगातार बढ़ती जाये और पौष्टिक वनस्पतियों के अधिकाधिक भक्ष्य भागों का भक्षण किया जाये। सारांश यह कि इससे भोजन अधिकाधिक विविधतायुक्त होता गया। अतः शरीर में प्रवेश करने वाले पदार्थ, मनुष्य में संक्रमण के रासायनिक पूर्वावयव भी अधिकाधिक विविधतायुक्त होते गये होंगे। परन्तु अभी यह सब इस शब्द के ठीक अर्थ में श्रम नहीं था। श्रम औज़ारों के बनने के साथ आरम्भ होता है। हमें जो प्राचीनतम औज़ार—वे औज़ार जिन्हें प्रागैतिहासिक मानव की पाई गई दाय-वस्तुओं के आधार पर तथा इतिहास में ज्ञात प्राचीनतम जनगण एवं आज की जांगल से जांगल जातियों की जीवन-पद्धति के आधार पर हम प्राचीनतम कह सकते हैं—मिले हैं, वे क्या हैं? वे शिकार और मछली मारने के औज़ार हैं जिनमें से शिकार के औज़ार आयुधों का भी काम देते थे। परन्तु शिकार और मछली मारने की वृत्ति के

लिए यह पूर्वमान्य है कि शुद्ध शाकाहार से उसके साथ-साथ मांस-भक्षण की प्रथा में संक्रमण हो चुका होगा। वानर से मनुष्य में संक्रमण की प्रक्रिया में यह एक और महत्त्वपूर्ण पग है। **मांसाहार** में शरीर के उपापचयन के लिए दरकार सभी सबसे अधिक सारभूत तत्त्व प्रायः पूर्णतः तैयार मिलते हैं। इससे पाचन के लिए दरकार समय की ही बचत नहीं हुई, बल्कि वंनस्पति-जीवन के अनुरूप अन्य वर्धी शारीरिक प्रक्रियाओं के लिए दरकार समय भी घट गया। इस प्रकार वास्तविक पशु-जीवन की, इस शब्द के ठीक अर्थों में, सक्रिय अभिव्यंजना के लिए, और भी समय, सामग्री एवं इच्छा का लाभ हुआ। और विकसित होता मानव जितना ही वनस्पति से दूर हटता गया, उतना ही वह पशु से ऊंचा उठता गया। जिस तरह मांसाहार के संग शाकाहार की अभ्यस्त होने के साथ जंगली बिल्लियां और कुत्ते मानव के सेवक बन गये, ठीक उसी तरह शाकाहार के साथ-साथ मांसाहार को अपनाने से विकसित होते मानव को शारीरिक शक्ति एवं आत्मनिर्भरता प्राप्त करने में भारी मदद मिली। परन्तु मांसाहार का सबसे सारभूत प्रभाव मस्तिष्क पर पड़ा। मस्तिष्क को अपने पोषण एवं विकास के लिए आवश्यक सामग्री अब पहले से कहीं अधिक प्रचुरता से प्राप्त होने लगी, अतः अब वह पीढ़ी दर पीढ़ी अधिक तेज़ी और पूर्णता के साथ विकास कर सकता था। हम शाका-हारियों का बहुत आदर करते हैं, परन्तु हमें यह मानना ही पड़ेगा कि मांसाहार के बिना मनुष्य का आविर्भाव नहीं हुआ। हां, मांसाहार के कारण ही सभी ज्ञात जनगण यदि किसी काल में नरभक्षी बन गये थे (अभी दसवीं शताब्दी तक बर्लिनवासियों के पूर्वज, वेलेतोवियन या विल्जियन लोग अपने मां-बाप को मार कर खा जाया करते थे) तो आज इसका कोई महत्त्व नहीं रह गया है।

मांसाहार के फलस्वरूप निर्णायक महत्त्व रखनेवाले दो नये क़दम उठाये गये – मनुष्य ने अग्नि को वशीभूत किया, दूसरे – पशु-पालन आरम्भ हुआ। पहले के फलस्वरूप पाचन प्रक्रिया और संक्षिप्त बन गयी क्योंकि इसकी बदौलत मानव-मुख को मानो पहले ही से आधा पचा हुआ भोजन मिलने लगा। दूसरे ने मांस की पूर्त्ति का शिकार के अलावा एक नया, अधिक नियमित स्रोत प्रदान करके मांस की सप्लाई को अधिक प्रचुर बना दिया। इसके अतिरिक्त दूध और दूध से बनी वस्तुओं के रूप में उसने आहार की एक नयी सामग्री प्रदान की, जो अपने अवयवों की दृष्टि से कम से कम उतनी ही मूल्यवान्

थी जितना की मांस। अतः ये दोनों ही नयी प्रगतियां सीधे-सीधे मानव की मुक्ति का नया साधन बन गयीं। उनके अप्रत्यक्ष परिणामों की यहां विशद विवेचना करने से हम विषय से बहुत दूर चले जायेंगे, हालांकि मानव और समाज के विकास के लिए उनका भारी महत्त्व है।

जिस तरह मनुष्य ने सभी भक्ष्य वस्तुओं को खाना सीखा, उसी तरह उसने किसी भी जलवायु में रह लेना भी सीखा। वह समूची निवासयोग्य दुनिया में फैल गया। वही एकमात्र पशु भी था जिसमें ख़ुद-ब-ख़ुद ऐसा कर सकने की क्षमता थी। सभी जलवायुओं के अभ्यस्त अन्य पशु–पालतू जानवर और कृमि–अपने-आप नहीं, बल्कि मनुष्य का अनुसरण कर ही सभी जलवायुओं के अभ्यस्त बने। और मानव के सार्वत्रिक गरम जलवायु वाले अपने मूल निवासस्थान से ठण्डे इलाक़ों में स्थानान्तरण से, जहां वर्ष के दो भाग हैं–ग्रीष्म ऋतु एवं शीत ऋतु–नयी आवश्यकताएं उत्पन्न हुईं–शीत और नमी से बचाव के लिए घर और पहनावे की आवश्यकता उत्पन्न हुई जिससे श्रम के नये क्षेत्र आविर्भूत हुए। फलतः नये प्रकार के कार्यकलाप आरम्भ हुए जिनसें मनुष्य पशु से और भी अधिकाधिक पृथक् होता गया।

प्रत्येक व्यक्ति ही में नहीं, बल्कि समाज में भी हाथों, स्वरांगों और मस्तिष्क के सामंजस्य से मानव अधिकाधिक पेचीदे कार्य करने के तथा सतत उच्चतर लक्ष्य अपने सामने रखने और उन्हें हासिल करने के योग्य बने। हर पीढ़ी के गुज़रने के साथ श्रम स्वयं भिन्न, अधिक परिनिष्पन्न, अधिक विविधतायुक्त होता गया। शिकार और पशु-पालन के अतिरिक्त कृषि भी की जाने लगी। फिर कताई, बुनाई, धातुकारी, कुम्भकारी और नौचालन की बारी आयी। व्यापार और उद्योग के साथ अन्ततः कला और विज्ञान का आविर्भाव हुआ। क़बीलों से जातियों और राज्यों का विकास हुआ। क़ानून और राजनीति का आविर्भाव हुआ और उनके साथ मानव मस्तिष्क में मानव-जगत् के काल्पनिक दर्पण-प्रतिबिम्ब–धर्म–का उदय हुआ। प्रथमतः मस्तिष्क की उपज लगने वाले और मानव समाजों के ऊपर छाये ज्ञात होनेवाले इन सारे सृजनों के आगे श्रमशील हाथ के अधिक साधारण उत्पादन पृष्ठभूमि में चले गये। ऐसा इस कारण से और भी हुआ कि समाज के विकास की बहुत प्रारम्भिक मंज़िल से ही (उदाहरणार्थ आदिम परिवार में ही) श्रम को नियोजित करने वाला मस्तिष्क नियोजित श्रम को दूसरों के हाथों से करा सकने में समर्थ था। सभ्यता की द्रुत प्रगति का समूचा श्रेय मस्तिष्क को,

मस्तिष्क के विकास एवं क्रियाकलाप को दे डाला गया। मनुष्य अपने कार्यों की व्याख्या अपनी आवश्यकताओं से करने के बदले अपने विचारों से करने के आदी हो गये (हालांकि आवश्यकताएं ही मस्तिष्क में प्रतिबिम्बित होती हैं, चेतना द्वारा ग्रहण की जाती हैं)। अतः कालक्रम में उस भाववादी विश्व दृष्टिकोण का उदय हुआ जो प्राचीन जगत् के अन्त के बाद से तो ख़ास तौर पर मानवों के मस्तिष्क पर हावी रहा है। वह अब भी इस हद तक उनके ऊपर हावी है कि डार्विन पंथ के भौतिकवादी से भौतिकवादी प्रकृतिविज्ञानी भी अभी तक मनुष्य की उत्पत्ति के विषय में स्पष्ट धारणा निरूपित करने में असमर्थ हैं क्योंकि इस विचारधारा के प्रभाव में पड़कर वे इसमें श्रम द्वारा अदा की गयी भूमिका को नहीं देखते।

जैसा कि पहले ही इंगित किया जा चुका है, पशु अपने क्रियाकलाप से मानवों की ही भांति बाह्य प्रकृति को परिवर्तित करते हैं यद्यपि वे उस हद तक ऐसा नहीं करते जिस हद तक मनुष्य करता है। और जैसा कि हम देख चुके हैं उनके द्वारा अपने प्रतिवेश में किया गया यह परिवर्तन उलट कर उनके ऊपर असर डालता है तथा अपने प्रणेताओं को परिवर्तित करता है। प्रकृति में पृथक् रूप से कुछ भी नहीं होता। हर चीज़ हर अन्य चीज़ पर प्रभाव डालती तथा उसके द्वारा स्वयं प्रभावित होती है। अधिकतर इस सर्वांगीण गति एवं अन्योन्यक्रिया को भुला देने के कारण ही प्रकृतिविज्ञानी साधारण से साधारण चीज़ को स्पष्टता के साथ नहीं देख पाते। हम देख चुके हैं कि किस तरह बकरियों ने यूनान में वनों के पुनर्जनन को रोका है। सेंट हेलेना द्वीप में वहां पहुंचने वाले प्रथम यात्रियों द्वारा उतारे बकरे और सूअर पहले से चली आती वहां की वनस्पतियों का लगभग पूरी तौर पर सफ़ाया कर देने में सफल हुए हैं और ऐसा करके उन्होंने बाद में आये नाविकों और आबादकारों द्वारा लाये पौधों के प्रसार के लिए ज़मीन तैयार की है। परन्तु यदि पशु अपने प्रतिवेश पर टिकाऊ प्रभाव डालते हैं तो ऐसा अचेत रूप से ही होता है तथा जहां तक स्वयं पशुओं का प्रश्न है यह महज़ संयोग की बात होती है। लेकिन मनुष्य पशु से जितना ही अधिक दूर होते हैं, उतना ही प्रकृति पर उनका प्रभाव पहले से ज्ञात निश्चित लक्ष्यों की ओर निर्देशित, पूर्वकल्पित, नियोजित क्रिया का रूप धारण कर लेता है। पशु यह महसूस किये बिना कि वह क्या कर रहा है, किसी इलाक़े की वनस्पतियों को नष्ट करता है। मनुष्य नष्ट करता है मुक्त भूमि पर फ़सलें

बोने के लिए अथवा वृक्ष एवं अंगूर की लताएं रोपने के लिए, जिनके बारे में वह जानता है कि वे बोयी गयी मात्रा से कहीं अधिक उपज देंगी। उपयोगी पौधों और पालतू पशुओं को वह एक देश से दूसरे में स्थानान्तरित करता है और इस प्रकार पूरे के पूरे महाद्वीपों के पशुओं एवं पादपों को बदल डालता है। इतना ही नहीं। कृत्रिम प्रजनन के द्वारा वनस्पति और पशु दोनों ही मानव के हाथों से इस तरह बदल दिये जाते हैं कि वे पहचाने भी नहीं जा सकते। उन जंगली पौधों की व्यर्थ ही अब भी खोज की जा रही है जिनसे हमारे नाना प्रकार के अन्नों की उत्पत्ति हुई है। यह प्रश्न कि हमारे कुत्तों का, जो ख़ुद भी एक दूसरे से अति भिन्न हैं, अथवा उतनी ही भिन्न नस्लों के घोड़ों का पूर्वज कौनसा वन्य पशु है अब भी विवादास्पद है।

बात चाहे जो भी हो, पशुओं के नियोजित पूर्वकल्पित ढंग से काम कर सकने की क्षमता के बारे में विवाद उठाना हमारा मक़सद नहीं है। इसके विपरीत, जहां भी प्रोटोप्लाज़्म का, जीवित एल्बूमीन का अस्तित्व है और वह प्रतिक्रिया करता है, यानी निश्चित बाह्य उद्दीपनाओं के फलस्वरूप निश्चित क्रियायें सम्पन्न करता है, भले ही ये क्रियायें अत्यन्त ही सहज प्रकार की हों, वहां क्रिया की एक नियोजित विधि विद्यमान रहती है। यह प्रतिक्रिया वहां भी होती है जहां अभी कोई कोशिका नहीं है, तंत्रिका कोशिका की तो बात ही दूर रही। इसी प्रकार से कीटभक्षी पौधों का अपना शिकार पकड़ने का ढंग किसी मानी में नियोजित क्रिया सा लगता है यद्यपि वह बिलकुल अचेतन रूप में की जाती है। पशुओं में सचेत, नियोजित क्रिया की क्षमता तंत्रिका तन्त्र के विकास के अनुपात में विकसित होती है और स्तनधारी पशुओं में यह काफ़ी उच्च स्तर तक पहुंच जाती है। इंगलैंड में लोमड़ी का शिकार करने वाले आसानी से यह देख सकते हैं कि लोमड़ी अपना पीछा करने वालों की आंखों में धूल झोंकने के लिए स्थानीय इलाक़े की अपनी उत्तम जानकारी का इस्तेमाल करने का कैसा अचूक ज्ञान रखती है और भूमि की अपने लिए सुविधाजनक हर विशेषता को वह कितनी अच्छी तरह जानती तथा कितनी अच्छी तरह शिकारी को गुमराह कर देने के लिए उसका इस्तेमाल करती है। मानव की संगति में रहने के कारण अधिक विकसित पालतू पशुओं को हम नित्य ही चतुराई के ठीक उसी स्तर के कार्य करते देखते हैं जिस स्तर के बच्चे किया करते हैं। कारण यह है कि जिस प्रकार माता के गर्भ में मानव भ्रूण के विकास का इतिहास करोड़ों वर्षों में

फैले, हमारे पशु पूर्वजों के केंचुए से आरम्भ करके अब तक के शारीरिक विकास के इतिहास की संक्षिप्त पुनरावृत्ति है, उसी प्रकार मानव शिशु का मानसिक विकास इन्हीं पूर्वजों के, कम से कम बाद में आने वाले पूर्वजों के, बौद्धिक विकास की और भी संक्षिप्त पुनरावृत्ति है। पर सारे के सारे पशुओं की सारी की सारी नियोजित क्रिया भी कभी धरती पर उनकी इच्छा की छाप न छोड़ सकी। यह श्रेय मनुष्य को ही प्राप्त हुआ।

संक्षेप में, पशु बाह्य प्रकृति का **उपयोग** मात्र करता है और उसमें केवल अपनी उपस्थिति द्वारा परिवर्तन लाता है। पर मनुष्य अपने परिवर्तनों द्वारा प्रकृति से अपने काम करवाता है, उस पर **स्वामिवत शासन** करता है। यही मनुष्य तथा अन्य पशुओं के बीच अन्तिम एवं सारभूत अन्तर है। श्रम ही यहां भी इस अन्तर को लाने वाला होता है*।

परन्तु प्रकृति पर अपनी मानवीय विजयों के कारण हमें आत्मप्रशंसा में विभोर नहीं हो जाना चाहिए, क्योंकि वह हर ऐसी विजय का हमसे प्रतिशोध लेती है। यह सही है कि प्रत्येक विजय से प्रथमतः वे ही परिणाम प्राप्त हुए जिनका हमने भरोसा किया था, पर द्वितीयतः और तृतीयतः उसके बिलकुल ही भिन्न तथा अप्रत्याशित परिणाम हुए, जिनसे अक्सर पहले परिणाम का असर जाता रहा। मेसोपोटामिया, यूनान, एशिया माइनर तथा अन्य स्थानों में जिन लोगों ने कृषियोग्य भूमि प्राप्त करने के लिए वनों को बिलकुल ही नष्ट कर डाला, उन्होंने कभी यह कल्पना नहीं की थी कि वनों के साथ आर्द्रता के संग्रह-केंद्रों और आगारों का उन्मूलन करके वे इन देशों की मौजूदा तबाही की बुनियाद डाल रहे हैं। एल्प्स के इटालियनों ने जब पर्वत के दक्षिणी ढलानों पर चीड़ के वनों को (ये उत्तरी ढलानों पर ख़ूब सुरक्षित रखे गये थे) पूरा का पूरा इस्तेमाल कर डाला तब उन्हें इस बात का आभास नहीं था कि ऐसा करके वे अपने प्रदेश के दुग्ध उद्योग पर कुठाराघात कर रहे हैं। इससे भी कम आभास उन्हें इस बात का था कि अपने कार्य द्वारा वे अपने पर्वतीय सोतों को वर्ष के अधिक भाग के लिए जलहीन बना रहे हैं तथा साथ ही इन सोतों के लिए यह सम्भव बना रहे हैं कि वे वर्षाऋतु में मैदानों में और भी भयानक बाढ़ें लाया करें। यूरोप में आलू का प्रचार करने वालों को यह ज्ञात नहीं था कि इस मंडमय कन्द

*हाशिये पर एंगेल्स की टीप: "गौरवशाली बनाता है"।—सं०

को फैलाने के साथ-साथ वे स्क्रोफ़ुला रोग का भी प्रसार कर रहे हैं। अतः हमें हर पग पर यह याद कराया जाता है कि प्रकृति पर हमारा शासन किसी विदेशी जाति पर एक विजेता के शासन जैसा कदापि नहीं है, वह प्रकृति से बाहर के किसी व्यक्ति जैसा शासन नहीं है। बल्कि रक्त, मांस और मस्तिष्क से युक्त हम प्रकृति के ही प्राणी हैं, हमारा अस्तित्व उसके ही मध्य है और उसके ऊपर हमारा सारा स्वामित्व केवल इस बात में निहित है कि अन्य सभी प्राणियों से हम इस मानी में श्रेष्ठ हैं कि हम प्रकृति के नियमों को जान सकते और ठीक-ठीक लागू कर सकते हैं।

वास्तव में, ज्यों-ज्यों दिन बीतते जाते हैं हम उसके नियमों को अधिकाधिक सही ढंग से सीखते जाते हैं और प्रकृति के परम्परागत प्रक्रम में अपने हस्तक्षेप के अधिक तात्कालिक परिणामों के साथ उसके अधिक दूरवर्ती परिणामों को भी देखने लगे हैं। ख़ासकर प्रकृति विज्ञान की वर्तमान शताब्दी की प्रबल प्रगति के बाद तो हम अधिकाधिक ऐसी स्थिति में आते जा रहे हैं जहां कम से कम अपने सबसे साधारण उत्पादक क्रियाकलाप के अधिक दूरवर्ती प्राकृतिक परिणामों तक को हम जान सकते हैं और फलतः उन्हें नियंत्रित कर सकते हैं। लेकिन जितना ही ज़्यादा ऐसा होगा उतना ही ज़्यादा मनुष्य प्रकृति के साथ अपनी एकता का न केवल बोध करेंगे बल्कि उसे कार्यरूप भी देंगे। यूरोप में प्राचीन क्लासिकीय युग के अवसान के बाद उद्भूत होनेवाली और ईसाई मत में सबसे अधिक विशद रूप में निरूपित की जाने वाली, मस्तिष्क और भूतद्रव्य, मनुष्य और प्रकृति, आत्मा और शरीर के वैपरीत्य की निरर्थक एवं अप्राकृतिक धारणा उतनी ही अधिक असम्भव होती जायेगी।

परन्तु उत्पादन की दिशा में निर्देशित अपने कार्यकलाप के अधिक दूरवर्ती प्राकृतिक फलों का थोड़ा-बहुत आकलन कर सकना सीखने में जहां हमें हज़ारों वर्षों की मेहनत लग चुकी है, वहां इन क्रियाओं के अधिक दूरवर्ती सामाजिक फलों का आकलन करने का काम और भी दुष्कर रहा है। आलू के प्रचार के फलस्वरूप स्क्रोफ़ुला रोग के प्रसार की हम चर्चा कर चुके हैं। परन्तु श्रमजीवियों के आलू के आहार पर ही आश्रित हो जाने का पूरे के पूरे देशों के अन्दर आम जनसमुदाय की जीवनावस्था पर जो प्रभाव पड़ा है, उसके मुक़ाबले में स्क्रोफ़ुला रोग भी भला क्या है? अथवा उस अकाल की तुलना में ही यह रोग क्या था जिसने आलू की फ़सल में कीड़ा लग जाने

के फलस्वरूप सन् १८४७ में आयरलैण्ड को अपना ग्रास बनाया था और सम्पूर्णतया या लगभग सम्पूर्णतया आलू के आहार पर पले दस लाख आयरलैण्ड-वासियों को मौत का शिकार बना दिया तथा बीस लाख को विदेशों में जाकर बसने को मजबूर किया था? जब अरबों ने शराब चुआना सीखा तो यह बात उनके दिमाग़ में बिलकुल नहीं आयी थी कि ऐसा करके वे उस समय तक अज्ञात अमरीकी महाद्वीप के आदिवासियों के भावी उन्मूलन का एक मुख्य साधन उत्पन्न कर रहे थे। और बाद में जब कोलम्बस ने अमरीका की खोज की तो उसे नहीं पता था कि ऐसा करके वह यूरोप में बहुत पहले मिटायी जा चुकी दास-प्रथा को नवजीवन प्रदान कर रहा था और नीग्रो-व्यापार की नींव डाल रहा था। सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों में भाप का इंजन आविष्कार करने में संलग्न लोगों के दिमाग़ में यह बात नहीं आयी थी कि वे वह औज़ार तैयार कर रहे हैं जो समूची दुनिया के अन्दर सामाजिक सम्बन्धों में अन्य किसी भी औज़ार की अपेक्षा बड़ा क्रांतिकारी परिवर्तन ला देने वाला होगा। ख़ास करके यूरोप में यह औज़ार थोड़े-से लोगों के हाथ में धन को संकेंद्रित करते हुए, जबकि विशाल बहुसंख्यक सम्पत्तिहीन हो जायेंगे, पहले तो पूंजीपति वर्ग को सामाजिक और राजनीतिक प्रभुता प्रदान करने वाला, लेकिन उसके बाद पूंजीपति और सर्वहारा वर्गों के उस वर्ग संघर्ष को जन्म देने वाला होगा जिसका अन्तिम परिणाम पूंजीपति वर्ग की सत्ता का ख़ात्मा और सभी वर्ग विग्रह की समाप्ति ही हो सकता है। परन्तु इस क्षेत्र में भी लम्बे और प्रायः कठोर अनुभव के बाद तथा ऐतिहासिक सामग्री का संग्रह और विश्लेषण करके धीरे-धीरे हम अपने उत्पादक क्रियाकलाप के अप्रत्यक्ष, अधिक दूरवर्ती सामाजिक परिणामों को स्पष्ट देखना सीख रहे हैं। इस प्रकार इन परिणामों को नियंत्रित और नियमित करने की सम्भावना हमारे सामने प्रस्तुत हो रही है।

पर ऐसे नियमन को क्रियान्वित करने के लिए ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है। इसके लिए हमारी अभी तक की उत्पादन-प्रणाली में, और उसके साथ हमारी समूची समकालीन समाज-व्यवस्था में आमूल क्रान्ति अपेक्षित है।

आज तक जितनी भी उत्पादन-प्रणालियां रही हैं, उन सब का लक्ष्य केवल श्रम के सबसे तात्कालिक एवं प्रत्यक्षतः उपयोगी परिणाम प्राप्त करना मात्र रहा है। इनके आगे के परिणामों की, जो बाद में आते हैं तथा क्रमिक पुनरावृत्ति एवं संचय द्वारा ही प्रभावोत्पादक बनते हैं, पूर्णतया उपेक्षा की

गयी। भूमि का सम्मिलित स्वामित्व जो आरम्भ में था, एक ओर तो मानवों के ऐसे विकास स्तर के अनुरूप था जिसमें उनका क्षितिज सामान्यतः सम्मुख उपस्थित वस्तुओं तक सीमित था। दूसरी ओर उसमें उपलब्ध भूमि का कुछ फ़ाज़िल होना पूर्वमान्य था जिससे कि इस आदिम क़िस्म की अर्थ-व्यवस्था के किन्हीं सम्भव दुष्परिणामों का निराकरण करने की गुंजाइश पैदा होती थी। इस फ़ाज़िल भूमि के चुक जाने के साथ सम्मिलित स्वामित्व का ह्रास होने लगा। पर उत्पादन के सभी उच्चतर रूपों के परिणामस्वरूप आबादी विभिन्न वर्गों में विभक्त हो जाती थी और इस विभाजन के कारण शासक एवं उत्पीड़ित वर्गों का विग्रह शुरू हो जाता था। अतः शासक वर्ग का हित उस हद तक उत्पादन का मुख्य प्रेरक तत्त्व बन गया जिस हद तक कि उत्पादन उत्पीड़ित जनता के जीवन-निर्वाह के न्यूनतम साधनों तक ही सीमित न था। पश्चिमी यूरोप में आज प्रचलित पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली में यह चीज़ सबसे अधिक पूर्णता के साथ क्रियान्वित की गयी है। उत्पादन और विनिमय पर प्रभुत्व रखनेवाले अलग अलग पूंजीपति अपने कार्यों के सबसे तात्कालिक उपयोगी परिणाम की चिन्ता करने में ही समर्थ हैं। वस्तुतः यह उपयोगी परिणाम भी—जहां तक कि प्रश्न उत्पादित और विनिमय की गयी वस्तु की उपयोगिता का होता है—पृष्ठभूमि में चला जाता है और विक्रय द्वारा मिलने वाला मुनाफ़ा एकमात्र प्रेरक तत्त्व बन जाता है।

* * *

पूंजीपति वर्ग का सामाजिक विज्ञान—क्लासिकीय राजनीतिक अर्थशास्त्र—प्रधानतया केवल उत्पादन और विनिमय से सम्बन्धित मानवीय क्रियाकलाप के सीधे-सीधे इच्छित सामाजिक प्रभावों को ही लेता है। यह पूर्णतया उस सामाजिक संगठन के अनुरूप है जिसकी वह सैद्धान्तिक अभिव्यक्ति है। चूंकि पूंजीपति तात्कालिक मुनाफ़े के लिए उत्पादन और विनिमय करते हैं इसलिए केवल निकटतम, सबसे तात्कालिक परिणामों का ही सर्वप्रथम लेखा लिया जा सकता है। कोई कारख़ानेदार अथवा व्यापारी जब तक सामान्य इच्छित मुनाफ़े पर किसी उत्पादित अथवा ख़रीदे माल को बेचता है वह ख़ुश रहता है और इसकी चिन्ता नहीं करता कि बाद में माल और उसके ख़रीदारों का क्या होता है। इस क्रियाकलाप के प्राकृतिक प्रभावों के बारे में भी यही बात कही जा सकती है। जब क्यूबा में स्पेनी बागानमालिकों ने पर्वतों के

ढलानों पर खड़े जंगलों को जला डाला और उनकी राख से अत्यन्त लाभप्रद कहवा-वृक्षों की केवल एक पीढ़ी के लिए पर्याप्त खाद हासिल की, तब उन्हें इस बात की परवाह न हुई कि बाद में उष्णप्रदेशीय भारी वर्षा मिट्टी की अधुना अरक्षित ऊपरी परत को बहा ले जायेगी और नंगी चट्टानें ही छोड़ देगी! जैसे समाज के सम्बन्ध में वैसे ही प्रकृति के सम्बन्ध में भी वर्तमान उत्पादन-प्रणाली मुख्यतया केवल प्रथम, ठोस परिणाम भर से मतलब रखती है। और तब विस्मय प्रगट किया जाता है कि इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिए किये गये क्रियाकलाप के दूरवर्ती प्रभाव बिलकुल दूसरे ही प्रकार के, बल्कि मुख्यतया बिलकुल उलटे ही प्रकार के होते हैं; कि पूर्त्ति और मांग का तालमेल बिलकुल विपरीत वस्तु में परिणत हो जाता है (जैसा कि प्रत्येक दसवर्षीय औद्योगिक चक्र से, जिसका जर्मनी तक "गिरावट"[3] के मौक़े पर आरम्भिक स्वाद चख चुका है, सिद्ध हो चुका है); कि अपने श्रम पर आधारित निजी स्वामित्व अनिवार्यतः मज़दूरों की सम्पत्तिहीनता में विकसित हो जाता है जबकि समस्त धन ग़ैर-मज़दूरों के हाथों में अधिकाधिक केन्द्रित होता जाता है; कि... *

फ़े० एंगेल्स द्वारा १८७६ में लिखित।
सर्वप्रथम «*Die Neue Zeit*» Bd.2., № 44,1895—1896, में प्रकाशित।

पाण्डुलिपि के अनुसार मुद्रित।
मूल जर्मन।

* लेख की पाण्डुलिपि यहीं समाप्त हो जाती है। —सं०

फ़ेडरिक एंगेल्स

कार्ल मार्क्स

समाजवाद, और इस तरह वर्तमान काल के पूरे मज़दूर आन्दोलन को वैज्ञानिक आधार प्रदान करने वाले सबसे पहले व्यक्ति, कार्ल मार्क्स का जन्म १८१८ में त्रियेर नामक नगर में हुआ था। उन्होंने बोन और बर्लिन में पहले क़ानून का अध्ययन किया, लेकिन जल्दी ही वह इतिहास और दर्शन को अपना सारा समय देने लगे। १८४२ में वह दर्शनशास्त्र के सहायक प्रोफ़ेसर होने जा ही रहे थे कि फ़्रेडरिक-विल्हेल्म तृतीय की मृत्यु के बाद जो राजनीतिक आन्दोलन छिड़ गया था, उसने उन्हें दूसरे ही रास्ते की ओर मोड़ दिया। उनके सहयोग से राइन प्रदेश के उदारपंथी पूंजीपतियों के नेता काम्पहाउज़ेन, हान्सेमान आदि ने कोलोन में «*Rheinische Zeitung*»[4] नामक पत्र निकाला। १८४२ की शरत ऋतु में मार्क्स, राइनी विधान सभा की कार्यवाही की जिनकी आलोचना* ने सब का ध्यान आकर्षित किया था, इस पत्र के प्रधान बना दिये गये। «*Rhenische Zeitung*» स्वभावतः सेन्सर की निगरानी में निकलता था, लेकिन सेन्सर-विभाग उससे पार न पा सकता था।** प्रायः सदा ही «*Rheinische Zeitung*» महत्व के लेख छाप ही लेता। सेन्सर के आगे पहले महत्त्वहीन चारा डाल दिया जाता था, जिस पर क़लम चलाने के बाद

---

* **का० मार्क्स**, 'छठी राइनी विधान सभा की कार्यवाही (धारा १)।—सं०

** «*Rheinische Zeitung*» का पहला सेन्सर पुलिस कौंसिलर दोल्लेशल था। यह वही आदमी था जिसने «*Kölnische Zeitung*»[5] में दान्ते के «*Divine Comedy*» ('दिव्य कामेडी') के **फ़िलेलीथीस** (बाद में सैक्सनी का राजा जोहन) द्वारा किये गये अनुवाद के एक विज्ञापन पर यह कहकर कैंची चला दी थी कि हमें ईश्वरीय मामलों को प्रहसन का विषय नहीं बनाना चाहिए। (**एंगेल्स का नोट।**)

या तो वह ख़ुद ही थक कर हार मान लेता या इस धमकी के सामने झुक जाता कि लेख पास न हुए तो कल अख़बार ही न निकलेगा। यदि «*Rheinische Zeitung*» जैसे साहसी दस अख़बार और होते, जिनके प्रकाशक सौ–दो सौ थेलर मैटर फिर से कंपोज़ कराने पर ज़्यादा ख़र्च करने के लिए तैयार रहते, तो १८४३ में ही जर्मनी में सेन्सर का काम असम्भव हो जाता। लेकिन जर्मन अख़बारों के मालिक ओछी तबीयत के डरपोक कूपमण्डूक थे और यह लड़ाई «*Rheinische Zeitung*» अकेले ही चलाता था। उसने एक के बाद एक सेन्सरों को थका डाला, अन्त में उस पर दोहरा सेन्सर लगाया गया। एक बार सेन्सर किये जाने के बाद केन्द्रीय सरकार का प्रादेशिक प्रतिनिधि उसे फिर देख-भाल कर अन्तिम बार सेन्सर करता था। लेकिन यह तरीक़ा भी कारगर न हुआ। १८४३ के आरम्भ में सरकार ने कहा कि इस अख़बार को क़ाबू में रखना असम्भव है, इसलिए उसने उसे बन्द कर दिया।

इसी बीच मार्क्स ने आगामी काल में प्रतिक्रियावादी सरकार के मंत्री होने वाले फ़ॉन वेस्तफ़ालेन की बहन से शादी कर ली थी। वह पेरिस चले गये और वहां पर आ० रूगे के साथ «*Deutsch-Französische Jahrbücher*»[6] निकालने लगे जिसमें उन्होंने अपनी समाजवादी लेखमाला का श्रीगणेश किया। सबसे पहले उन्होंने 'हेगेल के न्याय-दर्शन की समालोचना' लिखी। इसके बाद एंगेल्स के साथ मिल कर 'पवित्र परिवार। ब्रूनो बावेर और उनकी मंडली के विरोध में' लिखा। यह रचना उस समय के जर्मन दार्शनिक भाववाद के एक नवीनतम रूप की व्यंग्यात्मक समालोचना थी।

राजनीतिक अर्थशास्त्र और महान् फ़ान्सीसी क्रान्ति के इतिहास के अध्ययन में समय लगाने के बावजूद मार्क्स को प्रशा की सरकार पर जब-तब वार करने का मौक़ा मिल जाता था। प्रशा की सरकार ने, १८४५ में, गीज़ो के मंत्रिमंडल द्वारा उन्हें फ़ान्स से निकलवाकर बदला चुकाया।[7] कहा जाता है कि अलेक्ज़ेंडर फ़ॉन हम्बोल्ट इस काम के लिए बीच में पड़े थे। मार्क्स ने ब्रसेल्स में डेरा डाला और वहां १८४७ में फ़ांसीसी भाषा में, 'दर्शन की दरिद्रता' प्रकाशित की—यह पुस्तक प्रूदों की रचना 'दरिद्रता का दर्शन' की आलोचना है। १८४८ में उन्होंने 'मुक्त व्यापार की विवेचना' प्रकाशित की। इसी समय, अवसर से लाभ उठाकर, उन्होंने ब्रसेल्स में जर्मन मज़दूर समाज[8] की स्थापना की और इस तरह व्यावहारिक आन्दोलन आरम्भ कर दिया। यह आन्दोलन उनके लिए और भी महत्त्व का हो गया जब वह

और उनके राजनीतिक साथी १८४७ में गुप्त कम्युनिस्ट लीग में शामिल हो गये, जो कई साल पहले से चल रही थी। अब उसका ढांचा आमूल बदल डाला गया। पहले यह संस्था कमोबेश षड्यंत्रकारी संस्था थी, लेकिन अब वह कम्युनिस्ट प्रचार का एक सीधा-सादा संगठन बन गयी। यदि वह गुप्त रूप से कार्य करती थी तो केवल इसलिए कि दूसरा कोई चारा न था। जर्मन सामाजिक जनवादी पार्टी का यही **पहला** संगठन था। जहां भी जर्मन मज़दूरों की यूनियनें थीं, वहां लीग भी थी। इंगलैण्ड, बेल्जियम, फ़्रांस और स्विट्ज़रलैण्ड की प्रायः सभी यूनियनों के और जर्मनी की भी बहुत-सी यूनियनों के नेता लीग के सदस्य थे। जर्मनी के उठते हुए मज़दूर आन्दोलन में लीग का बहुत बड़ा हाथ था। इसके सिवा हमारी लीग ने ही सबसे पहले समूचे मज़दूर आन्दोलन के अन्तर्राष्ट्रीय चरित्र पर ज़ोर दिया और उसे व्यवहार में भी चरितार्थ किया, – उसके सदस्यों में अंग्रेज़, बेलजियन, हंगेरियन, पोल आदि थे और वह मज़दूरों की अन्तर्राष्ट्रीय सभायें भी आयोजित करती थी – विशेषकर लन्दन में।

१८४७ में हुई दो कांग्रेसों में लीग का कायापलट हो गया। दूसरी कांग्रेस ने निश्चय किया कि पार्टी के मूल सिद्धान्तों को निरूपित और एक घोषणापत्र के रूप में प्रकाशित किया जाये। इस घोषणापत्र को तैयार करने का भार मार्क्स और एंगेल्स को दिया गया। इस प्रकार फ़रवरी क्रान्ति के कुछ ही दिन पहले, १८४८ में 'कम्युनिस्ट पार्टी का घोषणापत्र'* प्रकाशित हुआ। तब से इस घोषणापत्र का अनुवाद यूरोप की प्रायः सभी भाषाओं में हो चुका है।

«Deutsche-Brüsseler-Zeitung» [9] ने – जिसके प्रकाशन में मार्क्स का भी हाथ था – पितृदेश में पुलिस राज की नेमतों का बेरहमी से पर्दाफ़ाश किया। इससे रुष्ट होकर प्रशा की सरकार ने मार्क्स को फिर निकलवाने की कोशिश की, लेकिन यह कोशिश बेकार गई। किन्तु जब फ़रवरी क्रान्ति के फलस्वरूप ब्रसेल्स में भी जन-आन्दोलन शुरू हुआ और बेल्जियम में आमूल परिवर्तन आसन्न ज्ञात हुआ तो वहां की सरकार ने बिना किसी हिचकिचाहट के मार्क्स को गिरफ़्तार कर देश से बाहर भेज दिया। इसी बीच फ़ान्स की अस्थायी सरकार ने फ़्लोकोन की मारफ़त उन्हें पेरिस लौटने का बुलावा भेजा और मार्क्स ने यह निमन्त्रण स्वीकार कर लिया।

---

*प्रस्तुत संकलन, भाग १, पृष्ठ ३७ – ८३। – सं०

पेरिस में उन्होंने वहां बसे जर्मनों के बीच प्रचलित इस कपट योजना का विशेष रूप से विरोध किया कि फ़्रान्स में काम करनेवाले जर्मन मज़दूरों के हथियारबन्द जत्थे बनाये जायें और उन्हें जर्मनी में भेजकर वहां क्रान्ति करायी जाये और जनतंत्र की स्थापना करायी जाये। एक तो जर्मनी को अपनी क्रान्ति स्वयं ही करनी थी; दूसरे, अस्थायी सरकार के लामार्तीन जैसे लोग विश्वासघात करके पहले से ही फ़्रांस में स्थापित होने वाले हर क्रान्तिकारी विदेशी जत्थे को उस सरकार के हवाले कर रहे थे जिसका तख़्ता उसे उलटना था, जैसा कि बेल्जियम और बेडन में हुआ था।

मार्च की क्रान्ति के बाद मार्क्स कोलोन चले गये और वहां उन्होंने «*Neue Rheinische Zeitung*»[10] की स्थापना की। यह समाचारपत्र १ जून १८४८ से १९ मई १८४९ तक चलता रहा। यह एकमात्र ऐसा पत्र था जो उस समय के जनवादी आन्दोलन के अन्दर सर्वहारा दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता था, जैसा कि जून १८४८ के पेरिस विद्रोह[11] की उसकी खुली हिमायत से स्पष्ट था। समाचारपत्र के प्रायः सभी साझेदार इसके कारण उससे अलग हो गये। «*Kreuz-Zeitung*»[12] नामक समाचारपत्र ने «*Neue Rheinische Zeitung*»[13] पर आक्षेप करते हुए लिखा कि वह "चिम्बोराज़ो * तुल्य धृष्टता" के साथ, सम्राट और राज्य के वाइस-रीजेंट से लेकर पुलिस के सिपाही तक सभी पवित्र वस्तुओं पर प्रहार करता है और वह भी प्रशा के एक दुर्ग में बैठकर जहां ८,००० सिपाहियों का गैरीसन मौजूद है, परन्तु उसका यह लिखना व्यर्थ था। राइनी उदारपंथी कूपमण्डूक भी जो सहसा प्रतिक्रियावादी बन गये थे, अख़बार पर बहुत ग़ुस्सा हुए पर यह ग़ुस्सा भी व्यर्थ था। १८४८ के शरद् में एक लम्बे अरसे के लिए यह समाचारपत्र मार्शल लॉ के अंतर्गत बन्द कर दिया गया, परन्तु यह भी व्यर्थ रहा। फ़्रैंकफ़ुर्ट स्थित जर्मन राज्य का न्याय मंत्रालय पत्र के कितने ही लेखों पर आपत्ति प्रगट करते हुए कोलोन के सरकारी वकील को लिखता रहा ताकि उसके ख़िलाफ़ क़ानूनी कार्रवाई की जा सके। पर वह भी व्यर्थ। पुलिस की आंखों के सामने ही पत्र बड़े मज़े से सम्पादित और मुद्रित होता रहा। सरकार और पूंजीपतियों पर उसके आक्षेपों की तीव्रता के साथ उसकी प्रतिष्ठा और उसकी वितरण-संख्या भी

---

*चिम्बोराज़ो दक्षिण अमरीका के एण्डीज़ पर्वत की सबसे ऊंची चोटियों में है।–सं०

बढ़ती गयी। नवम्बर, १८४८ में जब प्रशा में coup d'état (राज्य-पर्युत्क्षेपण) हुआ[14] तो «*Neue Rheinische Zeitung*» ने हर अंक के मुखपृष्ठ पर जनता से अपील की कि टैक्स मत दो और हिंसा का मुक़ाबला हिंसा से करो। १८४९ के बसन्त में इस कारण और एक दूसरे लेख के कारण भी जूरी के सामने उस पर मुक़दमा चला, लेकिन वह दोनों बार अपराधमुक्त कर दिया गया। अन्त में १८४९ में जब ड्रेस्डेन में और राइन प्रान्त में मई विद्रोह दबा दिये गये[15] और काफ़ी बड़े सैन्य दलों को इकट्ठा कर और उनकी लामबंदी कर बेडन-पैलेटिनेट विद्रोह के विरुद्ध प्रशियाई अभियान शुरू किया गया तब सरकार को यक़ीन हो गया कि अब वह इतनी शक्तिशाली हो गयी है कि «*Neue Rheinische Zeitung*» को बलपूर्वक दबा सके। उसका अंतिम अंक लाल स्याही में छपा हुआ १९ मई को प्रकाशित हुआ।

मार्क्स फिर पेरिस चले गये, लेकिन १३ जून १८४९ के प्रदर्शन[16] के कुछ हफ़्ते बाद ही फ़्रांसीसी सरकार ने उनसे कहा कि या तो वह ब्रिटनी प्रांत में जाकर रहें, या फिर फ़्रांस को बिलकुल ही छोड़ दें। उन्होंने फ़्रांस छोड़ना ही पसन्द किया और लन्दन चले आये, जहां तब से वह बराबर रहते आये हैं।

१८५० में उन्होंने हैम्बर्ग से «*Neue Rheinische Zeitung*» को रिव्यू के रूप में निकालने का प्रयत्न किया, लेकिन प्रतिक्रियावादियों की निरन्तर बढ़ती हुई हिंसा के कारण उन्हें इससे विरत होना पड़ा। दिसम्बर १८५१ में फ़्रान्स में राज्य-पर्युत्क्षेपण के बाद ही मार्क्स ने 'लूई बोनापार्त की अठारहवीं ब्रूमेर'* प्रकाशित की (न्यूयार्क से १८५२ में; दूसरा संस्करण युद्ध के कुछ ही पहले हैम्बर्ग से १८६९ में)। १८५३ में उन्होंने 'कोलोन के कम्युनिस्ट मुक़दमे के बारे में रहस्योद्घाटन' नामक पुस्तक लिखी जो सबसे पहले बाज़ल में मुद्रित हुई, बाद को बोस्टन में, और फिर अभी हाल में लाइप्ज़िग में।

कोलोन में कम्युनिस्ट लीग के सदस्यों के ख़िलाफ़ फ़ैसला होने[17] के बाद मार्क्स राजनीतिक आन्दोलन से अलग हो गये। दस साल तक वह ब्रिटिश म्यूज़ियम के पुस्तकालय में राजनीतिक अर्थशास्त्र पर उपलब्ध विपुल सामग्री का अध्ययन करते रहे। दूसरी ओर वह «*New-York Daily Tribune*»[18] के लिए लिखते भी रहे। अमरीका में गृह-युद्ध[19] के आरम्भ तक यह समाचारपत्र

---

*प्रस्तुत संकलन, भाग १, पृष्ठ १३०–२५६। –सं०

न केवल उनके नाम से उनके लेखों को छापता रहा बल्कि उसने यूरोप और एशिया की परिस्थितियों के बारे में मार्क्स के बहुत-से अग्रलेख भी छापे। ब्रिटेन की सरकारी दस्तावेज़ों का विस्तृत अध्ययन करके उन्होंने लार्ड पामर्स्टन के विरोध में जो लेख लिखे, वे लन्दन में पैम्फ़लेटों के रूप में प्रकाशित हुए।

राजनीतिक अर्थशास्त्र के उनके वर्षों के अध्ययन के प्रथम फल के रूप में १८५६ में एक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसका नाम था 'राजनीतिक अर्थशास्त्र की समीक्षा का एक प्रयास', भाग १ (बर्लिन, डुंकर)। मूल्य संबंधी मार्क्स के सिद्धान्त की, जिसमें मुद्रा सम्बन्धी सिद्धान्त सम्मिलित है, पहली सुसंगत व्याख्या यहां मिलती है। इतालवी युद्ध[20] के समय मार्क्स ने लन्दन में प्रकाशित जर्मन अख़बार *«Das Volk»*[21] में बोनापार्तवाद और उस समय की प्रशियाई नीति, दोनों की ही तीव्र आलोचना की। बोनापार्तवाद उस समय उदार मत का रूप धारण किये था और उत्पीड़ित जातियों का उद्धारक होने का स्वांग रच रहा था। और उस समय की प्रशियाई नीति तटस्थता के बहाने गड़बड़ी से अपना उल्लू सीधा करने की घात में थी। इस सम्बन्ध में श्री कार्ल फ़ोग्ट की तीव्र आलोचना करना भी आवश्यक था, क्योंकि वह राजकुमार नेपोलियन (प्लों-प्लों) की आज्ञा से और लूई नेपोलियन से धन पाकर जर्मनी की तटस्थता ही नहीं, उसकी सहानुभूति के लिए भी आन्दोलन कर रहा था। जब फ़ोग्ट ने इसका उत्तर बेहद नागवार और जान-बूझकर गढ़े हुए झूठे आक्षेप लगाकर दिया, तब मार्क्स ने 'श्री फ़ोग्ट' (लन्दन, १८६०) लिखकर उनको प्रत्युत्तर दिया। इस पुस्तक में उन्होंने फ़ोग्ट और साम्राज्यवादी गुट के दूसरे नक़ली जनवादी लोगों की बख़िया उधेड़कर रख दी। स्वयं फ़ोग्ट को वाह्य और आन्तरिक साक्ष्य के आधार पर दिसम्बर-साम्राज्य से घूस लेने के लिए अपराधी ठहराया गया। दस साल बाद इस बात की पुष्टि भी हो गयी। १८७० में तूलरी[22] में बोनापार्त के भाड़े के टट्टूओं की एक सूची मिली, जिसे सितम्बर की सरकार[23] ने प्रकाशित किया। उसमें "फ़" अक्षर के नीचे लिखा था—"फ़ोग्ट—अगस्त १८५६ में उसे ४०,००० फ़्रैंक भेजे गये"।

अन्त में १८६७ में हैम्बर्ग में, मार्क्स की मुख्य कृति 'पूंजी। पूंजीवादी उत्पादन की आलोचनात्मक समीक्षा, खंड १', प्रकाशित हुई। इसमें उनकी आर्थिक-समाजवादी धारणाओं के आधार की व्याख्या है और वर्तमान समाज, पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली और उसके फलाफल की उनकी आलोचना की

ख़ास-ख़ास बातें हैं। इस युगप्रवर्त्तक पुस्तक का दूसरा संस्करण १८७२ में प्रकाशित हुआ। इस समय इस कृति के लेखक उसके दूसरे खंड को सूत्रबद्ध करने में लगे हुए हैं।

इस बीच यूरोप के विभिन्न देशों में मज़दूर आन्दोलन इतना ज़ोर पकड़ चुका था कि मार्क्स अपनी बहुत दिनों की संजोयी हुई आकांक्षा को चरितार्थ करने की बात सोच सकते थे। यानी एक ऐसे मज़दूर संघ की नींव डालने की बात सोच सकते थे जिसमें यूरोप और अमरीका के सबसे उन्नत देश शामिल हों, जो मानो साकार रूप में समाजवादी आन्दोलन का अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप स्वयं मज़दूरों के तथा पूंजीपतियों और उनकी सरकारों के सामने प्रदर्शित करे, ताकि सर्वहारा वर्ग प्रोत्साहित और संगठित हो और उसके शत्रु आतंकित हों। सेंट मार्टिन हॉल, लंदन में २८ सितम्बर १८६४ को रूस द्वारा फिर कुचल डाले गये पोलैण्ड की हमदर्दी में हुई एक आम सभा ने इस सवाल को पेश करने का अच्छा अवसर प्रदान किया। इसका उत्साहपूर्वक स्वागत हुआ। **अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ** की नींव डाली गयी। इस सभा में एक अस्थायी जनरल कौंसिल चुनी गई, जिसका दफ़्तर लंदन में रखा गया और इस तथा हेग कांग्रेस[24] तक सभी जनरल कौंसिलों के प्राण मार्क्स ही थे। १८६४ के उद्घाटन संबंधी चिट्ठी से लेकर १८७१ के फ़्रान्स में गृह-युद्ध के बारे में चिट्ठी* तक इंटरनेशनल की जनरल कौंसिल ने जितनी भी दस्तावेज़ें जारी कीं, वे सब मार्क्स की ही लिखी हुई थीं। इंटरनेशनल में मार्क्स के कार्यों का वर्णन स्वयं संघ के इतिहास का ही वर्णन है, जो बहरहाल यूरोप के मज़दूरों की स्मृति में अभी भी जीवित है।

पेरिस कम्यून के पतन ने[25] इंटरनेशनल को असम्भव स्थिति में डाल दिया। यूरोपीय इतिहास में वह एक ऐसे वक़्त में ठेल कर सम्मुख ला दिया गया जब वह सर्वत्र सफल व्यावहारिक कार्य की संभावनाओं से वंचित हो चुका था। जिन घटनाओं ने उसे सातवीं महान् शक्ति बना दिया था, उन्होंने ही साथ-साथ यह असंभव बना दिया था कि वह अपनी जुझारू शक्ति को एकत्र कर मैदान में उतरे और अनिवार्यतः पराजित न हो तथा मज़दूर आन्दोलन को दशाब्दियों पीछे न ठेल दे। इसके सिवा हर तरफ़ ऐसे लोग उभर रहे थे, जो संघ की असली हालत को समझे या उसकी तरफ़ ध्यान दिये बिना

---

*प्रस्तुत संकलन, भाग २, पृष्ठ १०४–१९४। – सं०

ही उसकी अचानक बढ़ी हुई ख्याति का अपने व्यक्तिगत अहंकार या अपनी व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षा की पूर्त्ति के लिए इस्तेमाल करना चाहते थे। एक साहसपूर्ण निर्णय करना था और मार्क्स ने ही यह निर्णय किया और हेग कांग्रेस में उसे पास भी करा लिया। एक गम्भीर प्रस्ताव पास कर इंटरनेशनल ने बकूनिनपंथियों के कार्यों के लिए ज़िम्मेदारी लेने से इनकार किया। ये अविवेकी और अप्रिय तत्त्व बकूनिनपंथियों के ही इर्दगिर्द जमा थे। इसके अलावा यह देखते हुए कि आम प्रतिक्रिया के मुक़ाबले, बिना ऐसे बलिदान दिये, जिनमें मज़दूर आन्दोलन की कमर ही टूट जाती, उन बढ़ी हुई मांगों को पूरा करना जो उससे की जा रही थीं और अपनी सामर्थ्य को बनाये रखना असम्भव है – इस वस्तुस्थिति को देखते हुए इंटरनेशनल अपनी जनरल कौंसिल को अमरीका में स्थानान्तरित कर कुछ समय के लिए रणभूमि से हट गया। उस समय और उसके बाद भी इस निर्णय की काफ़ी निन्दा की गयी, लेकिन उसके परिणामों ने उसका औचित्य भली भांति प्रकट कर दिया है। एक ओर इसका फल यह हुआ कि इंटरनेशनल के नाम पर जगह-जगह शासन-सत्ता पर अधिकार करने के दुस्साहसिक पर निरर्थक प्रयत्न बन्द हो गये। दूसरी ओर विभिन्न देशों की समाजवादी मज़दूर पार्टियों का निकट सम्पर्क बना रहा, जिससे साबित हो गया कि इंटरनेशनल ने सभी देशों के मज़दूरों के हितों की अभिन्नता और एकजुटता की जो भावना जगायी थी, वह एक अन्तर्राष्ट्रीय संघ के औपचारिक बन्धन के बिना भी – जो उस समय पावों की बेड़ी बन गया था – व्यक्त हो सकती थी।

आख़िरकार हेग कांग्रेस के बाद मार्क्स को फिर अपना सैद्धान्तिक कार्य करने के लिए समय और शान्ति मिली। आशा है कि वह शीघ्र ही 'पूंजी' का दूसरा खंड भी प्रेस के लिए तैयार कर लेंगे।

विज्ञान के इतिहास में मार्क्स ने जिन महत्त्वपूर्ण बातों का पता लगाकर अपना नाम अमर किया है, उनमें से हम यहां दो का ही उल्लेख कर सकते हैं।

पहली तो विश्व इतिहास की सम्पूर्ण धारणा में ही वह क्रान्ति है, जो उन्होंने सम्पन्न की। इतिहास का पहले का पूरा दृष्टिकोण इस धारणा पर आधारित था कि सभी तरह के ऐतिहासिक परिवर्तनों का मूल कारण मनुष्यों के परिवर्तनशील विचारों में ही मिलेगा और सभी तरह के ऐतिहासिक परिवर्तनों में सबसे महत्त्वपूर्ण राजनीतिक परिवर्तन ही हैं तथा सम्पूर्ण इतिहास में उन्हीं की प्रधानता है। लेकिन लोगों ने यह प्रश्न न किया था कि मनुष्य

के दिमाग़ में ये विचार आते कहां से हैं और राजनीतिक परिवर्तनों की प्रेरक शक्तियां क्या हैं। केवल फ़्रांसीसी और कुछ कुछ अंग्रेज़ इतिहासकारों की नवीनतर शाखा में यह विश्वास वरबस प्रविष्ट हुआ था कि कम से कम मध्ययुग से, सामाजिक और राजनीतिक प्रभुत्व के लिए उदीयमान पूंजीपति वर्ग का सामन्ती अभिजात वर्ग के साथ संघर्ष यूरोप के इतिहास की प्रेरक शक्ति रहा है। मार्क्स ने सिद्ध कर दिया है कि अब तक का सारा इतिहास वर्ग-संघर्षों का इतिहास है, अब तक के सभी विविध रूपी और जटिल राजनीतिक संघर्षों की जड़ में केवल सामाजिक वर्गों के राजनीतिक और सामाजिक शासन की समस्या, पुराने वर्गों द्वारा अपना प्रभुत्व बनाये रखने तथा नये पनपते हुए वर्गों द्वारा इस प्रभुत्व को हस्तगत करने की समस्या ही रही है। लेकिन इन वर्गों के जन्म लेने और क़ायम रहने के कारण क्या हैं? इनका कारण वे विशेष भौतिक और गोचर परिस्थितियां हैं, जिनके अंतर्गत समाज किसी भी युग में अपने जीवन-यापन के साधनों का उत्पादन और विनिमय करता है। मध्ययुग के सामन्ती शासन का आधार छोटे-छोटे कृषक समुदायों की स्वावलम्बी व्यवस्था था, जो अपनी ज़रूरत की प्रायः सभी चीज़ों का स्वयं उत्पादन कर लेते थे। इनमें विनिमय का प्रायः पूर्ण अभाव था, शस्त्रधारी सामन्त बाहर के आक्रमणों से इनकी रक्षा करते थे, उन्हें जातीय या कम से कम राजनीतिक एकता प्रदान करते थे। नगरों के अभ्युदय के साथ अलग से दस्तकारियों और परस्पर व्यापार का विकास हुआ जो पहले आन्तरिक क्षेत्र में सीमित था और आगे चलकर अन्तर्राष्ट्रीय हो गया। इस सब के साथ नगर के पूंजीपति वर्ग का विकास हुआ और मध्ययुग में ही उसने सामन्तों से लड़-भिड़कर, सामन्ती व्यवस्था के अन्दर एक विशेषाधिकारप्राप्त श्रेणी के रूप में अपने लिए भी स्थान बना लिया। परन्तु १५वीं शताब्दी के मध्य के बाद से, यूरोप के बाहर की दुनिया का पता लगने पर, इस पूंजीपति वर्ग को अपने व्यापार के लिए कहीं अधिक विस्तृत क्षेत्र मिल गया। इससे उसे अपने उद्योग-धन्धों के लिए नयी स्फूर्ति मिली। प्रमुख शाखाओं में दस्तकारी का स्थान मैनुफ़ेक्चर ने ले लिया जो अब फ़ैक्टरियों के पैमाने पर स्थापित था। फिर इसकी जगह बड़े पैमाने के उद्योग ने ले ली जो पिछली सदी के आविष्कारों, ख़ासकर भाप से चलनेवाले इंजन के आविष्कार से सम्भव हो गया था। बड़े पैमाने के उद्योग का व्यापार पर यह प्रभाव पड़ा कि पिछड़े हुए देशों में पुराना हाथ का काम

ठप हो गया और उन्नत देशों में उसने संचार के आधुनिक नये साधन—भाप से चलने वाले जहाज़, रेल, वैद्युतिक तार—उत्पन्न किये। इस प्रकार पूंजीपति वर्ग सामाजिक सम्पत्ति और सामाजिक शक्ति दोनों को अधिकाधिक अपने हाथों में केन्द्रित करने लगा, यद्यपि काफ़ी अरसे तक राजनीतिक शक्ति से वह वंचित रहा जो सामंतों और उनके द्वारा समर्थित राजतंत्र के हाथ में थी। लेकिन विकास की एक मंज़िल ऐसी आयी—फ़्रान्स में महान् क्रान्ति के बाद—जब उसने राजनीतिक शक्ति को भी हथिया लिया, और तब से वह सर्वहारा वर्ग और छोटे किसानों के ऊपर शासन करने वाला वर्ग बन गया। इस दृष्टिकोण से, समाज की विशेष आर्थिक स्थिति का सम्यक् ज्ञान होने से सभी ऐतिहासिक घटनाओं की बड़ी सरलता से व्याख्या की जा सकती है, यद्यपि यह सही है कि हमारे पेशेवर इतिहासकारों में इस ज्ञान का सर्वथा अभाव है। इसी प्रकार हर ऐतिहासिक युग की धारणाओं और उसके विचारों की व्याख्या बड़ी सरलता से, उस युग की आर्थिक जीवनावस्थाओं और सामाजिक तथा राजनीतिक सम्बन्धों के आधार पर (ये सम्बन्ध भी आर्थिक परिस्थितियों द्वारा ही निर्धारित होते हैं), की जा सकती है। इतिहास को पहली बार अपना वास्तविक आधार मिला। यह आधार एक बहुत ही स्पष्ट सत्य है जिसकी ओर पहले लोगों का ध्यान बिलकुल न गया था, यानी यह सत्य कि मनुष्यों को सबसे पहले खाना-पीना, ओढ़ना-पहनना और सिर के ऊपर साया चाहिए, इसलिए पहले उन्हें लाज़िमी तौर पर **काम करना** होता है, जिसके बाद ही वे प्रभुत्व के लिए एक दूसरे से झगड़ सकते हैं, और राजनीति, धर्म, दर्शन आदि को अपना समय दे सकते हैं। आख़िरकार इस स्पष्ट सत्य को अपना ऐतिहासिक अधिकार प्राप्त हुआ।

समाजवादी दृष्टिकोण के लिए इतिहास की यह नयी धारणा सर्वोच्च महत्त्व की थी। इससे पता लगा कि पहले के संपूर्ण इतिहास की गति वर्ग-विरोधों और वर्ग-संघर्षों के बीच में रही है, कि शासक और शासित, शोषक और शोषित वर्गों का अस्तित्व बराबर रहा है और यह कि मानव-जाति के अधिकांश भाग के पल्ले सदा से कड़ी मशक़्क़त पड़ी है, न कि भोग-विलास। ऐसा क्यों हुआ? इसी लिये कि मानव-जाति के विकास की सभी पिछली मंज़िलों में उत्पादन का विकास इतना कम हुआ था कि ऐतिहासिक विकास इस अन्तर्विरोधी रूप में ही हो सकता था, ऐतिहासिक प्रगति कुल मिलाकर एक विशेषाधिकारप्राप्त अल्पसंख्यक समुदाय के क्रियाकलाप का ही विषय

बना दी गई थी, और बहुसंख्यकों के भाग्य में अपने श्रम द्वारा जीवन-निर्वाह के अपने स्वल्प साधन और इसके अतिरिक्त विशेषाधिकार संपन्न समुदाय के लिए अधिकाधिक प्रचुर साधन उत्पादित करना रह गया था। परन्तु यही ऐतिहासिक गवेषणा, जो हमें इस प्रकार पहले के वर्ग शासन की स्वाभाविक एवं बुद्धिसम्मत व्याख्या प्रदान करती है (अन्यथा हम मानव-स्वभाव की दुष्टता कह कर ही उसकी व्याख्या कर सकते थे), साथ ही साथ हमें यह भी बोध कराती है कि वर्तमान युग में उत्पादक शक्तियों के अति प्रचण्ड विकास के कारण मानव-जाति को शासक और शासित, शोषक और शोषित में बांट रखने का अन्तिम बहाना भी, कम से कम सबसे उन्नत देशों में, मिट चुका है; कि शासक बड़े पूंजीपति अपनी ऐतिहासिक भूमिका समाप्त कर चुके हैं, और जैसा कि व्यापारिक संकटों, और ख़ासकर सभी देशों में फैली पिछली भयानक मन्दी तथा उद्योग की हीनावस्था से सिद्ध हो चुका है, वे समाज का नेतृत्व करने के योग्य अब नहीं रह गये हैं, बल्कि उत्पादन के विकास में बाधक बन गये हैं; कि ऐतिहासिक नेतृत्व सर्वहारा वर्ग के हाथ में चला गया है, ऐसे वर्ग के हाथ में चला गया है जो समाज में अपनी समग्र स्थिति के कारण सम्पूर्ण वर्ग शासन, सम्पूर्ण दासता एवं सम्पूर्ण शोषण का अन्त करके ही अपने को मुक्त कर सकता है; और यह कि सामाजिक उत्पादक शक्तियां, जो इतनी विकसित हो गई हैं कि पूंजीपति वर्ग के क़ाबू से बाहर हो गई हैं, बस इस प्रतीक्षा में हैं कि एकजुट सर्वहारा उन्हें अपने हाथों में ले ले जिससे कि ऐसी अवस्था क़ायम की जा सके जिसमें समाज का प्रत्येक सदस्य न केवल सामाजिक सम्पदा के उत्पादन में, बल्कि वितरण और प्रबन्ध में भी हाथ बंटा सकेगा, और जो अवस्था सम्पूर्ण उत्पादन के नियोजित संचालन द्वारा सामाजिक उत्पादक शक्तियों और उनकी उपज को इतना बढ़ा देगी कि प्रत्येक व्यक्ति की सभी उचित आवश्यकताओं की उत्तरोत्तर बढ़ती मात्रा में पूर्त्ति सुनिश्चित हो जायेगी।

मार्क्स ने जिस दूसरी महत्त्वपूर्ण बात का पता लगाया है, वह पूंजी और श्रम के सम्बन्ध का निश्चित स्पष्टीकरण है। दूसरे शब्दों में, उन्होंने यह दिखाया कि वर्तमान समाज में और उत्पादन की मौजूदा पूंजीवादी प्रणाली के अंतर्गत किस तरह पूंजीपति मज़दूर का शोषण करता है। जब से राजनीतिक अर्थशास्त्र ने यह प्रस्थापना प्रस्तुत की कि समस्त सम्पदा और समस्त मूल्य का मूल स्रोत श्रम ही है, तभी से यह प्रश्न भी अनिवार्य रूप से सामने आया

कि इस बात से हम इस तथ्य का मेल कैसे बैठायें कि उजरती मज़दूर अपने श्रम से जिस मूल्य को उत्पन्न करता है, वह पूरा का पूरा उसे नहीं मिलता, वरन् उसका एक अंश उसे पूंजीपति को दे देना पड़ता है? पूंजीवादी और समाजवादी, दोनों ही तरह के अर्थशास्त्रियों ने इस प्रश्न का ऐसा उत्तर देने का प्रयत्न किया, जो वैज्ञानिक दृष्टि से संगत हो, परन्तु वे विफल हुए। अन्त में मार्क्स ने ही उसका सही उत्तर दिया। वह उत्तर इस प्रकार है: उत्पादन की वर्तमान पूंजीवादी प्रणाली में समाज के दो वर्गों का अस्तित्व पूर्वमान्य है—एक ओर पूंजीपतियों का वर्ग है, जिसके हाथ में उत्पादन और जीवन-निर्वाह के साधन हैं, दूसरी ओर सर्वहारा वर्ग है, जिसके पास इन साधनों से वंचित रहने के कारण बेचने के लिए केवल एक माल—अपनी श्रम-शक्ति—ही है और इसलिए जो जीवन-निर्वाह के साधन प्राप्त करने के लिए अपनी इस श्रम-शक्ति को बेचने के लिए मजबूर है। परन्तु किसी माल का मूल्य उसके उत्पादन में, और इसी लिए उसके पुनरुत्पादन में भी, लगी सामाजिक दृष्टि से आवश्यक श्रम की मात्रा से निर्धारित होता है। अतः एक औसत मनुष्य की एक दिन, एक महीना या एक वर्ष की श्रम-शक्ति का मूल्य इस श्रम-शक्ति को एक दिन, एक महीना या एक वर्ष तक क़ायम रखने के लिए आवश्यक जीवन-निर्वाह के साधनों में लगे श्रम की मात्रा से निर्धारित होता है। मान लीजिए कि किसी मज़दूर को एक दिन के जीवन-निर्वाह के साधनों के उत्पादन के लिए छः घंटे का श्रम चाहिए, या उसी बात को यों कहें कि उनमें लगा श्रम छः घंटे के श्रम की मात्रा के बराबर है, तो श्रम-शक्ति का एक दिन का मूल्य ऐसी रक़म में व्यक्त होगा जिसमें भी छः घंटे का श्रम लगा हो। अब यह भी मान लीजिए कि इस मज़दूर को काम पर लगाने वाला पूंजीपति उसे बदले में यह रक़म देता है, और इसलिए उसकी श्रम-शक्ति का पूरा मूल्य उसे अदा करता है। अब अगर मज़दूर दिन में छः घंटे पूंजीपति के लिए काम करता है तो वह पूंजीपति की पूरी लागत को चुकता कर देता है—छः घंटे के श्रम के बदले छः घंटे का श्रम देता है। पर ऐसी हालत में पूंजीपति के लिए कुछ नहीं रहता, और इसलिए वह तो इसे बिलकुल दूसरे ही ढंग से देखता है। वह कहता है: मैंने इस मज़दूर की श्रम-शक्ति छः घंटे के लिए नहीं, बल्कि पूरे दिन के लिए ख़रीदी है, और इसलिए वह मज़दूर से ८, १०, १२, १४ या इससे भी अधिक घंटे, जैसी भी परिस्थिति हो, काम लेता है। फलतः सातवें, आठवें और बाद के घंटों की उपज अशोधित श्रम की, ऐसे श्रम की जिसका भुगतान नहीं किया

गया होता, उपज होती है, और यह सीधे पूंजीपति की जेब में पहुंच जाती है। इस तरह पूंजीपति की नौकरी करने वाला मज़दूर केवल उस श्रम-शक्ति का मूल्य ही नहीं पुनरुत्पादित करता जिसके लिए उसे मज़दूरी मिलती है, बल्कि इसके अलावा वह **अतिरिक्त मूल्य** भी पैदा करता है जिसे, प्रथमतः पूंजीपति हस्तगत करता है और जो बाद में निश्चित आर्थिक नियमों के अनुसार समूचे पूंजीपति वर्ग के बीच वितरित होता है। यह अतिरिक्त मूल्य वह मूल कोष होता है जिससे लगान, मुनाफ़ा, पूंजी का संचय बनता है,—संक्षेप में, वह सारी दौलत बनती है जिसका ग़ैर-मेहनतकश वर्ग उपभोग अथवा संचय करते हैं। इससे यह सिद्ध हो गया कि आज के पूंजीपतियों द्वारा धन-संचय उसी प्रकार दूसरों के अशोधित श्रम का हस्तगतकरण है जिस प्रकार दास-स्वामियों या भू-दास श्रम का शोषण करने वाले सामंती प्रभुओं का धन-संचय था, और शोषण के इन सभी रूपों में अन्तर केवल अशोधित श्रम के हस्तगतकरण के ढव और ढंग का ही है। पर इसने मिलकी वर्गों के पूरे ढोंग से भरे शब्दजाल का अन्तिम औचित्य भी समाप्त कर दिया, जिसका आशय यह होता था कि वर्तमान सामाजिक व्यवस्था में औचित्य और न्याय, अधिकारों और कर्त्तव्यों की समानता तथा हितों के सामंजस्य का बोलबाला है, और यह प्रगट कर दिया कि वर्तमान पूंजीवादी समाज, अपने पूर्ववर्त्ती समाजों की ही भांति और उनसे किसी भी तरह कम नहीं, जनता की विशाल बहुसंख्या के निरन्तर घटते ही जाते अल्पसंख्यक समुदाय द्वारा शोषण की एक आडम्बरपूर्ण संस्था मात्र है।

आधुनिक वैज्ञानिक समाजवाद इन दो महत्त्वपूर्ण तथ्यों पर आधारित है। 'पूंजी' के दूसरे खण्ड में इनका और इनसे शायद ही कुछ कम महत्त्व रखने वाली समाज की पूंजीवादी व्यवस्था सम्बन्धी कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण वैज्ञानिक खोजों का विस्तार किया जायेगा। इस प्रकार राजनीतिक अर्थशास्त्र के उन पहलुओं में भी, जिन्हें प्रथम खण्ड में नहीं लिया गया था, क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जायेगा। मार्क्स उसे शीघ्र ही प्रेस के लिए तैयार कर सकें, यही हमारी हार्दिक कामना है।

फ़्रे० एंगेल्स द्वारा जून, १८७७ के मध्य में लिखित। «*Volks-Kalender*» नामक वार्षिकी में, जो ब्रुंसविक में १८७८ में निकली थी, प्रकाशित।

वार्षिकी के मूलपाठ के अनुसार मुद्रित। मूल जर्मन।

फ़्रेडरिक एंगेल्स

समाजवाद : काल्पनिक तथा वैज्ञानिक[26]

१८९२ के अंग्रेज़ी संस्करण की विशेष भूमिका

यह छोटी-सी पुस्तक मूलतः एक वृहत्तर ग्रंथ का अंग है। १८७५ के क़रीब बर्लिन विश्वविद्यालय के **सहायक प्रोफ़ेसर**, डॉ० यू० ड्यूहरिंग ने यकायक और काफ़ी ज़ोर-शोर के साथ एलान किया कि वह समाजवाद के हामी हो गये हैं। उन्होंने जर्मन जनता के सामने एक विस्तृत समाजवादी सिद्धान्त ही नहीं, समाज के पुनर्गठन की एक सम्पूर्ण व्यावहारिक योजना भी रखी। स्वभावतः उन्होंने अपने पूर्वाधिकारियों को पानी पी पीकर कोसा और सबसे बड़ी बात यह है कि उन्होंने अपना सारा ग़ुस्सा मार्क्स पर उतारकर उनका "सम्मान" किया।

यह लगभग ऐसे समय हुआ, जब जर्मन समाजवादी पार्टी की दोनों शाखायें – आइज़ेनाख़पंथी तथा लासालपंथी[27] – अभी अभी एक हो गयी थीं, और इस प्रकार उन्होंने अपनी शक्ति बहुत अधिक बढ़ा ली थी। इतना ही नहीं, उन्होंने इस समूची शक्ति को अपने सामान्य शत्रु के विरुद्ध लगा देने की क्षमता भी प्राप्त कर ली थी। जर्मनी की समाजवादी पार्टी तेज़ी से एक शक्ति बनती जा रही थी। लेकिन अगर उसे एक शक्ति बनना था, तो उसकी पहली शर्त यह थी कि उन्होंने हाल में जो एकता हासिल की थी वह ख़तरे में न पड़ने पाये। लेकिन डॉ० ड्यूहरिंग ने खुलेआम अपने इर्दगिर्द एक गुट बनाना शुरू किया। इस गुट में एक भावी पृथक् पार्टी के बीज छिपे हुए थे। इसलिए यह ज़रूरी हो गया कि हमें जो चुनौती दी गयी थी, हम उसे स्वीकार करें, और हमारी इच्छा हो या न हो, हम यह लड़ाई लड़ें।

यह काम चाहे बहुत मुश्किल न हो, मगर ज़ाहिर है कि ख़ासा लंबा ज़रूर था। जैसा कि सभी जानते हैं, हम जर्मन लोग ठोस गंभीरता के साथ काम करते हैं, इसे आप उग्र चिन्तनशीलता कह लें, या चाहें तो चिन्तनशील उग्रवादिता कह लें। हम में से जब भी कोई किसी ऐसे सिद्धान्त का प्रतिपादन करता है, जो उसकी दृष्टि में नवीन है, तब सबसे पहले वह एक सर्वव्यापी मतव्यवस्था के रूप में उसका विस्तार करना आवश्यक समझता है। उसे यह सिद्ध करना पड़ता है कि तर्कशास्त्र के प्राथमिक सिद्धान्त तथा सृष्टि के मूल नियम अनन्तकाल से इसी लिए चले आ रहे हैं कि अन्ततः उनकी परिणति इस नये आविष्कृत चरम सिद्धान्त में हो। और इस मामले में डॉ० ड्यूहरिंग जातीय मान से किसी माने में घटकर नहीं थे। एक सम्पूर्ण 'दर्शन-व्यवस्था'—मानसिक, नैतिक, प्राकृतिक तथा ऐतिहासिक; एक सम्पूर्ण 'राजनीतिक अर्थशास्त्र तथा समाजवाद की व्यवस्था' और अंत में 'राजनीतिक अर्थशास्त्र का आलोचनात्मक इतिहास'—कुछ नहीं तो, अठपेजी साइज़ की तीन मोटी मोटी पोथियां, बाहर से और अंदर से भी भारी-भरकम, मानो सामान्यतः सभी पुराने दार्शनिकों तथा अर्थशास्त्रियों के, और विशेषतः मार्क्स के, ख़िलाफ़ तर्कों के तीन सेना-दल खड़े कर दिये गये हों,—दरअसल "विज्ञान में क्रांति", आमूल क्रांति, ला देने की यह एक कोशिश थी—और मुझे इन सब से निबटना था। देश तथा काल की धारणाओं से लेकर द्विधातुवाद[28] तक, भूतद्रव्य और गति की नित्यता से लेकर नैतिक धारणाओं की अनित्यता तक; डार्विन के नैसर्गिक वरण के सिद्धांत से लेकर भावी समाज में युवकों की शिक्षा तक—मुझे हर संभव विषय की विवेचना करनी थी। जैसे भी हो, मेरे प्रतिद्वंद्वी की व्यवस्थित व्यापकता ने मुझे इस बात का अवसर दिया कि मैं उनके विरुद्ध अनेकानेक विषयों पर मार्क्स के और अपने विचारों को पहले से अधिक सम्बद्ध रूप में विकसित कर सकूं। यही मुख्य कारण था कि मैंने यह काम हाथ में लिया, अन्यथा यह काम बिलकुल बेसूद होता।

मेरा उत्तर पहले समाजवादी पार्टी के मुखपत्र, लाइप्जिग के «*Vorwärts*»[29] नामक समाचारपत्र में एक लेखमाला के रूप में, और बाद में «*Herrn Eugen Dühring's Umwälzung der Wissenschaft*» ('श्री यूजेन ड्यूहरिंग द्वारा विज्ञान में प्रवर्तित क्रांति') के नाम से एक पुस्तक के रूप में, प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक का दूसरा संस्करण ज़ूरिच से १८८६ में प्रकाशित हुआ।

अपने मित्र, आजकल फ़्रांसीसी प्रतिनिधि-सभा में लिल के प्रतिनिधि, पोल लफ़ार्ग के अनुरोध पर, मैंने इस पुस्तक के तीन अध्यायों को एक पैम्फ़्लेट की शक्ल दी। उन्होंने इस पैम्फ़्लेट का अनुवाद किया और उसे **'समाजवाद: काल्पनिक तथा वैज्ञानिक'** के नाम से १८८० में प्रकाशित किया। इस फ़्रांसीसी पाठ से ही पोलिश और स्पेनिश भाषाओं के संस्करण तैयार किये गये। १८८३ में हमारे जर्मन मित्रों ने इस पैम्फ़्लेट को मूल भाषा में प्रकाशित किया। तब से इस जर्मन पाठ के आधार पर इतालवी, रूसी, डैनिश, डच तथा रूमानियन भाषाओं में इसके अनुवाद प्रकाशित हो चुके हैं। इस तरह वर्तमान अंग्रेज़ी संस्करण को लेकर यह पुस्तक दस भाषाओं में प्रचलित है। जहां तक मुझे मालूम है, और किसी समाजवादी पुस्तक के, यहां तक कि १८४८ के हमारे 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र'* या मार्क्स कृत 'पूंजी' के भी, इतने अधिक अनुवाद नहीं हुए हैं। जर्मनी में इसके चार संस्करण निकल चुके हैं, जिनमें कुल मिलाकर २०,००० प्रतियां छप चुकी हैं।

पुस्तक का परिशिष्ट 'मार्क'[30] इस उद्देश्य से लिखा गया था कि जर्मन समाजवादी पार्टी के अंदर जर्मनी में भू-सम्पत्ति के इतिहास तथा विकास का कुछ प्रारंभिक ज्ञान फैलाया जा सके। एक ऐसे समय में जब इस पार्टी द्वारा शहरों के मेहनतकशों को मिलाने का काम क़रीब क़रीब पूरा हो चुका था, और जब खेतिहर मज़दूरों और किसानों को हाथ में लेना था, यह और भी ज़रूरी मालूम हो रहा था। इस संस्करण के साथ भी यह परिशिष्ट दे दिया गया है, क्योंकि भू-सम्पत्ति के वे मूल रूप, जो सभी ट्यूटानिक क़बीलों में समान रूप से पाये जाते हैं, और उनके पतन का इतिहास, इंगलैंड में जर्मनी की अपेक्षा भी कम ज्ञात हैं। मैंने इस परिशिष्ट के मूल रूप को अक्षुण्ण रखा है और हाल में मक्सिम कोवालेव्स्की ने जो प्रमेय सम्मुख रखा है, उसकी ओर संकेत नहीं किया है। इस प्रमेय के अनुसार, कृषि-योग्य भूमि तथा चरागाहों का मार्क के सदस्यों के बीच बंटवारा होने के पहले, उनमें एक विशाल पितृसत्तात्मक कुटुम्ब-समुदाय द्वारा सम्मिलित रूप से खेती की जाती थी। ऐसे एक समुदाय में कई क़ई पीढ़ियों के लोग होते थे (दक्षिण-स्लाव 'ज़द्रूगा' के रूप में अभी भी इसका उदाहरण मिलता है)। बाद में, जब यह समुदाय इतना बड़ा हो गया कि सम्मिलित प्रबंध के योग्य न रह

* प्रस्तुत संकलन, भाग १, पृष्ठ ३७–८३। –सं०

गया, समुदाय की ज़मीन का बंटवारा किया गया।[31] कोवालेव्स्की की बात संभवतः बिलकुल सही है लेकिन यह विषय अभी भी विचाराधीन है।

इस पुस्तक में प्रयुक्त आर्थिक पारिभाषिक शब्द, जहां तक वे नये हैं, मार्क्स की 'पूंजी' के अंग्रेज़ी संस्करण में इस्तेमाल किये गये शब्दों से मेल खाते हैं। "माल-उत्पादन" से हमारा तात्पर्य उस आर्थिक दौर से है, जिसमें वस्तुओं का उत्पादन उत्पादकों के व्यवहार के लिए ही नहीं, विनिमय के हेतु भी होता है, अर्थात् उनका उत्पादन **माल के रूप में** होता है, उपयोग-मूल्यों के रूप में नहीं। यह दौर जब से विनिमय के लिए उत्पादन शुरू ही हुआ था, तब से लेकर आज तक चल रहा है; उसका पूरा विकास पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली के अंतर्गत ही होता है, अर्थात् उन अवस्थाओं में जब उत्पादन के साधनों का स्वामी, पूंजीपति, मज़दूरी देकर मज़दूरों को काम पर रखता है, उन लोगों को, जो अपनी श्रम-शक्ति को छोड़कर उत्पादन के सभी साधनों से वंचित हैं, और पैदावार की अपनी लागत से जितना ऊपर बेचता है, वह सब हड़प लेता है। मध्ययुग से आज तक औद्योगिक उत्पादन के इतिहास को हम तीन दौरों में बांट सकते हैं: (१) दस्तकारी का दौर, जिसमें छोटे कारीगर-मालिक, थोड़े-से कारीगर-मज़दूरों और शागिर्दों के साथ काम करते हैं और जहां हर कारीगर पूरी चीज़ तैयार करता है; (२) मैनुफ़ेक्चर का दौर, जब कहीं ज़्यादा मज़दूर एक बड़े कारख़ाने में एकत्र होकर, श्रम-विभाजन के सिद्धान्त के आधार पर पूरी वस्तु का उत्पादन करते हैं; हर मज़दूर उत्पादन की किसी एक आंशिक क्रिया को ही करता है और किसी वस्तु का उत्पादन तभी पूरा होता है, जब वह एक के बाद एक, सभी के हाथों से गुज़रती है; (३) आधुनिक उद्योग का दौर, जब उत्पादन शक्ति से चलनेवाली मशीनों से होता है और जहां मज़दूर का काम सिर्फ़ इतना ही रह जाता है कि वह यांत्रिक साधन यानी मशीन के काम की देखभाल रखे और उसे ठीक करता रहे।

मुझे अच्छी तरह मालूम है कि इस पुस्तक की विषय-वस्तु पर ब्रिटिश पाठकों के काफ़ी बड़े भाग को आपत्ति होगी। लेकिन अगर हम, अन्य यूरोपीयों, ने ब्रिटेन के "संभ्रान्त" लोगों के पूर्वाग्रहों का ज़रा भी ख़याल किया होता तो हम और भी गये-गुज़रे होते। हम जिस सिद्धान्त को "ऐतिहासिक भौतिकवाद" कहते हैं, इस पुस्तक में उसी की हिमायत की गयी है, और अंग्रेज़ी पाठकों में से अधिकांश को तो "भौतिकवाद" नाम से

ही चिढ़ है। "अज्ञेयवाद"[32] को सहन किया जा सकता हैं, परंतु भौतिकवाद को बिलकुल स्वीकार नहीं किया जा सकता।

फिर भी सत्रहवीं सदी से इंगलैंड सभी प्रकार के आधुनिक भौतिकवाद की जन्मभूमि रहा है।

"भौतिकवाद इंगलैंड का औरस पुत्र है। ब्रिटिश वितंडावादी दार्शनिक[33] डंस स्कॉट पहले ही पूछ चुके थे, 'क्या भूतद्रव्य के लिए चिंतन करना संभव है?'

"इस चमत्कार को संभव बनाने के लिए, उन्होंने ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता की शरण ली, अर्थात् उन्होंने धर्मदर्शन[34] के माध्यम से भौतिकवाद का उपदेश दिया। इसके अतिरिक्त वह नामवादी[35] थे। नामवाद, भौतिकवाद का पहला रूप था और मुख्यत: वह इंगलैंड के वितंडावादियों में प्रचलित रहा है।

"वास्तव में अंग्रेज़ी भौतिकवाद के जन्मदाता बेकन थे। उनके अनुसार प्रकृति विज्ञान ही सच्चा विज्ञान है और इंद्रियानुभूति पर आधारित भौतिकी इस प्रकृति विज्ञान का सबसे मुख्य अंग है। प्रमाण के लिए वह अक्सर अनाक्सागोरस और उनके homoiomeriae[36] का, डेमोक्राइटस और उनके परमाणुओं का हवाला देते हैं। उनके अनुसार हमारी इन्द्रियां कभी धोखा नहीं देतीं और वे ही समस्त ज्ञान का स्रोत हैं। समूचा विज्ञान अनुभव पर आधारित है और इन्द्रियों द्वारा प्राप्त तथ्यों को एक तर्कसंगत प्रणाली से जांच करने में निहित है। सामान्यानुमान, विश्लेषण, तुलना, प्रेक्षण, प्रयोग – इस तर्कसंगत प्रणाली के ये ही मुख्य रूप हैं। भूतद्रव्य में जो गुण अन्तर्निहित हैं उनमें सर्वप्रथम तथा सर्वोपरि गुण है गति। यह केवल यांत्रिक तथा गणितीय गति के रूप में ही नहीं, बल्कि मुख्यत: प्रेरणा, प्राणशक्ति, आतति – अथवा जैकब बेहमे की भाषा में कहें तो, «qual»* के रूप में है।

---

* «Qual» – शब्द में दार्शनिक श्लेष है। इसका शाब्दिक अर्थ है यंत्रणा, एक ऐसी पीड़ा, जो किसी क्रिया को जन्म दे। इसके साथ ही रहस्यवादी बेहमे ने इस जर्मन शब्द में लैटिन शब्द qualitas (गुण) का कुछ अर्थ डाल दिया है। उनका «qual»,–बाहर से पहुंचायी जानेवाली पीड़ा के विपरीत, वह क्रियात्मक तत्त्व है, जो उसके अधीन किसी वस्तु, संबंध अथवा व्यक्ति के स्वत:स्फूर्त्त विकास से उत्पन्न होता है, और फिर उसे बल देता है। (**अंग्रेज़ी संस्करण में एंगेल्स का नोट।**)

"भौतिकवाद के प्रथम सृष्टिकर्त्ता बेकन के दर्शन में, भौतिकवाद के बहुमुखी विकास के बीज अवरुद्ध ही हैं। एक ओर तो भूतद्रव्य के चारों ओर ऐन्द्रिय, काव्यात्मक प्रकाश है और वह जैसे अपनी मनोहारी हंसी से मानव की संपूर्ण सत्ता को अपनी ओर खींचता है। दूसरी ओर, सूत्र रूप में प्रतिपादित उनके सिद्धांत में क़दम क़दम पर असंगतियां उत्पन्न होती हैं। उनके दर्शन में ये असंगतियां धर्म के क्षेत्र से आयी हैं।

"भौतिकवाद का जब और आगे विकास हुआ, वह एकांगी हो गया। जिस आदमी ने बेकन के भौतिकवाद को व्यवस्थित रूप दिया, उनका नाम है हॉब्स। इन्द्रियजनित ज्ञान का काव्यात्मक सौरभ नष्ट हो जाता है, और वह गणितशास्त्री के निराकार अनुभव में बदल जाता है। रेखागणित को सर्वश्रेष्ठ विज्ञान घोषित किया जाता है। भौतिकवाद मानवद्रोही बन जाता है। यदि उसे अपने शत्रु, मानवद्रोही, अशरीरी अध्यात्मवाद को उसी के घर में पराजित करना है, तो भौतिकवाद को अपने शरीर को ताड़ना देनी होगी और तपस्वी बनना होगा। इस प्रकार वह ऐन्द्रिय से बौद्धिक रूप ग्रहण करता है, परन्तु इसी प्रकार, इसका परिणाम चाहे जो भी हो, उसमें वह संगति और व्यवस्था भी आती है, जो बुद्धि की विशेषता है।

"बेकन के काम को आगे बढ़ानेवाले हॉब्स इस प्रकार तर्क करते हैं: यदि समस्त मानवीय ज्ञान इन्द्रियजनित है, तो हमारी अवधारणायें और हमारे विचार वास्तव जगत् की छायायें मात्र हैं, अपने ऐन्द्रिय रूप से विच्छिन्न छायायें। विज्ञान इन छायाओं को नाम भर दे सकता है। अनेक छायाओं के लिए एक ही नाम चल सकता है। नामों के भी नाम हो सकते हैं। यदि एक ओर हम यह कहें कि सभी विचारों की उत्पत्ति इन्द्रियजगत् में ही होती है, और दूसरी ओर यह भी कहें कि शब्द में शब्द से अधिक भी कुछ है; या यह कि जिन सत्ताओं को हम अपने इन्द्रियों द्वारा जानते हैं, और विशिष्ट या व्यक्तिगत रूपों में ही जिनकी स्थिति है, उनके अतिरिक्त ऐसी भी सत्तायें हैं, जिनका अस्तित्व विशिष्ट और व्यक्तिगत न होकर सर्वव्यापी है, तो यह अपने में एक विरोध होगा। जिस तरह अशरीरी शरीर कहना बेमानी है, उसी तरह अशरीरी वस्तु कहना भी। शरीर, सत्ता, वस्तु—एक ही वास्तविकता के अलग अलग नाम हैं। **चिंतन को चिंतन करनेवाले भूतद्रव्य से पृथक् करना असंभव है।** यह भूतद्रव्य संसार में जितने परिवर्तन होते रहते हैं, उनका मूलाधार है। "असीम" शब्द निरर्थक है, अगर उससे यह न

समझा जाये कि हमारे मस्तिष्क में जोड़ लगाते जाने की एक अंतहीन प्रक्रिया की सामर्थ्य है। हमारे लिए भौतिक पदार्थ ही बोधगम्य हैं, इसलिए हम ईश्वर के अस्तित्व के बारे में कुछ नहीं जान सकते। मेरा अपना अस्तित्व ही निश्चित है। हर मानवीय आवेग एक यांत्रिक गति है, जिसका आरंभ है और अंत भी। जो हमारे आवेग के विषय हैं उन्हीं को हम अच्छा कहते हैं। मनुष्य भी उन्हीं नियमों के अधीन है, जिनके अधीन प्रकृति है। शक्ति और स्वतंत्रता, दोनों ही एक हैं।

"हॉब्स ने बेकन के दर्शन को व्यवस्थित रूप तो दिया, परन्तु वह बेकन का यह मूलभूत सिद्धांत, कि इन्द्रियजगत् में ही समस्त मानवीय ज्ञान की उत्पत्ति होती है, प्रमाणित नहीं कर सके। उसका प्रमाण लाक ने अपने ग्रंथ 'मानव अवबोध पर निबंध' में दिया[37]।

"हॉब्स ने बेकन के भौतिकवाद के सगुणवादी[38] पूर्वाग्रहों को छिन्न-भिन्न कर दिया; इसी प्रकार लाक के संवेदनावाद[39] को अभी भी जिन बचे-खुचे धार्मिक बंधनों ने जकड़ रखा था, उन्हें कालिंस, डाडवेल, कावर्ड, हार्टले, प्रीस्टले, आदि ने तोड़ डाला। जो भी हो, व्यावहारिक भौतिकवादियों के लिए निर्गुणवाद[40], धर्म से छुटकारा पाने का एक सरल उपाय भर है।"*

ब्रिटेन में आधुनिक भौतिकवाद की उत्पत्ति के बारे में कार्ल मार्क्स ने इसी तरह लिखा था। और उनके पूर्वजों को मार्क्स ने जो सम्मान दिया था, अगर आजकल वह अंग्रेज़ों के मन को ठीक भाता नहीं, तो यह अफ़सोस की बात है। फिर भी इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि बेकन, हॉब्स और लाक ही फ़्रांस के उस उज्ज्वल भौतिकवादी मत के जन्मदाता थे, जिसने बावजूद जल-थल पर उन सारी लड़ाइयों के, जिनमें जर्मनों तथा अंग्रेज़ों ने फ़्रांसीसियों के ऊपर विजय पायी, अठारहवीं शताब्दी को सबसे बढ़कर एक फ़्रांसीसी शताब्दी बना दिया—और यह, फ़्रांस की उस चरम क्रांति के पहले ही, जिसके परिणामों के, हम बाहरवाले, इंगलैंड और जर्मनी के लोग, अभी भी अभ्यस्त होने का प्रयत्न कर रहे हैं।

इससे इनकार नहीं किया जा सकता। इस शताब्दी के मध्य में जो भी सुसंस्कृत विदेशी इंगलैंड में आकर बस गया, उसकी आंख में वह चीज़ बुरी

* मार्क्स तथा एंगेल्स, 'पवित्र परिवार', १८४५ में फ़्रैंकफ़ुर्ट-ऑन-मेन से प्रकाशित।—सं०

तरह खटकती थी, जिसे अंग्रेज़ी संभ्रान्त मध्यवर्ग की धर्मान्धता और मूर्खता ही समझने को उस समय वह मजबूर था। उस समय हम सभी भौतिकवादी थे, या कम से कम, बहुत ज़्यादा आज़ाद ख़याल के लोग थे, और यह बात हमारी कल्पना से भी परे मालूम होती थी कि इंगलैंड के प्रायः सभी शिक्षित लोग तरह तरह की असंभव, अलौकिक बातों में विश्वास करें, और बकलैंड तथा मैंटेल जैसे भूविज्ञानी तक अपने विज्ञान के तथ्यों को इस तरह तोड़ें-मरोड़ें, कि वे बाइबिल के सृष्टि-खण्ड की कल्पनाओं के बहुत ख़िलाफ़ न जान पड़ें। और अगर आप उस समय ऐसे आदमियों से मिलना चाहते, जो मज़हबी मामलों में अपना ज़ेहन इस्तेमाल करने की हिम्मत रखते हों, तो आपको अशिक्षित, "मैले-कुचैले" लोगों के बीच – मजदूरों, ख़ासकर ओवेन के अनुयायी, समाजवादियों के बीच – जाना पड़ता।

लेकिन तब से इंगलैंड "सभ्य" हो चुका है। १८५१ की प्रदर्शनी[41] ने इंगलैंड के द्वीपीय अलगपन के अंत की घोषणा की। इंगलैंड ने खान-पान, चाल-ढाल और विचारों में, धीरे धीरे अन्तर्राष्ट्रीय रूप ग्रहण किया – यहां तक कि मुझे यह इच्छा होने लगती है कि कुछ अंग्रेज़ी तौर-तरीक़े और रिवाज शेष यूरोप में उतना ही फैलते, जितना दूसरे यूरोपीय आचार-विचार यहां फैले हैं। जो भी हो, ज़ैतून के बढ़िया तेल के फैलने के साथ (१८५१ से पहले वह अभिजात वर्ग तक ही सीमित था) मज़हबी मामलों में यूरोपीय संशयवाद भी हानिकारक रीति से फैल गया; हालत यहां तक पहुंची है कि यद्यपि अभी तक अज्ञेयवाद बिलकुल वैसे ही यहां की "अपनी चीज़" नहीं बन पाया है, जैसे इंगलैंड का चर्च, तो भी, जहां तक उसके सम्मानित होने का प्रश्न है, वह क़रीब क़रीब बैप्टिज़्म के स्तर पर पहुंच गया है, और "मोक्ष सेना"[42] से तो वह यक़ीनन ऊपर है। ऐसी स्थिति में, मैं यह सोचे बिना नहीं रह सकता कि नास्तिकता की इस प्रगति से जो लोग सचमुच दुःखी हैं और जो उसकी निंदा करते हैं, उन्हें इस बात से सान्त्वना मिलेगी कि ये "नये, निराले ख़यालात" कहीं बाहर पैदा नहीं हुए, रोज़मर्रा के इस्तेमाल की और बहुत-सी चीज़ों की तरह made in Germany नहीं हैं, बल्कि असंदिग्ध रूप से ठेठ अंग्रेज़ी हैं, और यह कि दो सौ साल पहले उनके अंग्रेज जन्मदाता अपने आज के वंशजों से कहीं आगे बढ़ चुके थे।

और सचमुच अज्ञेयवाद, लंकाशायर की अर्थपूर्ण भाषा में "सलज्ज" भौतिकवाद के अतिरिक्त और है क्या? प्रकृति के विषय में अज्ञेयवादी की

धारणा सम्पूर्ण रूप से भौतिकवादी है। समस्त प्राकृतिक जगत् नियमानुशासित है, और उसमें बाह्य हस्तक्षेप की बिलकुल गुंजाइश नहीं है। परन्तु इसमें इतना वह और जोड़ देता है – ज्ञात जगत् से परे किसी परब्रह्म की सत्ता है कि नहीं, इसका निश्चय करने का हमारे पास कोई साधन नहीं है। यह बात उस समय तो कही जा सकती थी, जब लाप्लास से नेपोलियन ने पूछा कि उस महान् खगोलशास्त्री की *«Mécanique céleste»* ('खगोलीय यांत्रिकी') में सृजनकर्त्ता का उल्लेख तक क्यों नहीं किया गया, और उसने गर्व से उत्तर दिया, «Je n'avais pas besoin de cette hypothèse»*। परन्तु आजकल विश्व की हमारी विकासवादी धारणा में, न किसी सृजनकर्त्ता का स्थान है, न शासक का। इस समूचे विद्यमान जगत् से बाहर किसी परब्रह्म की बात करना ही विरोधपूर्ण है, और मुझे तो लगता है कि यह धार्मिक जनों की भावनाओं का व्यर्थ में अपमान भी है।

फिर हमारा अज्ञेयवादी यह भी मानता है कि अपनी इन्द्रियों से हमें जो सूचना मिलती है, हमारा सारा ज्ञान उसी के ऊपर आधारित है। परन्तु वह प्रश्न करता है, हम कैसे जानें कि हम अपनी इन्द्रियों द्वारा जिन वस्तुओं का बोध करते हैं, हमारी इन्द्रियां हमें उनका सही चित्र देती हैं? और तब वह हमें बताता है कि जब वह वस्तुओं और उनके गुणों की बात करता है, उसका मतलब वास्तव में इन वस्तुओं और गुणों से नहीं होता – उनके बारे में वह कुछ भी निश्चित रूप से जानने में असमर्थ है – ये वस्तुएं उसकी इन्द्रियों पर जो प्रभाव डालती हैं, उसका मतलब केवल उन्हीं से होता है। इस तर्क का केवल तर्क से खंडन करना अवश्य कठिन है। परन्तु तर्क के पहले व्यवहार था। «Im Anfang war die That.»** और जब मानवीय उद्भावना-शक्ति ने इस कठिनाई की उद्भावना की, उसके पहले ही मानवीय व्यवहार ने उसे हल कर लिया था। The proof of the pudding is in the eating. हम वस्तुओं में जो गुण देखते हैं, उनके अनुसार जहां हम उनको अपने उपयोग में लाना शुरू करते हैं, हम अपने इन्द्रिय-ज्ञान को एक ऐसी कसौटी पर कसते हैं जो झूठी नहीं हो सकती। यदि यह इन्द्रिय-ज्ञान झूठा है, तो उस वस्तु से जो काम

---

* "मुझे इस प्रमेय की आवश्यकता न थी"। – सं०

** "प्रारंभ में कार्य का ही अस्तित्व था" – गेटे के नाटक 'फ़ाउस्ट' से। – सं०

लेने की आशा हम करते हैं, वह भी झूठी साबित होती है, और हमारा प्रयत्न निष्फल होता है। परन्तु यदि हम अपने ध्येय को प्राप्त करने में सफल होते हैं, यदि हम देखते हैं कि यह वस्तु, उसके संबंध में हमारी जो धारणा है, उससे मेल खाती है और हम उससे जो काम लेना चाहते हैं, वह उस काम आती है, तो यह इस बात का पक्का सबूत है कि **इस हद तक**, उसका और उसके गुणों का हमारा प्रत्यक्ष ज्ञान बाह्य वास्तविकता के अनुकूल है। और जब भी हम असफलता का सामना करते हैं, हमें साधारणतः अपनी असफलता का कारण समझने में देर नहीं लगती। हम देखते हैं कि जिस प्रत्यक्ष-ज्ञान के आधार पर हमने काम किया, वह या तो अधूरा और सतही था, या अन्य वस्तुओं के प्रत्यक्ष-ज्ञान के फलों से असंगत रूप से मिला था—और इसी को हम दोषपूर्ण तर्क कहते हैं। जब तक हम अपनी इन्द्रियों को प्रशिक्षित करने में और उनका उपयोग करने में सावधानी बरतते हैं, और अपने व्यवहार को उचित रूप से प्राप्त और प्रयुक्त प्रत्यक्ष-ज्ञान द्वारा निर्धारित सीमा के भीतर ही रखते हैं, हम देखेंगे कि हमारे प्रयोग के फल से यह सिद्ध हो जाता है कि हमारा प्रत्यक्ष-ज्ञान, उस वस्तु की विषयगत प्रकृति के अनुकूल है जिसका हम अपनी इंद्रियों द्वारा बोध करते हैं। एक भी ऐसा उदाहरण नहीं है, जिसमें हम इस परिणाम पर पहुंचे हों कि वैज्ञानिक रूप से नियंत्रित हमारा इन्द्रिय-ज्ञान बाह्य जगत् के विषय में हमारे मन में ऐसे विचारों को जन्म देता है, जो स्वभावतः वास्तविकता के प्रतिकूल हों, अथवा यह कि बाह्य जगत् और उसके विषय में हमारे इंद्रिय-ज्ञान के बीच कोई स्वाभाविक असंगति है।

लेकिन फिर नव-कांटवादी अज्ञेयवादी आते हैं और कहते हैं—हमें किसी वस्तु के गुणों का सच्चा बोध हो सकता है, परंतु हम किसी भी ऐन्द्रिय अथवा मानसिक प्रक्रिया से वस्तु-सत्त्व को समझ नहीं सकते। यह "वस्तु-सत्त्व" हमारी समझ के बाहर है। हेगेल ने बहुत पहले इसका उत्तर दिया था—अगर आप किसी वस्तु के सभी गुणों को जानते हैं, तो आप स्वयं उस वस्तु को जानते हैं; अगर कोई बात रह जाती है तो यही कि यह वस्तु हम से बाहर है और जब आपने अपनी इन्द्रियों द्वारा इस बात को भी ज्ञात कर लिया तो आपने कांट के विख्यात «Ding an sich» ("वस्तु-सत्त्व") के शेषांश को भी ग्रहण कर लिया और कोई बात बाक़ी नहीं रही। इसमें इतना और जोड़ दिया जा सकता है कि कांट के समय में प्राकृतिक वस्तुओं का हमारा ज्ञान सचमुच इतना आंशिक और विच्छिन्न था कि उनका यह सन्देह करना स्वाभाविक ही

था कि इन वस्तुओं में से हर एक के बारे में हमारा जो न्यून ज्ञान है, उससे परे एक रहस्यमय "वस्तु-सत्त्व" का अस्तित्व है। परन्तु विज्ञान की विराट प्रगति के कारण एक के बाद एक, ये पकड़ में न आने वाली वस्तुएं पकड़ में लाई गयी हैं, विश्लेषित की गयी हैं, इतना ही नहीं, **पुनरुत्पादित भी की गयी हैं**। और जिस वस्तु का हम उत्पादन कर सकते हैं, उसे अज्ञेय हरगिज़ नहीं समझ सकते। इस शताब्दी के पूर्वार्द्ध के रसायन-विज्ञान के लिए कार्बनीय पदार्थ इसी तरह के रहस्यमय पदार्थ थे। अब हम कार्बनीय प्रक्रियाओं की सहायता के बिना ही, एक के बाद एक, इन कार्बनीय पदार्थों को उनके रासायनिक तत्त्वों से तैयार करना सीख रहे हैं। आधुनिक रसायन-विज्ञानी कहते हैं कि जहां हमने किसी भी पिण्ड की रासायनिक बनावट को जान लिया, हम उसे उसके तत्त्वों से तैयार कर सकते हैं। हमें अभी उच्चतम कार्बनीय पदार्थों, अर्थात् एल्बूमीन पिण्डों की रासायनिक बनावट जानने में बहुत देर है, परन्तु कोई कारण नहीं है कि हम इस ज्ञान को प्राप्त न करें—चाहे इसमें शताब्दियां लग जायें—और उससे लैस होकर कृत्रिम एल्बूमीन उत्पन्न न करें। जब हम यह कर पायेंगे तब हम साथ ही कार्बनीय जीवन को उत्पन्न कर लेंगे, कारण अपने निम्नतम से लेकर उच्चतम रूपों में, जीवन एल्बूमीन पिण्डों के अस्तित्व का ही सामान्य रूप है।

लेकिन ये औपचारिक मानसिक प्रतिबन्ध लगा लेते ही, हमारे अज्ञेयवादी की बातचीत और उसका पूरा रवैया ऐसा होता है जैसे वह घोर भौतिकवादी हो, और असलियत में वह है भी वही। वह कह सकता है कि जहां तक **हम** जानते हैं, भूतद्रव्य और गति, या जैसा आजकल हम कहते हैं, ऊर्जा, न तो उत्पन्न की जा सकती है और न नष्ट, परन्तु हमारे पास इस बात का प्रमाण नहीं है कि वह किसी भी समय उत्पन्न नहीं की गयी थी। मगर अगर आप उसकी इस स्वीकारोक्ति को किसी ख़ास मामले में उसके ख़िलाफ़ इस्तेमाल करने की कोशिश करें, तो वह आपके दावे को उसी वक़्त ख़ारिज करवा देगा। कल्पना में वह चाहे आध्यात्मवाद[43] की संभावना को मान ले, यथार्थ में वह उसे अपने पास फटकने भी नहीं देगा। वह आपको बतायेगा कि जहां तक हम जानते हैं और जान सकते हैं, विश्व का न तो कोई सृजनकर्त्ता है और न शासक; जहां तक हम जानते हैं, भूतद्रव्य और ऊर्जा न तो उत्पन्न की जा सकती है और न विनष्ट; हमारे लिए मन ऊर्जा का एक प्रकार है, मस्तिष्क की एक क्रिया है; हम इतना ही जानते हैं कि भौतिक जगत् शाश्वत नियमों से

अनुशासित है, आदि, आदि। इस प्रकार जहां तक वह वैज्ञानिक है, जहां तक वह कुछ जानता है, वह भौतिकवादी है; पर अपने विज्ञान से बाहर, उन क्षेत्रों में, जिनके बारे में वह कुछ जानता नहीं, वह अपने अज्ञान को एक रहस्यमय रूप दे देता है, और उसे अज्ञेयवाद के नाम से पुकारता है।

जो भी हो, एक बात साफ़ मालूम होती है: यदि मैं अज्ञेयवादी होता तो भी यह स्पष्ट है कि इस पुस्तक में मैंने इतिहास की जिस अवधारणा को चित्रित किया है, उसे मैं "ऐतिहासिक अज्ञेयवाद" नहीं कह सकता था। धर्म में विश्वास रखनेवाले लोग मेरे ऊपर हंसते और अज्ञेयवादी गुस्से में आकर मुझसे पूछते कि क्या मैं उनका मज़ाक़ उड़ाने जा रहा हूं? इसलिए मैं आशा करता हूं कि ब्रिटिश संभ्रांत वर्ग को भी बहुत ज़्यादा धक्का नहीं लगेगा, अगर मैं इस अवधारणा को अंग्रेज़ी में, और अंग्रेज़ी के साथ और भी बहुत-सी भाषाओं में, "ऐतिहासिक भौतिकवाद" का नाम दूं। इतिहास की गति की इस अवधारणा के अनुसार सभी महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक घटनाओं की महान् प्रेरक शक्ति और उनका अन्तिम कारण समाज के आर्थिक विकास में, उत्पादन तथा विनिमय-प्रणालियों के परिवर्तन में, और फलस्वरूप, समाज के विभिन्न वर्गों में विभाजन में और एक दूसरे के ख़िलाफ़ इन वर्गों के संघर्षों में निहित है।

मेरे ऊपर इतना अनुग्रह संभवत: और भी शीघ्र किया जाये अगर मैं यह दिखा दूं कि ऐतिहासिक भौतिकवाद ब्रिटिश संभ्रांत वर्ग के लिए भी हितकर सिद्ध हो सकता है। मैंने इस बात का उल्लेख किया है कि आज से चालीस या पचास साल पहले, इंगलैंड में आकर बसनेवाले हर सुसंस्कृत विदेशी की दृष्टि में वह चीज़ बुरी तरह खटकती थी, जिसे अंग्रेज़ी संभ्रांत मध्यवर्ग की धर्मान्धता और मूर्खता ही समझने को वह मजबूर था। अब मैं यह सिद्ध करने जा रहा हूं कि उस ज़माने का संभ्रांत अंग्रेज मध्यवर्ग इतना बुद्धू नहीं था, जितना वह एक होशियार विदेशी को लगता था। उसकी धार्मिक प्रवृत्तियों का कारण समझा जा सकता है।

जब यूरोप मध्ययुग से निकला, उसका क्रांतिकारी तत्त्व शहरों का उठता हुआ मध्यवर्ग था। उसने मध्ययुगीन सामन्ती व्यवस्था के अन्दर अपने लिए एक सम्मानित स्थान बना लिया था, परन्तु यह स्थान भी उसकी विस्तरणशील शक्ति के लिए बहुत संकुचित हो गया था। सामंती व्यवस्था के रहते मध्यवर्ग का, **पूंजीपति वर्ग का**, विकास असंभव था, अतएव सामंती व्यवस्था का पतन अवश्यंभावी था।

लेकिन सामंतवाद का महान् शक्तिशाली अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र रोमन-कैथोलिक चर्च था। उसने बावजूद अन्दरूनी लड़ाइयों के, समस्त सामंतीकृत पश्चिमी यूरोप को एक वृहत राजनीतिक प्रणाली के अंतर्गत एकजुट कर दिया था, और इस प्रणाली का पार्थक्यवादी[14] यूनानियों से उतना ही विरोध था, जितना मुस्लिम देशों से। उसने सामंती संस्थाओं के चारों ओर ईश्वरीय पावित्र्य का प्रभामण्डल फैला रखा था। उसने सामंती नमूने पर पदों की अपनी एक क्रमबद्ध व्यवस्था क़ायम कर रखी थी, और अंत में कैथोलिक जगत् की पूरी एक-तिहाई भूमि का अधिकारी होने के नाते, वह स्वयं सबसे अधिक शक्तिशाली सामंती प्रभु था। इसके पहले कि लौकिक सामंतवाद पर हर देश में और हर बात को लेकर आक्रमण किया जा सकता, उसके इस पवित्र केंद्रीय संगठन को नष्ट करना आवश्यक था।

लेकिन, मध्यवर्ग के उत्थान के साथ ही विज्ञान का शक्तिशाली पुनरुत्थान भी हो रहा था। खगोलविज्ञान, यांत्रिकी, भौतिकी, शरीर-रचना विज्ञान, शरीर-क्रिया विज्ञान – इन सब का अध्ययन-अनुशीलन फिर से आरंभ हुआ। औद्योगिक उत्पादन के विकास के लिए पूंजीपति वर्ग को एक ऐसे विज्ञान की आवश्यकता थी, जो प्राकृतिक वस्तुओं के भौतिक गुणों का और प्राकृतिक शक्तियों की क्रिया-पद्धतियों का निश्चय करे। उस समय तक विज्ञान और कुछ नहीं, चर्च का विनीत दास था और धर्म द्वारा निर्धारित सीमाओं का उल्लंघन न कर पाया था, और इसलिए वस्तुतः वह विज्ञान था ही नहीं। अब विज्ञान ने चर्च के ख़िलाफ़ विद्रोह किया ; विज्ञान के बिना पूंजीपति वर्ग का काम नहीं चल सकता था, इसलिए पूंजीपति वर्ग को इस विद्रोह में सम्मिलित होना पड़ा।

जिन बातों को लेकर उठते हुए मध्यवर्ग का संस्थापित धर्म के साथ टकराना लाज़िमी था, ऊपर उनमें से केवल दो का ज़िक्र किया गया है, लेकिन यह दिखाने के लिए इतना काफ़ी है कि रोमन चर्च के दावों के ख़िलाफ़ लड़ने में जिस वर्ग को सबसे सीधी दिलचस्पी थी, वह था पूंजीपति वर्ग और दूसरे, उस ज़माने में सामंतवाद के ख़िलाफ़ हर संघर्ष को मजहबी जामा पहनना पड़ता था और इस संघर्ष को सबसे पहले चर्च के ख़िलाफ़ चलाना पड़ता था। लेकिन अगर विश्वविद्यालयों ने और शहरों के व्यापारियों ने आवाज़ उठायी, तो यह लाज़िमी था – और हुआ भी ऐसा ही – कि आम देहाती जनता में, किसानों में उसकी गहरी गूंज सुनाई पड़ती, जिन्हें सर्वत्र अपने अस्तित्व तक के लिए अपने लौकिक तथा आध्यात्मिक प्रभुओं से संघर्ष करना पड़ता था।

सामंतवाद के विरुद्ध पूंजीपति वर्ग के लम्बे संघर्ष की परिणति तीन महान्, निर्णायक लड़ाइयों में हुई।

पहली लड़ाई वह है, जिसे जर्मनी का प्रोटेस्टेंट सुधार-आंदोलन कहते हैं। लूथर ने चर्च के ख़िलाफ़ जो रणभेरी बजायी, उसके जवाब में राजनीतिक क़िस्म के दो विद्रोह हुए—पहला, फ़्रांज़ फ़ॉन सिकिंगन के नेतृत्व में छोटे सामंतों का विद्रोह (१५२३) और इसके बाद १५२५ का महान् किसान-युद्ध। दोनों पराजित हुए और इस पराजय का मुख्य कारण, इन विद्रोहों में सबसे ज्यादा दिलचस्पी रखनेवाले दल, शहर के बर्गरों का ढुलमुलपन था। इस ढुलमुलपन के कारणों की चर्चा हम यहां नहीं कर सकते। उसी समय से इस संघर्ष ने, लक्ष्य-भ्रष्ट होकर, स्थानीय राजाओं और केंद्रीय सत्ता के बीच संघर्ष का रूप ले लिया और इसका परिणाम यह हुआ कि जर्मनी अगले दो सौ वर्षों के लिए यूरोप के राजनीतिक दृष्टि से सक्रिय राष्ट्रों में न रहा। लूथर के सुधार-आंदोलन ने एक नये धर्म को जन्म दिया, एक ऐसे धर्म को, जो निरंकुश राजतंत्र के सर्वथा अनुकूल था। उत्तर-पूर्वी जर्मनी के किसानों ने जहां लूथरवाद को ग्रहण किया नहीं कि वे आज़ाद किसान से भ्रष्ट होकर भू-दास बन गये।

लेकिन जहां लूथर असफल रहा वहां काल्विन की विजय हुई। काल्विन का मत उसके युग के सबसे साहसी पूंजीपतियों के उपयुक्त था। उसका पूर्वनियतिवाद का सिद्धान्त इस वास्तविकता की धार्मिक अभिव्यक्ति था कि होड़ के व्यापारिक जगत् में सफलता या असफलता मनुष्य के कर्म या कौशल पर नहीं, बल्कि ऐसी परिस्थितियों पर निर्भर है, जिनपर उसका कोई वश नहीं है। यह सफलता या असफलता उस व्यक्ति पर निर्भर नहीं है, जो इच्छा करता है या दौड़-भाग करता है, बल्कि अज्ञात और अधिक शक्तिशाली आर्थिक शक्तियों की कृपा पर निर्भर है। यह बात आर्थिक क्रांति के युग में और भी सही थी, एक ऐसे युग में, जब सभी पुराने व्यापारिक मार्गों और केंद्रों की जगह नये मार्ग और केंद्र क़ायम हुए थे, जब दुनिया के लिए भारत और अमरीका के मार्ग खुल गये थे, और जब आर्थिक विश्वास के सबसे पवित्र प्रतीक तक—सोना और चांदी के मूल्य तक—लड़खड़ाने और टूटने लगे थे। काल्विन के चर्च का विधान सम्पूर्ण रूप से जनवादी तथा जनतंत्रवादी था; और जहां ईश्वर के राज्य को ही जनतंत्र का रूप दे दिया गया हो, वहां इस लौकिक जगत् के राज्य ही राजाओं, बिशपों और सामंतों के अधिकार में कैसे रह सकते थे? जहां जर्मन लूथरवाद स्वेच्छा से राजाओं का अस्त्र बन गया,

काल्विनवाद ने हालैंड में एक जनतंत्र की स्थापना की और इंगलैंड में, और विशेषकर स्काटलैंड में सक्रिय जनतंत्रवादी पार्टियों की स्थापना की।

दूसरे महान् पूंजीवादी आंदोलन ने काल्विनवाद में अपना सिद्धान्त पहले से ही तैयार पाया। यह आंदोलन इंगलैंड में हुआ। शहरों के मध्यवर्ग ने इसका सूत्रपात किया और देहाती इलाक़ों के भूमिधर किसानों ने इसकी लड़ाइयां लड़ीं। यह भी एक विचित्र बात है कि तीनों महान् पूंजीवादी विद्रोहों में किसानों से ही वह फ़ौज तैयार हुई, जिसे यह लड़ाई लड़नी थी, और किसान ही वह वर्ग हैं, जो एक वार विजय मिली नहीं कि उस विजय के आर्थिक परिणामों से शर्तिया चौपट हो जाता है। क्रामवेल के एक सौ वर्ष बाद, इंगलैंड का यह भूमिधर किसान वर्ग क़रीब क़रीब ग़ायब हो चुका था। जो भी हो, अगर ये भूमिधर न होते, और शहरों के **साधारण जन** न होते, तो अकेले पूंजीपति वर्ग इस लड़ाई को उसके कटु अंत तक न लड़ सकता और चार्ल्स प्रथम को सूली पर न चढ़ा सकता। पूंजीपति वर्ग की उन जीतों को, जिनके लिए परिस्थितियां तैयार हो चुकी थीं, हासिल करने के लिए भी क्रांति को और बहुत काफ़ी आगे ले जाना था – ठीक वैसे ही जैसे १७९३ में फ़्रांस में हुआ और १८४८ में जर्मनी में। वास्तव में यह पूंजीवादी समाज के विकास का एक नियम मालूम होता है।

ख़ैर, क्रांतिकारी सक्रियता के इस आधिक्य के बाद आवश्यक रूप से उसकी अनिवार्य प्रतिक्रिया भी हुई और अपनी दफ़ा, यह प्रतिक्रिया भी जिस बिंदु पर स्थिर हो सकती थी उसपर न ठहरकर उससे आगे बढ़ गयी। इस तरह बहुत बार आगे-पीछे डगमगाने के बाद, अंत में गुरुत्व का एक नया केंद्र स्थापित हुआ और इस जगह से फिर एक नया सिलसिला शुरू हुआ। इंगलैंड के इतिहास के उस शानदार युग की, जिसे संभ्रांत लोग "महान् विद्रोह" के नाम से जानते हैं, और उत्तरकालीन संघर्षों की परिणति एक ऐसी अपेक्षाकृत तुच्छ घटना में हुई, जिसे उदारपंथी इतिहासकारों ने "गौरवपूर्ण क्रांति"[45] का नाम दिया है।

यह स्थान जहां से एक नया सिलसिला शुरू हुआ, उठते हुए मध्यवर्ग और भूतपूर्व सामंती ज़मींदारों के बीच समझौता था। और यद्यपि यह ज़मींदार आज की तरह अभिजात वर्ग का आदमी ही कहा जाता था, वह दीर्घकाल से ऐसे पथ पर आरूढ़ था, जिसपर चलकर वह बहुत बाद में आनेवाले फ़्रांस के लूई फ़िलिप की तरह "राज्य का पहला पूंजीपति" बन गया। इंगलैंड का यह

सौभाग्य था कि बड़े बड़े पुराने सामंतों ने "गुलाबों की लड़ाई"[46] में एक दूसरे को मार डाला था। उनके उत्तराधिकारी यद्यपि अधिकतर पुराने परिवारों के ही वंशधर थे, तथापि इन परिवारों से उनका संबंध सीधा नहीं, दूर का ही होता था; इसलिए वे उतने ख़ानदानी न रहकर बिलकुल एक नया ही समूह बन गये थे, जिसके संस्कार और जिसकी प्रवृत्तियां पूंजीवादी अधिक थीं और सामंती कम। वे रुपयों की क़ीमत पूरी तरह समझते थे और उन्होंने फ़ौरन सैकड़ों छोटे छोटे किसानों को बेदख़ल कर और उनकी जगह भेड़ें रखकर लगान बढ़ाना शुरू कर दिया। हेनरी अष्टम ने चर्च की ज़मीनों को लुटाने के साथ ही, एकसाथ बहुत-सी नयी पूंजीवादी क़िस्म की ज़मींदारियां क़ायम कीं। पूरी सत्रहवीं शताब्दी में अनगिनत जागीरों को ज़ब्त करने और उन्हें नये रईसों को या कल के रईसों को बख़्श देने का जो सिलसिला चलता रहा, उसका भी यही नतीजा हुआ। फलस्वरूप हेनरी सप्तम के समय से ही अंग्रेज़ी "अभिजात वर्ग" ने औद्योगिक उत्पादन के विकास में बाधा डालना तो दूर, परोक्ष रूप से उससे फ़ायदा उठाने की कोशिश की; और बड़े बड़े ज़मींदारों का सदा एक ऐसा भाग था, जो आर्थिक कारणों से हो या राजनीतिक कारणों से, महाजनी और औद्योगिक पूंजीपति वर्ग के मुखियों के साथ सहयोग करने को प्रस्तुत था। इसलिए १६८९ का समझौता बहुत आसानी से सम्पन्न हो गया। "माल और मंसब" की राजनीतिक लूट-खसोट बड़े बड़े सामंती परिवारों के लिए छोड़ दी गयी, बशर्ते कि महाजनी, औद्योगिक और व्यापारी मध्यवर्ग के आर्थिक हितों पर यथेष्ट ध्यान दिया जाता रहे। उस ज़माने में ये आर्थिक हित इतने शक्तिशाली थे कि वे राष्ट्र की सामान्य नीति को निश्चित कर सकने में समर्थ थे। छोटी-मोटी बातों को लेकर चाहे जो झगड़े हों, लेकिन कुल मिलाकर अभिजात वर्ग का शासक गुट यह अच्छी तरह जानता था कि उसकी अपनी आर्थिक समृद्धि औद्योगिक तथा व्यापारिक मध्यवर्ग की समृद्धि से अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई है।

उस ज़माने से पूंजीपति वर्ग इंगलैंड के शासक वर्गों का एक तुच्छ परन्तु माना हुआ भाग हो गया। राष्ट्र की विशाल मेहनतकश जनता को अंकुश में रखने में, औरों के साथ उसका भी स्वार्थ था। व्यापारी या कारख़ानेदार ख़ुद अपने क्लर्कों, कर्मचारियों और घरेलू नौकरों के मुक़ाबले में मालिक की, या जैसा अभी हाल तक कहा जाता था, उनसे "स्वभावतः बड़ी" हैसियत रखता था। उसका स्वार्थ इस बात में था कि वह उनसे ज़्यादा से ज़्यादा और अच्छा

से अच्छा काम ले; इसके लिए उन्हें इस बात की शिक्षा देनी थी कि वे क़ायदे के साथ उसकी बात मानें और उसके कहने में रहें। वह स्वयं धार्मिक था; अपने धर्म के झंडे के नीचे ही उसने राजा और सामंतों से संघर्ष किया था, और उसे यह मालूम करते देर न लगी कि अपने से स्वभावतः छोटे लोगों के विचारों को प्रभावित करने और ईश्वर ने अपनी मर्ज़ी से उन्हें जिन मालिकों के मातहत रखा था, इन छोटे लोगों को उनकी इच्छा के अधीन रखने का अवसर भी यही धर्म देता था। संक्षेप में, अंग्रेज़ी पूंजीपति वर्ग को अब "नीची श्रेणियों" को, राष्ट्र की विशाल उत्पादक जनता को दबाये रखने के काम में हिस्सा लेना था, और इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए जो तरीक़े काम में लाये गये, उनमें एक धर्म का प्रभाव भी था।

एक और बात थी, जिसने पूंजीपति वर्ग की धार्मिक प्रवृत्तियों को मज़बूत करने में मदद दी – यह इंगलैंड में भौतिकवाद का उदय था। इस नये सिद्धान्त ने मध्यवर्ग की पवित्र भावनाओं को धक्का ही नहीं दिया, उसने एक ऐसे दर्शन के रूप में अपने को घोषित किया, जो संसार के विद्वानों और सुसंस्कृत व्यक्तियों के लिए ही उपयुक्त था। और इसके विपरीत धर्म था, जो पूंजीपति वर्ग समेत अशिक्षित जनता के लिए काफ़ी अच्छा था। हॉब्स के साथ वह राजाओं के विशेषाधिकारों और राजाओं की सर्वशक्तिमत्ता के रक्षक के रूप में मैदान में आया, और उसने निरंकुश राजतंत्र का इसके लिए आह्वान किया कि वह इस puer robustus sed malitiosus*, यानी जनता को, दबाये रखे। इसी तरह हॉब्स के अनुवर्ती – बोलिंगब्रोक, शैफ़्ट्सबरी इत्यादि के दर्शन में भौतिकवाद का नवीन निर्गुणवादी रूप एक अभिजातीय और कुछ चुने हुए दीक्षित लोगों द्वारा ही उपलभ्य सिद्धान्त बना रहा, और इसलिए मध्यवर्ग ने उसे घृणा की दृष्टि से देखा – उसके धर्म-विरोधी विश्वासों के कारण, और उसके पूंजीवाद-विरोधी राजनीतिक संबंधों के कारण भी। इसी लिए, प्रगतिशील मध्यवर्ग का मुख्य भाग अभी भी, अभिजात वर्ग के भौतिकवाद तथा निर्गुणवाद के विरोध में, प्रोटेस्टेंट मतवादी संप्रदायों का अनुगामी बना रहा। इन संप्रदायों के झंडे के नीचे स्टूअर्ट राजवंश के ख़िलाफ़ लड़ाई लड़ी गयी, इन्हीं के आदमियों ने यह लड़ाई लड़ी, और आज भी ये इंगलैंड की "महान् उदारतावादी पार्टी" की रीढ़ बने हुए हैं।

---

* मोटे-तगड़े, मगर शैतान लड़के को। – सं०

इस बीच भौतिकवाद इंगलैंड से फ़्रांस पहुंचा, जहां वह दार्शनिकों के एक दूसरे भौतिकवादी मत, – देकार्तवाद[47] की एक शाखा के साथ घुलमिल कर एक हो गया। फ़्रांस में भी वह पहले पहल केवल अभिजातीय मत ही बना रहा। परंतु शीघ्र ही उसकी क्रांतिकारी प्रकृति उभरकर सामने आयी। फ़्रांसीसी भौतिकवादियों ने अपनी आलोचना धार्मिक विश्वास की बातों तक ही सीमित नहीं रखी, उन्हें जितनी भी वैज्ञानिक परम्परायें या राजनीतिक संस्थायें मिलीं, सब को उन्होंने अपनी आलोचना की लपेट में लिया, और अपना यह दावा, कि हमारा सिद्धान्त सर्वव्यापी है, साबित करने के लिए उन्होंने सबसे सीधा रास्ता अख़्तियार किया, और अपने विराट ग्रंथ '**विश्वकोश**' में उसे साहस के साथ ज्ञान के हर विषय पर लागू किया। इसी 'विश्वकोश' से उनका नाम विश्वकोशकार पड़ा। इस प्रकार प्रकाश्य रूप से भौतिकवाद या निर्गुणवाद इन दो में से एक न एक रूप में वह फ़्रांस के सभी शिक्षित युवकों का मत बन गया; इस हद तक कि जब महान् क्रांति भड़की, तब जिस सिद्धान्त का अंग्रेज़ राजतंत्रवादियों ने पोषण किया था, उसने फ़्रांसीसी जनतंत्रवादियों और आतंकवादियों को एक सैद्धान्तिक पताका दी और 'मनुष्य के अधिकारों के घोषणापत्र'[48] के लिए शब्द प्रस्तुत किये।

फ़्रांस की महान् क्रांति पूंजीपति वर्ग की तीसरी बग़ावत थी; लेकिन यह पहली बग़ावत थी, जिसने अपना मज़हबी जामा उतार फेंका था और जो खुल्लमखुल्ला राजनीतिक ढंग से लड़ी गयी। और यह पहली लड़ाई थी, जो तब तक लड़ी गयी, जब तक कि दो लड़ाकू दलों में से एक, यानी अभिजात वर्ग, ख़त्म न हो गया, और दूसरा, यानी पूंजीपति वर्ग, पूर्णतः विजयी न हो गया। इंगलैंड में क्रांति के पूर्व और क्रांति के बाद की संस्थाओं का अविच्छिन्न क्रम और ज़मींदारों और पूंजीपतियों का समझौता इस बात में प्रकट हुआ कि क़ानून की नज़ीरें चलती रहीं और क़ानून के सामंती रूपों को धर्म की ओट में अक्षुण्ण रखा गया। फ़्रांस में क्रांति का अर्थ था अतीत की परम्परा से सम्पूर्ण विच्छेद। उसने सामंतवाद के अवशेषों तक को निश्चिह्न कर दिया और Code Civil[49] की शक्ल में, प्राचीन रोमन क़ानून को – और यह रोमन क़ानून, जिस आर्थिक मंज़िल को मार्क्स ने "माल-उत्पादन" कहा है, उसके क़ानूनी सम्बन्धों की प्रायः सम्पूर्ण अभिव्यक्ति है – आधुनिक पूंजीवादी सम्बन्धों के अनुरूप बड़ी होशियारी से एक नया संशोधित रूप दिया, – इतनी होशियारी से कि आज भी फ़्रांस का यह

क्रांतिकारी क़ानून इंगलैंड सहित सभी देशों में, मिल्कियत के क़ानून में सुधार के लिए एक नमूने का काम देता है। फिर भी हमें यह भूल नहीं जाना चाहिए कि अगर अंग्रेज़ी क़ानून अभी भी पूंजीवादी समाज के आर्थिक संबंधों को एक ऐसी वर्बर सामंती भाषा में व्यक्त करता है, जो व्यक्त वस्तु से उसी तरह मेल खाती है, जैसे अंग्रेज़ी हिज्जे अंग्रेज़ी उच्चारण से – किसी फ़्रांसीसी ने कहा है कि vous écrivez Londres et vous prononcez Constantinople* – तो यह अंग्रेज़ी क़ानून ही वह क़ानून है, जिसने प्राचीन जर्मनों तक की व्यक्तिगत स्वतंत्रता, स्थानीय स्वायत्त शासन और अदालत के सिवाय बाक़ी हर तरह के हस्तक्षेप से निर्भयता और मुक्ति – इन अधिकारों के श्रेष्ठ भाग को युगों से सुरक्षित रखा है और उसे अमरीका तथा उपनिवेशों तक पहुंचाया है, जबकि निरंकुश राजतंत्र के युग में ये अधिकार शेष यूरोप में विलुप्त हो गये और अभी भी उनका कहीं भी पूरी तरह उद्धार नहीं हो पाया है।

हम फिर अपने ब्रिटिश पूंजीपति की बात लें। फ़्रांसीसी क्रांति ने उसे इस बात का बढ़िया मौक़ा दिया कि वह यूरोप के राजतन्त्रों की सहायता से फ़्रांस के समुद्री व्यापार को नष्ट कर दे, फ़्रांसीसी उपनिवेशों को हथिया ले और फ़्रांस की समुद्री प्रतिद्वन्द्विता के आख़िरी दावों को कुचल दे। उसने फ़्रांस की क्रांति से लोहा लिया, इसका एक कारण यह था। दूसरा कारण यह था कि इस क्रांति का तौर-तरीक़ा उसकी फ़ितरत के बिलकुल ख़िलाफ़ था। इस क्रांति का "घृणित" आतंकवाद ही नहीं, पूंजीवादी शासन को आख़िरी छोर तक ले जाने की कोशिश भी। ब्रिटिश पूंजीपति अपने अभिजात वर्ग के बिना कर ही क्या सकता था? जो भी तहज़ीब और क़ायदा उसे मालूम था, इस अभिजात वर्ग ने ही उसे सिखाया था। उसने उसके लिए नये नये फ़ैशन निकाले थे और उसी ने घर में अमन क़ायम रखनेवाली सेना और बाहर औपनिवेशिक देशों और नये बाज़ारों को सर करनेवाली नौसेना के लिए अफ़सर जुटाये थे। इसमें सन्देह नहीं कि पूंजीपति वर्ग का एक प्रगतिशील अल्पसंख्यक भाग था, जिसके हितों पर समझौते में उतना ध्यान नहीं दिया गया था और यह भाग, जिसमें अधिकतर मध्यवर्ग के कम धनी लोग थे, क्रांति से सहानुभूति रखता था, लेकिन पार्लमिंट में उसकी कोई ताक़त न थी।

इस प्रकार यदि भौतिकवाद फ़्रांसीसी क्रांति का दर्शन बन गया, तो

---

* आप लिखते हैं लंदन और बोलते हैं कुस्तुनतुनिया। – सं०

धर्मभीरु अंग्रेज़ पूंजीपति वर्ग अपने धर्म के साथ और भी मज़बूती के साथ चिपक गया। पेरिस के आतंक-राज[50] ने क्या यह सिद्ध नहीं कर दिया था कि जनता की धार्मिक प्रवृत्तियों के नष्ट हो जाने का परिणाम क्या होता है? जितना ही भौतिकवाद फ़्रांस से पड़ोसी देशों में फैलता गया और जितना ही उसे समान सैद्धान्तिक धाराओं से, विशेष रूप से जर्मन दर्शन से, बल मिला और वस्तुत: शेष यूरोप में जितना ही भौतिकवाद तथा स्वतंत्र विचार एक सुसंस्कृत व्यक्ति के आवश्यक गुण बनते गये, उतनी ही मज़बूती के साथ ब्रिटिश मध्यवर्ग अपने धार्मिक मत-मतान्तरों के साथ चिपकता गया। ये मत एक दूसरे से भिन्न हो सकते हैं, परन्तु वे सब स्पष्ट रूप से धार्मिक, ईसाई मत ही थे।

जहां फ़्रांस में क्रांति ने पूंजीपति वर्ग की राजनीतिक विजय निश्चित कर दी थी, वहीं इंगलैंड में वाट, आर्कराइट, कार्टराइट और दूसरों ने औद्योगिक क्रांति का सूत्रपात किया था, जिसने आर्थिक शक्ति के गुरुत्व के केंद्र को पूरी तरह स्थानान्तरित कर दिया। अभिजात ज़मींदारों की अपेक्षा पूंजीपतियों का धन और वैभव बहुत तेज़ी से बढ़ा। स्वयं पूंजीपति वर्ग के अंदर कारख़ानेदारों ने वित्तीय महाप्रभुओं को, बैंकरों, वग़ैरह को अधिकाधिक पृष्ठभूमि में ढकेल दिया। १६८९ का समझौता, बावजूद इसके कि उसमें धीरे धीरे पूंजीपति वर्ग के हित में परिवर्तन हुए थे, अब दोनों पक्षों की सापेक्ष स्थिति के अनुरूप न रहा। इन पक्षों का स्वरूप भी बदल गया था: १८३० का पूंजीपति वर्ग पिछली शताब्दी के पूंजीपति वर्ग से बहुत भिन्न था। अभी भी जो राजनीतिक शक्ति अभिजात वर्ग के हाथ में छोड़ दी गयी थी, और जिसका उपयोग वे नये औद्योगिक पूंजीपति वर्ग के दावों का विरोध करने में करते थे, अब उसका नये आर्थिक हितों से मेल न रह गया। अभिजात वर्ग के साथ एक नया संघर्ष आवश्यक हो गया और उसका अंत नयी आर्थिक शक्ति की विजय में ही हो सकता था। पहले तो १८३० की फ़्रांसीसी क्रांति की प्रेरणा से, सारे प्रतिरोध के बावजूद, सुधार-क़ानून[51] को पास किया गया। इस क़ानून ने पार्लमेंट में पूंजीपति वर्ग को एक शक्तिशाली और सम्मानित स्थान प्रदान किया। इसके बाद अनाज-क़ानूनों को मंसूख़ किया गया और इसने सामंती अभिजात वर्ग पर पूंजीपति वर्ग का, विशेष रूप से उसके सबसे सक्रिय भाग, कारख़ानेदारों का, प्रभुत्व सदा के लिए स्थापित कर दिया। यह पूंजीपति वर्ग की सबसे बड़ी विजय थी, परन्तु एकमात्र अपने हित में प्राप्त की गयी यह अन्तिम विजय भी थी। बाद में उसने जो जीतें हासिल कीं, उनका उसे एक नयी सामाजिक

शक्ति के साथ बांटकर उपभोग करना पड़ा, और यह नयी शक्ति पहले तो उसके साथ थी, पर बहुत जल्द उसकी प्रतिद्वन्द्वी बन गयी।

औद्योगिक क्रांति ने बड़े बड़े कारख़ानेदार-पूंजीपतियों के एक वर्ग को जन्म दिया था, लेकिन उसने एक और वर्ग को, बहुत बड़े वर्ग को, भी जन्म दिया था – यह वर्ग था कारख़ानों में काम करनेवाला मज़दूर वर्ग। जिस अनुपात में औद्योगिक क्रांति का औद्योगिक उत्पादन की एक शाखा के बाद दूसरी शाखा पर अधिकार होता गया, उसी अनुपात में यह वर्ग भी संख्या में बढ़ता गया, और इसी अनुपात में उसने अपनी ताक़त भी बढ़ायी। अपनी इस ताक़त का सबूत उसने १८२४ में ही दे दिया, जब उसने पार्लमेंट को ऐसे क़ानूनों को रद्द करने के लिए मजबूर किया, जिनके अनुसार मज़दूरों को अपना संगठन बनाने की मनाही थी[52]। सुधार-आंदोलन के काल में मज़दूरों ने सुधार-पार्टी के अंदर एक उग्र पक्ष क़ायम किया। १८३२ के ऐक्ट में उन्हें वोट देने के अधिकार से वंचित रखा गया था, इसलिए उन्होंने अपनी मांगों को पीपुल्स चार्टर (जनता का अधिकार-पत्र)[53] के रूप में रखा, और अनाज-क़ानून विरोधी विशाल पूंजीवादी लीग[54] के मुक़ाबले में उन्होंने अपने को एक स्वतंत्र पार्टी, चार्टिस्ट पार्टी[55] के रूप में संगठित किया। यह पार्टी आधुनिक युग में मज़दूरों की पहली पार्टी थी।

इसके बाद शेष यूरोप में फ़रवरी और मार्च, १८४८ की क्रांतियां हुईं, जिनमें मज़दूरों ने इतना आगे बढ़कर हिस्सा लिया, और कम से कम पेरिस में ऐसी मांगें रखीं, जो पूंजीवादी समाज के दृष्टिकोण से निश्चय ही स्वीकार नहीं की जा सकती थीं। क्रांतियों के बाद चारों ओर ज़ोरदार प्रतिक्रिया हुई। पहले १० अप्रैल, १८४८ को चार्टिस्टों की हार[56], फिर उसी साल जून में, पेरिस मज़दूर विद्रोह का कुचल दिया जाना, और फिर इटली, हंगरी, दक्षिण जर्मनी में १८४९ की आफ़तें, और अंत में २ दिसंबर, १८५१ को पेरिस पर लूई बोनापार्त की विजय[57]। कम से कम कुछ वक़्त के लिए मज़दूर वर्ग के दावों का हौवा दूर कर दिया गया, लेकिन इसके लिए कितनी बड़ी क़ीमत चुकानी पड़ी! अगर अंग्रेज़ पूंजीपति ने आम जनता की धार्मिक भावना को क़ायम रखने की ज़रूरत पहले ही समझ ली थी, तो इन सारे अनुभवों के बाद, उसने यह ज़रूरत और भी कितनी महसूस की होगी! अपने यूरोपीय भाई-बंदों की हिक़ारत-भरी हंसी की परवाह न कर, वह लगातार साल पर साल, निम्न श्रेणियों की धर्मशिक्षा पर बीसों हज़ार ख़र्च करता रहा। अपने देश के

धार्मिक उपकरणों से ही सन्तुष्ट न रह कर उसने एक व्यापार के रूप में धर्म के सबसे बड़े संगठनकर्त्ता "भाई जोनाथन" से अपील की, अमरीका से पुनरुत्थानवाद का आयात किया[58], मूडी तथा सांकी जैसे लोगों को बुलाया, और अंत में उसने "सैल्वेशन आर्मी" की ख़तरनाक मदद को क़बूल किया; ख़तरनाक इसलिए कि यह सेना प्रारंभिक ईसाई धर्म के प्रचार में फिर से जान डालती है, ग़रीबों को ख़ुदा के बंदे कहकर पुकारती है, पूंजीवाद के विरुद्ध धार्मिक तरीक़ों से संघर्ष करती है और इस प्रकार वह प्रारंभिक ईसाई वर्ग-विरोध के एक तत्त्व का पोषण करती है जो किसी भी दिन उन धनी-मानी लोगों को परेशानी में डाल सकता है, जो आज उसके लिए नक़द रुपये देते हैं।

ऐतिहासिक विकास का यह एक नियम मालूम होता है कि पूंजीपति वर्ग किसी भी यूरोपीय देश में—कम से कम स्थायी काल के लिए—राजनीतिक सत्ता को उस प्रकार अकेले अपने अधिकार में नहीं रख सकता, जिस प्रकार मध्ययुग में सामंती अभिजात वर्ग ने रखा था। यहां तक कि फ़्रांस में भी, जहां सामंतवाद को बिलकुल ख़त्म कर दिया गया, समूचा पूंजीपति वर्ग शासन पर अपना पूरा अधिकार थोड़े थोड़े समय के लिए ही रख सका। १८३० से १८४८ तक लूई फ़िलिप के शासन काल में पूंजीपति वर्ग के एक बहुत छोटे-से भाग ने राज्य पर शासन किया; वोट देने की शर्त इतनी ऊंची रखी गयी थी कि इस वर्ग का अधिकांश भाग इस अधिकार से वंचित था। १८४८ से १८५१ तक, द्वितीय जनतंत्र के काल में, समूचे पूंजीपति वर्ग ने हुकूमत की ज़रूर, लेकिन महज़ तीन साल के लिए। उसकी अयोग्यता के कारण द्वितीय साम्राज्य की स्थापना हुई। अब कहीं जाकर तीसरे जनतंत्र के युग में समूचे पूंजीपति वर्ग ने बीस साल से ज़्यादा शासन की बागडोर अपने हाथ में रखी है, पर उनके पतनोन्मुख होने के ज़ोरदार लक्षण अभी से देखने में आ रहे हैं। पूंजीपति वर्ग का स्थायी शासन अमरीका जैसे देशों में ही संभव हुआ है, जहां सामंतवाद का नाम न था और समाज आरंभ से ही पूंजीवादी आधार पर चला। और फ़्रांस और अमरीका तक में पूंजीपति वर्ग के उत्तराधिकारी—मज़दूर—अभी से दरवाज़ा खटखटाने लगे हैं[१]

इंगलैंड में पूंजीपति वर्ग का एकाधिपत्य कभी नहीं रहा। १८३२ की विजय के बाद भी बड़ी बड़ी सरकारी नौकरियां एक तरह से अकेले अभिजात वर्ग के अधिकार में ही रहीं। इस बात को धनी मध्यवर्ग ने चुपचाप कैसे सह लिया, यह मेरे लिए एक रहस्य ही बना रहा, और यह रहस्य तब खुला

जब बड़े उदारतावादी कारख़ानेदार डब्ल्यू० ए० फ़ार्स्टर ने, एक सार्वजनिक सभा में बोलते हुए, ब्रैडफ़ोर्ड के युवकों से अपील की कि वे संसार में सफलता प्राप्त करने के लिए फ़्रांसीसी भाषा सीखें। अपने अनुभव का हवाला देते हुए उन्होंने बताया कि जब मंत्रिमंडल के एक मंत्री की हैसियत से, उन्हें एक ऐसे समाज में आना-जाना पड़ा, जहां फ़्रांसीसी भाषा कम से कम उतनी ही आवश्यक थी जितनी अंग्रेज़ी, तब कैसे उन्हें मुंह चुराना पड़ा और सब के सामने शर्मिंदा होना पड़ा! दरअसल बात यह है कि उस ज़माने का मध्यवर्ग सहसा धनी अवश्य हो गया था, लेकिन साधारणतः था वह अशिक्षित ही; और उसके लिए सिवा इसके कोई चारा न था कि वह ऊपर की सरकारी नौकरियों को अभिजात वर्ग के लिए ही छोड़ दे, क्योंकि उसके अंदर व्यापार-बुद्धि के साथ संकीर्ण कूपमंडूकता तथा संकीर्ण अहंकार था लेकिन इन नौकरियों के लिए और ही गुणों की आवश्यकता थी।* आज भी अख़बारों में मध्यवर्गीय शिक्षा के बारे

---

*और व्यापार के मामले में भी राष्ट्रीय-अंधराष्ट्रवादी अहंकार परामर्श नहीं दे सकता। अभी हाल तक एक औसत अंग्रेज़ी कारख़ानेदार, किसी अंग्रेज़ के लिए अपनी भाषा छोड़कर दूसरी भाषा बोलना अपमानजनक समझता था, और उसे इस बात पर गर्व ही अधिक होता था कि "ग़रीब" विदेशी इंगलैंड में आकर बस गये हैं और उन्होंने उसके माल को विदेशों में खपाने की झंझट और परेशानी से उसे बरी कर दिया है। उसने कभी इस बात पर ग़ौर नहीं किया कि इस तरह इन विदेशियों ने, अधिकांशतः जर्मनों ने, ब्रिटेन के विदेशी व्यापार के, आयात तथा निर्यात के एक बहुत बड़े हिस्से पर अपना क़ब्ज़ा जमा लिया और विदेशों के साथ अंग्रेज़ों का सीधा व्यापार, प्रायः उपनिवेशों, चीन, संयुक्त राज्य अमरीका और दक्षिणी अमरीका तक ही सीमित रह गया। न ही उसने इस बात पर ग़ौर किया कि ये जर्मन दूसरे देशों के जर्मनों के साथ व्यापार करते थे, और उन्होंने धीरे धीरे पूरी दुनिया में व्यापारिक बस्तियों का एक पूरा जाल बिछा दिया था। लेकिन जब, क़रीब चालीस साल पहले, जर्मनी ने पूरी संजीदगी के साथ निर्यात के लिए उत्पादन आरम्भ किया, अनाज-निर्यात करनेवाले देश से उसे कुछ ही समय में अव्वल दर्जे के एक औद्योगिक देश में बदल देने में यह जाल ख़ूब काम आया। और तब, क़रीब दस साल पहले, अंग्रेज़ कारख़ानेदार घबराया और उसने अपने राजदूतों और वाणिज्य-दूतों से पूछा कि वह अपने ग्राहकों को अब और लगाये क्यों नहीं रख सकता। और

में जो कभी ख़त्म न होनेवाली बहस चल रही है (middle-class education), उससे यह ज़ाहिर होता है कि अभी भी अंग्रेज़ मध्यवर्ग अपने को श्रेष्ठतम शिक्षा के योग्य नहीं समझता, और अधिक साधारण शिक्षा की ही अपेक्षा रखता है। इस तरह अनाज-क़ानूनों के रद्द कर दिये जाने के बाद भी, स्वाभाविक तौर पर यह समझा गया कि कावडेन, ब्राइट, फ़ार्स्टर आदि जिन लोगों ने यह जीत हासिल की थी, वे देश के राजकीय शासन में भाग लेने से वंचित रहें और वे बीस साल तक वंचित रहे भी, जिसके बाद एक नये सुधार-क़ानून[59] ने उनके लिए मंत्रिमण्डल का द्वार खोल दिया। ब्रिटिश पूंजीपति वर्ग में अपनी सामाजिक हीनता की भावना इतनी गहरी बिंध गयी है कि सभी राजकीय अवसरों पर शोभनीय रूप से राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करने के लिए उन्होंने अपने और राष्ट्र के ख़र्च पर, अकर्मण्य व्यक्तियों के एक दिखावटी समूह के अस्तित्व को क़ायम कर रखा है, और जब उनमें से कोई इस विशिष्ट तथा विशेषाधिकारसम्पन्न समाज में, जिसका अन्ततः उन्होंने स्वयं ही निर्माण किया है, प्रवेश पाने के योग्य समझा जाता है, वह इसे अपना बड़ा भारी सम्मान समझता है।

इस तरह हम देखते हैं कि औद्योगिक तथा व्यापारी मध्यवर्ग अभी तक भूस्वामी अभिजात वर्ग को राजनीतिक सत्ता से वंचित करने में पूरे तौर पर सफल न हो पाया था कि एक दूसरा प्रतिद्वंद्वी, मज़दूर वर्ग, मैदान में उतरा। चार्टिस्ट आंदोलन तथा शेष यूरोप की क्रांतियों के बाद की प्रतिक्रिया, और साथ ही १८४८ और १८६६ के बीच ब्रिटिश व्यापार के अभूतपूर्व विस्तार ने (जिसका कारण आम तौर पर केवल मुक्त व्यापार बताया जाता है, लेकिन जो इससे कहीं ज़्यादा रेल, समुद्री जहाज, और साधारणतः परिवहन के साधनों का शक्तिशाली विकास था) मज़दूर वर्ग को फिर लिबरल पार्टी के अधीन होने पर विवश किया था; चार्टिस्ट युग से पहले की तरह वह उस पार्टी का उग्र पक्ष हो गया था। वोट देने के अधिकार का मज़दूरों का दावा धीरे धीरे अप्रतिरोध्य बन गया, और जहां लिबरल पार्टी के व्हिग[60] नेताओं ने मुंह

उन्होंने एक स्वर से उत्तर दिया – (१) तुम अपने ग्राहक की भाषा नहीं सीखते, बल्कि यह आशा करते हो कि वह तुम्हारी भाषा सीखेगा; (२) तुम अपने ग्राहक की आवश्यकता, आदत और रुचि के अनुकूल होने की कोशिश तक नहीं करते, बल्कि यह आशा करते हो कि वह अपने को तुम्हारे अनुकूल बनायेगा। **(एंगेल्स का नोट।)**

चुराया, वहां डिसरायली ने टोरी[61] दल को इसके लिए तैयार किया कि वे अनुकूल अवसर से लाभ उठायें और पार्लमेंट की सीटों के पुनर्वितरण के साथ, नगरों में गृहस्वामियों का मताधिकार (household suffrage) लागू करें, और इस तरह उसने दिखा दिया कि वह व्हिग नेताओं से कहीं ज़्यादा होशियार था। इसके बाद गुप्त मतदान द्वारा चुनाव होना शुरू हुआ; और तब १८८४ में गृहस्वामियों का यह मताधिकार काउंटियों में भी लागू किया गया और सीटों का एक नये सिरे से बंटवारा किया गया, जिससे कि चुनाव-क्षेत्र कुछ हद तक एक दूसरे के बराबर हो गये। इन सब कार्रवाइयों से मजदूर वर्ग की निर्वाचन-शक्ति बहुत बढ़ गयी, यहां तक कि आज कम से कम १५०–२०० चुनाव-क्षेत्रों में अधिकांश मतदाता इस वर्ग के ही हैं। लेकिन संसदीय सरकार परंपरा के प्रति आदर सिखानेवाला बहुत ख़ास स्कूल है; अगर मध्यवर्ग उन लोगों को, जिन्हें लार्ड जॉन मैनर्स ने मज़ाक़ में "हमारे पुराने सामंत" कहा था, भय और आदर की दृष्टि से देखता था, तो आम मेहनतकश जनता "अपने से बड़े" कहे जानेवाले लोगों को, यानी मध्यवर्ग को, आदर और सम्मान की दृष्टि से देखती थी। सचमुच आज से पंद्रह साल पहले अंग्रेज मजदूर एक आदर्श मजदूर था; और वह अपने मालिक का इतना ख़याल और इतनी इज़्ज़त करता था, और अपने हक़ों को मांगने में इतना संकोचशील और विनयशील था, कि उसे देखकर अपने देश के मजदूरों की लाइलाज कम्युनिस्ट और क्रांतिकारी प्रवृत्तियों से विक्षुब्ध, Katheder-Socialist[62] मत के हमारे जर्मन अर्थशास्त्रियों को बेहद तसल्ली मिलती थी।

परन्तु यह व्यवहार-कुशल अंग्रेज मध्यवर्ग जर्मन प्रोफ़ेसरों से ज़्यादा दूर तक देखता था। उसने अपनी शक्ति को मजदूर वर्ग के साथ बांटकर उपभोग किया था अवश्य, पर अत्यंत अनिच्छा से। उसने चार्टिस्ट ज़माने में यह देख लिया था कि यह puer robustus sed malitiosus, यानी जनता, क्या कर सकती है। और तब से उन्हें विवश होकर पीपुल्स चार्टर के अधिकांश भाग को ब्रिटेन के क़ानून का अंग बनाना पड़ा था। अगर कभी जनता को नैतिक साधनों से वश में रखना था तो अब, और जनता को प्रभावित करने का सर्वोत्तम नैतिक साधन धर्म ही था, और अब भी है। और इसी लिए हम देखते हैं कि स्कूलों की प्रबंध-समितियों में अधिकतर पादरी हैं, और इसी लिए यह पूंजीपति वर्ग, कर्मकांड[63] से लेकर "सैल्वेशन आर्मी" तक, अनेक प्रकार के पुनरुत्थानवाद को प्रश्रय देने के लिए अपने आप पर अधिकाधिक कर लगाता है।

और अब ब्रिटिश संभ्रान्त वर्ग ने शेष यूरोप के पूंजीपतियों के स्वतंत्र विचार तथा धार्मिक शिथिलता पर विजय पायी। फ़्रांस और जर्मनी के मज़दूर विद्रोही हो गये थे। उन्हें समाजवाद का रोग बुरी तरह लग गया था और ऊपर उठने के लिए इस्तेमाल किया जानेवाला तरीक़ा क़ानूनी है कि ग़ैरक़ानूनी, इसकी उन्हें पर्याप्त कारणों से ख़ास फ़िक्र न रह गयी थी। यह puer robustus दिन-ब-दिन ज़्यादा malitiosus होता जा रहा था। फ़्रांसीसी और जर्मन पूंजीपतियों के लिए आख़िरी चारा यही रह गया कि वे चुपके से अपने स्वतंत्र विचारों को छोड़ दें – जैसे कोई लड़का बड़ी शान से सिगार पीता हुआ जहाज़ पर आये, और जब जहाज़ के हचकोले खाने से मिचली आने लगे, चुपके से जलते हुए सिगार को समुद्र में फेंक दे। जो लोग पहले धर्म का मज़ाक़ उड़ाते थे, अब वे एक एक कर, अपने बाह्य आचरण में धर्म-परायण बनने लगे, चर्च के बारे में, चर्च के जड़ विश्वासों तथा आचार-विचार के बारे में श्रद्धापूर्ण बातें करने लगे और जहां तक अनिवार्य था, उनके अनुकूल आचरण भी करने लगे। फ़्रांसीसी पूंजीपति शुक्रवार को निरामिष आहार करते, और जर्मन पूंजीपति रविवार को चर्च की बेंचों पर बैठकर लंबे लंबे प्रोटेस्टेंट उपदेश सुनते। भौतिकवाद ने उन्हें मुसीबत में डाल दिया था। «Die Religion muss dem Volk erhalten werden» – "जनता के लिए धर्म को जीवित रखा जाना चाहिए" – समाज को सम्पूर्ण विनाश से बचाने का यह एकमात्र और अन्तिम उपाय था। उनका यह दुर्भाग्य था कि उन्होंने इस बात को तभी समझा, जब उन्होंने धर्म को हमेशा के लिए ख़त्म कर देने के लिए अपनी भरसक सब कुछ कर डाला था। अब अंग्रेज़ पूंजीपति की बारी थी कि वह हिक़ारत से हंसकर कहे, "बेवक़ूफ़ो, तुमने अब समझा है! मैं तुम्हें यह बात आज से दो सौ साल पहले ही बता सकता था!"

इसके बावजूद मेरा विचार है कि न तो अंग्रेज़ की धार्मिक जड़ता, और न ही शेष यूरोपीय पूंजीपति वर्ग का post festum* मत-परिवर्तन, सर्वहारा वर्ग के उठते हुए ज्वार को रोक सकेगा। परम्परा एक ज़बर्दस्त बाधक शक्ति है, इतिहास की जड़ शक्ति है, परन्तु केवल निष्क्रिय होने के कारण उसका टूटना अवश्यंभावी है, और इसलिए धर्म स्थायी रूप से पूंजीवादी समाज की ढाल नहीं हो सकता। यदि क़ानून, दर्शन और धर्म सम्बन्धी हमारे विचार, किसी समाज में प्रचलित आर्थिक सम्बन्धों से ही न्यूनाधिक परोक्ष रूप से उत्पन्न

---

* घटना के पश्चात्। – सं०

हुए हैं, तो अन्ततः ऐसे विचार, इन संबंधों में संपूर्ण परिवर्तन के प्रभाव से बच नहीं सकते। और यदि हम दिव्य ज्ञान में विश्वास करें, तब तो दूसरी बात है, नहीं तो हमें मानना होगा कि ऐसा कोई धार्मिक विश्वास नहीं है, जो एक टूटते और चरमराते हुए समाज को टेक देकर गिरने से रोक सके।

और दरअसल इंगलैंड में भी मेहनतकश जनता फिर आगे बढ़ने लगी है। इसमें सन्देह नहीं कि वह तरह तरह की परम्पराओं से जकड़ी हुई है। पूंजीवादी परम्परायें, जैसे यह पूर्वाग्रह कि इंगलैंड में दो ही पार्टियां संभव हैं—कंज़रवेटिव पार्टी और लिबरल पार्टी, और मज़दूर वर्ग महान लिबरल पार्टी के द्वारा ही अपनी मुक्ति प्राप्त कर सकता है। स्वतंत्र रूप से कार्य करने की पहली हिचकिचाती हुई कोशिशों से मिली हुई मज़दूरों की परम्परायें, जैसे कि बहुत सारे पुराने ट्रेड-यूनियनों से उन उम्मीदवारों को बाहर रखना, जो बाक़ायदा अप्रैन्टिस न रह चुके हों, जिसका मतलब है ऐसे हर ट्रेड-यूनियन द्वारा हड़ताल-तोड़कों का पोषण। लेकिन इस सब के बावजूद, जैसा प्रोफ़ेसर ब्रेंतानो तक को बड़े अफ़सोस के साथ अपने Katheder-Socialist भाइयों से कहना पड़ा है, अंग्रेज़ मज़दूर वर्ग आगे बढ़ रहा है। और इंगलैंड में जैसे हर चीज़ बढ़ती है, वह बढ़ता है तो आहिस्ता, संभले हुए क़दम उठाता हुआ, कभी हिचकिचाता हुआ, तो कभी न्यूनाधिक असफल और प्रयोगमूलक प्रयत्न करता हुआ; कभी वह बढ़ता है, तो समाजवाद के नाम से ही शक खाता हुआ, बहुत सावधानी के साथ, जबकि वह समाजवाद के सार को धीरे धीरे आत्मसात् करता रहता है। और यह आंदोलन बढ़ता है और फैलता है, और मज़दूरों की एक परत के बाद दूसरी परत पर दख़ल करता है। इसने अब लंदन के ईस्ट-एण्ड[61] के अनिपुण मज़दूरों को झकझोरकर नींद से उठा दिया है, और हम सब जानते हैं कि बदले में इन नयी शक्तियों ने इस आंदोलन को कितनी प्रबल प्रेरणा दी है। और अगर इस आंदोलन की रफ़्तार इतनी नहीं है, जितनी कुछ लोगों में बेसब्री है, तो उन्हें यह नहीं भूल जाना चाहिए कि मज़दूर वर्ग ने ही अंग्रेज़ी चरित्र के सर्वश्रेष्ठ गुणों को जीवित रखा है, और इंगलैंड में जब एक क़दम उठा लिया जाता है, तो फिर साधारणतः वह क़दम पीछे नहीं हटता। अगर उपरोक्त कारणों से, पुराने चार्टिस्टों के बेटे पूरे खरे नहीं उतरे तो क्या हुआ, आसार इसी बात के हैं कि उनके पोते अपने पूर्वजों के योग्य निकलेंगे।

लेकिन यूरोपीय मज़दूर वर्ग की विजय इंगलैंड पर ही निर्भर नहीं है।

वह कम से कम इंगलैंड, फ़्रांस और जर्मनी के सहयोग से ही प्राप्त की जा सकती है।[65] फ़्रांस और जर्मनी, दोनों में, मजदूर आंदोलन इंगलैंड से काफ़ी आगे बढ़ा हुआ है। जर्मनी में उसकी सफलता सन्निकट तक है। पिछले पचीस वर्षों में उसने वहां जो प्रगति की है वह सचमुच अभूतपूर्व है। और वह तीव्र से तीव्रतर गति से आगे बढ़ रहा है। यदि जर्मन मध्यवर्ग में राजनीतिक योग्यता, अनुशासन, साहस, शक्ति, लगन आदि गुणों का शोचनीय अभाव देखने में आया है, तो जर्मन मज़दूर वर्ग ने इन सभी गुणों का प्रचुर प्रमाण दिया है। चार सौ वर्ष पहले, यूरोपीय मध्यवर्ग के पहले विद्रोह की शुरूआत जर्मनी में हुई; आज जो स्थिति है, उसे देखते हुए, क्या यह बात संभावना के परे है कि जर्मनी ही यूरोपीय सर्वहारा की पहली महान् विजय की रंगभूमि होगा?

फ़्रेडरिक एंगेल्स

२० अप्रैल, १८९२

Frederick Engels, «*Socialism Utopian and Scientific*». London, 1892, में तथा लेखक द्वारा जर्मन भाषा में अनूदित होकर, कुछ काट-छांट कर «*Die Neue Zeit*», Bd. 1, अंक १ तथा २, १८९२–१८९३, में प्रकाशित।

पुस्तक के मूलपाठ के अनुसार मुद्रित। अंग्रेज़ी से अनूदित।

समाजवाद : काल्पनिक तथा वैज्ञानिक

१

आधुनिक समाजवाद सारतः दो बातों की मान्यता का प्रत्यक्ष फल है–एक ओर आज के समाज में मालिकों और ग़ैर-मालिकों, पूंजीपतियों और उजरती मज़दूरों के वर्ग-विरोध का, और दूसरी ओर उत्पादन में फैली हुई अराजकता का। परंतु अपने सैद्धान्तिक रूप में, आधुनिक समाजवाद मूलतः अठारहवीं शताब्दी के महान् फ़्रांसीसी दार्शनिकों द्वारा स्थापित सिद्धान्तों का प्रगटतः एक अधिक युक्तिसंगत विस्तार मालूम पड़ता है। हर नये सिद्धान्त की तरह, आधुनिक समाजवाद को भी आरंभ में उपलब्ध विचार-सामग्री के साथ अपना संबंध जोड़ना पड़ा, भौतिक-आर्थिक परिस्थितियों में उसकी जड़ें चाहे कितनी भी गहरी क्यों न हों।

फ़्रांस के वे महापुरुष, जिन्होंने आनेवाली क्रांति के लिए लोक-मानस को तैयार किया था, स्वयं उग्र क्रांतिकारी थे। वे किसी भी बाह्य प्रमाण को स्वीकार नहीं करते थे। धर्म, प्रकृति-विज्ञान, समाज, राजनीतिक संस्थायें–हर चीज़ की अत्यंत निर्मम आलोचना की गयी; हर चीज़ को, विवेक-बुद्धि के न्याय-सिंहासन के सम्मुख, अपने अस्तित्व का औचित्य सिद्ध करना था, अन्यथा अपने अस्तित्व का अधिकार खो देना था। मानव विवेक को हर वस्तु का एकमात्र माप निश्चित किया गया। यह वह समय था, जब, जैसा हेगेल ने कहा है, दुनिया सिर के बल खड़ी थी *, पहले तो इस अर्थ में कि मानव-

---

* फ़्रांसीसी क्रांति से संबंध रखनेवाला अंश यह है: "न्याय के विचार ने, न्याय की धारणा ने सहसा अपना प्रभाव प्रगट किया, और अन्याय का पुराना ढांचा उसके सामने ठहर न सका। न्याय की इस धारणा के अनुरूप अब एक

मस्तिष्क और उसके चिन्तन द्वारा प्राप्त सिद्धान्त ही मनुष्य के सारे क्रिया-कलाप और सम्बन्धों का आधार माने गये, परंतु धीरे धीरे, इस व्यापकतर अर्थ में भी कि चूंकि वास्तविकता इन सिद्धान्तों से मेल न खाती थी, इसलिए उसे सचमुच उलट देना था, ऊपर का नीचे और नीचे का ऊपर कर देना था। समाज और शासन-सत्ता के हर रूप को जिसका उस समय अस्तित्व था, हर पुरानी परम्परागत धारणा को, अविवेकपूर्ण कहकर कूड़ेख़ाने में डाल दिया गया; संसार ने अभी तक अपने को केवल पूर्वाग्रहों के सहारे चलने दिया था; अतीत में हर वस्तु केवल दया और अवज्ञा का पात्र समझी जाती थी। अब पहली बार, विवेक के राज्य का, एक नये प्रभात का उदय हुआ, अंधविश्वास, अन्याय, विशेषाधिकार, अत्याचार को अब से मिट जाना था और उनके स्थान पर शाश्वत सत्य, शाश्वत न्याय, प्रकृति-सम्मत समानता और मानव के अहरणीय अधिकारों की प्रतिष्ठा होनी थी।

आज हम जानते हैं कि विवेक का यह राज्य पूंजीपतियों का तथाकथित आदर्शीकृत राज्य भर था; इस शाश्वत न्याय की परिणति पूंजीवादी न्याय में हुई; यह समानता क़ानून की दृष्टि में पूंजीवादी समानता में बदल गयी।

विधान की स्थापना हो गयी है और अब से हर चीज़ को इसी आधार पर क़ायम करना अनिवार्य हो गया। जब से सूरज आकाश में है, और ग्रह उसकी परिक्रमा कर रहे हैं, तब से आज तक ऐसा दृश्य नहीं देखा गया कि मनुष्य सिर के बल—यानी विचार के बल—खड़ा हो, और इसके अनुरूप ही वास्तविकता का निर्माण कर रहा हो। सबसे पहले अनाक्सागोरस ने ही कहा था कि संसार में Nûs—बुद्धि—का ही राज है; लेकिन मनुष्य ने यह पहली बार समझा है कि मानसिक जगत् में विचार का शासन होना चाहिए। **यह एक गौरवपूर्ण प्रभात था, और हर चिन्तनशील प्राणी ने इस पवित्र दिन को मनाने में योग दिया।** एक उच्च भावना ने उस समय लोगों के मन को आंदोलित किया, **मनुष्य की विवेक-बुद्धि के प्रति उत्साह का एक भाव संसार भर में फैल गया।** ऐसा लगता था जैसे ईश्वरीय नियम और पार्थिव जगत् दोनों का संयोग हो गया हो।" (हेगेल, 'इतिहास का दर्शन', १८४०, पृ० ५३५)।—क्या अब समय नहीं आ गया है कि स्वर्गीय प्रोफ़ेसर हेगेल की इस आम तौर से ख़तरनाक और विध्वंस-मूलक शिक्षा के विरुद्ध समाजवादियों के विरुद्ध क़ानून[66] लागू किया जाये? (**एंगेल्स का नोट।**)

पूंजीवादी स्वामित्व मनुष्य का एक मौलिक अधिकार घोषित किया गया, और विवेक का राज्य, रूसो का 'सामाजिक समझौता'[67], एक पूंजीवादी जनवादी जनतंत्र के रूप में स्थापित हुआ, और इसी रूप में वह स्थापित हो भी सकता था। अपने पूर्ववर्ती विचारकों की तरह अठारहवीं शताब्दी के महान विचारक भी अपने युग की सीमाओं का उल्लंघन न कर सकते थे।

लेकिन सामंती अभिजात वर्ग और बर्गरों के–जो समाज के शेष भाग के प्रतिनिधि होने का दावा करते थे–विरोध के साथ साथ, शोषकों और शोषितों, मौज उड़ानेवाले अमीरों और ग़रीब मेहनतकशों का सामान्य विरोध भी था। यही वह परिस्थिति थी, जिसके कारण पूंजीपति वर्ग के प्रतिनिधियों के लिए अपने को एक विशेष वर्ग के ही नहीं, समस्त पीड़ित मानव-जाति के प्रतिनिधि के रूप में पेश करना संभव हो सका। इतना ही नहीं। पूंजीपति वर्ग अपने जन्म काल से ही अपने प्रतिवाद से आक्रांत था–उजरती मज़दूरों के बिना पूंजीपतियों का अस्तित्व नहीं हो सकता, और जिस अनुपात में मध्ययुग के शिल्प-संघों के मालिक आधुनिक युग के पूंजीपति बन गये, उसी अनुपात में शिल्प-संघों के कारीगर-मज़दूर, और इन संघों से बाहर काम करनेवाले दैनिक मज़दूर, सर्वहारा बन गये। और यद्यपि, कुल मिलाकर, यह सही है कि **सामंतों के ख़िलाफ़ अपने संघर्ष में** पूंजीपति वर्ग, अपने हितों के साथ ही उस युग के विभिन्न मेहनतकश वर्गों के हितों का भी प्रतिनिधित्व करने का दावा कर सकता था, तो भी हर महान् पूंजीवादी आंदोलन में एक ऐसे वर्ग के स्वतंत्र विस्फोट भी हुए, जो न्यूनाधिक विकसित रूप में आधुनिक सर्वहारा वर्ग का पूर्वज था। उदाहरण के तौर पर जर्मनी के धर्म-सुधार और किसान-युद्ध के समय अनैबैप्टिस्ट[68] और टामस मुंज़र का आन्दोलन; महान् अंग्रेज़ी क्रांति के समय लैवेलर्स[69] तथा फ़्रांस की महान् क्रांति के समय बाब्योफ़।

अभी तक अविकसित इस वर्ग के क्रांतिकारी विद्रोहों के अनुरूप सैद्धान्तिक स्थापनायें की गयीं, १६वीं और १७वीं शताब्दियों में आदर्श सामाजिक परिस्थितियों के काल्पनिक चित्र खींचे गये[70] और १८वीं सदी में तो सचमुच कम्युनिस्ट सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया (मोरेली और मैब्ली के सिद्धान्त)। समानता की मांग राजनीतिक अधिकारों तक ही सीमित न रही, व्यक्ति की सामाजिक परिस्थितियों में भी समानता स्थापित करने की मांग की गयी। वर्ग-विशेषाधिकारों को ही नहीं, ख़ुद वर्ग-भेद को मिटा देना था। इस नयी शिक्षा ने सबसे पहले एक ऐसे कम्युनिज़्म का रूप धारण किया, जो कठोर,

त्यागपूर्ण जीवन के आदर्श में विश्वास करता था और सांसारिक सुखों को त्याज्य समझता था। इसके बाद काल्पनिक समाजवाद के तीन महान् प्रवर्त्तक आये—सेंट-साइमन, जिनके लिए अभी तक सर्वहारा वर्ग के आंदोलन के साथ साथ मध्यवर्ग के आंदोलन का भी कुछ महत्व था; फ़ूरिये; और ओवेन जिन्होंने उस देश में, जहां पूंजीवादी उत्पादन का सबसे अधिक विकास हो चुका था, इस विकास से उत्पन्न वर्ग-विरोधों से प्रभावित होकर वर्ग-भेद को मिटा देने की अपनी योजनाओं को व्यवस्थित रूप से और उन्हें सीधे सीधे फ़्रांसीसी भौतिकवाद के साथ जोड़ते हुए तैयार किया।

तीनों में एक समानता थी। ऐतिहासिक विकास ने इस बीच जिस सर्वहारा वर्ग को जन्म दिया था, इनमें से कोई भी उसके हितों के प्रतिनिधि के रूप में सामने नहीं आता। फ़्रांसीसी दार्शनिकों की ही तरह वे शुरू से ही किसी वर्ग विशेष को नहीं, बल्कि एकसाथ समूची मानव-जाति को ही स्वतंत्र करने का दावा करते थे। उन्हीं की तरह वे विवेक तथा शाश्वत न्याय का राज्य स्थापित करना चाहते थे, पर इस राज्य की उनकी धारणा और फ़्रांसीसी दार्शनिकों की धारणा में आकाश-पाताल का अंतर था।

कारण, हमारे इन तीन समाज-सुधारकों की दृष्टि में, इन फ़्रांसीसी दार्शनिकों के सिद्धान्तों पर आधारित यह पूंजीवादी जगत् भी उतना ही असंगत और अन्यायपूर्ण है जितना सामंतवाद और समाज की सभी पुरानी व्यवस्थायें रही हैं, और इसलिए उन्हीं की तरह उसकी जगह भी कूड़ेख़ाने में ही है। यदि अभी तक संसार में विशुद्ध बुद्धि और न्याय का शासन स्थापित नहीं हो सका, तो इसका कारण यही है कि लोगों ने इसे ठीक से समझा नहीं। संसार को एक महान् प्रतिभावान् पुरुष की आवश्यकता थी। अब यह महापुरुष उत्पन्न हो गया है और उसने सत्य को परख लिया है। परंतु उसका उत्पन्न होना और सत्य का स्पष्ट रूप से परखा जाना एक अनिवार्य घटना न थी, ऐतिहासिक विकास की श्रृंखला की एक आवश्यक कड़ी न थी, बल्कि एक सुखद संयोग था। वह पांच सौ वर्ष पहले भी उत्पन्न हो सकता था, और अगर ऐसा हुआ होता तो मानव-जाति पांच सौ वर्षों की भूलों, परेशानियों और झगड़ों से बच जाती।

हम देख चुके हैं कि किस तरह क्रांति के अग्रदूत, अठारहवीं शताब्दी के फ़्रांसीसी दार्शनिकों ने, विवेक को हर वस्तु की एकमात्र कसौटी मानकर सदा उसे गुहारा। उनके अनुसार एक विवेकपूर्ण राज्य और एक विवेकपूर्ण समाज की

स्थापना आवश्यक थी और जो वस्तु इस शाश्वत विवेक से मेल न खाये, उसे निर्मम भाव से नष्ट कर देना था। हम यह भी देख चुके हैं कि यह शाश्वत विवेक वस्तुतः पूंजीपति के रूप में पनपते हुए अठारहवीं सदी के नागरिक की समझ का आदर्शीकृत रूप छोड़ और कुछ न था। विवेकपूर्ण समाज और शासन की यह धारणा फ़्रांसीसी क्रांति के रूप में साकार हुई।

परंतु यह नयी व्यवस्था, पुरानी अवस्थाओं की अपेक्षा अधिक विवेकपूर्ण होते हुए भी, सर्वथा विवेकपूर्ण न निकली। जिस राज्य को विवेक के आधार पर क़ायम किया गया था, वह बिलकुल ढह गया। रूसो के 'सामाजिक समझौते' की परिणति आतंक राज्य में हुई और पूंजीपति वर्ग ने, जिसे अपनी राजनीतिक योग्यता में विश्वास न रह गया था, इस आतंक से बचने के लिए, पहले तो डाइरेक्टरेट[71] के भ्रष्टाचार का सहारा लिया, और फिर नेपोलियन की स्वेच्छाचारिता की शरण ली। जिस शाश्वत शांति की प्रतिश्रुति दी गयी थी, वह प्रभुता और अधिकार के लिए निरंतर युद्ध में बदल गयी। उनके विवेक-समाज की भी यही हालत हुई। अमीर और ग़रीब का विरोध सब की समृद्धि में विलीन होने के बजाय, शिल्प-संघों के तथा अन्य प्रकार के जिन विशेषाधिकारों ने इस विरोध को कुछ हद तक हलका किया था, उनके नष्ट हो जाने से और गिरजों की दान-संस्थाओं के भंग हो जाने से, और भी उग्र हो गया। सामंती बंधनों से "सम्पत्ति की स्वतंत्रता" अब वस्तुतः प्राप्त हो गयी थी, लेकिन छोटे पूंजीपतियों और लघु भूस्वामियों के लिए, जो बड़े बड़े पूंजीपतियों और ज़मींदारों की ज़बर्दस्त होड़ से दबे हुए थे, यह स्वतंत्रता इन महाप्रभुओं के हाथ अपनी लघु सम्पत्ति बेच देने की स्वतंत्रता ही निकली और इस प्रकार जहां तक छोटे पूंजीपतियों और लघु भूस्वामियों का संबंध था, सम्पत्ति की स्वतंत्रता, "सम्पत्ति से वंचित होने की स्वतंत्रता" बन गयी। पूंजीवादी आधार पर उद्योग के विकास ने मेहनतकश जनता की ग़रीबी और मुसीबत को समाज के अस्तित्व की एक शर्त बना दिया। कार्लाइल के शब्दों में आदमी आदमी का एकमात्र संबंध नक़द लेन-देन ही रह गया। अपराधों की संख्या साल-ब-साल बढ़ने लगी। पहले सामंती बुराइयां दिन-दहाड़े नंगा नाच करती थीं, अब वे दूर तो नहीं हुईं, लेकिन कम से कम पृष्ठभूमि में ज़रूर चली गयीं। उनकी जगह पूंजीवादी बुराइयां, जो अभी तक चुपके चुपके होती रहती थीं, दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगीं। व्यापार अधिकाधिक धोखा और फ़रेब बनता गया। "बंधुत्व" का क्रांतिकारी आदर्श[72] होड़ के छल-कपट और ईर्ष्या-

द्वेष के रूप में फलीभूत हुआ। ज़ोर-ज़ुल्म-ज़बर्दस्ती की जगह भ्रष्टाचार ने ले ली, खड्ग की जगह स्वर्ण समाज का प्रथम उत्तोलक बन गया। पहली रात बिताने का अधिकार सामंती प्रभुओं के हाथ से निकलकर पूंजीवादी कारख़ानेदारों के हाथ में आ गया। वेश्यावृत्ति अश्रुतपूर्व रूप से बढ़ गई। विवाह पहले ही की तरह वेश्यावृत्ति को ढंक रखने का क़ानून द्वारा स्वीकृत आवरण बना रहा, और साथ ही साथ व्यभिचार भी धड़ल्ले से चलता रहा।

संक्षेप में दार्शनिकों ने जो सुंदर आशायें बंधायी थीं, उनकी तुलना में "विवेक की विजय" द्वारा उत्पन्न सामाजिक तथा राजनीतिक संस्थायें घोर निराशाजनक थीं और इन आशाओं का मखौल भर थीं। कमी केवल उन लोगों की थी, जो इस निराशा को वाणी दे सकें। अठारहवीं शताब्दी का अंत होते होते ऐसे लोग भी आ गये। १८०२ में सेंट-साइमन के 'जेनेवा के पत्र' प्रकाशित हुए; १८०८ में फ़ूरिये की पहली पुस्तक निकली, यद्यपि उसके सिद्धान्त का ढांचा १७९९ में ही तैयार हो गया था; १ जनवरी, १८०० को रॉबर्ट ओवेन ने न्यू-लेनार्क का संचालन अपने हाथ में लिया[73]।

लेकिन उन दिनों पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली और उसके साथ पूंजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग का विरोध, अत्यंत अविकसित अवस्था में था। आधुनिक उद्योग का आरंभ इंगलैंड में तो अभी अभी हो चुका था, परंतु फ़्रांस में अभी भी उसका कहीं पता न था। परन्तु आधुनिक उद्योग ही एक ओर तो उन विरोधों को विकसित करता है, जिनके कारण उत्पादन-प्रणाली में क्रान्ति और उसके पूंजीवादी स्वरूप का अंत नितान्त आवश्यक हो जाता है—और यह विरोध उन वर्गों का ही विरोध नहीं है, जिन्हें आधुनिक उद्योग ने जन्म दिया है, बल्कि स्वयं उत्पादक शक्तियों और विनिमय-पद्धतियों का विरोध है; और दूसरी ओर, वह इन्हीं विराट उत्पादक शक्तियों के रूप में इन विरोधों का अंत करने के साधन भी विकसित करता है। इसलिए अगर १८०० के आसपास, नयी सामाजिक व्यवस्था से उत्पन्न होनेवाले विरोध आकार ग्रहण ही कर रहे थे, तो यह बात उनका अंत करनेवाले साधनों के विषय में और भी ज़्यादा लागू होती थी। आतंक-राज्य के दिनों में पेरिस की अकिंचन आम जनता थोड़े समय के लिए समाज पर हावी हो गयी थी, और इस तरह उसके नेतृत्व में, स्वयं पूंजीपति वर्ग की इच्छा के ख़िलाफ़ पूंजीवादी क्रांति विजयी हुई थी। परंतु ऐसा करके उन्होंने यही सिद्ध किया कि उन अवस्थाओं में उनके प्रभुत्व का स्थायी हो सकना कितना असंभव था। इसी अकिंचन जनता से सर्वहारा वर्ग का, एक

नये वर्ग के बीज केन्द्र के रूप में, पहली बार विकास हुआ। अभी यह वर्ग स्वतंत्र राजनीतिक क्रिया के सर्वथा अयोग्य था। वह एक ऐसी पीसी और सतायी गयी श्रेणी के रूप में सामने आया, जो अपनी सहायता आप करने में असमर्थ थी, और उसे सहायता अगर पहुंच सकती थी, तो बाहर से, या ऊपर से ही।

समाजवाद के प्रवर्त्तकों पर भी यह ऐतिहासिक परिस्थिति हावी थी। पूंजीवादी उत्पादन की तथा वर्ग-संबंधों की अपरिपक्व अवस्था के अनुरूप ही अपरिपक्व सिद्धांत निकले। सामाजिक समस्याओं का जो समाधान अभी तक अविकसित आर्थिक अवस्थाओं के गर्भ में छिपा हुआ था, उसे इन कल्पनावादियों ने मानव-मस्तिष्क में से ढूंढ़ निकालने की कोशिश की। समाज में अन्याय ही अन्याय था, मनुष्य के विवेक का यह काम था कि उसे दूर करे। यह आवश्यक था कि एक नयी और अधिक निर्दोष समाज-व्यवस्था का आविष्कार किया जाये, और उसे बाहर से, प्रचार द्वारा, या जहां संभव हो, आदर्श प्रयोगों के उदाहरण द्वारा, समाज के ऊपर लाद दिया जाये। इन नयी समाज-व्यवस्थाओं का काल्पनिक और अवास्तविक होना पहले से निश्चित था और जितने विस्तृत रूप से उनकी योजनायें बनायी गयीं, उतनी ही वे निरी हवाई बातें होकर रह गयीं।

इन तथ्यों के एक बार निश्चित हो जाने के बाद, हमारे लिए प्रश्न के इस पक्ष पर और ध्यान देना आवश्यक नहीं है, क्योंकि अब वह बिलकुल अतीत की बात है। हम साहित्य-जगत् के छुटभैयों के लिए यह काम छोड़ सकते हैं कि वे इन हवाई बातों को लेकर, जिनके ऊपर आज हमें हंसी ही आती है, उधेड़बुन करें, बड़ी संजीदगी के साथ बाल की खाल निकालें और कल्पनावादियों की इस "विक्षिप्त कल्पना" की तुलना में अपने दो-टूक तर्क की श्रेष्ठता का राग अलापें। जहां तक हमारा संबंध है, हमें उन महान् विचारों और विचारों के अंकुरों का दर्शन कर असीम आनंद होता है, जो हर जगह अपने काल्पनिक आवरण से बाहर झांकते दिखाई देते हैं, और जिन्हें ये कूपमंडूक देख नहीं सकते।

सेंट-साइमन महान् फ़्रांसीसी क्रांति की संतान थे और जिस समय क्रांति हुई, उनकी अवस्था तीस वर्ष की भी न हुई थी। यह क्रांति विशेषाधिकारसंपन्न निठल्ले वर्गों के ऊपर, सामंतों और पुरोहितों के ऊपर, राज्य की तृतीय श्रेणी[74] की, अर्थात् उत्पादन और व्यापार में काम करनेवाली राष्ट्र की विशाल जनता की विजय थी। परन्तु तृतीय श्रेणी की विजय का यथार्थ रूप बहुत जल्द प्रगट

हो गया और यह मालूम हो गया कि यह विजय इस श्रेणी के एक बहुत छोटे से भाग की ही विजय थी; उसका अर्थ था राजनीतिक सत्ता पर इस श्रेणी के सामाजिक विशेषाधिकारसंपन्न भाग का—यानी मिलकी पूंजीपति वर्ग का अधिकार। और बेशक क्रांति के दौरान यह पूंजीपति वर्ग बड़ी तेज़ी से बढ़ा था—कुछ हद तक सामंतों और गिरजों की जिन ज़मीनों को पहले ज़ब्त कर लिया गया और बाद में **नीलाम पर चढ़ाया गया**, उनकी निस्वत सट्टेबाज़ी करके, और कुछ हद तक फ़ौजी ठेकों के ज़रिये राष्ट्र को लूटकर। डाइरेक्टरेट के ज़माने में इन ठगों की तूती बोलती थी जिसके कारण देश विनाश के कगार पर पहुंच गया, और नेपोलियन को coup d'état करने का एक बहाना मिल गया।

इसी लिए सेंट-साइमन की दृष्टि में तृतीय श्रेणी और विशेषाधिकारसम्पन्न वर्गों का जो विरोध था, उसने "काम करनेवालों" और "निठल्लों" के विरोध का रूप ग्रहण किया। इन निठल्लों में पुराने विशेषाधिकारसम्पन्न वर्ग ही नहीं थे, बल्कि वे सभी लोग थे, जो उत्पादन अथवा वितरण में भाग लिये बिना अपनी आय पर जीवन-यापन करते थे। और काम करनेवालों में उजरती मज़दूर ही नहीं थे, उनमें कारख़ानेदार, व्यापारी और बैंकर भी थे। निठल्ले वर्गों में बौद्धिक नेतृत्व और राजनीतिक प्रभुत्व की योग्यता नहीं रह गयी थी। यह बात प्रमाणित हो चुकी थी और क्रांति ने इस बात को अन्तिम रूप से निश्चित कर दिया। आतंक-राज्य के अनुभव ने सेंट-साइमन की दृष्टि में यह प्रमाणित कर दिया कि सम्पत्तिविहीन वर्गों में भी यह योग्यता न थी। तब प्रश्न यह था कि कौन नेतृत्व करे और आदेश दे? सेंट-साइमन मानते थे कि विज्ञान और उद्योग, दोनों एक नये धार्मिक सूत्र में बंधकर, धार्मिक विचारों की उस एकता को फिर से स्थापित करेंगे, जो सुधार-आंदोलन के ज़माने से नष्ट हो गयी थी, एक "नया ईसाई धर्म" स्थापित करेंगे जो अनिवार्यतः रहस्यवादी तथा कठोर रूप से श्रेणीबद्ध होगा। विज्ञान का मतलब था विद्वानों से, और उद्योग का—सबसे पहले, काम करनेवाले पूंजीपतियों, कारख़ानेदारों, व्यापारियों और बैंकरों से। सेंट-साइमन ने निश्चय ही यही उद्देश्य रखा था कि ये पूंजीपति अपने को एक प्रकार के सार्वजनिक अधिकारियों में, सामाजिक न्यासधारियों में रूपान्तरित करेंगे, लेकिन फिर भी मज़दूरों की अपेक्षा उनका दरजा ऊंचा रहेगा और आर्थिक क्षेत्र में उनकी एक विशेष स्थिति रहेगी। बैंकरों पर ख़ास तौर पर यह जिम्मेदारी डाली जानी थी कि वे उधार-व्यवस्था

के नियमन द्वारा समाज के समूचे उत्पादन का संचालन करें। यह धारणा एक ऐसे युग के सर्वथा अनुरूप थी, जब फ़्रांस में आधुनिक उद्योग का और उसके साथ पूंजीपति और सर्वहारा वर्ग के विरोध का सूत्रपात हो ही रहा था। परंतु सेंट-साइमन ने जिस चीज़ पर ख़ास तौर से ज़ोर दिया, वह यह थी: उन्हें सबसे पहले और सबसे ज़्यादा उस वर्ग के भाग्य में दिलचस्पी थी, जो संख्या में सबसे ज़्यादा था और सबसे ज़्यादा ग़रीब भी था («la classe la plus nombreuse et la plus pauvre»)।

सेंट-साइमन ने अपने 'जेनेवा के पत्र' में पहले से ही यह सिद्धांत निर्धारित कर दिया था कि

"हर आदमी को काम करना चाहिए"।

इसी पुस्तक में उन्होंने यह भी माना है कि आतंक-राज्य सम्पत्तिविहीनों का राज्य था।

और इस धनहीन जन-समुदाय को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा,

"तुम्हारे साथियों के शासन-काल में फ़्रांस में क्या हुआ, देखो। उन्होंने अकाल की हालत पैदा कर दी"।

परंतु फ़्रांसीसी क्रांति को एक वर्ग-युद्ध के रूप में स्वीकार करना, और वह भी केवल सामंत वर्ग और पूंजीपति वर्ग के ही नहीं, बल्कि सामंतों, पूंजीपतियों और सम्पत्तिविहीनों के बीच वर्ग-युद्ध के रूप में स्वीकार करना, सन् १८०२ में यह एक अत्यंत अर्थगर्भित आविष्कार था। १८१६ में सेंट-साइमन ने घोषणा की कि राजनीति उत्पादन का विज्ञान है। उन्होंने यह भविष्यवाणी की कि राजनीति अर्थशास्त्र में सम्पूर्ण रूप से विलीन हो जायेगी। इस बात का ज्ञान कि आर्थिक परिस्थिति ही राजनीतिक संस्थाओं का आधार है, यहां बीज रूप में ही दिखाई देता है। फिर भी यह विचार अभी से यहां स्पष्ट रूप से व्यक्त किया गया है कि भविष्य में व्यक्तियों के ऊपर होनेवाला राजनीतिक शासन वस्तुओं के प्रबंध में और उत्पादन की प्रक्रियाओं के संचालन में बदल दिया जायेगा – दूसरे शब्दों में, "राज्य-सत्ता का अंत" हो जायेगा, ठीक वही बात, जिसे लेकर इधर इतना शोर हुआ है।

अपने समकालीन विचारकों की तुलना में सेंट-साइमन की यह श्रेष्ठता एक बार फिर प्रगट हुई, जब १८१४ में पेरिस में मित्र-सेनाओं के प्रवेश के

तुरंत बाद *, और फिर १८१५ में शतवासरीय युद्ध[75] के समय, उन्होंने यह घोषणा की कि फ़्रांस और इंगलैंड का संश्रय, और इन दोनों देशों का जर्मनी के साथ संश्रय ही, यूरोप की समृद्धि, विकास और शांति की एकमात्र गारंटी हो सकता है। १८१५ में फ़्रांसीसियों को वाटरलू[76] के विजेताओं के साथ मैत्री करने का उपदेश देने के लिए साहस और ऐतिहासिक दूरदृष्टि, दोनों की समान रूप से आवश्यकता थी।

अगर हम सेंट-साइमन में एक इतना व्यापक दृष्टिकोण पाते हैं, कि बाद में आनेवाले समाजवादियों के प्रायः सभी विचार, जो विशुद्ध रूप से आर्थिक नहीं हैं, उनमें बीज रूप में विद्यमान् हैं, तो फ़ूरिये की कृतियों में हम उनके युग की सामाजिक व्यवस्था की एक ऐसी आलोचना पाते हैं, जो परिहास लिये विशिष्ट रूप से फ़्रांसीसी है, लेकिन जो इस कारण कम मुकम्मल नहीं है। फ़ूरिये ने पूंजीपति वर्ग को, क्रांति से पहले के उसके उत्साही पैग़म्बरों को और क्रांति के बाद के उसके मतलबी चाटुकारों को, उन्हीं के वक्तव्यों की कसौटी पर परखा है। उन्होंने पूंजीवादी संसार की भौतिक और नैतिक हीनता और दरिद्रता को निर्ममतापूर्वक उघाड़कर रख दिया। और इस वास्तविकता के मुक़ाबले उन्होंने पहले के दार्शनिकों के चकाचौंध में डाल देनेवाले वचनों को रखा, जो कहते थे कि एक ऐसे समाज का जन्म होगा, जिसमें विवेक का ही राज्य होगा; एक ऐसी सभ्यता पनपेगी, जिसमें सब लोग सुखी होंगे, जिसमें मनुष्य के विकास की अनंत संभावनायें होंगी। उन्होंने इस वास्तविकता के मुक़ाबले अपने समय के पूंजीवादी विचारकों की रंगीन लच्छेदार बातों को भी रखा और यह दिखा दिया कि हर जगह बातें ख़ूब लंबी-चौड़ी की जाती हैं, लेकिन वास्तविकता अत्यन्त दयनीय है। उन्होंने अपने तीखे व्यंग्य से निरर्थक शब्दों के इस जाल को छिन्न-भिन्न कर डाला।

फ़ूरिये केवल आलोचक ही नहीं थे, उनकी शांत और कभी विचलित न होनेवाली प्रकृति ने उन्हें एक व्यंग्यकार, और सच पूछिये तो संसार का एक महान् व्यंग्यकार बना दिया था। जितने सशक्त और आकर्षक रूप से उन्होंने क्रांति के पतन के बाद फैलनेवाली सट्टेबाज़ी और धोखाधड़ी का चित्रण किया, उतने ही सशक्त और आकर्षक रूप से उन्होंने फ़्रांसीसी व्यापार में फैली बनियौटी का भी चित्रण किया जो उस व्यापार की लाक्षणिक

* ३१ मार्च, १८१४। – सं०

विशेषता बन गयी थी। पूंजीवादी समाज में स्त्री के स्थान और स्त्री-पुरुष के संबंधों के पूंजीवादी स्वरूप की उनकी आलोचना इससे भी अधिक शानदार है। उन्होंने सबसे पहले इस बात की घोषणा की कि किसी भी समाज में स्त्री की स्वाधीनता की मात्रा, पूरे समाज की स्वाधीनता का स्वाभाविक माप है।

परंतु समाज के इतिहास संबंधी अपनी धारणा में फ़ूरिये सबसे महान् हैं। उन्होंने अब तक इतिहास के पूरे प्रक्रम को विकास के चार युगों में बांटा – वन्यावस्था, बर्बरता, पितृसत्तात्मक व्यवस्था और सभ्यता। यह अंतिम अवस्था, अर्थात् सभ्यता का युग आज की तथाकथित पूंजीवादी समाज-व्यवस्था का, अर्थात् उस समाज-व्यवस्था का युग है, जिसने १६वीं शताब्दी के आरंभ में जन्म लिया। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि

> "बर्बरता के युग में जो बुराइयां सीधे-सादे ढंग से होती थीं, सभ्यता के युग में वे एक अत्यन्त जटिल, रहस्यमय, सन्देहपूर्ण और पाखंडपूर्ण रूप ग्रहण कर लेती हैं";

और सभ्यता, अपने ही अन्तर्विरोधों की परिधि में, एक "दूषित वृत्त" में चक्कर काट रही है। वह इन अन्तर्विरोधों को लगातार उत्पन्न करती है, लेकिन उन्हें सुलझा नहीं पाती; और इसलिए वह अपने इच्छित अथवा घोषित लक्ष्य के विपरीत लक्ष्य पर पहुंचती है, और इस तरह, उदाहरण के लिए,

> "सभ्यता के अन्तर्गत **अत्यधिक प्रचुरता से ही ग़रीबी पैदा** होती है"।

इस तरह हम देखते हैं कि फ़ूरिये ने द्वन्द्वात्मक प्रणाली का उसी अधिकार के साथ प्रयोग किया, जिस अधिकार के साथ उनके समकालीन हेगेल ने। संपूर्णता की ओर मानव-विकास की असीम संभावनाओं की जो बात हुआ करती थी, इस द्वन्द्वात्मक प्रणाली का उन्होंने उसके विरुद्ध उपयोग किया और कहा कि प्रत्येक ऐतिहासिक युग में एक उत्थान की अवस्था होती है और दूसरी अवसान की, और इस वक्तव्य को उन्होंने समस्त मानव-जाति के भविष्य पर लागू किया। कांट ने जैसे प्रकृति-विज्ञान के क्षेत्र में यह विचार प्रगट किया था कि अंत में जाकर पृथ्वी का ही नाश हो जायेगा, उसी प्रकार इतिहास-विज्ञान में फ़ूरिये ने यह विचार रखा कि अंत में मानव-जाति का ही नाश हो जायेगा।

फ़्रांस में जिस समय क्रांति का एक तूफ़ान पूरे देश में बह रहा था, उसी समय इंगलैंड में एक अधिक शांत क्रांति हो रही थी, लेकिन शांत होते हुए भी यह क्रांति कम ज़बर्दस्त न थी। भाप और कल-पुर्ज़े बनानेवाली मशीनें मैनुफ़ेक्चर को आधुनिक उद्योग में बदल रही थीं, और इस तरह वे पूंजीवादी समाज के समूचे आधार में ही क्रांतिकारी परिवर्तन ला रही थीं। मैनुफ़ेक्चर काल में विकास की धीमी गति अब सचमुच उत्पादन के एक प्रबल, प्रचंड वेग में बदल गयी। लगातार बढ़ती हुई तेज़ी से समाज बड़े बड़े पूंजीपतियों और सम्पत्तिविहीन सर्वहारा वर्ग में विभक्त होने लगा। और दोनों के बीच पहले जैसा एक स्थिर मध्यवर्ग न रहा; उसकी जगह दस्तकारों और छोटे दूकानदारों का एक अस्थिर जनसमूह, आबादी का सबसे ढुलमुल हिस्सा था, जो एक अनिश्चित और संकटमय जीवन बिता रहा था।

इस नयी उत्पादन-प्रणाली के विकास का दौर अभी शुरू ही हुआ था। अभी तक यह उत्पादन की सहज, नियमित प्रणाली थी, और उन अवस्थाओं में यही प्रणाली संभव भी थी। फिर भी अभी से ही यह प्रणाली भयंकर सामाजिक बुराइयों को जन्म दे रही थी—बड़े बड़े शहरों के सबसे गंदे हिस्सों में झुण्ड के झुण्ड बेघरबार लोगों का रहना; सभी परम्परागत नैतिक बंधनों का, पितृसत्तात्मक अधिकार का, पारिवारिक संबंधों का शिथिल होना; मज़दूरों से, ख़ासकर औरतों और बच्चों से बेहद काम लिया जाना; मज़दूर वर्ग का बिलकुल पस्तहिम्मत हो जाना, जिसका कारण यह था कि वह यकायक नयी परिस्थितियों में—देहात से शहर में, कृषि से आधुनिक उद्योग में, जीवन की एक स्थिर, निश्चित अवस्था से रोज़ बदलनेवाली अनिश्चित अवस्था में—पड़ गया था।

ऐसी घड़ी में एक सुधारक के रूप में उनतीस वर्ष का एक कारख़ानेदार सामने आया—उसके चरित्र में शिशुवत् सरलता और उदात्तता थी, और इसके साथ ही वह उन थोड़े-से आदमियों में था, जो जन्मजात नेता होते हैं। रॉबर्ट ओवेन ने भौतिकवादी दार्शनिकों की शिक्षा को अंगीकार किया था—वह मानते थे कि मनुष्य का चरित्र एक ओर तो वंशगत गुणों पर, और दूसरी ओर व्यक्ति के जीवन-काल में, विशेष रूप से उसके विकास-काल में उस के परिवेश पर, निर्भर है। उनके वर्ग के अधिकांश लोगों को औद्योगिक क्रांति में गड़बड़ी और अव्यवस्था ही दीख पड़ी; बहती गंगा में हाथ धोने और इस गड़बड़ी से फ़ायदा उठाकर चटपट धनी बन जाने का एक अवसर ही दीख पड़ा। लेकिन ओवेन ने इस परिस्थिति में अपने प्रिय

सिद्धान्त को व्यावहारिक रूप देने का और इस प्रकार अव्यवस्था में व्यवस्था लाने का सुअवसर देखा। मैंचेस्टर के एक कारख़ाने में, जहां पांच सौ से ज़्यादा आदमी काम करते थे, वह एक सुपरिंटेंडेंट की हैसियत से इस सिद्धांत का पहले ही सफल प्रयोग कर चुके थे। १८०० से १८२९ तक उन्होंने एक प्रबंधक-साझीदार की हैसियत से स्काटलैंड में न्यू-लेनार्क की सूती मिल का इसी ढंग से, लेकिन और अधिक स्वाधीनता से संचालन किया। इसमें उन्हें इतनी ज़्यादा सफलता मिली कि पूरे यूरोप में उनका नाम हो गया। उन्होंने जिस आबादी को हाथ में लिया, उसमें विविध तत्त्व थे और अधिकतर पस्तहिम्मत लोग थे; और इस आबादी को, जिसकी संख्या बढ़ते बढ़ते २,५०० तक पहुंच गयी थी, उन्होंने एक आदर्श बस्ती में बदल दिया, जिसमें शराबख़ोरी, पुलिस, मैजिस्ट्रेट, मुक़द्दमेबाज़ी, क़ानूने-मुफ़लिसी, दान, वग़ैरह का नाम न था। और इसके लिए उन्होंने किया बस यह कि लोगों को मानवोचित परिस्थितियों में रखा और विशेष रूप से नयी पीढ़ी का सावधानी से पालन-पोषण किया। वह शिशु-पाठशालाओं के प्रवर्त्तक थे और उन्होंने सबसे पहले न्यू-लेनार्क में इन पाठशालाओं को स्थापित किया। दो वर्ष की अवस्था से बच्चे स्कूल आने लगते, और वहां उन्हें इतना मज़ा आता कि उन्हें घर ले जाना मुश्किल हो जाता। जहां ओवेन के प्रतिद्वंद्वी अपने आदमियों से तेरह-चौदह घंटा काम लेते, न्यू-लेनार्क में रोज़ साढ़े दस घंटे ही काम होता। और जब रुई की दिक़्क़त की वजह से कारख़ाना चार महीने तक बंद रहा, तब मज़दूरों को पूरे वक़्त अपनी पूरी तनख़ाह मिलती रही। यह सब होने पर भी इस कारख़ाने का मूल्य दुगने से ज़्यादा हो गया, और उससे आख़िर तक मालिकों को गहरा मुनाफ़ा होता रहा।

इसके बावजूद ओवेन संतुष्ट न थे। अपने मज़दूरों के लिए जो जीवन उन्होंने सुलभ बनाया था, उनकी दृष्टि में अभी भी उसके मानवोचित होने में बहुत कसर थी।

"ये लोग अभी भी मेरी मर्ज़ी के ग़ुलाम थे।"

उन्होंने इन लोगों को जिन अपेक्षाकृत सुविधापूर्ण परिस्थितियों में रखा था, वे अभी ऐसी न थीं कि उनमें बुद्धि और चरित्र का सभी दिशाओं में युक्तिसंगत विकास हो सकता; उनकी सभी क्षमताओं का उन्मुक्त विकास होना तो दूर की बात थी।

"और तो भी २,५०० व्यक्तियों की इस आबादी का काम करनेवाला भाग समाज के लिए प्रति दिन जितना वास्तविक धन उत्पन्न करता था, पचास साल से भी कम पहले, उसे उत्पन्न करने के लिए ६,००,००० की आबादी के काम करनेवाले भाग की ज़रूरत पड़ती। मैंने अपने आप से पूछा, ६,००,००० आदमी जितना धन ख़र्च करते, उससे २,५०० आदमी बहुत कम धन ख़र्च करते हैं, फिर शेष धन कहां चला जाता है?"

इस प्रश्न का उत्तर स्पष्ट था। इस धन से कारख़ाने के मालिकों को उनकी लगायी पूंजी पर पांच प्रतिशत सूद और अलावा इसके ३,००, ००० पौंड से अधिक खरा मुनाफ़ा दिया जाता था। और जो बात न्यू-लेनार्क पर लागू होती थी वह इंगलैंड के और सभी कारख़ानों पर और भी ज़्यादा लागू होती थी।

"मशीनों का इस्तेमाल चाहे जितना अधूरा रहा हो, लेकिन अगर उनके द्वारा यह नया धन उत्पन्न न किया गया होता, तो नेपोलियन के ख़िलाफ़ और समाज के अभिजातीय सिद्धांतों की रक्षा के लिए, यूरोप की लड़ाइयों को चलाया नहीं जा सकता था। और फिर भी मज़दूर वर्ग ने ही इस नयी शक्ति का सृजन किया था।"*

इसलिए वही इस नयी शक्ति के फल का अधिकारी था। जिन विराट उत्पादक शक्तियों का हाल में ही सृजन हुआ था और अभी तक जिनका उपयोग इने-गिने व्यक्तियों को मालामाल करने और जनता को ग़ुलाम बनाने के लिए किया गया था, ओवेन की दृष्टि में उन्होंने समाज के पुनर्निर्माण का एक आधार प्रस्तुत कर दिया था, और भविष्य में उनका सब की सामान्य सम्पत्ति के रूप में, सब के सामान्य हित के लिए उपयोग होना था।

ओवेन का कम्युनिज़्म इस विशुद्ध व्यावसायिक आधार पर क़ायम था।

---

* ओवेन के स्मृतिपत्र, 'विचार तथा व्यवहार में क्रांति', पृष्ठ २१ से। ओवेन ने इसे "यूरोप के सभी लाल जनतंत्रवादियों, कम्युनिस्टों और समाजवादियों" को संबोधित करके लिखा था और उसे १८४८ की फ़्रांस की अस्थायी सरकार के पास और "महारानी विक्टोरिया तथा उनके उत्तरदायी मंत्रियों" के पास भी भेजा था। (**एंगेल्स का नोट।**)

कहना चाहिए कि व्यावसायिक लेखे-जोखे के फलस्वरूप ही उसकी उत्पत्ति हुई। उसका यह व्यावहारिक रूप अंत तक बना रहा। इस तरह हम देखते हैं कि १८२३ में ओवेन ने आयरलैंड में पीड़ित लोगों के सहायतार्थ कम्युनिस्ट बस्तियां स्थापित करने का प्रस्ताव रखा, और उनकी स्थापना के ख़र्च, सालाना ख़र्च और संभाव्य आय का एक पूरा तख़मीना लगाया। उन्होंने भविष्य की एक सुनिश्चित योजना, भविष्य का एक पूरा नक़शा बनाया – जिसमें नींव का नक़शा, सम्मुख, पार्श्व और विहंगम दृश्य, सभी दिये हुए थे – और उसका प्राविधिक ब्योरा तैयार करने में उन्होंने ऐसे व्यावहारिक ज्ञान का परिचय दिया कि अगर समाज-सुधार की ओवेन-पद्धति को एक बार स्वीकार कर लिया जाये, तो फिर तफ़सीली बातों के इन्तज़ाम के ख़िलाफ़ व्यावहारिक दृष्टि से शायद ही कोई एतराज़ किया जा सके।

कम्युनिज़्म की दिशा में प्रगति करने के साथ ही ओवेन का जीवन भी एक नयी दिशा में मुड़ गया। जब तक वह परोपकारी सुधारक भर थे, उन्हें धन, प्रशंसा, सम्मान, गौरव, सब कुछ मिला। वह यूरोप के सबसे जनप्रिय व्यक्ति थे। उनके वर्ग के ही लोग नहीं, बल्कि राजे-महाराजे और राजनीतिज्ञ भी उनकी बात आदर के साथ सुनते थे और उनकी दाद देते थे। किन्तु जब उन्होंने अपने कम्युनिस्ट सिद्धान्तों को पेश किया, परिस्थिति एकदम बदल गयी। समाज-सुधार के रास्ते में उन्हें ख़ासकर तीन बड़ी कठिनाइयां दीख पड़ीं – निजी सम्पत्ति, धर्म और विवाह का प्रचलित रूप। वह जानते थे कि अगर उन्होंने इन पर आक्रमण किया, तो परिणाम क्या होगा – समाज से निष्कासन, सरकारी हलक़ों द्वारा बहिष्कार, उनकी संपूर्ण सामाजिक प्रतिष्ठा की हानि। लेकिन इन बातों का डर उन्हें रोक न सका और उन्होंने परिणाम की चिंता किये बिना उनपर आक्रमण किया, और जिस बात की उन्हें आशंका थी, वह होकर रही। सरकारी हलक़ों ने उनका बहिष्कार किया, प्रेस ने उनकी ओर मौन उपेक्षा का रुख़ अपनाया, अमरीका में होनेवाले असफल कम्युनिस्ट प्रयोगों ने उन्हें चौपट कर दिया और उनमें उनकी सारी सम्पत्ति स्वाहा हो गयी। और तब उन्होंने अपना नाता सीधे मज़दूर वर्ग से जोड़ा और उनके बीच तीस वर्षों तक काम करते रहे। इंगलैंड में मज़दूरों की हर वास्तविक प्रगति, हर सामाजिक आंदोलन के साथ ओवेन का नाम जुड़ा हुआ है। १८१९ में पांच वर्षों के संघर्ष के बाद उन्होंने कारख़ानों में औरतों और बच्चों के काम के घंटों पर रोक लगानेवाले पहले क़ानून को ज़ोर लगाकर पास

कराया। श्रोवेन ही पहली कांग्रेस के, जिसमें इंगलैंड के सभी ट्रेड-यूनियनों ने मिलकर एक विशाल ट्रेड-यूनियन संगठन बनाया[77], सभापति थे। समाज के संपूर्ण कम्युनिस्ट संगठन के लिए उन्होंने दो संक्रमणकालीन संस्थाओं को चलाया। एक ओर तो उन्होंने फुटकर व्यापार और उत्पादन के लिए सहकारी संस्थाएं क़ायम कीं। तब से इन संस्थाओं ने कम से कम इस बात का व्यावहारिक प्रमाण तो दे ही दिया है कि सामाजिक दृष्टि से व्यापारियों और कारख़ानेदारों की कोई आवश्यकता नहीं है। दूसरी ओर उन्होंने श्रम-बाज़ार चलाये। इन बाज़ारों में श्रम के नोट, जिनका युनिट काम का एक घंटा होता था, चलते थे, और ये नोट ही श्रम द्वारा उत्पादित वस्तुओं के विनिमय का माध्यम होते थे।[78] इन संस्थाओं का असफल होना पूर्वनिश्चित था, लेकिन फिर भी हमें इन संस्थाओं में बहुत बाद में आनेवाले प्रूदों के विनिमय-बैंक[79] की शक्ल पहले से तैयार मिलती है। फ़र्क़ यह है कि जहां प्रूदों के बैंक को तमाम सामाजिक बुराइयों के लिए रामबाण कहा गया, वहां इन संस्थाओं को समाज में एक अधिक मौलिक क्रांति की दिशा में पहला क़दम बताया गया।

कल्पनावादियों की विचार-प्रणाली का उन्नीसवीं शताब्दी की समाजवादी धारणाओं पर बहुत दिनों तक प्रभाव रहा, और कुछ अंशों में अभी भी है। अभी हाल तक इंगलैंड और फ़्रांस के सभी समाजवादी उनके सामने शीश नवाते थे। और पहले का जर्मन कम्युनिज़्म भी, जिसमें वाइटलिंग का कम्युनिज़्म भी सम्मिलित है, इसी मत को मानता था। इन सबों के लिए समाजवाद निरपेक्ष सत्य, विवेक और न्याय की अभिव्यक्ति है, और एक बार जहां उसका आविष्कार हुआ नहीं कि वह अपनी ही शक्ति से सारे संसार को जीत लेगा। और चूंकि निरपेक्ष सत्य देश, काल तथा मनुष्य के ऐतिहासिक विकास से स्वतंत्र है, उसका आविष्कार कब और कहां होता है, यह एक निरी आकस्मिक बात है। इसके साथ ही हर मत के प्रवर्त्तक की निरपेक्ष सत्य, न्याय और विवेक की अपनी अलग धारणा है। और चूंकि निरपेक्ष सत्य, न्याय और विवेक की हर व्यक्ति की अपनी विशेष धारणा उसकी वैयक्तिक समझ, जीवन की परिस्थितियों, ज्ञान की मात्रा और बौद्धिक प्रशिक्षण से निश्चित होती है, इसलिए निरपेक्ष सत्यों के इस विरोध का अंत यही हो सकता था कि वे एक दूसरे को अपवर्जित करें। इससे एक प्रकार के औसत, खिचड़ी समाजवाद की ही उत्पत्ति हो सकती थी, और सच

पूछिये तो यही समाजवाद अभी तक फ़्रांस और इंगलैंड के अधिकांश समाजवादी कार्यकर्ताओं के मन पर छाया हुआ है। इस खिचड़ी समाजवाद में हम तरह तरह के विचारों का एक विचित्र-सा सम्मिश्रण पाते हैं – विभिन्न मतों के प्रवर्त्तकों के ऐसे आलोचनात्मक वक्तव्यों, आर्थिक सिद्धान्तों, भावी समाज की रूपरेखाओं का सम्मिश्रण, जो कम से कम विरोध उत्पन्न करें। जैसे नदी की धारा में बहते हुए पत्थर गोल-मटोल हो जाते हैं, वैसे ही वाद-विवाद के भंवर में पड़कर ये विचार और सिद्धान्त जितना ही घिस जाते हैं, उनका यह सम्मिश्रण उतनी ही आसानी से तैयार होता है।

समाजवाद को एक विज्ञान का रूप देने के पहले यह आवश्यक था कि उसे एक वास्तविक आधार पर प्रतिष्ठित किया जाये।

२

इसी बीच, अठारहवीं शताब्दी के फ़्रांसीसी दर्शन के साथ और उसके बाद एक नये जर्मन दर्शन का आविर्भाव हुआ जिसकी परिणति हेगेल की रचनाओं में हुई। इस दर्शन का सबसे बड़ा गुण यह था कि उसने द्वंद्ववाद को ही तर्कना का सर्वोच्च रूप माना और दर्शन के क्षेत्र में उसे फिर से प्रतिष्ठित किया। यूनान के प्राचीन दार्शनिक स्वभावतः, जन्मजात, द्वंद्ववादी थे और अरस्तू ने, जिनकी बुद्धि का विस्तार सबसे अधिक था, तभी द्वंद्ववादी विचार के प्रमुख मौलिक रूपों का विश्लेषण कर लिया था। नवीनतर दर्शन के अनुयायियों में यद्यपि (देकार्त और स्पिनोज़ा जैसे) द्वंद्ववाद के प्रतिभाशाली व्याख्याकार थे, तो भी यह दर्शन विशेष रूप से अंग्रेज़ दार्शनिकों के प्रभाव से तथाकथित अधिभूतवादी तर्क-प्रणाली के साथ अधिकाधिक बंधता गया। इस तर्क-प्रणाली से अठारहवीं शताब्दी के फ़्रांसीसी भी प्रायः संपूर्णतया प्रभावित थे – उनकी विशिष्ट दार्शनिक कृतियों पर तो बहरसूरत यह प्रभाव है ही। दर्शन को यदि एक संकुचित अर्थ में लें, तो उसके बाहर अवश्य इन फ़्रांसीसियों ने द्वंद्ववाद की अत्यंत उत्कृष्ट रचनायें प्रस्तुत कीं। उदाहरण के लिए हम दिदेरो के *«Le Neveu de Rameau»* ('रामो का भतीजा') और रूसो के *«Discours sur l'origine et les fondements de l'inégalité parmi les hommes»* ('मानवों में असमानता की उत्पत्ति तथा उसके आधार की विवेचना') का

नाम ले सकते हैं। हम यहां संक्षेप में इन दोनों विचार-प्रणालियों के मौलिक स्वरूप का वर्णन करेंगे।

जब हम विस्तृत प्रकृति या मानव-जाति के इतिहास पर या अपने मन की प्रक्रियाओं पर विचार करते हैं तब पहले हमें क्रियाओं, प्रतिक्रियाओं, संबंधों, विभिन्न तत्त्वों के योग और संयोजन से बना हुआ एक जाल-सा दिखाई देता है, जो कहीं ख़त्म नहीं होता, जिसमें कोई वस्तु स्थिर नहीं रहती, जो जहां जैसा था, वह वहां वैसा नहीं रहता, जिसमें हर वस्तु गतिशील है, परिवर्तनशील है, हर वस्तु का निर्माण होता है और नाश होता है। इस प्रकार हम इस चित्र को पहले समग्र रूप में देखते हैं, उसके अलग अलग हिस्से हमारी नज़र में नहीं पड़ते, वे न्यूनाधिक पृष्ठभूमि नें ही रहते हैं। हम गति, संक्रमण और परस्पर संबंधों को देखते हैं, किन्तु जिन वस्तुओं की यह गति है, ये योग और संबंध हैं, हम उन्हें नहीं देख पाते। विश्व की यह धारणा आदिम और भोली-भाली है, लेकिन मूलतः वह ग़लत नहीं है, और प्राचीन यूनानी दर्शन की धारणा भी यही थी, जिसे स्पष्ट रूप से सबसे पहले हेराक्लाइटस नें प्रतिपादित किया था। उसने कहा था – हर वस्तु है और नहीं भी है, क्योंकि हर वस्तु **अस्थिर** है, सतत परिवर्तनशील है, सतत निर्माण और नाश की अवस्था में है।

यह धारणा कुल मिलाकर दृश्य-जगत् के चित्र के सामान्य स्वरूप को तो सही सही व्यक्त करती है, लेकिन जिन तफ़सीलों से यह चित्र बना है, उनकी व्याख्या के लिए पर्याप्त नहीं है। और जब तक हम इन्हें नहीं समझें, हम पूरे चित्र को साफ़ तौर पर समझ नहीं सकते। इन तफ़सीलों को समझने के लिए यह ज़रूरी है कि हम उन्हें उनके प्राकृतिक या ऐतिहासिक संबंधों से अलग करें और हर तफ़सील पर, चित्र के सूक्ष्म से सूक्ष्म अंग पर अलग अलग विचार करें; उसके स्वरूप, उसके विशेष कारणों, परिणामों इत्यादि की, पृथक् रूप से परीक्षा करें। यह काम ख़ास तौर पर प्रकृति-विज्ञान और ऐतिहासिक अनुसंधान का है, और ये ही विज्ञान की वे शाखायें हैं, जिन्हें प्राचीन काल के यूनानियों ने निम्न स्थान दिया था, और इसका यथेष्ट कारण भी था, क्योंकि उन्हें सबसे पहले इन विज्ञानों के लिए सामग्री एकत्र करनी थी, जिसके आधार पर वे कार्य कर सकें। प्रकृति और इतिहास के संबंध में जब तक पहले कुछ सामग्री एकत्र न हो ले, तब तक आलोचनात्मक विश्लेषण, तुलना और वर्गों, श्रेणियों और जातियों के रूप में क्रम-स्थापना नहीं हो सकती।

इसलिए वास्तविकता का यथातथ्य वर्णन करनेवाले प्रकृति-विज्ञान का आधार सबसे पहले अलेक्ज़ेंड्रियाई काल[80] के यूनानियों ने और बाद में मध्ययुग के अरबों ने स्थापित किया। अपने यथार्थ रूप में प्रकृति-विज्ञान का आरंभ पंद्रहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से ही होता है, और तब से इस विज्ञान ने लगातार बढ़ती हुई रफ़्तार से तरक़्क़ी की है। प्रकृति का उसके पृथक् अवयवों में विश्लेषण, विभिन्न वस्तुओं और प्रक्रियाओं का निश्चित वर्गीकरण, विविध रूपी जैव पिंडों की आंतरिक शरीर-रचना का अध्ययन – पिछले चार सौ वर्षों में प्रकृति संबंधी हमारे ज्ञान में जो विराट प्रगति हुई है, उसकी ये बुनियादी शर्तें रही हैं। परंतु इस कार्य-प्रणाली ने हमारे लिए एक विरासत भी छोड़ी है – उसने हमारे अंदर ऐसी आदत डाल दी है कि हम प्राकृतिक वस्तुओं और प्रक्रियाओं को, संपूर्ण वास्तविकता से उनके संबंध को विच्छिन्न करके देखते हैं, उन्हें गति की नहीं, विराम की स्थिति में, मूलतः परिवर्तनशील नहीं, वल्कि स्थिर अवस्था में, जीवन की नहीं, मृत्यु की अवस्था में देखते हैं। और जब बेकन और लाक इस दृष्टिकोण को प्रकृति-विज्ञान के क्षेत्र से दर्शन के क्षेत्र में ले आये, तब उस संकीर्ण, अधिभूतवादी विचार-प्रणाली का जन्म हुआ, जो पिछली शताब्दी की एक विशेषता रही है।

अधिभूतवादी के लिए वस्तु और वस्तुओं के मानस-चित्र, अर्थात् विचार, एक दूसरे से विच्छिन्न और स्वाधीन हैं। वह उन्हें अन्वेषण की स्थिर, निश्चित और अपरिवर्तनीय प्रदत्त सामग्री मानता है; उन्हें एक दूसरे से अलग करके और एक के बाद एक देखता है। उसका चिन्तन ऐसे प्रतिवादों के रूप में होता है, जिनका परस्पर सामंजस्य हो ही नहीं सकता। वह बात करता है, तो 'हां' में, या 'नहीं' में, और जो न 'हां' में है, और न 'नहीं' में, वह शैतान की शरारत है।"* उसकी दृष्टि में या तो किसी वस्तु का अस्तित्व है या नहीं है, कोई वस्तु एक ही समय में जो वह है, उससे भिन्न नहीं हो सकती, भाव-पक्ष और अभाव-पक्ष दोनों एक दूसरे से बिलकुल अलग हैं, दोनों में उभयनिष्ठ कुछ नहीं है। कार्य और कारण की कोटियां एक दूसरे के बिलकुल विपरीत हैं।

पहली नज़र में यह विचार-प्रणाली अत्यंत परिष्कृत और स्पष्ट मालूम होती है, क्योंकि यह प्रणाली तथाकथित स्वस्थ व्यवहार-बुद्धि की प्रणाली है।

---

* **बाइबिल**, मत्फ़ेई रचित इंजील, पांचवां अध्याय, छन्द ३७। – सं०

परंतु यह स्वस्थ व्यवहार-बुद्धि अपने घर की चहारदीवारी के अंदर तो बाइज़्ज़त वड़े मजे से रह लेती है, लेकिन जहां उसने अनुसंधान के विशाल जगत् में पदार्पण किया नहीं कि वह वड़े ख़तरे में पड़ जाती है। कुछ क्षेत्रों में, जिनका विस्तार इस बात पर निर्भर है कि अनुसंधान के विशिष्ट विषय का स्वरूप क्या है, अधिभूतवादी विचार-प्रणाली आवश्यक और उचित भी है, परंतु न्यूनाधिक काल के बाद यह प्रणाली एक ऐसी सीमा पर पहुंच जाती है जिसके आगे ले जाने पर वह एकांगी, संकुचित, अमूर्त और अवास्तविक हो जाती है, और अमिट विरोधों के भंवर में पड़कर रह जाती है। अलग अलग वस्तुओं पर विचार करते समय अधिभूतवादी उनके परस्पर संबंधों को भूल जाता है, उनके अस्तित्व पर विचार करते समय वह उस अस्तित्व के आरंभ और अंत को भूल जाता है, वह उन्हें विराम-स्थिति में देखता है, लेकिन उनकी गति को भूल जाता है। वह वृक्षों को देखता है पर वन को नहीं देख पाता।

मिसाल के तौर पर अपने रोज़मर्रा के काम के लिए हम यह जानते हैं और कह सकते हैं कि कोई प्राणी जीवित है या नहीं। लेकिन ग़ौर से देखने पर यह मालूम होता है कि यह अक्सर एक बहुत पेचीदा सवाल होता है। क़ानूनदां इस बात को अच्छी तरह जानते हैं। उन्होंने इस बात को लेकर बहुत माथापच्ची की है कि वह मुनासिब हद कौनसी है, जिसके आगे मां के गर्भ को नष्ट करने का मतलब है हत्या करना; और फिर भी वे इसको निश्चित नहीं कर पाये हैं। इसी प्रकार मृत्यु के क्षण को सम्पूर्ण रूप से निश्चित करना असंभव है, क्योंकि शरीर-क्रिया विज्ञान ने यह प्रमाणित कर दिया है कि मृत्यु कोई आकस्मिक और क्षणभर में हो जानेवाली घटना नहीं है, वह एक बहुत लम्बी प्रक्रिया है।

इसी प्रकार प्रत्येक जैव पदार्थ हर क्षण में, जो वह है, उससे भिन्न भी है। वह हर क्षण बाहर से कुछ पदार्थ ग्रहण करता है और भीतर से कुछ अन्य पदार्थ ख़ारिज करता है। हर क्षण उसके शरीर की कुछ कोशिकायें मरती रहती हैं और अन्य कोशिकायें पुनर्निर्मित होती रहती हैं और इस तरह न्यूनाधिक समय में उसके शरीर का पदार्थ फिर से बिलकुल नया हो जाता है, पुराने पदार्थ की जगह नये पदार्थ के अणु ले लेते हैं और इसलिए हम कह सकते हैं कि प्रत्येक जैव पदार्थ किसी समय में जो वह है, उससे भिन्न भी है।

इतना ही नहीं, सूक्ष्मतर अन्वेषण के बाद यह भी पता चलता है कि किसी प्रतिवाद के दोनों छोर, भाव-पक्ष और अभाव-पक्ष, जैसे एक दूसरे के विरोधी हैं, वैसे ही अभिन्न भी, और अपने सारे विरोध के बावजूद वे एक दूसरे में अंतर्व्याप्त हैं। और इसी प्रकार हम देखते हैं कि कार्य तथा कारण की धारणायें तभी सार्थक हैं, जब हम उन्हें विशेष घटनाओं पर लागू करें। लेकिन जहां हम इन विशेष घटनाओं को समग्र रूप में, अर्थात् विश्व के साथ सम्बद्ध रूप में देखते हैं, वे एक दूसरे से टकरा जाते हैं, और ख़ासकर तब और भी गडमड हो जाते हैं, जब हम उस विश्व-व्यापी क्रिया और प्रतिक्रिया पर ध्यान देते हैं जिनमें कारण और कार्य निरंतर स्थान बदलते रहते हैं। जो एक समय और एक स्थान पर कार्य है, वही दूसरे समय और दूसरे स्थान पर कारण बन जाता है। और इसी तरह जो कारण है, वह कार्य बन जाता है।

अधिभूतवादी तर्क-प्रणाली का ढांचा ऐसा है कि उसमें इन विचार-प्रक्रियाओं और प्रणालियों का कोई स्थान नहीं है। इसके विपरीत द्वंद्ववाद वस्तुओं और उनके मानस-चित्रों, अर्थात् विचारों को, उनके बुनियादी संबंध, गति, आरंभ और अंत को ध्यान में रखकर ही ग्रहण करता है। इसलिए ऊपर जिन प्रक्रियाओं का हमने उल्लेख किया है, वे द्वंद्ववाद की अपनी कार्य-प्रणाली का समर्थन करती हैं।

द्वंद्ववाद का प्रमाण प्रकृति है, और यह मानना ही होगा कि आधुनिक विज्ञान ने इस प्रमाण के लिए अत्यंत मूल्यवान् सामग्री प्रस्तुत की है और यह सामग्री प्रति दिन बढ़ती जा रही है। इस प्रकार विज्ञान ने यह दिखा दिया है कि अन्ततः प्रकृति की क्रिया अधिभूतवादी नहीं, द्वंद्वात्मक प्रकार की है; वह एक सदा पुनरावर्तित वृत्त के अपरिवर्तनशील क्रम में चक्कर नहीं काटती, बल्कि वास्तविक ऐतिहासिक विकास के क्रम से गुज़रती है। इस संबंध में सबसे पहले डार्विन का नाम लेना होगा। उन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि सभी जैव पदार्थ —वनस्पति, जीव तथा स्वयं मनुष्य —विकास की एक ऐसी प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न हुए हैं, जो करोड़ों साल से चलती आ रही है। इस तरह उन्होंने प्रकृति की अधिभूतवादी धारणा पर सबसे कठोर आघात किया। परंतु ऐसे प्रकृतिज्ञानी बहुत कम हैं, जिन्होंने द्वंद्वात्मक प्रणाली से विचार करना सीख लिया है, और अनुसंधान के निष्कर्षों तथा पूर्वकल्पित विचार-प्रणालियों के बीच इस विरोध के कारण प्रकृति-विज्ञान के सैद्धांतिक क्षेत्र में बेहद

गड़बड़ी फैली हुई है, जिससे शिक्षक तथा शिक्षार्थी, लेखक तथा पाठक, सभी को निराशा होती है।

इसलिए विश्व का, उसके विकास का, मानव-जाति के विकास का, और मानव-मन पर इस विकास के प्रतिबिंब का सच्चा चित्र द्वंद्वात्मक प्रणाली के द्वारा ही मिल सकता है क्योंकि यही प्रणाली जीवन और मृत्यु, पुरोगामी और प्रतिगामी परिवर्तनों की असंख्य क्रियाओं-प्रतिक्रियाओं को सदा ध्यान में रखती है। नवीन जर्मन दर्शन इसी भावना को लेकर चला है। अपना दार्शनिक जीवन आरंभ करते ही कांट ने न्यूटन की एक स्थायी सौर-मण्डल की धारणा को, जिसके अनुसार यह सौर-मण्डल, लोकविश्रुत प्रथम प्रणोदन के बाद से एक शाश्वत सतत अपरिवर्तनशील क्रम से चल रहा है, बदल डाला और उसे एक ऐतिहासिक क्रम के, एक चक्कर काटते हुए नीहारिका पुंज से सूर्य तथा सभी ग्रहों के निर्माण के परिणाम के रूप में प्रस्तुत किया। इससे उन्होंने साथ ही यह निष्कर्ष भी निकाला कि यदि सौर-मण्डल की उत्पत्ति इसी प्रकार हुई है, तो भविष्य में उसका विनाश भी निश्चित है। आधी शताब्दी बाद, लाप्लास ने कांट के इस सिद्धांत का गणितीय प्रमाण प्रस्तुत किया और इसके भी आधी शताब्दी बाद वर्णक्रमदर्शी (स्पेक्ट्रोस्कोप) का आविष्कार होने पर यह प्रमाणित हो गया कि बाह्य अन्तरिक्ष में ऐसे तापदीप्त नीहारिका पुंज हैं, और ये पुंज संघनन की विभिन्न अवस्थाओं में हैं।

इस नये जर्मन दर्शन का चरम विकास हेगेल की चिन्तन-प्रणाली में हुआ। इस प्रणाली में—और यही इसकी बहुत बड़ी ख़ूबी है—यह पूरा जगत्—प्राकृतिक, ऐतिहासिक तथा मानसिक जगत्—पहली बार एक प्रक्रिया के रूप में, अर्थात् सतत प्रवाह, गति, परिवर्तन, रूपान्तरण तथा विकास की अवस्था में चित्रित किया गया है, और साथ ही उस आंतरिक संबंध को, उस सूत्र को पकड़ने की कोशिश की गयी है, जिससे इस समस्त गति और विकास को एक क्रमबद्ध व्यवस्था का रूप मिलता है। इस दृष्टिकोण से मानव-जाति का इतिहास निरर्थक, हिंसक कार्यों का प्रचंड आवर्त्तन न रह गया—ऐसे कार्यों का आवर्त्तन जो परिपक्व दार्शनिक बुद्धि के न्याय-सिंहासन के सम्मुख सब के सब समान रूप से हेय तथा निंदनीय हैं, और जिन्हें शीघ्र से शीघ्र भूल जाना ही श्रेयस्कर है,—बल्कि इस दृष्टि से यह इतिहास स्वयं मनुष्य के विकास की प्रक्रिया के रूप में दीख पड़ा। अब यह काम बुद्धि का था कि वह इस प्रक्रिया के टेढ़े-मेढ़े रास्ते से क्रमिक विकास की गति को

परखे, और जो घटनायें ऊपर से देखने में आकस्मिक जान पड़ती हैं उनमें अन्तर्निहित नियम को खोज निकाले।

हेगेल की प्रणाली ने जिस समस्या को निरूपित किया, उसे वह सुलझा न पायी, लेकिन इस बात का कोई महत्त्व नहीं है। उसका युगान्तरकारी महत्त्व इस बात में है कि उसने उस समस्या को निरूपित किया। यह समस्या ही ऐसी है कि कोई एक व्यक्ति उसे कभी सुलझा नहीं पायेगा। सेंट-साइमन के साथ, हेगेल अपने युग में सबसे व्यापक चेतना रखनेवाले व्यक्ति थे, जिनका मस्तिष्क सचमुच विराट था; तब भी वह सबसे पहले अपने ज्ञान की अनिवार्य सीमा से, और दूसरे अपने युग के, विस्तार और गहराई, दोनों में सीमित ज्ञान और धारणाओं की सीमा से बंधे हुए थे। इनके बाद एक तीसरी सीमा भी थी। हेगेल भाववादी थे। उनके निकट उनके मस्तिष्क के विचार वास्तविक वस्तुओं और क्रियाओं के न्यूनाधिक अमूर्त्त प्रतिबिंब न थे, उल्टे ये वस्तुयें और उनका विकास "परम विचार" का व्यक्त, मूर्त्त और प्रतिफलित रूप था, और इस "परम विचार" का सृष्टि के पहले से ही, अनादि काल से अस्तित्व रहा है। इस चिन्तन-प्रणाली ने हर चीज़ को सिर के बल खड़ा कर दिया, और संसार में वस्तुओं के यथार्थ संबंध को बिलकुल उलट डाला। और यद्यपि हेगेल ने कितने ही विशिष्ट तथ्य-समूहों को ठीक ठीक और बड़ी सूझ-बूझ के साथ हृदयंगम किया, फिर भी उपरोक्त कारणों से हेगेल की रचनाओं में बहुत कुछ ऐसा है, जो भोंडा है, बनावटी है, ज़बर्दस्ती किसी तरह ठूंसा गया है—एक शब्द में कहें तो तफ़सीली बातों में ग़लत है। हेगेल की प्रणाली एक भयंकर स्खलन है, परंतु इस प्रकार का अंतिम स्खलन। वास्तव में यह प्रणाली एक ऐसे आंतरिक विरोध से पीड़ित थी, जिसका कोई इलाज न था। एक ओर उसकी मूल स्थापना यह धारणा थी कि मानव-इतिहास विकास की एक प्रक्रिया है, जिसकी स्वभावतः यह परिणति कभी नहीं हो सकती कि किसी तथाकथित निरपेक्ष सत्य के आविष्कार को बुद्धि की चरम सीमा मान ली जाये। परंतु दूसरी ओर इस प्रणाली का यह दावा था कि वह इसी निरपेक्ष सत्य का सार है। प्राकृतिक तथा ऐतिहासिक ज्ञान की एक ऐसी व्यवस्था, जो सर्वव्यापी हो, सदा के लिए निश्चित हो और अन्तिम सत्य हो, द्वंद्ववादी तर्क-प्रणाली के मूलभूत नियम के प्रतिकूल है। और यह विचार कि बाह्य जगत् के विषय में हमारा

व्यवस्थित ज्ञान, एक युग से दूसरे युग तक विराट् प्रगति कर सकता है, इस नियम से बाहर नहीं, प्रत्युत उसके अन्तर्गत है।

जर्मन भाववाद के इस मौलिक अन्तर्विरोध के अवबोध का फल यह हुआ कि दार्शनिकों का झुकाव फिर भौतिकवाद की ओर हुआ, लेकिन ध्यान देने की बात यह है कि यह भौतिकवाद अठारहवीं सदी के अधिभूतवादी, सर्वथा यांत्रिक भौतिकवाद से भिन्न था। पुराने भौतिकवाद की दृष्टि में समस्त पूर्वकालीन इतिहास हिंसा और निर्बुद्धिता का एक पुंज है; आधुनिक भौतिकवाद की दृष्टि में यह इतिहास मानव-जाति के विकास की एक प्रक्रिया है, और उसका लक्ष्य है इस विकास के नियमों का पता लगाना। अठारहवीं शताब्दी के फ़्रांसीसियों की और हेगेल तक की यह धारणा थी कि संपूर्ण प्रकृति एक सीमित वृत्त में घूमती है और सदा के लिए अपरिवर्तनशील है; जैसा न्यूटन ने कहा था, उसके आकाशीय पिंड नित्य हैं; और जैसा लिनीयस ने कहा था, सभी जैव जातियां नित्य और अपरिवर्तनशील हैं। आधुनिक भौतिकवाद ने प्रकृतिविज्ञान के इधर हाल के आविष्कारों को ग्रहण किया है, जिनके अनुसार काल के प्रवाह में प्रकृति का भी एक इतिहास है, वह भी काल के अधीन है, और आकाशीय पिंड, उन जैव जातियों की तरह ही, जो अनुकूल परिस्थितियों में उनमें वास करते हैं, उत्पन्न होते हैं और नष्ट होते हैं। और अगर अभी भी यह कहना होगा कि सम्पूर्ण प्रकृति निरंतर पुनरावर्तित होनेवाले वृत्तों में घूमती है, तो साथ ही यह भी मानना होगा कि ये वृत्त निरंतर वृहत्तर होते जाते हैं। दोनों पहलुओं से आधुनिक भौतिकवाद मूलतः द्वंद्वात्मक है, और अब उसे ऐसे दर्शन की सहायता की आवश्यकता न रह गयी, जो शेष सभी विज्ञानों पर वैसे ही शासन करने का दम भरे जैसे राजा प्रजा पर करता है। जैसे ही प्रत्येक विज्ञान, वस्तुओं की विस्तृत समष्टि में, और उनके ज्ञान की समष्टि में, अपना निश्चित, सुस्पष्ट स्थान बना लेता है, वैसे ही इस समष्टि से संबंध रखनेवाला विशेष विज्ञान निरर्थक अथवा निष्प्रयोजन हो जाता है। पुराने दर्शन का अगर कोई भाग बचा रहता है, तो वह है विचार तथा उसके नियमों का विज्ञान — औपचारिक तर्क-शास्त्र और द्वंद्ववाद। बाक़ी सब कुछ प्रकृति तथा इतिहास के तथ्यविषयक विज्ञान का अंग बन जाता है।

यद्यपि प्रकृति संबंधी धारणा में क्रांति उसी हद तक हो सकती थी, जिस हद तक उसके लिए अनुसंधान द्वारा तथ्यविषयक सामग्री प्रस्तुत की गयी हो, बहुत पहले ही कुछ ऐसी ऐतिहासिक घटनायें हो चुकी थीं, जिनके कारण

इतिहास की धारणा में एक निर्णायक परिवर्तन संभव हुआ। १८३१ में लियां नामक नगर में मज़दूरों का पहला विद्रोह हुआ; १८३८ और १८४२ के बीच इंगलैंड का चार्टिस्ट आंदोलन, जो पहला राष्ट्रव्यापी मज़दूर आंदोलन था, अपने शिखर पर पहुंच गया। सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग का वर्ग-संघर्ष यूरोप के सबसे उन्नत देशों के इतिहास में सामने आया, और उस हद तक सामने आया, जिस हद तक उनमें एक ओर आधुनिक उद्योग का और दूसरी ओर पूंजीपति वर्ग के नये राजनीतिक प्रभुत्व का विकास हुआ था। तथ्यों ने अधिकाधिक प्रबल रूप से पूंजीवादी अर्थशास्त्र के उपदेशों को झूठा ठहराया, जिनके अनुसार पूंजी और श्रम के हित एक हैं, और जिनके अनुसार अनियंत्रित होड़ का फल होगा विश्वव्यापी शांति और समृद्धि। इन नये तथ्यों की अब और उपेक्षा नहीं की जा सकती थी, और न ही उस फ़्रांसीसी और अंग्रेज़ी समाजवाद की उपेक्षा की जा सकती थी जो उनकी सैद्धान्तिक, अपूर्ण ही सही, अभिव्यक्ति था। परन्तु इतिहास की पुरानी भाववादी धारणा में – और यह धारणा अभी तक निर्मूल न हुई थी – आर्थिक हितों पर आधारित वर्ग-संघर्षों का, या आर्थिक हितों का, कोई स्थान नहीं था; इस धारणा के अनुसार उत्पादन, तथा सभी आर्थिक संबंध "सभ्यता के इतिहास" के आनुषंगिक और गौण तत्त्व हैं।

इन नये तथ्यों के कारण समस्त विगत इतिहास की फिर से परीक्षा करना आवश्यक हो गया। और तब यह देखा गया कि आदिम युगों को छोड़कर, **समस्त** विगत इतिहास वर्ग-संघर्षों का इतिहास रहा है, और समाज के ये संघर्षरत वर्ग सदा अपने युग की उत्पादन तथा विनिमय-प्रणाली से, या एक शब्द में कहें तो, अपने युग की **आर्थिक** परिस्थितियों से उत्पन्न हुए हैं; और यह कि समाज का आर्थिक ढांचा ही वस्तुतः वह आधार है, जिसके ऊपर किसी भी ऐतिहासिक युग की क़ानूनी और राजनीतिक संस्थाओं का और धार्मिक, दार्शनिक तथा दूसरे विचारों का ऊपरी ढांचा खड़ा किया जाता है, और इस आधार को ग्रहण करके ही हम ऊपरी ढांचे को अंतिम रूप से समझ सकते हैं। हेगेल ने इतिहास को अधिभूतवाद से मुक्त किया, उन्होंने उसे द्वंद्ववादी रूप दिया, परंतु इतिहास की उनकी धारणा मूलतः भाववादी थी। भाववाद का अंतिम आश्रय इतिहास की दार्शनिक धारणा था, पर अब वह आश्रय भी जाता रहा; अब इतिहास की एक भौतिकवादी विवेचना प्रस्तुत की गयी। अभी तक मनुष्य की चेतना को उसके अस्तित्व का आधार माना गया था, पर

अब मनुष्य के अस्तित्व को उसकी चेतना का आधार प्रमाणित करने का मार्ग खुल गया।

इस ज़माने से समाजवाद किसी सूझ-बूझवाले मस्तिष्क की आकस्मिक खोज का फल न रह गया। अब वह ऐतिहासिक रूप से विकसित दो वर्गों, सर्वहारा और पूंजीपति वर्गों, के संघर्ष का अनिवार्य परिणाम समझा जाने लगा। अब उसका काम एक यथासंभव संपूर्ण और दोषहीन समाज-व्यवस्था की कल्पना करना न रह गया। जिस ऐतिहासिक-आर्थिक घटनाक्रम से इन वर्गों और उनके विरोध का आवश्यक रूप से जन्म हुआ है, उसकी परीक्षा करना और इस प्रकार से उत्पन्न आर्थिक परिस्थितियों के अंदर से उन साधनों को ढूंढ़ निकालना, जिनसे इस संघर्ष का अंत किया जा सकता है—अब यह समाजवाद का कर्त्तव्य बन गया। परंतु इस भौतिकवादी धारणा से, पहले के दिनों के समाजवाद का कोई मेल न था, उसी प्रकार जैसे फ़ांसीसी भौतिकवादियों की प्रकृति संबंधी धारणा का द्वंद्ववाद तथा आधुनिक प्रकृति-विज्ञान के साथ कोई सामंजस्य न था। पहले के समाजवादियों ने निस्संदेह अपने काल की पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली और उसके दुष्परिणामों की आलोचना की थी। परंतु वे उनके कारणों का निर्देश न कर सके, और इसलिए वे उन पर क़ाबू न पा सके। वे उन्हें बुरा समझकर त्याज्य ही ठहरा सकते थे। पुराने समाजवादी पूंजीवाद के अन्तर्गत अनिवार्य, मज़दूर वर्ग के शोषण की जितनी ही तीव्र निंदा करते थे, उतना ही वे यह समझाने में, स्पष्ट रूप से यह दिखलाने में असमर्थ रहते थे कि इस शोषण के मूल तत्त्व क्या हैं और उसका क्या स्रोत है। इसके लिए दो बातें अपेक्षित थीं—(१) पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली के ऐतिहासिक संबंधों का निर्देश किया जाये, और यह दिखाया जाये कि एक विशेष ऐतिहासिक युग में उसका उत्पन्न होना अनिवार्य था, और इसी लिए उसका पतन भी अवश्यंभावी है; और (२) पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली के मौलिक स्वरूप को, जो अभी भी एक रहस्य बनी हुई थी, प्रगट किया जाये। **अतिरिक्त मूल्य** की खोज द्वारा यह रहस्योद्घाटन किया गया। यह दिखाया गया कि पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली और उसके अन्तर्गत होनेवाले मज़दूर के शोषण का आधार बिना भुगतान किये हुए अथवा अशोधित श्रम का हस्तगतकरण है। और अगर पूंजीपति अपने मज़दूर की श्रम-शक्ति को, बाज़ार में बिकनेवाले माल के रूप में पूरा दाम देकर ख़रीदता है, तो भी वह उससे, जितना वह उस पर ख़र्च करता है, उससे अधिक मूल्य निकाल लेता है और

अन्ततः इस अतिरिक्त मूल्य से ही मूल्यों के वे परिमाण बनते हैं, जिनसे मिल-की वर्गों के हाथ में निरंतर बढ़ती हुई पूंजी की राशि एकत्र होती जाती है। पूंजीवादी उत्पादन और पूंजी के उत्पादन का स्रोत क्या है, यह स्पष्ट हो गया।

इतिहास की भौतिकवादी धारणा, और अतिरिक्त मूल्य के द्वारा पूंजीवादी उत्पादन के रहस्य का उद्घाटन – इन दो महान् आविष्कारों के लिए हम **मार्क्स** के आभारी हैं। इन आविष्कारों के साथ समाजवाद एक विज्ञान बन गया। अब इसके बाद जो काम था, वह यह कि उसके सभी ब्योरों और संबंधों को निश्चित किया जाए।

३

इतिहास की भौतिकवादी धारणा का प्रस्थान-बिंदु यह प्रस्थापना है कि मानव-जीवन के पोषण के लिए आवश्यक साधनों का उत्पादन, और उत्पादन के बाद, उत्पादित वस्तुओं का विनिमय प्रत्येक समाज-व्यवस्था का आधार है; कि इतिहास में जितनी समाज-व्यवस्थायें हुई हैं, उनमें जिस प्रकार धन का वितरण हुआ है, और समाज का वर्गों अथवा श्रेणियों में बंटवारा हुआ है, वह इस बात पर निर्भर रहा है कि उस समाज में क्या उत्पादन हुआ है, और कैसे हुआ है, और फिर उपज का विनिमय कैसे हुआ है। इस दृष्टिकोण के अनुसार सभी सामाजिक परिवर्तनों और राजनीतिक क्रांतियों के अन्तिम कारण मनुष्य के मस्तिष्क में नहीं, शाश्वत सत्य तथा न्याय के विषय में उसकी गहनतर अन्तर्दृष्टि में नहीं, उत्पादन तथा विनिमय-प्रणाली में होनेवाले परिवर्तनों में निहित हैं। उनका पता लगाना है, तो वे हमें प्रत्येक युग के **दर्शन** में नहीं, **अर्थ-व्यवस्था** में मिलेंगे। अगर लोग अब यह अधिकाधिक अनुभव करने लगे हैं कि वर्तमान सामाजिक संस्थायें अविवेकपूर्ण और अन्यायपूर्ण हैं, और आज के युग में "विवेक अविवेक में बदल गया है, और न्याय अन्याय में"*, तो यह केवल इस बात का प्रमाण है कि उत्पादन तथा विनिमय-प्रणाली में चुपचाप ऐसे परिवर्तन हुए हैं, जिनके साथ पुरानी आर्थिक अवस्थाओं के सांचे में ढली समाज-व्यवस्था का मेल नहीं रह गया है। इससे यह भी निष्कर्ष निकलता है कि जो असंगतियां प्रकाश में आयी हैं, उन्हें दूर करने के साधन भी, न्यूनाधिक विकसित रूप में, इन्हीं परिवर्तित उत्पादन-प्रणालियों में निहित

---

* **गेटे**, 'फ़ाउस्ट' में मेफ़िस्टोफ़ीलीस का कथन। – सं०

होंगे। इन साधनों को मौलिक सिद्धान्तों के निष्कर्ष के रूप में दिमाग़ से नहीं **निकाला जा सकता**, बल्कि उन्हें वर्तमान उत्पादन व्यवस्था के ठोस तथ्यों में ही **पाया जा सकता है**।

तब फिर इस संबंध में आधुनिक समाजवाद की स्थिति क्या है?

आज के शासक वर्ग, पूंजीपति वर्ग ने ही समाज का मौजूदा ढांचा तैयार किया है, अब इस बात को प्रायः सभी मानने लगे हैं। जो उत्पादन-प्रणाली पूंजीपति वर्ग के लिए विशिष्ट है, और जो मार्क्स के समय से पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली के नाम से जानी जाती है, वह सामंती व्यवस्था से मेल न खाती थी। इस व्यवस्था के अन्तर्गत व्यक्तियों, पूरी सामाजिक श्रेणियों तथा स्थानीय निगमों को दिये जानेवाले जिन विशेषाधिकारों, और ऊंच-नीच के जिन जन्मजात संबंधों से सामंती समाज का ढांचा बनता था, उनसे पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली का कोई सामंजस्य न था। इसलिए पूंजीपति वर्ग ने सामंती व्यवस्था को ढहा दिया और उसके खंडहरों पर पूंजीवादी समाज-व्यवस्था का निर्माण किया; उसने एक ऐसा राज्य स्थापित किया जिसमें मुक्त, अबाध होड़ थी, व्यक्तिगत स्वतंत्रता थी, क़ानून की निगाह में माल के मालिकों की समानता और पूंजीवाद की बाक़ी सभी नेमतें थीं। अब से पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली स्वतंत्र रूप से विकसित हो सकती थी। जब से भाप से, मशीनों से और मशीनों को बनानेवाली मशीनों से पुराना मैनुफ़ेक्चर आधुनिक उद्योग में बदला, पूंजीपति वर्ग के निर्देश में, उत्पादक शक्तियों ने इस मात्रा में और इतनी तेज़ी के साथ विकास किया कि ऐसा कभी देखा-सुना न गया था। परन्तु अपने समय में जैसे पुराने मैनुफ़ेक्चर की, और उसके प्रभाव से अपेक्षाकृत अधिक विकसित दस्तकारी की, शिल्प-संघों की सामंती बाधाओं से टक्कर हुई थी, उसी प्रकार आज आधुनिक उद्योग का इतना अधिक विकास हो चुका है कि पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली उसे जिन सीमाओं के अंदर बांधे हुए है, उनसे वह टकरा रहा है। नयी उत्पादक शक्तियों के लिए उनका उपयोग करनेवाली पूंजीवादी प्रणाली अभी से ही पुरानी पड़ गयी है। और उत्पादक शक्तियों तथा उत्पादन-प्रणाली का यह विरोध, आदिम पाप और ईश्वरीय न्याय के विरोध की तरह, मनुष्य के मस्तिष्क में घटित होनेवाला विरोध नहीं है। यह विरोध हमारे मानसलोक में नहीं, बाह्य जगत् में, वास्तव में विद्यमान् है, वह वस्तुगत रूप में स्वयं उन लोगों की इच्छाओं और क्रियाओं से भी स्वतंत्र रूप में विद्यमान् है, जिन्होंने उसका सूत्रपात किया है। आधुनिक

समाजवाद इस वस्तुगत विरोध का विचारगत प्रतिबिंब छोड़ और कुछ नहीं है। यह विचारगत प्रतिबिंब सबसे पहले उस वर्ग के मानस पर अंकित होता है, जो इस विरोध को प्रत्यक्ष रूप से झेल रहा है। वह वर्ग है मज़दूर वर्ग।

तो फिर इस विरोध का स्वरूप क्या है?

पूंजीवादी उत्पादन से पहले, अर्थात् मध्ययुग में, सब जगह छोटे पैमाने पर उद्योग की व्यवस्था प्रचलित थी – गांव में छोटे किसानों की, स्वतंत्र अथवा भू-दास किसानों की खेती, शहरों में शिल्प-संघों के अन्तर्गत संगठित दस्तकारी। इस व्यवस्था का आधार था उत्पादन के साधनों पर श्रमिकों का निजी स्वामित्व। भूमि, घरेलू कारख़ाने, खेती और दस्तकारी के औज़ार – ये सब श्रम के साधन थे, और ये साधन ऐसे थे कि अलग अलग व्यक्ति ही उनका अलग अलग इस्तेमाल कर सकते थे, और वे इस व्यक्तिगत उपयोग के अनुरूप ही बनाये गये थे। इस कारण वे अनिवार्य रूप से साधारण, सीमित और लघु थे। परंतु इसी कारण इन साधनों पर साधारणतः उत्पादकों का ही अधिकार होता था। इन सीमित और बिखरे हुए उत्पादन के साधनों को एकत्र और संकेन्द्रित करना, उन्हें विकसित करना, और उत्पादन के आजकल के शक्तिशाली यंत्रों में बदल देना – पूंजीवादी उत्पादन की, और उसका झंडा उठाकर चलनेवाले पूंजीपति वर्ग की ठीक यही ऐतिहासिक भूमिका थी। 'पूंजी' के चौथे खंड में मार्क्स ने तफ़सील से समझाया है कि किस तरह पंद्रहवीं शताब्दी से यह ऐतिहासिक परिवर्तन, विकास की तीन अवस्थाओं से होकर पूरा हुआ है। ये अवस्थाएं हैं – साधारण सहयोग, मैनुफ़ेक्चर और आधुनिक उद्योग। परंतु वहीं पर मार्क्स ने यह भी दिखाया है कि पूंजीपति वर्ग उत्पादन के इन तुच्छ साधनों को विराट् उत्पादक शक्तियों में तभी बदल सकता था, जब वह, इसके साथ ही, उत्पादन के व्यक्तिगत साधनों को सामाजिक साधनों में बदल डाले, जिनका उपयोग जनसमूह द्वारा ही हो सकता हो। चर्खे, कर्घे और लोहार के हथौड़े का स्थान कातने और बुननेवाली मशीनों और भाप से चलनेवाले हथौड़े ने ले लिया; जहां दस्तकार का अपना घरेलू कारख़ाना था, वहां सैकड़ों और हज़ारों मज़दूरों के सहयोग से चलनेवाली मिल खुल गयी। इसी प्रकार उत्पादन भी व्यक्तिगत क्रियाओं के एक क्रम के स्थान पर सामाजिक क्रियाओं का एक क्रम बन गया, और पैदावार का भी स्वरूप व्यक्तिगत न रहकर सामाजिक हो गया। मिलों से जो सूत, कपड़ा

या धातु का सामान बनकर निकलता था, उसे, तैयार होने से पहले, एक के बाद एक, बहुत-से मज़दूरों के हाथ से गुज़रना पड़ता था, इसलिए वह उनके सम्मिलित उत्पादन का फल था। कोई भी आदमी उसके बारे में यह न कह सकता था, "**मैंने** इसे बनाया है, यह **मेरे** श्रम का फल है"।

जहां समाज विशेष में उत्पादन का मौलिक रूप वह स्वतःस्फूर्त श्रम-विभाजन होता है, जो किसी पूर्वकल्पित योजना के अनुसार नहीं, बल्कि आप से आप धीरे धीरे जड़ जमा लेता है, वहां पैदावार **माल** का रूप लेती है, जिसके परस्पर विनिमय, क्रय और विक्रय से ही व्यक्तिगत रूप से उत्पादन करनेवाले लोग अपनी विविध आवश्यकताओं की पूर्त्ति करते हैं। मध्ययुग में ऐसा ही हुआ करता था। उदाहरण के तौर पर किसान खेती की उपज को दस्तकार के हाथ बेचता था और उससे दस्तकारी की चीज़ें ख़रीदता था। व्यक्तिगत रूप से उत्पादन करनेवाले, माल का उत्पादन करनेवाले लोगों के इस समाज में, यह नयी उत्पादन-प्रणाली ज़बर्दस्ती घुस आती है। जो श्रम-विभाजन, आप से आप, और **बिना किसी निश्चित योजना के**, विकसित हुआ था, और पूरे समाज पर छा गया था, उसके बीच, अब मिल के अंदर एक **निश्चित योजनानुसार** संगठित श्रम-विभाजन उत्पन्न हुआ। **व्यक्तिगत** उत्पादन के साथ साथ **सामाजिक** उत्पादन भी चल पड़ा। दोनों का माल एक ही बाज़ार में, और इसलिए लगभग एक ही क़ीमत पर बेचा जाता था। परंतु एक निश्चित योजना के अनुसार संगठन स्वतःस्फूर्त श्रम-विभाजन से अधिक शक्तिशाली था। मिलों में एक जन-समुदाय की सम्मिलित सामाजिक शक्ति द्वारा उत्पादन होता था और उनका माल व्यक्तिगत ढंग से उत्पादन करनेवाले छोटे उत्पादकों के माल से कहीं कम लागत पर तैयार होता था। इसका फल यह हुआ कि एक क्षेत्र के बाद दूसरे क्षेत्र में, व्यक्तिगत उत्पादन को सामाजिक उत्पादन के आगे झुकना पड़ा। सामाजिक उत्पादन ने उत्पादन की पुरानी सारी पद्धतियों में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया। परंतु इसके साथ ही, उसके क्रांतिकारी स्वरूप को इतना कम समझा गया कि उल्टे उसका उपयोग माल-उत्पादन की वृद्धि तथा विकास के साधन के रूप में किया गया। सामाजिक उत्पादन का जब आरंभ हुआ, उसने व्यापारिक पूंजी, दस्तकारी, उजरती श्रम माल के उत्पादन और विनिमय के कुछ उपकरणों को पहले से मौजूद पाया, और उनका खुलकर इस्तेमाल किया। इस प्रकार, माल-उत्पादन के एक नये रूप में ही सामाजिक उत्पादन का जन्म हुआ, इसलिए

स्वभावत: उसके अंतर्गत उपज के हस्तगतकरण का पुराना रूप अविकल चलता रहा, और उसे सामाजिक उत्पादन की उपज पर भी लागू किया गया।

मध्ययुग में माल-उत्पादन के विकास की जो अवस्था थी, उसमें इस बात का प्रश्न नहीं उठ सकता था कि श्रम की पैदावार का मालिक कौन है। आम तौर से होता यह था कि व्यक्तिगत रूप से उत्पादन करनेवाला आदमी अपने कच्चे माल से, जो अक्सर उसका ही उपजाया या बनाया होता था, अपने औज़ारों से और अपने या अपने परिवार की मेहनत से उसे पैदा करता था। इसलिए उसके लिए इस नयी उपज को अपने अधिकार में करने की ज़रूरत न थी क्योंकि वह क़ुदरती तौर पर उसका सोलहों आना मालिक था। उपज के ऊपर उसके स्वामित्व का आधार **उसका अपना श्रम था**। जहां बाहरी सहायता ली भी जाती थी, वह साधारणत: गौण होती, और उसके बदले में सामान्यत: मज़दूरी के अलावा और कुछ दिया जाता था – शिल्प-संघों के मज़दूर-कारीगर और शागिर्द उतना भोजन-वस्त्र तथा मज़दूरी के लिए काम नहीं करते थे, जितना शिक्षा प्राप्त करने के उद्देश्य से, ताकि वे स्वयं भी दस्तकार-मालिक बन सकें।

इसके बाद बड़े बड़े वर्कशापों और कारख़ानों में उत्पादन के साधनों और उत्पादकों का संकेंद्रण हुआ और वे सचमुच उत्पादन के समाजीकृत साधनों में, और समाजीकृत उत्पादकों में बदल दिये गये। परंतु इस परिवर्तन के बाद भी समाजीकृत उत्पादकों, उत्पादन के साधनों तथा उनकी उपज के प्रति दृष्टिकोण में अंतर नहीं आया, अर्थात् पहले की ही तरह वे उत्पादन के व्यक्तिगत साधन और व्यक्तिगत उपज समझे जाते रहे। अभी तक श्रम की उपज को स्वयं श्रम के साधनों का स्वामी हस्तगत करता था, क्योंकि सामान्यत: यह उसकी अपनी उपज होती थी, और दूसरों से सहायता अपवादस्वरूप ही ली जाती थी। श्रम के साधनों का स्वामी श्रम की उपज को अब भी सदा अपने अधिकार में ले लेता, यद्यपि अब यह **उसकी अपनी** उपज न रहकर **दूसरों के श्रम** की ही उपज हो गयी थी। इस प्रकार अब जो उपज सामाजिक उत्पादन का फल थी, उसे हस्तगत करने वाले वे लोग न रह गये, जिन्होंने वस्तुत: उत्पादन के साधनों को सक्रिय किया था, उनका उपयोग किया था और जिन्होंने वस्तुत: माल का उत्पादन किया था, बल्कि **पूंजीपति** हो गये। उत्पादन के साधनों का, और स्वयं उत्पादन का स्वरूप बुनियादी तौर पर सामाजिक हो गया था। परंतु उन्हें उपज के हस्तगतकरण

की एक ऐसी व्यवस्था के अधीन किया गया, जिसके लिए अलग अलग व्यक्तियों द्वारा व्यक्तिगत उत्पादन पूर्वमान्य था, और इसलिए, जिसके अन्तर्गत हर आदमी अपनी पैदावार का मालिक है और उसे बाज़ार में ले आता है। जिन परिस्थितियों पर व्यक्तिगत हस्तगतकरण की यह व्यवस्था टिकी है, सामाजिक उत्पादन-प्रणाली उन्हें नष्ट कर देती है, लेकिन फिर भी उसे इस व्यवस्था के अधीन किया जाता है। *

इसी असंगति ने नयी उत्पादन-प्रणाली को उसका पूंजीवादी रूप दिया, **और उसके भीतर ही आज के सारे सामाजिक विरोधों की जड़ है।** इस नयी उत्पादन-प्रणाली ने उत्पादन के सभी महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में और सभी औद्योगिक उत्पादनकारी देशों में जितना अधिक प्रभुत्व स्थापित किया, जितना ही उसने व्यक्तिगत उत्पादन को तुच्छ और महत्त्वहीन बना दिया – इतना तुच्छ कि उसके कुछ अवशेष ही रह गये, – **सामाजिक उत्पादन और पूंजीवादी हस्तगतकरण की असंगति उतने ही स्पष्ट रूप में प्रकाश में आती गयी।**

जैसा हमने कहा है, पूंजीपतियों ने शुरू में ही श्रम के अन्य रूपों के साथ, उजरती श्रम को भी बाज़ार में पहले से तैयार पाया। परंतु यह उजरती श्रम अपवाद था, गौण, अस्थायी तथा अन्य प्रकार के श्रम का सहायक या पूरक था। समय समय पर खेतिहर मज़दूर दैनिक मज़दूरी पर काम ज़रूर करता था, लेकिन उसकी चंद बीघे अपनी ज़मीन भी होती थी, जिससे बहरसूरत वह गुज़ारा कर ही सकता था। शिल्प-संघों का संगठन ऐसा था

* इस संबंध में यह कहने की ख़ास ज़रूरत नहीं है कि हस्तगतकरण का **बाह्य रूप** वही रहने पर भी, उपरोक्त परिवर्तनों के कारण, उसकी **प्रकृति** में वैसा ही आमूल परिवर्तन होता है, जैसा उत्पादन में। अपनी पैदावार का मालिक होने और दूसरे की पैदावार का मालिक बन जाने में बहुत फ़र्क़ है। यहां पर क्षण भर के लिए रुककर हम यह भी समझ लें कि उजरती श्रम, जिसके भीतर पूरी पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली बीज रूप में निहित है, बहुत पुरानी चीज़ है; जहां-तहां, बिखरे हुए रूप में, दास-श्रम के साथ ही सदियों तक उसका अस्तित्व भी रहा है। परंतु यह बीज बाक़ायदा पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली में तभी विकसित हो सकता था, जब उसके लिए आवश्यक ऐतिहासिक पूर्वावस्थायें उत्पन्न हो जायें। **(एंगेल्स का नोट।)**

कि आज का मज़दूर-कारीगर कल का मालिक होता था। परंतु जब उत्पादन के साधनों का स्वरूप सामाजिक हो गया, और वे पूंजीपतियों के हाथ में एकत्र हो गये, तब यह सारी परिस्थिति बदल गयी। व्यक्तिगत उत्पादक के उत्पादन के साधन और उसकी उपज अधिकाधिक मूल्यहीन होती गयी, और उसके लिए सिवा इसके कोई चारा न रहा कि वह पूंजीपति का मज़दूर बन जाये। अभी तक उजरती श्रम अपवाद था, गौण और सहायक था, अब वह समस्त उत्पादन का नियम और आधार बन गया; अभी तक वह अन्य प्रकार के श्रम का पूरक था, लेकिन अब वही मज़दूर का एकमात्र धंधा रह गया। दो-चार दिन उजरत पर काम करनेवाला मज़दूर अब जीवन भर के लिए उजरती मज़दूर बन गया। इसी ज़माने में सामंती व्यवस्था टूटी, सामंती प्रभुओं के नौकर-चाकर काम से निकाल दिये गये, किसान अपने खेतों से बेदख़ल कर दिये गये, और इन सब कारणों से स्थायी रूप से मजूरी पर काम करनेवाले मज़दूरों की संख्या और भी बहुत बढ़ गयी। पूंजीपतियों के हाथों में एकत्र उत्पादन के साधनों से, उत्पादक, जिनके पास अपनी श्रम-शक्ति के अतिरिक्त और कुछ न था, संपूर्ण रूप से विच्छिन्न हो गये। **समाजीकृत उत्पादन तथा पूंजीवादी हस्तगतकरण-व्यवस्था की असंगति सर्वहारा वर्ग और पूंजीपति वर्ग के विरोध के रूप में प्रगट हुई।**

हम देख चुके हैं कि उत्पादन की पूंजीवादी प्रणाली व्यक्तिगत रूप से उत्पादन करनेवाले माल-उत्पादकों के समाज में ज़बर्दस्ती घुस आती है। ये उत्पादक अपनी उपज का विनिमय करते हैं, और इस विनिमय के द्वारा ही उनमें सामाजिक संबंध स्थापित होता है। परंतु माल-उत्पादन पर आधारित प्रत्येक समाज की यह विशेषता होती है कि उत्पादकों का अपने सामाजिक अंतःसम्बंधों पर कोई नियंत्रण नहीं रह जाता। हर आदमी, उत्पादन के जो भी साधन उसके पास हों, उनकी सहायता से अपने लिए और उतने ही विनिमय के लिए उत्पादन करता है, जितना उसकी शेष आवश्यकता की पूर्त्ति के लिए आवश्यक हो। कोई नहीं जानता कि जो वस्तु उसने तैयार की है, वह कितने परिमाण में बाज़ार में आ रही है, या कितने परिमाण में उसकी आवश्यकता होगी। कोई नहीं जानता कि उसके अपने माल की दरअसल मांग होगी कि नहीं, वह बिकेगा या नहीं, या बिकने पर उसकी लागत भी निकल सकेगी कि नहीं। सामाजिक उत्पादन के क्षेत्र में अराजकता फैली हुई होती है।

परंतु हर उत्पादन-प्रणाली की तरह माल-उत्पादन के भी अपने विशेष नियम हैं, जो उसमें अंतर्निहित हैं और उससे अलग नहीं किये जा सकते, और ये नियम अराजकता के बावजूद, इसी अराजकता में, और अराजकता के द्वारा, अपनी क्रिया सम्पन्न करते हैं। ये नियम समाज के पारस्परिक अंत:संबंधों के एकमात्र स्थायी रूप, विनिमय, में प्रगट होते हैं, और इस क्षेत्र में होड़ के अनिवार्य नियमों के रूप में, व्यक्तिगत रूप से उत्पादन करनेवालों को प्रभावित करते हैं। पहले उत्पादक स्वयं इन नियमों से अपरिचित रहते हैं, धीरे धीरे, अनुभव के बाद ही वे जाने जाते हैं। इसलिए वे उत्पादकों से स्वतंत्र, और उनके विरोध में, उनकी विशिष्ट उत्पादन-प्रणाली के कठोर, प्राकृतिक नियमों के रूप में क्रियान्वित होते हैं। उपज उत्पादक को शासित करती है।

मध्ययुगीन समाज में, विशेषकर उसकी आरंभिक शताब्दियों में, उत्पादन मूलत: व्यक्ति की आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए होता था। मुख्य रूप से उससे उत्पादक और उसके परिवार की आवश्यकताओं की पूर्त्ति होती थी। जहां व्यक्तिगत अधीनता के संबंध थे, जैसे गांवों में, वहां वह सामंती अधिपति की आवश्यकताओं की पूर्त्ति में भी सहायक होता था। इसलिए इस सब में विनिमय का कोई स्थान न था, फलस्वरूप उपज माल का रूप धारण नहीं करती थी। किसान-परिवार को जिन चीज़ों की ज़रूरत होती थी – कपड़े, कुर्सी-मेज़, और साथ ही जीविका के साधन, प्राय: उन सब को वह ख़ुद तैयार कर लेता था। हां, उसकी अपनी आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए, और सामंती अधिपति को जिंस के रूप में अदायगी के लिए, जितना यथेष्ट था, जब वह उससे अधिक उत्पादन करने लगा, तभी उसने माल का भी उत्पादन किया। उसकी आवश्यकताओं की पूर्त्ति के बाद, अतिरिक्त वस्तु जब सामाजिक विनिमय के लिए, विक्रय के लिए, बाज़ार में आयी, तब उसने माल का रूप धारण कर लिया।

यह सच है कि शहरों के दस्तकारों को शुरू से ही विनिमय के लिए उत्पादन करना पड़ा। परंतु वे भी अपनी निजी आवश्यकताओं का सबसे अधिक भाग स्वयं पूरा कर लेते थे। उनके पास बगीचे और छोटे-मोटे खेत होते थे। वे अपने मवेशियों को पंचायती जंगलों में छोड़ देते, जिनसे उन्हें लकड़ी और ईंधन भी मिल जाता था। उनकी औरतें पटुआ, ऊन इत्यादि कातती, बुनती थीं। विनिमय के लिए उत्पादन, माल-उत्पादन, अभी अपनी

शैशवावस्था में था। इसलिए विनिमय सीमित था, बाज़ार छोटे थे, उत्पादन-प्रणाली स्थिर थी। बाहरी दुनिया से अलग, अपने में पूर्ण और स्थानीय पैमाने पर एकजुट; गांव में मार्क* और नगरों में शिल्प-संघ – यह था उस काल का समाज।

परंतु माल-उत्पादन के विस्तार, और विशेष रूप से पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली के प्रचलन के साथ, माल-उत्पादन के नियम, जो अभी तक अप्रकट थे, अधिक प्रत्यक्ष रूप से और अधिक शक्ति के साथ काम करने लगे। पुराने बंधन ढीले पड़े और पुरानी अपवर्जनकारी सीमायें भंग हुईं, और उत्पादक अधिकाधिक स्वतंत्र और एक दूसरे से विच्छिन्न, माल-उत्पादकों में बदलते गये। यह स्पष्ट हो गया कि पूरे समाज का उत्पादन योजनानुशासित नहीं है, उसमें आकस्मिकता और अराजकता छायी हुई है, और यह अराजकता उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही है। लेकिन जिस प्रधान साधन की सहायता से पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली ने इस अराजकता को तीव्र किया, वह अराजकता का ठीक उलटा था। वह प्रत्येक उत्पादन-संस्था में, उत्पादन का एक सामाजिक आधार पर बढ़ता हुआ संगठन था। इस तरह पुरानी, शांतिपूर्ण, स्थिर अवस्था का अंत कर दिया गया। जहां भी उद्योग की किसी शाखा में उत्पादन के इस संगठन का प्रवेश हुआ, उसने अपने निकट उत्पादन की अन्य किसी प्रणाली को ठहरने नहीं दिया। श्रम का क्षेत्र रणक्षेत्र बन गया। महान् भौगोलिक खोजों ने,[81] और फलस्वरूप नये नये प्रदेशों की आबादकारी ने बाज़ारों को कई गुना बढ़ा दिया, और जिस रफ़्तार से दस्तकारी मैनुफ़ेक्चर में बदल रही थी, उसे बहुत तेज़ कर दिया। भिन्न भिन्न स्थानों के अलग अलग उत्पादकों में ही संघर्ष नहीं छिड़ा, इन स्थानीय संघर्षों ने राष्ट्रीय संघर्षों को, सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों के व्यापारिक युद्धों को[82] जन्म दिया।

अंत में आधुनिक उद्योग ने और एक विश्व-बाज़ार की स्थापना ने, इस संघर्ष को विश्वव्यापी बना दिया और साथ ही उसे इतना उग्र कर दिया जैसा पहले कभी देखा-सुना नहीं गया था। भिन्न भिन्न पूंजीपतियों का, और साथ ही, समूचे उद्योगों और देशों का जीना-मरना इस बात पर निर्भर हो गया

---

* देखिये परिशिष्ट। (एंगेल्स यहां अपनी कृति 'मार्क' की ओर संकेत करते हैं।) – सं०

कि उत्पादन की प्राकृतिक अथवा कृत्रिम अवस्थाओं के संबंध में किसे अधिक सुविधा प्राप्त है। इस संघर्ष में जो गिरा, वह गया, उसे बेरहमी के साथ रास्ते से हटा दिया जाता था। अपने अस्तित्व के लिए व्यक्ति के जिस संघर्ष की कल्पना डार्विन ने की थी वह और भी प्रचंड रूप धारण कर प्रकृति से समाज के क्षेत्र में अंतरित हो जाता है। जीवन की वे अवस्थायें, जो पशुओं के लिए स्वाभाविक हैं, मानवीय विकास की अंतिम सीमा प्रतीत होती हैं। सामाजिक उत्पादन और पूंजीवादी हस्तगतकरण की असंगति अब **अलग अलग कारख़ानों में उत्पादन के संगठन और पूरे समाज में उत्पादन की अराजकता के विरोध के रूप में प्रगट होती है।**

पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली में आरंभ से ही जो विरोध अंतर्निहित है, यह प्रणाली उसके इन्हीं दो रूपों के वृत्त में घूमती है। जिस "दूषित वृत्त" का फ़ूरिये ने पहले ही पता लगा लिया था, यह उत्पादन-प्रणाली उसके बाहर निकलने में असमर्थ है। अवश्य ही अपने समय में फ़ूरिये यह नहीं देख सके थे कि यह वृत्त निरंतर संकुचित होता जाता है, उसकी गति अधिकाधिक सर्पिल होती जाती हैं और ग्रहों की गति ही की तरह, केंद्र से टकराकर उसका अंत हो जाना निश्चित है। पूरे समाज के उत्पादन में फैली अराजकता की आग्रहकारी शक्ति ही ज़्यादातर आदमियों को दिन-ब-दिन ज़्यादा मुकम्मल तौर पर सर्वहारा बना रही है, और ये सर्वहारा जन ही अन्ततः उत्पादन की इस अराजकता को मिटा देंगे। सामाजिक उत्पादन में फैली अराजकता की आग्रहकारी शक्ति ही आधुनिक उद्योग के अंतर्गत मशीनों के असीम विकास की संभावनाओं को एक अनुल्लंघनीय नियम का रूप देती है, जिसके अनुसार प्रत्येक औद्योगिक पूंजीपति को अपनी मशीनों को उत्तरोत्तर उन्नत करना है, और नहीं तो बर्बाद हो जाना है।

परंतु मशीनों की यह उन्नति मानव-श्रम को अनावश्यक बनाये दे रही है। अगर मशीनों के चलने और बढ़ने का मतलब यह है कि मशीन से काम करनेवाले थोड़े-से मज़दूर हाथ से काम करनेवाले लाखों मज़दूरों की जगह ले लेते हैं, तो मशीनों के सुधार और उन्नति का मतलब यह है कि मशीन से काम करनेवाले ये मज़दूर स्वयं अधिकाधिक संख्या में विस्थापित होते जाते हैं। और अन्ततः इसका मतलब यह है कि औसत तौर पर पूंजी के लिए जितने मज़दूरों की ज़रूरत है, मज़दूरी पर काम करने के लिए तैयार मज़दूर उनसे ज़्यादा हो जाते हैं, यानी जैसा मैंने १८४५ में कहा था, एक पूरी

ग्रौद्योगिक रिज़र्व सेना का निर्माण हो जाता है*। जब उद्योग तेज़ी के साथ काम करता होता है, तब तो यह रिज़र्व सेना काम के लिए उपलब्ध रहती है, लेकिन जब ग्रनिवार्य रूप से मंदी ग्राती है तो उसे बेकार बना दिया जाता है ग्रौर दर-दर भटकने पर मजबूर किया जाता है। पूंजी के साथ ग्रपने ग्रस्तित्व के लिए मज़दूर वर्ग के संघर्ष में, यह रिज़र्व सेना उसके पांव की बेड़ी है, मज़दूरी को उस नीची सतह पर, जो पूंजी के हितों के ग्रनुकूल है, क़ायम रखने का नियामक साधन है। इस तरह मार्क्स के शब्दों में होता यह है कि मशीन मज़दूर वर्ग के ख़िलाफ़ पूंजी की लड़ाई में सबसे ज़बर्दस्त हथियार बन जाती है; श्रम के साधन सदा मज़दूर के हाथ से उसकी रोटी छीन लेते हैं, ग्रौर मज़दूर की उपज ही उसकी दासता का एक ग्रस्त्र बन जाती है**। इस तरह होता यह है कि श्रम के साधनों में बचत, बचत होने के साथ ही, श्रम-शक्ति की एक भयंकर बर्बादी ग्रौर जिन सामान्य परिस्थितियों में मज़दूर काम करते हैं, उन्हीं के ग्राधार पर की जानेवाली चोरी बन जाती है***। इस तरह मशीन, जो श्रम-काल को कम करने का सबसे शक्तिशाली साधन है, मज़दूर ग्रौर उसके परिवार के समय के प्रत्येक क्षण को, पूंजी के मूल्य में वृद्धि के लिए, पूंजीपति के ग्रधीन करने का सबसे सफल साधन बन जाती है। इस तरह होता यह है कि कुछ लोगों का ग्रतिश्रम दूसरों की बेकारी की पहली शर्त बन जाता है, ग्रौर ग्राधुनिक उद्योग, जो नये उपभोक्ताग्रों की खोज में सारी दुनिया की ख़ाक छानता है, ग्रपने देश की जनता के उपभोग को निम्नतम स्तर पर, भुखमरी की हद पर पहुंचा देता है, ग्रौर इस तरह ग्रपने देश के बाज़ार को ही चौपट कर डालता है। "वह नियम, जो सापेक्ष ग्रतिरिक्त जन-संख्या या ग्रौद्योगिक रिज़र्व सेना का संचय के विस्तार ग्रौर तेज़ी के साथ सदा संतुलन स्थापित किया करता है, मज़दूर को पूंजी के साथ इतनी मज़बूती के साथ जड़ देता है, जितनी मज़बूती के साथ वलकन की बनायी हुई क़ीलें भी प्रोमीथियस को चट्टान के साथ नहीं जड़ सकी थीं। पूंजी के संचय के साथ साथ इस नियम के फलस्वरूप ग़रीबी का भी संचय होता जाता है। इसलिये, यदि एक छोर पर धन का संचय होता है, तो उसके

* फ़्रेडरिक एंगेल्स, 'इंगलैंड में मज़दूर वर्ग की स्थिति'। – सं०

** कार्ल मार्क्स, 'पूंजी', खंड १। – सं०

*** वहीं। – सं०

साथ साथ दूसरे छोर पर, – यानी उस वर्ग के छोर पर, जो **ख़ुद अपने श्रम की पैदावार को पूंजी के रूप में तैयार करता है**, – ग़रीबी, यातनापूर्ण परिश्रम, दासता, अज्ञान, पाशविकता और मानसिक पतन का संचय होता जाता है।"* उत्पादन की पूंजीवादी प्रणाली से उपज के किसी दूसरे बंटवारे की आशा करना वैसे ही व्यर्थ है जैसे किसी बैटरी के इलेक्ट्रोडों से यह आशा करना कि जब तक बैटरी से उनका सम्पर्क बना हुआ है, वे अम्लीकृत जल के परमाणुओं को विलग नहीं करेंगे, और धनछोर पर आक्सीजन तथा ऋणछोर पर हाइड्रोजन उन्मुक्त नहीं करेंगे।

हम देख चुके हैं कि सामाजिक उत्पादन के क्षेत्र में फैली अराजकता के कारण, आधुनिक मशीनों के विकास की निरंतर बढ़ती हुई संभावना एक अनिवार्य नियम में बदल जाती है, जो प्रत्येक औद्योगिक पूंजीपति को इसके लिए विवश करता है कि वह अपनी मशीनों को बराबर सुधारता रहे और उनकी उत्पादक शक्ति को बराबर बढ़ाता रहे। उत्पादन के क्षेत्र का विस्तार करने की संभावना मात्र उसके लिए इसी तरह के एक अनिवार्य नियम में बदल जाती है। आधुनिक उद्योग की प्रचंड प्रसार-शक्ति, जिसके आगे गैसों की प्रसार-शक्ति बच्चों का खेल है, हमें गुण और परिमाण, दोनों में वृद्धि की अनिवार्य **आवश्यकता** प्रतीत होती है। और यह आवश्यकता ऐसी है कि वह सारी बाधाओं का जैसे उपहास करती है। उपभोग, बिक्री, आधुनिक उद्योग की पैदावार के बाज़ार ये बाधायें खड़ी करते हैं। परंतु, विस्तार और तीव्रता, दोनों में बाज़ारों के बढ़ने की क्षमता मुख्यतया भिन्न नियमों से निश्चित होती है। ये नियम उतनी शक्ति से कार्य नहीं करते, इसलिए बाज़ार का प्रसार उत्पादन के प्रसार के साथ क़दम नहीं मिला पाता। दोनों में टक्कर होना लाज़िमी हो जाता है, पर चूंकि जब तक इस टक्कर से पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली ही चूर-चूर न हो जाये, उससे कोई वास्तविक समाधान नहीं निकल सकता, इसलिए यह टक्कर समय के एक निश्चित व्यवधान से बार बार होती रहती है। पूंजीवादी उत्पादन एक नया "दूषित वृत्त" उत्पन्न कर देता है।

वास्तव में १८२५ से, जब पहली बार आम आर्थिक संकट उत्पन्न हुआ था, हर दसवें वर्ष समस्त औद्योगिक तथा व्यापारिक जगत्, तमाम सभ्य

*** कार्ल मार्क्स, 'पूंजी', खंड १, हिन्दी संस्करण, मास्को, पृष्ठ ७२२।– सं०**

जातियों और उनके अधीन रहनेवाले न्यूनाधिक बर्बर लोगों, का उत्पादन और विनिमय अव्यवस्थित हो जाता है। व्यापार ठप हो जाता है, बाज़ार माल से पट जाता है, पैदावार जमा होने लगती है, और जितना ही उसे बेंचना मुश्किल होता है, उतने ही उसके ढेर लगते जाते हैं, नक़द पैसा ग़ायब हो जाता है, साख मिट जाती है, मिलें बंद हो जाती हैं, और आम मज़दूर जीविका के साधनों से वंचित हो जाते हैं, क्योंकि उन्होंने जीविका के साधनों का अत्यधिक उत्पादन कर डाला है; दिवाले के बाद दिवाला निकलता है, नीलाम के बाद नीलाम होता है। यह निष्क्रियता सालों तक रहती है, उत्पादक शक्तियों और उपज की बर्बादी होती है, उन्हें बड़े पैमाने पर नष्ट कर दिया जाता है, और यह क्रम तब तक चलता रहता है जब तक कि ढेर का ढेर जमा माल न्यूनाधिक कम मूल्य पर खपा न दिया जाये, जब तक कि उत्पादन और विनिमय में धीरे धीरे फिर गति न आये। धीरे धीरे रफ़्तार तेज़ होती है। फिर चाल दुलकी हो जाती है, और उद्योग की यह दुलकी चाल पोइया में और पोइया बेतहाशा दौड़ में, उद्योग, व्यापारिक साख और सट्टेबाज़ी की एक पूरी घुड़दौड़ में बदल जाती है, और यह घुड़दौड़ ख़तरनाक छलांगों के बाद वहीं ख़त्म होती है, जहां से वह शुरू हुई थी – संकट के गड्ढे में। और यह क्रम बार बार दुहराया जाता है। १८२५ से अब तक हम पांच बार इस दौर से गुज़र चुके हैं, और इस समय (१८७७) हम उससे छठी बार गुज़र रहे हैं। और इन संकटों का स्वरूप इतना स्पष्ट है कि जब फ़ूरिये ने पहले संकट के बारे में कहा कि वह crise pléthorique, यानी आधिक्य का संकट है, तो उन्होंने उन सबों के बारे में बिलकुल पते की बात कह दी।

इन संकटों में, सामाजिक उत्पादन और पूंजीवादी हस्तगतकरण-व्यवस्था के विरोध का अंत एक भयानक विस्फोट में होता है। माल का चलन, कुछ समय के लिए, रुक जाता है। मुद्रा, जो इस चलन का साधक है, अब बाधक बन जाती है। माल के उत्पादन तथा वितरण के सारे नियम उलट-पुलट जाते हैं। आर्थिक टक्कर अपने चरम बिन्दु पर पहुंच जाती है – **उत्पादन-प्रणाली विनिमय-प्रणाली के विरुद्ध विद्रोह कर देती है।**

मिल के भीतर उत्पादन का सामाजिक संगठन इस हद तक विकसित हो जाता है कि सामाजिक उत्पादन में फैली अराजकता के साथ, – यह अराजकता इस संगठन के साथ साथ रहती है और उसके ऊपर हावी रहती है, – उसका

बिलकुल सामंजस्य नहीं रह जाता। इन संकटों में बहुत-से बड़े, और उनसे भी ज़्यादा छोटे पूंजीपतियों के चौपट हो जाने से, पूंजी का जो बहुत तेज़ी से संकेन्द्रण होता है, उससे स्वयं पूंजीपति इस बात को अच्छी तरह समझ जाते हैं। पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली से जो उत्पादक शक्तियां उत्पन्न होती हैं, उनके ज़ोर और दबाव से, इस प्रणाली का पूरा ढांचा टूट जाता है। यह प्रणाली अब उत्पादन के साधनों के इस पूरे ढेर को पूंजी में परिणत नहीं कर पाती। वे बेकार पड़े रहते हैं और इसी लिए औद्योगिक रिज़र्व सेना को भी बेकार ही रहना पड़ता है। उत्पादन के साधन, जीविका के साधन, काम करने के लिए तैयार मज़दूर, उत्पादन के तथा सामान्य समृद्धि के सभी उपकरण और तत्त्व प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। परंतु यह "प्रचुरता ही दुःख और अभाव का कारण बन जाती है" (फ़ूरिये), क्योंकि इस प्रचुरता के ही कारण उत्पादन और जीविका के साधन पूंजी का रूप नहीं ले पाते। कारण, पूंजीवादी समाज में उत्पादन के साधन, जब तक पहले ही पूंजी में, मानवीय श्रम-शक्ति का शोषण करने के साधन में, न बदल दिये जायें, वे कार्य नहीं कर सकते। उत्पादन और जीविका के साधनों को पूंजी में परिणत करने की अनिवार्य आवश्यकता, इन साधनों और मज़दूरों के बीच, पिशाच की तरह खड़ी हो जाती है। यह आवश्यकता ही उत्पादन के भौतिक और मानवीय उत्तोलकों के एकत्र होने में बाधक है, वही उत्पादन के साधनों को क्रियाशील होने से, मज़दूरों को काम करने और ज़िंदा रहने से, रोकती है। इसलिए एक ओर तो यह पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली, इन उत्पादक शक्तियों का और परिचालन करने में असमर्थ होने से, स्वयं दोषी ठहरती है। दूसरी ओर ये उत्पादक शक्तियां स्वयं ज़्यादा से ज़्यादा तेज़ी के साथ इस बात के लिए ज़ोर डालती हैं कि वर्तमान असंगतियों को दूर किया जाये, पूंजी के रूप में उनकी स्थिति का अंत किया जाये, और **व्यवहारतः यह मान लिया जाये कि वे सामाजिक उत्पादक शक्तियों का चरित्र रखती हैं।**

ये उत्पादक शक्तियां, जैसे जैसे वे शक्तिशाली होती जाती हैं, पूंजी के रूप में अपनी स्थिति के विरुद्ध विद्रोह करती हैं, वे कठोर से कठोरतर आदेश देती हैं कि उनका सामाजिक स्वरूप स्वीकार कर लिया जाये, और इससे बाध्य होकर स्वयं पूंजीपति वर्ग, जहां तक पूंजीवादी अवस्थाओं में यह संभव है, उनके साथ सामाजिक उत्पादक शक्तियों के रूप में अधिकाधिक व्यवहार करता

है। औद्योगिक तेज़ी के दौर में, जब उधार का असीम विस्तार होता है, और उसी तरह मंदी के दौर में जब बड़े बड़े पूंजीवादी कारोबार चौपट हो जाते हैं, उत्पादन के साधनों की वृहत् राशियों के समाजीकरण का वह रूप उत्पन्न होता है, जो हमें विभिन्न प्रकार की ज्वाइंट स्टाक कम्पनियों में दिखाई देता है। उत्पादन और परिवहन के इन साधनों में से बहुत-से आरंभ से ही इतने विराट् होते हैं कि रेलवे की ही तरह, उनमें पूंजीवादी शोषण का कोई अन्य रूप चल ही नहीं सकता। विकास की एक और उन्नत अवस्था में यह रूप भी अपर्याप्त हो जाता है। किसी विशेष देश की किसी विशेष शाखा के बड़े बड़े उत्पादक उत्पादन का नियमन करने के उद्देश्य से एक "ट्रस्ट" में, एक संघ में, एकजुट हो जाते हैं। वे यह निश्चित करते हैं कि कुल कितना उत्पादन करना है, उसे अपने बीच में बांट लेते हैं, और इस प्रकार वे पहले से ही निश्चित बिक्री की दर लागू कर देते हैं। लेकिन जहां व्यापार मंदा हुआ, इस तरह के ट्रस्ट साधारणतः टूट जा सकते हैं, और इसी कारण वे संगठन के एक और संकेन्द्रित रूप को आवश्यक बना देते हैं। एक विशेष उद्योग, पूरा का पूरा, एक विराट् ज्वाइंट स्टाक कम्पनी में बदल दिया जाता है, आंतरिक होड़ का स्थान, इस एक कम्पनी का आंतरिक एकाधिकार ले लेता है। १८९० में इंगलैंड के क्षार-उत्पादन के साथ यही बात हुई। ४८ बड़े बड़े कारख़ानों के एक में मिल जाने के वाद, अब क्षार का सारा उत्पादन एक कम्पनी के हाथ में है, जिसमें ६०,००,००० पौंड की पूंजी लगी है, और जिसका एक विशेष योजना के अनुसार संचालन होता है।

ट्रस्टों में, होड़ की स्वतंत्रता ठीक उल्टी चीज़ में यानी एकाधिकार में बदल जाती है और पूंजीवादी समाज का योजनाहीन उत्पादन आक्रान्तिकारी समाजवादी समाज के योजनाबद्ध उत्पादन के सम्मुख हार मान लेता है। निस्संदेह अभी तक पूंजीपतियों को इससे फ़ायदा ही फ़ायदा है। परंतु अब इस स्थिति में शोषण इतना प्रत्यक्ष है कि उसका अंत निश्चित है। कोई भी राष्ट्र यह सहन नहीं करेगा कि उत्पादन इन ट्रस्टों के हाथ में रहे, और मुट्ठी भर मुनाफ़ाख़ोर समाज का नग्न रूप से शोषण करें।

जो भी हो, ट्रस्ट हों या न हों, पूंजीवादी समाज के अधिकृत प्रतिनिधि—राज्य—को अन्ततः उत्पादन का संचालन अपने हाथ में लेना

होगा*। राज्य-सम्पत्ति में रूपांतरण की यह आवश्यकता, सबसे पहले डाक, तार, रेल आदि अंतःसम्पर्क और संचार के विशाल संस्थानों में अनुभव की जाती है।

---

*मैं कहता हूं: "**लेना होगा**"। कारण, जब उत्पादन और परिवहन के साधन **वास्तव में** इतने विकसित हो जाते हैं कि ज्वाइंट स्टाक कम्पनियों द्वारा प्रबंध उनके लिए अपर्याप्त हो जाता है, और इसलिए जब राज्य का उन्हें अपने हाथ में लेना **आर्थिक दृष्टि से** अनिवार्य हो जाता है, तभी हम यह कह सकते हैं कि चाहे आज का ही राज्य उन्हें अपने हाथ में ले, यह आर्थिक प्रगति है, एक आगे बढ़ा हुआ क़दम है, समस्त उत्पादक शक्तियों पर समाज के अधिकार-स्थापन की भूमिका है। मगर हाल में जब से बिस्मार्क ने उद्योग-संस्थाओं पर राज्य के स्वामित्व की नीति अपनायी है, तब से एक तरह के नक़ली समाजवाद का उदय हुआ है, जो कभी कभी पतित होकर बहुत कुछ चाटुकारिता का रूप ले लेता है और झटपट यह फ़तवा दे डालता है कि राज्य द्वारा **समस्त** स्वामित्व, चाहे वह बिस्मार्क की ही क़िस्म का क्यों न हो, समाजवादी है। अगर राज्य का तम्बाकू के उद्योग को अपने हाथ में लेना समाजवादी है, तो समाजवाद के संस्थापकों में नेपोलियन और मेटरनिख़ की भी गिनती होनी चाहिए। अगर बेल्जियम की सरकार ने अत्यंत साधारण राजनीतिक और आर्थिक कारणों से अपनी मुख्य रेल लाइनों का स्वयं निर्माण किया है; अगर बिस्मार्क ने बिना किसी आर्थिक विवशता के प्रशा की मुख्य रेल लाइनों को राज्य के नियंत्रण में ले लिया है—सिर्फ़ इसलिए कि युद्ध की अवस्था में वह ज़्यादा सहूलियत के साथ उन्हें अपने अधिकार में रख सके, मूक पशुओं की तरह रेल कर्मचारियों से सरकार के लिए वोट दिलवा सके, और ख़ासकर अपने लिए आमदनी का एक ऐसा ज़रिया निकाल सके, जो संसद के वोटों पर निर्भर न हो,—तो यह किसी भी अर्थ में, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में, जान-बूझकर या अनजान में, समाजवादी कार्य नहीं है। नहीं तो हमें शाही Seehandlung[83] को, चीनी मिट्टी के शाही उद्योग को, और यहां तक कि रेजीमेंट के सिलाई-विभाग को भी समाजवादी संस्था मानना होगा। यही नहीं, राज्य द्वारा वेश्यालयों पर अधिकार-स्थापन को भी, जिसका प्रस्ताव फ़्रेडरिक-विल्हेल्म तृतीय के राज्य-काल में एक कांइयां आदमी ने गंभीरतापूर्वक किया था, समाजवाद मानना होगा। (**एंगेल्स का नोट**।)

अगर इन संकटों ने यह दिखा दिया है कि पूंजीपति वर्ग आधुनिक उत्पादक शक्तियों का प्रबंध करने में अब और समर्थ नहीं है, तो उत्पादन और परिवहन की बड़ी बड़ी संस्थाओं के ज्वाइंट स्टाक कम्पनी, ट्रस्ट और राज्य-सम्पत्ति के रूप में बदल जाने से यह ज़ाहिर हो जाता है कि इस काम के लिए भी पूंजीपति वर्ग कितना अनावश्यक है। पूंजीपतियों के सभी सामाजिक कर्त्तव्य आज वेतनभोगी कर्मचारियों द्वारा संपन्न होते हैं। अब पूंजीपतियों की सामाजिक भूमिका इस बात में ही रह गयी है कि वे नफ़े की रक़म से अपनी जेबें भरें, चेक काटें और शेयर बाज़ार में, जहां एक पूंजीपति दूसरे पूंजीपति की पूंजी पर हाथ साफ़ करता है, जुआ खेलें। पहले, उत्पादन की पूंजीवादी प्रणाली मज़दूरों को बेकार बना देती थी। अब वह मज़दूरों की तरह पूंजीपतियों को भी बेकार बना देती है, उन्हें एकदम औद्योगिक रिज़र्व सेना में तो नहीं, लेकिन फ़ालतू आबादी की श्रेणी में अवश्य डाल देती है।

परंतु ज्वाइंट स्टाक कम्पनी, ट्रस्ट अथवा राज्य-सम्पत्ति में रूपान्तरण का यह अर्थ नहीं है कि इससे उत्पादक शक्तियों का पूंजीवादी स्वरूप मिट जाता है। ज्वाइंट स्टाक कम्पनियों और ट्रस्टों के बारे में तो यह ज़ाहिर ही है। और जहां तक आधुनिक राज्य का संबंध है, वह और कुछ नहीं, एक ऐसा संगठन है, जिसे पूंजीवादी समाज ग्रहण करता है, ताकि पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली की बाह्य परिस्थितियों को, मज़दूरों तथा अलग अलग पूंजीपतियों की अनधिकार चेष्टा से बचाकर क़ायम रखा जा सके। आधुनिक राज्य, चाहे उसका स्वरूप कुछ भी हो, मूलतः एक पूंजीवादी मशीन है, वह पूंजीपतियों का राज्य है, समस्त राष्ट्रीय पूंजी का आदर्श मूर्त्तिमान रूप है। जितना ही वह उत्पादक शक्तियों को अपने हाथ में लेता है, उतना ही वह वास्तव में राष्ट्रीय पूंजीपति बनता जाता है, और उतने ही अधिक नागरिकों का वह शोषण करता है। मज़दूर, मज़दूरी पर काम करनेवाले मज़दूर, सर्वहारा ही रहते हैं। पूंजीवादी संबंध का अंत नहीं होता, बल्कि कहना चाहिए, उसे चरम सीमा पर पहुंचा दिया जाता है। पर इस सीमा पर पहुंचकर यह संबंध ढह जाता है। उत्पादक शक्तियों पर राज्य का अधिकार हो जाने से विरोध का समाधान नहीं हो जाता, परंतु इसमें वे प्राविधिक अवस्थायें छिपी हुई हैं, जिनसे इस समाधान के तत्त्व बनते हैं।

यह समाधान यही हो सकता है कि आधुनिक उत्पादक शक्तियों के सामाजिक स्वरूप को व्यावहारिक रूप में स्वीकार कर लिया जाये और

उत्पादन, हस्तगतकरण तथा विनिमय की प्रणालियों का उत्पादन के साधनों के सामाजिक स्वरूप के साथ सामंजस्य स्थापित किया जाये। और यह तभी हो सकता है, जब समाज सीधे और प्रत्यक्ष रूप में उत्पादक शक्तियों पर, जो इतनी अधिक विकसित हो चुकी हैं कि पूरे समाज के नियंत्रण में ही रह सकती हैं, अधिकार स्थापित करे। उत्पादन के साधनों तथा उपज का सामाजिक स्वरूप आज उत्पादकों पर प्रतिघात कर रहा है, समय समय पर वह उत्पादन और विनिमय को छिन्न-भिन्न कर देता है, और प्रकृति के एक अंध, अनिवार्य और विध्वंसक नियम की तरह ही अपना असर डालता है। लेकिन जब समाज उत्पादक शक्तियों को अपने हाथ में ले लेगा, तब उत्पादक, उत्पादन के साधनों और उपज के सामाजिक स्वरूप का उपयोग, उसकी प्रकृति की पूरी समझ के साथ, करेंगे, और तब वह विशृंखलता और समय समय पर विघटन का कारण न रहकर स्वयं उत्पादन का सबसे शक्तिशाली उत्तोलक बन जायेगा।

ठीक प्राकृतिक शक्तियों की ही तरह, सक्रिय सामाजिक शक्तियां भी जब तक हम उन्हें समझते नहीं और उनका ध्यान नहीं रखते, अंध, अनिवार्य और विध्वंसक रूप से कार्य करती हैं। लेकिन एक बार जब हम उन्हें समझ लेते हैं, उनकी क्रिया, उनकी दिशा, उनके परिणामों को ग्रहण कर लेते हैं, तब उन्हें अधिकाधिक अपनी इच्छा के अधीन करना, और उनके द्वारा अपने उद्देश्यों को प्राप्त करना, स्वयं हमारे ही ऊपर निर्भर हो जाता है। आजकल की विराट् उत्पादक शक्तियों पर यह बात ख़ास तौर पर लागू होती है। जब तक हम इन क्रियात्मक सामाजिक साधनों के स्वभाव और चरित्र को समझने से हठपूर्वक इनकार करते हैं—और यह समझ पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली और उसके हामियों की फ़ितरत के ख़िलाफ़ है—तब तक ये शक्तियां, जैसा कि हम ऊपर तफ़सील से समझा आये हैं, हमारे ख़िलाफ़, हमारे बावजूद काम करती हैं, तब तक ये हमारे ऊपर हावी रहती हैं।

परन्तु एक बार जहां उनकी प्रकृति समझ ली गयी, वे एकसाथ काम करनेवाले उत्पादकों के वश में आ जाती हैं, वे भूत की तरह हमारे सिर पर सवार नहीं रहतीं, बल्कि हमारी इच्छा की चेरी बन जाती हैं। उनमें वही अंतर आ जाता है, जो आंधी के साथ गिरनेवाली बिजली की विध्वंसक शक्ति में और तार तथा वोल्टीय आर्क में इस्तेमाल होनेवाली नियंत्रित बिजली में है, जो अंतर दावानल और मनुष्य की सेवा करनेवाली अग्नि में है। आजकल

की उत्पादक शक्तियों के वास्तविक स्वरूप को अन्ततः स्वीकार कर लेने के बाद, उत्पादन की सामाजिक अराजकता के स्थान पर, पूरे समाज और समाज के प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकताओं के अनुसार, एक निश्चित योजना के आधार पर उत्पादन का सामाजिक नियमन आरंभ होता है। और तब पूंजीवादी हस्तगतकरण-व्यवस्था, जिसमें उपज पहले उत्पादक को, और फिर हस्तगतकर्त्ता को वशीभूत करती है, के स्थान पर उत्पादन के आधुनिक साधनों के स्वरूप पर आधारित, उपज के हस्तगतकरण की एक नयी व्यवस्था स्थापित होती है—एक ओर उत्पादन की स्थिति तथा वृद्धि के साधन के रूप में उपज का सीधे सीधे समाज द्वारा और दूसरी ओर जीविका तथा आनंद के साधन के रूप में, उसका सीधे सीधे व्यक्ति द्वारा हस्तगतकरण।

जब पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली अधिकांश जनसंख्या को अधिकाधिक पूर्ण रूप से सर्वहारा बना देती है, वह उस शक्ति को भी उत्पन्न करती है, जिसे अविनार्य रूप से यह क्रांति सम्पन्न करनी है, और नहीं तो मिट जाना है। जब यह प्रणाली उत्पादन के विराट् साधनों को, जो पहले से ही सामाजिक रूप ग्रहण कर चुके हैं, अधिकाधिक राज्य-संपत्ति में बदल देती है, तब वह स्वयं इस क्रांति को पूरा करने का रास्ता भी दिखा देती है। **सर्वहारा वर्ग राजनीतिक सत्ता पर अधिकार करता है, और उत्पादन के साधनों को राज्य-संपत्ति में बदल देता है।**

परंतु जब वह ऐसा करता है, तब वह सर्वहारा के रूप में अपने अस्तित्व को समाप्त कर देता है, सभी वर्ग-विभेदों और वर्ग-विरोधों को समाप्त कर देता है, और राज्य के रूप में राज्य को भी समाप्त कर देता है। अभी तक समाज वर्ग-विरोधों पर आधारित था, इसलिए उसे राज्य की आवश्यकता थी, अर्थात् उसे एक विशेष वर्ग के, अपने समय के शोषक वर्ग के एक ऐसे संगठन की आवश्यकता थी, जिसका उद्देश्य था उत्पादन की वर्तमान अवस्थाओं में बाह्य हस्तक्षेप न होने देना, और इसलिए विशेष रूप से जिसका उद्देश्य था शोषित वर्गों को ज़बर्दस्ती उत्पीड़न की उस अवस्था में रखना, जो अपने समय की उत्पादन-प्रणाली (दास-प्रथा, भू-दासता, उजरती श्रम) के अनुरूप हो। राज्य पूरे समाज का अधिकृत प्रतिनिधि था, उसका संयुक्त, प्रत्यक्ष और साकार रूप था। परंतु वह पूरे समाज का प्रतिनिधि उसी हद तक था, जिस हद तक वह उस वर्ग का राज्य था, जो स्वयं उस समय पूरे समाज का प्रतिनिधित्व करता था—प्राचीन काल में दासस्वामी नागरिकों

का, मध्ययुग में सामंती प्रभुओं का, और हमारे ज़माने में पूंजीपतियों का राज्य। अन्ततः जब वह सचमुच पूरे समाज का वास्तविक प्रतिनिधि होता है, तब वह अनावश्यक भी हो जाता है। जब ऐसा सामाजिक वर्ग ही न रहे जिसे अधीन रखना है, जब वर्गशासन और उत्पादन में फैली आजकल की अराजकता के आधार पर अस्तित्व के लिए चलनेवाले व्यक्तिगत संघर्ष का अंत हो जाये और इनसे पैदा होनेवाली टक्करें और ज़्यादतियां भी दूर कर दी जायें, तब समाज में ऐसे लोग ही नहीं रह जाते जिनका दमन आवश्यक हो, और तब एक विशेष दमनकारी शक्ति की, राज्य की, आवश्यकता ही नहीं रह जाती। राज्य जब समाज के नाम पर उत्पादन के साधनों को अपने अधिकार में लेता है, तब यह उसका पहला काम होता है, जिसके बल पर वह अपने को पूरे समाज के प्रतिनिधि के रूप में स्थापित करता है। लेकिन राज्य के रूप में यही उसका अंतिम स्वतंत्र कार्य भी होता है। एक क्षेत्र के बाद दूसरे क्षेत्र में, सामाजिक संबंधों में राज्य का हस्तक्षेप अनावश्यक हो जाता है, और फिर धीरे धीरे आप से आप समाप्त हो जाता है। व्यक्तियों पर शासन का स्थान, वस्तुओं का प्रबंध और उत्पादन की प्रक्रियाओं का संचालन ले लेता है। राज्य का "अंत" नहीं किया जाता, **वह लोप हो जाता है।** इससे यह समझा जा सकता है कि "स्वाधीन राज्य"* के नारे का क्या मूल्य है, आंदोलनकारियों द्वारा कभी कभी इस नारे का उपयोग कहां तक उचित है, और अन्ततः वैज्ञानिक दृष्टि से वह कहां तक अपर्याप्त है। और इससे यह भी समझा जा सकता है कि तथाकथित अराजकतावादियों द्वारा राज्य को एकदम ख़त्म कर देने की मांगों का क्या मूल्य है।

इतिहास में पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली के आविर्भाव के बाद से, कुछ व्यक्तियों ने और सम्प्रदायों ने भी अक्सर भविष्य के एक आदर्श के रूप में उत्पादन के सभी साधनों के समाज द्वारा हस्तगतकरण की न्यूनाधिक अस्पष्ट कल्पना की है। परंतु यह संभव तभी हो सकता था, ऐतिहासिक रूप से अनिवार्य तभी हो सकता था, जब उसके क्रियान्वयन के लिए वास्तविक परिस्थितियां मौजूद हों। समाज की हर प्रगति की तरह, यह प्रगति भी कुछ नयी आर्थिक अवस्थाओं के कारण ही साध्य होती है, न कि इसलिए कि लोगों ने यह समझ लिया है कि वर्गों का अस्तित्व न्याय, समानता आदि के

* प्रस्तुत संकलन, भाग २, पृष्ठ २१८–२२२, २२८–२२९। – सं०

विपरीत है, न ही इसलिए कि लोग इन वर्गों को ख़त्म करने के लिए तैयार हैं। समाज का शोषक और शोषित वर्गों में, शासक और उत्पीड़ित वर्गों में बंटवारा इस बात का आवश्यक परिणाम था कि पुराने ज़माने में उत्पादन का विकास सीमित और अपर्याप्त था। जब तक कुल सामाजिक श्रम से प्राप्त होनेवाली उपज बस उतनी ही थी, या उससे ज़रा ही ज़्यादा थी, जितनी सब के अस्तित्व के लिए नितांत आवश्यक थी, और इसलिए जब तक समाज के अधिकांश सदस्यों का पूरा या क़रीब क़रीब पूरा समय परिश्रम करने में ही बीतता था, तब तक समाज का वर्गों में विभाजित रहना अनिवार्य था। समाज के इस अधिकांश भाग के, श्रम के क्रीत दासों के साथ ही एक नया वर्ग उत्पन्न हुआ, जिसे प्रत्यक्ष रूप से उत्पादन के लिए परिश्रम नहीं करना पड़ता था। यह वर्ग समाज के सामान्य कार्य-कलाप की देखभाल करता था: श्रम, राज-काज, क़ानून, विज्ञान, कला इत्यादि का प्रबंध और संचालन करता था। इस तरह हम देखते हैं कि श्रम-विभाजन का नियम ही वर्ग-विभाजन का आधार है। परंतु इसका यह मतलब नहीं है कि यह वर्ग-विभाजन हिंसा, लूट, जालसाज़ी और फ़रेब के तरीक़ों से नहीं हुआ। इसका यह मतलब नहीं है कि शासक वर्ग ने समाज पर एक बार हावी होने के बाद, श्रमिक जनता की क़ीमत पर, अपनी शक्ति को एकजुट नहीं किया, या कि उसने समाज के अपने नेतृत्व को जनता के और भी कठोर शोषण का रूप नहीं दिया।

लेकिन अगर इस बात को देखते हुए वर्गों के विभाजन का एक ऐतिहासिक औचित्य है, तो यह औचित्य एक निश्चित युग के लिए ही, और निश्चित सामाजिक परिस्थितियों में ही है। उसका आधार उत्पादन का अपर्याप्त विकास था। आधुनिक उत्पादक शक्तियों का संपूर्ण विकास इस विभाजन को मिटा देगा। और वास्तव में समाज से वर्ग मिट जायें, इसके पहले यह आवश्यक है कि समाज का ऐतिहासिक विकास इस हद तक हो जाये कि इस या उस शासक वर्ग का ही नहीं, किसी भी शासक वर्ग का अस्तित्व, और इसलिए स्वयं वर्ग-विभेद का अस्तित्व, एक विगत युग की वस्तु मालूम पड़ने लगे। इसलिए पहले यह आवश्यक है कि उत्पादन का विकास इस हद तक हो जाये कि समाज के एक विशेष वर्ग द्वारा उत्पादन के साधनों और उपज का हस्तगतकरण, और इसके साथ ही राजनीतिक प्रभुत्व, सांस्कृतिक एकाधिकार और बौद्धिक नेतृत्व, अनावश्यक ही नहीं, प्रत्युत आर्थिक,

राजनीतिक और बौद्धिक दृष्टि से विकास के लिए बाधक सिद्ध हो जायें।

विकास के इस बिंदु पर हम पहुंच गये हैं। पूंजीपति वर्ग का राजनीतिक और बौद्धिक दिवालियापन अब ख़ुद उससे ही छिपा नहीं है। उसका आर्थिक दिवालियापन नियमित रूप से हर दसवें साल दिखाई देता है। हर संकट में ऐसी स्थिति होती है कि समाज अपनी उत्पादक शक्तियों और उपज का उपयोग नहीं कर पाता, और उनके बोझ के नीचे सांस भी नहीं ले पाता। उत्पादकों के पास उपभोग करने को कुछ नहीं है क्योंकि उपभोक्ताओं की कमी है—इस विचित्र असंगति के सामने समाज अपने को असहाय पाता है। उत्पादन के साधनों की प्रसार-शक्ति, पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली ने उनके ऊपर जो बंधन लगाये थे, उन्हें तोड़ डालती है। इन बंधनों से उनकी मुक्ति, उत्पादक शक्तियों के अविच्छिन्न और निरंतर तीव्र होते हुए विकास की, और इसके साथ ही स्वयं उत्पादन की वस्तुतः असीम वृद्धि की पहली शर्त है। इतना ही नहीं। उत्पादन के साधनों पर समाज का अधिकार होने से आज उत्पादन पर जो कृत्रिम प्रतिबंध लगे हुए हैं, वे ही नहीं मिटते, उत्पादक शक्तियों और उपज की आज जो निश्चित रूप से बर्बादी होती है, वह भी दूर हो जाती है। आज तो वह बर्बादी उत्पादन के साथ अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई है, और संकट काल में अपनी चरम सीमा पर पहुंच जाती है। और भी, उत्पादन के साधनों पर समाज का अधिकार आज के शासक वर्गों और उनके राजनीतिक प्रतिनिधियों की अहमक़ाना फ़ज़ूलख़र्ची को ख़त्म कर देता है, और इस तरह, उत्पादन के साधनों और उपज की एक बड़ी राशि को समाज के लिए उपलब्ध कर देता है। आज इतिहास में पहली बार इस बात की संभावना उत्पन्न हो गयी है कि सामाजिक उत्पादन के द्वारा समाज के प्रत्येक सदस्य को एक ऐसा जीवन उपलब्ध हो सके, जो भौतिक दृष्टि से यथेष्ट सम्पन्न हो और दिन दिन ज़्यादा संपन्न होता जाये; यही नहीं, एक ऐसा जीवन उपलब्ध हो, जिसमें हर व्यक्ति की शारीरिक और मानसिक शक्तियों का उन्मुक्त विकास सुनिश्चित हो। इस बात की संभावना पहली बार उत्पन्न हुई है, लेकिन **हुई है अवश्य**।*

---

* पूंजीवादी दबाव के बावजूद उत्पादन के आधुनिक साधनों की विराट् प्रसार-शक्ति का क़रीब क़रीब सही अन्दाज़ कुछ आंकड़ों से मिल सकता है। मि० जिफ़ेन के अनुसार ब्रिटेन और आयरलैंड का कुल धन पूर्णांकों में

उत्पादन के साधनों पर समाज का अधिकार हो जाने से माल-उत्पादन का और साथ ही उत्पादक के ऊपर उपज के प्रभुत्व का अंत हो जाता है। सामाजिक उत्पादन में अराजकता की जगह एक निश्चित, व्यवस्थित संगठन क़ायम होता है। व्यक्तिगत जीवन के लिए संघर्ष ग़ायब हो जाता है। और तब एक मानी में मनुष्य पहली बार शेष प्राणि-जगत् से अलग होता है और जीवन की निरी पाशविक अवस्थाओं से निकलकर यथार्थ रूप से मानवीय अवस्थाओं में प्रवेश करता है। जीवन की जो अवस्थायें मनुष्य को घेरे हैं और जो अभी तक उस पर शासन करती आयी हैं, उनका संपूर्ण क्षेत्र मनुष्य के अधिकार और नियंत्रण में आ जाता है। मनुष्य पहली बार प्रकृति का वास्तविक और सचेत रूप से स्वामी हो जाता है, क्योंकि अब वह अपने सामाजिक संगठन का स्वामी बन गया है। उसकी अपनी सामाजिक क्रियाओं के जो नियम, प्रकृति के नियमों की तरह, अभी तक आदमी के मुक़ाबले में खड़े थे, उससे बाहर थे, उसके ऊपर हावी थे, अब उनका पूरी समझदारी के साथ उपयोग किया जायेगा, और इस तरह आदमी उनके ऊपर क़ाबू पायेगा। मनुष्य का अपना सामाजिक संगठन, जो अभी तक प्रकृति और इतिहास द्वारा लादी गयी एक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में उसके मुक़ाबले में खड़ा था, अब उसकी अपनी स्वतंत्र क्रिया का परिणाम बन जाता है। जिन बाह्य, वस्तुगत शक्तियों ने अभी तक इतिहास पर शासन किया था, अब वे स्वयं मनुष्य के नियंत्रण में आ जाती हैं। इसी समय से मनुष्य स्वयं उत्तरोत्तर सचेत रूप से अपने इतिहास का निर्माण करेगा। इसी समय से मनुष्य द्वारा परिचालित सामाजिक क्रियाओं के परिणाम मुख्यतया और निरंतर बढ़ती हुई मात्रा में उसकी इच्छा के अनुरूप होंगे। बाध्यता के राज से स्वतंत्रता के राज में यह मनुष्य की छलांग है।

१८१४ में २२० करोड़ पौंड
१८६५ में ६१० करोड़ पौंड
१८७५ में ८५० करोड़ पौंड था।

संकट-काल में उत्पादन के साधनों तथा उपज की बर्बादी की एक मिसाल यह है कि द्वितीय जर्मन औद्योगिक कांग्रेस में (बर्लिन, २१ फ़रवरी, १८७८) दिये गये आंकड़ों के अनुसार १८७३–१८७८ के संकट में जर्मनी के केवल लोहा उद्योग में होनेवाला कुल घाटा २,२७, ५०,००० पौंड के बराबर था। (एंगेल्स का नोट।)

ऐतिहासिक विकास की जो रूपरेखा हमने दी है, उसका सारांश यह है :

१. **मध्ययुगीन समाज**—छोटे पैमाने पर व्यक्तिगत उत्पादन। उत्पादन के साधन व्यक्तिगत उपयोग के अनुरूप बने थे, इसलिए वे आदिम, भद्दे, छोटे-मोटे और क्रिया-शक्ति में अत्यन्त सीमित थे। उत्पादन सीधे उपभोग के लिए होता था, स्वयं उत्पादक के उपभोग के लिए, या उसके सामंती स्वामी के। केवल जहां इस उपभोग के ऊपर उत्पादन का एक भाग बच रहता था, यह अतिरिक्त उपज बेचने के लिए दी जाती थी, और विनिमय में उसका प्रवेश होता था। इसलिए माल-उत्पादन अभी अपनी शैशवावस्था में ही था। परंतु **पूरे समाज के उत्पादन की अराजकता** बीज-रूप में अभी से उसके भीतर निहित थी।

२. **पूंजीवादी क्रान्ति**—उद्योग का रूपान्तरण, पहले साधारण सहयोग द्वारा, और फिर मैनुफ़ेक्चर द्वारा। अभी तक बिखरे हुए उत्पादन के साधनों का बड़े बड़े कारख़ानों में एकत्र होना। फलस्वरूप उनका उत्पादन के व्यक्तिगत साधनों से सामाजिक साधनों में रूपान्तरण। लेकिन यह एक ऐसा रूपान्तरण है, जो कुल मिलाकर विनिमय के रूप को प्रभावित नहीं करता। हस्तगतकरण की पुरानी व्यवस्था लागू रहती है। समाज में **पूंजीपति** का आविर्भाव होता है। उत्पादन के साधनों के मालिक की हैसियत से वह उपज को भी हस्तगत करता है, और उसे माल का रूप देता है। उत्पादन एक सामाजिक क्रिया बन जाता है। विनिमय और हस्तगतकरण व्यक्तिगत कार्य, अलग अलग व्यक्तियों के ही कार्य बने रहते हैं। **पूंजीपति व्यक्तिगत रूप से सामाजिक उपज पर अधिकार जमा लेता है।** यही वह मौलिक अंतर्विरोध है, जिससे और सब अंतर्विरोध उत्पन्न होते हैं, जिनके वृत्त में हमारा वर्तमान समाज घूमता है, और जिन्हें आधुनिक उद्योग उद्‌घाटित करता है।

(क) उत्पादक का उत्पादन के साधनों से विच्छेद। मज़दूर को जिन्दगी भर उजरती श्रम करने की सज़ा। **सर्वहारा और पूंजीपति वर्ग का विरोध।**

(ख) जिन नियमों के अनुसार माल-उत्पादन होता है, उनका बढ़ता हुआ प्राधान्य और प्रभाव। अनियंत्रित होड़। **अलग अलग कारख़ानों में उत्पादन के सामाजिक संगठन और समग्र सामाजिक उत्पादन की अराजकता में विरोध।**

(ग) एक ओर मशीनों की बराबर तरक़्क़ी, जो होड़ के कारण प्रत्येक कारख़ानेदार के लिए अनिवार्य हो जाती है, और जिसके साथ ही साथ मज़दूर

निरंतर बढ़ती हुई संख्या में विस्थापित होते हैं। **औद्योगिक रिज़र्व सेना।** दूसरी ओर उत्पादन का असीम विस्तार। होड़ के अंतर्गत यह भी हर कारखानेदार के लिए अनिवार्य बन जाता है। दोनों ही ओर उत्पादक शक्तियों का अभूतपूर्व विकास, मांग से अधिक पूर्त्ति, अतिउत्पादन, बाज़ार का माल से पट जाना, हर दसवें वर्ष संकट, दूषित वृत्त–**एक ओर उत्पादन के साधनों और उपज की अधिकता, और दूसरी ओर** जीविका के साधनों से वंचित बेकार मज़दूरों **की अधिकता।** परंतु उत्पादन और सामाजिक समृद्धि के ये दो उत्तोलक एकसाथ काम नहीं कर पाते, क्योंकि पूंजीवादी उत्पादन-प्रणाली के अंतर्गत उत्पादक शक्तियां तब तक काम नहीं कर सकतीं, और उपज का तब तक परिचलन नहीं हो सकता, जब तक उन्हें पहले पूंजी का रूप न दे दिया जाये–लेकिन यह उनके अतिप्राचुर्य के ही कारण संभव नहीं हो पाता। इस विरोध ने एक निरर्थक हास्यास्पद रूप ले लिया है: **उत्पादन-प्रणाली विनिमय के रूप के ख़िलाफ़ विद्रोह करती है।** पूंजीपति वर्ग स्वयं अपनी सामाजिक उत्पादक शक्तियों का प्रबंध करने में अयोग्य ठहराया जाता है।

(घ) उत्पादक शक्तियों के सामाजिक स्वरूप को आंशिक रूप से स्वीकार करने के लिए पूंजीपतियों को भी बाध्य होना पड़ता है। उत्पादन और संचार की बड़ी बड़ी संस्थाओं का, पहले **ज्वाइंट स्टाक कम्पनियों के**, फिर ट्रस्टों के, और फिर **राज्य** के अधिकार में आ जाना। यह प्रमाणित हो जाता है कि पूंजीपति वर्ग एक फ़ालतू वर्ग है। उसके सभी सामाजिक कर्त्तव्य अब वेतनभोगी कर्मचारियों द्वारा संपादित होते हैं।

३. **सर्वहारा क्रान्ति**–विरोधों का समाधान। सर्वहारा वर्ग सार्वजनिक सत्ता पर अधिकार कर लेता है, और ऐसा करके उत्पादन के उन समाजीकृत साधनों को, जो पूंजीपति वर्ग के हाथों से खिसकने लगे हैं, सार्वजनिक सम्पत्ति में बदल देता है। उत्पादन के साधनों ने अभी तक पूंजी का स्वरूप ग्रहण कर रखा था, लेकिन अब सर्वहारा वर्ग उनके इस स्वरूप को नष्ट कर देता है, और उनके सामाजिक स्वरूप के विकास को पूर्णतः मुक्त कर देता है। अब से एक पूर्वनिश्चित योजना के अनुसार सामाजिक उत्पादन संभव हो जाता है। उत्पादन का विकास समाज के विभिन्न वर्गों के अस्तित्व को काल-व्यतिक्रम बना देता है। जैसे जैसे सामाजिक उत्पादन से अराजकता ग़ायब होती जाती है, वैसे वैसे राज्य का राजनीतिक प्रभुत्व भी समाप्त होता जाता है। मनुष्य अन्ततः सामाजिक संगठन की अपनी पद्धति का स्वामी होता है, इसके साथ

ही वह प्रकृति का शासक और स्वयं अपना स्वामी होता है – स्वतंत्र होता है।

सर्वव्यापी मुक्ति के इस कार्य को पूरा करना आधुनिक सर्वहारा वर्ग का ऐतिहासिक कर्त्तव्य है। इस कार्य की ऐतिहासिक अवस्थाओं को और इस तरह इस कार्य की प्रकृति को, पूरी तरह समझना, और आज के जिस पीड़ित सर्वहारा वर्ग को यह महत्त्वपूर्ण कार्य पूरा करना है, उसे इसके महत्त्व और इसकी अवस्थाओं का पूर्ण ज्ञान देना – यह सर्वहारा आंदोलन की सैद्धान्तिक अभिव्यक्ति, वैज्ञानिक समाजवाद का कर्त्तव्य है।

फ़े० एंगेल्स द्वारा जनवरी–मार्च, १८८०, के पूर्वार्द्ध में लिखित। *«La Revue socialiste»* नामक पत्रिका, अंक ३, ४, ५ में, २० मार्च, २० अप्रैल, ५ मई, १८८० को तथा फ़्रांसीसी भाषा में अलग पुस्तिका – F. Engels. *«Socialisme utopique et socialisme scientifique»*. Paris 1880 – के रूप में प्रकाशित।

१८९२ के लेखक द्वारा सम्पादित अंग्रेज़ी संस्करण के अनुसार मुद्रित। अंग्रेज़ी से अनूदित।

फ़्रेडरिक एंगेल्स

कार्ल मार्क्स की समाधि पर भाषण

१४ मार्च को तीसरे पहर, पौने तीन बजे, संसार के सबसे महान् विचारक की चिन्तन-क्रिया बन्द हो गयी। उन्हें मुश्किल से दो मिनट के लिए अकेला छोड़ा गया होगा, लेकिन जब हम लोग लौट कर आये, हमने देखा कि वह आरामकुर्सी पर शान्ति से सो गये हैं—परन्तु सदा के लिए।

इस मनुष्य की मृत्यु से यूरोप और अमरीका के जुझारू सर्वहारा वर्ग की, और ऐतिहासिक विज्ञान की अपार क्षति हुई है। इस ओजस्वी आत्मा के महाप्रयाण से जो अभाव पैदा हो गया है, लोग शीघ्र ही उसका अनुभव करेंगे।

जैसे कि जैव प्रकृति में डार्विन ने विकास के नियम का पता लगाया था, वैसे ही मानव-इतिहास में मार्क्स ने विकास के नियम का पता लगाया था। उन्होंने इस सीधी-सादी सचाई का पता लगाया—जो अब तक विचारधारा की अतिवृद्धि से ढंकी हुई थी—कि राजनीति, विज्ञान, कला, धर्म आदि में लगने के पूर्व मनुष्य-जाति को खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना और सिर के ऊपर साया चाहिए। इसलिये जीविका के तात्कालिक भौतिक साधनों का उत्पादन और फलतः किसी युग में अथवा किसी जाति द्वारा उपलब्ध आर्थिक विकास की मात्रा ही, वह आधार है जिस पर राजकीय संस्थाएं, क़ानूनी धारणाएं, कला और यहां तक कि धर्म सम्बन्धी धारणायें भी विकसित होती हैं। इसलिए उसके ही प्रकाश में इन सब की व्याख्या की जा सकती है, न कि इससे उल्टा, जैसा कि अब तक होता रहा है।

परन्तु इतना ही नहीं, मार्क्स ने गति के उस विशेष नियम का पता लगाया जिससे उत्पादन की वर्तमान पूंजीवादी प्रणाली और इस प्रणाली से उत्पन्न पूंजीवादी समाज, दोनों ही नियंत्रित हैं। अतिरिक्त मूल्य के आविष्कार

से एकबारगी उस समस्या पर प्रकाश पड़ा, जिसे हल करने की कोशिश में किया गया अब तक का सारा अन्वेषण – चाहे वह पूंजीवादी अर्थशास्त्रियों ने किया हो या समाजवादी आलोचकों ने, अन्ध-अन्वेषण ही था।

ऐसे दो आविष्कार एक जीवन के लिए काफ़ी हैं। वह मनुष्य भाग्यशाली है, जिसे इस तरह का एक भी आविष्कार करने का सौभाग्य प्राप्त होता है। परन्तु जिस भी क्षेत्र में मार्क्स ने खोज की – और उन्होंने बहुत-से क्षेत्रों में खोज की और वह एक में भी सतही छान-बीन करके ही नहीं रह गये – उसमें यहां तक कि गणित में भी, उन्होंने स्वतंत्र खोजें कीं।

ऐसे वैज्ञानिक थे वह। परन्तु वैज्ञानिक का उनका रूप उनके समग्र व्यक्तित्व का अर्द्धांश भी न था। मार्क्स के लिए विज्ञान एक ऐतिहासिक रूप से गतिशील, क्रान्तिकारी शक्ति था। वैज्ञानिक सिद्धान्तों में किसी नयी खोज से, जिसके व्यावहारिक प्रयोग का अनुमान लगाना अभी सर्वथा असंभव हो, उन्हें कितनी भी प्रसन्नता क्यों न हो, जब उस खोज से उद्योग-धन्धों और सामान्यतः ऐतिहासिक विकास में कोई तात्कालिक क्रान्तिकारी परिवर्तन होते दिखाई देते थे, तब उन्हें बिलकुल ही दूसरे ढंग की प्रसन्नता का अनुभव होता था। उदाहरण के लिए बिजली के क्षेत्र में हुए आविष्कारों के विकास-क्रम का और मरसैल देप्रे के हाल के आविष्कारों का मार्क्स बड़े ग़ौर से अध्ययन कर रहे थे।

मार्क्स सर्वोपरि क्रान्तिकारी थे। जीवन में उनका असली उद्देश्य किसी न किसी तरह पूंजीवादी समाज और उससे पैदा होनेवाली राजकीय संस्थाओं के ध्वंस में योगदान करना था, आधुनिक सर्वहारा वर्ग को आज़ाद करने में योग देना था, जिसे सबसे पहले उन्होंने ही अपनी स्थिति और आवश्यकताओं के प्रति सचेत किया और बताया कि किन परिस्थितियों में उसका उद्धार हो सकता है। संघर्ष करना उनका सहज गुण था। और उन्होंने ऐसे जोश, ऐसी लगन और ऐसी सफलता के साथ संघर्ष किया जिसका मुक़ाबला नहीं है। प्रथम *«Rheinische Zeitung»* (१८४२) में, पेरिस *«Vorwärts!»*[84] (१८४४) में, *«Deutsche-Brüsseler-Zeitung»* (१८४७) में, *«Neue Rheinische Zeitung»* (१८४८–१८४९) में, *«New-York Daily Tribune»* (१८५२–१८६१) में उनका काम, इनके अलावा अनेक जोशीली पुस्तिकाओं की रचना, पेरिस, ब्रसेल्स और लन्दन के संगठनों में काम और अन्ततः उनकी चरम उपलब्धि – महान् अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ[85] की स्थापना – यह इतनी

बड़ी उपलब्धि थी कि इस संगठन का संस्थापक, चाहे उसने कुछ भी और न किया हो, उस पर उचित ही गर्व कर सकता था।

इस सब के फलस्वरूप मार्क्स अपने युग के सबसे अधिक विद्विष्ट तथा लांछित व्यक्ति थे। निरंकुशतावादी और जनतंत्रवादी, दोनों ही तरह की सरकारों ने उन्हें अपने राज्यों से निकाला। पूंजीपति, चाहे वे रूढ़िवादी हों चाहे घोर जनवादी, मार्क्स को बदनाम करने में एक दूसरे से होड़ करते थे। मार्क्स इस सब को यूं झटकारकर अलग कर देते थे जैसे वह मकड़ी का जाला हो, उसकी ओर ध्यान न देते थे, आवश्यकता से बाध्य होकर ही उत्तर देते थे। और अब वह इस संसार में नहीं हैं। साइबेरिया की खानों से लेकर कैलिफ़ोर्निया तक, यूरोप और अमरीका के सभी भागों में उनके लाखों क्रान्तिकारी मज़दूर साथी जो उन्हें प्यार करते थे, उनके प्रति श्रद्धा रखते थे, आज उनके निधन पर आंसू बहा रहे हैं। मैं यहां तक कह सकता हूं कि चाहे उनके विरोधी बहुत-से रहे हों, परन्तु उनका कोई व्यक्तिगत शत्रु शायद ही रहा हो।

उनका नाम युगों-युगों तक अमर रहेगा, वैसे ही उनका काम भी अमर रहेगा!

एंगेल्स द्वारा हाइगेट क़ब्रिस्तान, लन्दन, में, १७ मार्च, १८८३ को अंग्रेज़ी में दिया गया भाषण। जर्मन में २२ मार्च, १८८३ को *«Der Sozialdemokrat»* समाचारपत्र, अंक १३, में प्रकाशित।

समाचारपत्र के मूलपाठ के अनुसार मुद्रित। मूल जर्मन।

फ़ेडरिक एंगेल्स

कम्युनिस्ट लीग के इतिहास के विषय में[86]

१८५२ में कोलोन के कम्युनिस्टों के ख़िलाफ़ फ़ैसला होने के साथ स्वतंत्र जर्मन मज़दूर आन्दोलन का पहला दौर समाप्त होता है। आज यह दौर प्रायः एकदम भुलाया जा चुका है। पर यह दौर १८३६ से लेकर १८५२ तक रहा था, और जर्मन मज़दूरों के विदेशों में फैलते जाने के साथ आन्दोलन लगभग सभी सभ्य देशों में विकसित होता गया था। यही नहीं। आज का अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन मूलभूत रूप में उस समय के जर्मन मज़दूर आन्दोलन का एक सीधा सिलसिला है, जो **विश्व इतिहास का पहला अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन** था और जिसने उन लोगों में बहुतों को जन्म दिया था जिन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ में मूर्द्धन्य भूमिका अदा की। इसके अलावा कम्युनिस्ट लीग ने १८४७ में 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र'* के रूप में जो सिद्धान्त अपने झण्डे पर अंकित किये, वे यूरोप और अमरीका दोनों ही के समूचे सर्वहारा आन्दोलन के आज सबसे दृढ़ अन्तर्राष्ट्रीय एकता-बन्धन हैं।

आन्दोलन के सुसम्बद्ध इतिहास का अभी तक केवल एक ही मुख्य स्रोत रहा है। यह है वेर्मुथ और श्तीबर द्वारा लिखित तथा दो खंडों में बर्लिन से १८५३ और १८५४ में प्रकाशित 'उन्नीसवीं शताब्दी के कम्युनिस्ट षड्यंत्र' नामक पुस्तक जिसे काली किताब कहते हैं। यह भोंडा संग्रह जो इस शताब्दी के दो सबसे गर्हित पुलिस-गुर्गों द्वारा गढ़े सफ़ेद झूठों से भरा पड़ा है, अब भी उस काल के सम्बन्ध में समस्त ग़ैर-कम्युनिस्ट लेखन के लिए चरम स्रोत का काम देता है।

---

* प्रस्तुत संकलन, भाग १, पृष्ठ ३७–८३। – सं०

यहां मैं जो कुछ दे पाया हूं, वह केवल एक ख़ाका मात्र है और वह भी वहीं तक जहां तक लीग सम्बन्धित थी। यह ख़ाका उतना ही बताता है जितना "रहस्योद्घाटन" को समझने के लिए परमावश्यक है। मैं आशा करता हूं कि मार्क्स ने और मैंने अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर आन्दोलन के उस गौरवपूर्ण तारुण्य-काल के इतिहास के विषय में जो प्रचुर सामग्री संग्रहीत की है, उसका किसी दिन विशदीकरण करने का अवसर मुझे प्राप्त होगा।

* * *

पेरिस के जर्मन शरणार्थियों द्वारा १८३४ में स्थापित गुप्त जनवादी-जनतंत्रवादी 'जलावतन लीग' के सबसे उग्र, मुख्यतः सर्वहारा, तत्त्व १८३६ में उससे अलग हो गये और उन्होंने नयी गुप्त लीग – **न्यायप्रियों की लीग** की स्थापना की। मूल लीग जिसमें केवल जैकोब वेनेदे जैसे सुषुप्त मस्तिष्क वाले लोग ही बच रहे थे, जल्द ही नींद में बिलकुल बेख़बर हो गयी। १८४० में जिस समय पुलिस ने उसके कुछ भागों का जर्मनी में सुराग़ लगाया, उस समय लीग अपने पुराने रूप की छाया भी नहीं रह गयी थी। इसके विपरीत, नयी लीग अपेक्षाकृत तेज़ी से बढ़ी। मूलतः यह फ़्रांसीसी मज़दूर-कम्युनिज़्म की एक विच्छिन्न जर्मन शाखा मात्र थी। यह मज़दूर-कम्युनिज़्म बाब्योफ़वाद[87] का स्मरण दिलाता था और प्रायः उसी के साथ पेरिस में पनपा था। उसमें वस्तुओं के सम्मिलित स्वामित्व की, उसे "समानता" का आवश्यक परिणाम मानते हुए, मांग की जाती थी। उसके लक्ष्य वे ही थे जो पेरिस की तत्कालीन गुप्त संस्थाओं के थे, यानी वह आधा प्रचारक संघ था और आधा षड्यंत्रकारी संगठन। किन्तु पेरिस को ही सदा क्रान्तिकारी कार्य का केन्द्रीय बिन्दु माना जाता था यद्यपि जर्मनी में यदा-कदा पर्युत्क्षेपण-षड्यंत्र की तैयारी को अपवर्जित कदापि नहीं किया गया था। पर चूंकि पेरिस ही निर्णायक रणक्षेत्र था, इसलिए लीग उस समय दरअसल फ़्रांसीसी गुप्त संस्थाओं की, ख़ासकर Société des saisons* की, जिसके नेता ब्लांकी और बार्बी थे और जिसके साथ घनिष्ठ सम्पर्क क़ायम रखा जाता था, जर्मन शाखा से अधिक कुछ न थी। फ़्रांसीसी १२ मई, १८३९ को मुहिम में उतर पड़े। लीग की शाखाओं ने भी उनका साथ दिया। जब पराजय हुई तो उन्हें भी उसका फल भुगतना पड़ा।[88]

---

*मौसमों की संस्था। – सं०

गिरफ़्तार होने वाले जर्मनों में **कार्ल शापर** और **हेनरिक बावेर** भी थे। लूई फ़िलिप की सरकार ने उन्हें लम्बे अर्से तक जेल में रखने के बाद देश से निकाल करके ही सन्तोष कर लिया। दोनों लन्दन चले गये। शापर नस्साऊ स्थित विलबुर्ग के रहने वाले थे। जब वह गीस्सेन में वन-विज्ञान पढ़ रहे थे तभी, १८३२ में, जार्ज बुखनर द्वारा संगठित षड्यंत्रकारी दल में शामिल हो गये थे। उन्होंने ३ अप्रैल १८३३ को फ़्रैंकफ़ुर्ट की पुलिस चौकी पर हुए हमले में भाग लिया[89], फिर विदेश पलायन किया और फ़रवरी १८३४ में सैवोय के विरुद्ध माज़्ज़िनी के अभियान में सम्मिलित हुए[90]। भीमकाय, दृढ़व्रती तथा स्फूर्तिवान् और नागरिक अधिकारों से वंचित होने तथा मृत्यु वरण करने के लिए हमेशा तैयार रहने वाला यह व्यक्ति उन पेशेवर क्रान्तिकारियों का एक आदर्श नमूना था जिन्होंने चौथे दशक में एक ख़ासी भूमिका अदा की थी। चिन्तन में थोड़ा सुस्त होने के बावजूद उनमें गहरी सैद्धान्तिक समझ की अक्षमता कदापि न थी (उनका "डिमागोग"[91] से कम्युनिस्ट में परिणत होना इसका प्रमाण है) और जिस चीज़ को वह एक बार मान लेते थे उस पर और भी सख़्ती से डट जाते थे। इसी वजह से कभी कभी उनका क्रान्तिकारी जोश उनकी समझदारी को अभिभूत कर लेता था। पर बाद में वह हमेशा अपनी ग़लती को समझते थे और उसे खुलेआम क़बूल करते थे। वह एक सच्चे जवांमर्द थे और जर्मन मज़दूर आन्दोलन की संस्थापना में उन्होंने जो योगदान किया, वह कभी भुलाया न जायेगा।

फ़्रैंकोनिया के निवासी हेनरिक बावेर मोची थे। वह बड़े ज़िंदादिल, चौकस और विनोदी आदमी थे। उनकी छोटी-सी काया में कुशलता और दृढ़ता कूट-कूटकर भरी हुई थी।

लन्दन पहुंच कर उन्होंने, शापर के साथ, जो पेरिस में कम्पोज़िटर थे पर लन्दन में भाषाओं के अध्यापक बनकर जीविका उपार्जन करने की कोशिश कर रहे थे, विछिन्न सूत्रों को जोड़ना शुरू किया और लन्दन को लीग का केन्द्र बना दिया। कोलोन के घड़ीसाज़ **जोज़ेफ़ मोल** यदि पहले पेरिस में ही नहीं तो यहां ज़रूर उनके साथ आ मिले थे। मंझोले क़द के मोल पराक्रम में पूरे भीम थे। अक्सर ऐसा हुआ कि वह और शापर मिलकर सैकड़ों चढ़ आते विरोधियों के मुक़ाबले में किसी हॉल के प्रवेशद्वार पर डट गये और विरोधियों के पांव उखाड़ दिये। स्फूर्ति और संकल्प में वह अपने दोनों साथियों के कम से कम बराबर तो थे ही, पर बुद्धि में दोनों से ऊपर थे। वह

जन्मजात कूटनीतिज्ञ थे। विभिन्न कार्यों के लिए दूत बना कर भेजे जाने पर जो सफलता उन्होंने प्राप्त की, उससे यह बात प्रमाणित हो जाती है। साथ ही वह सैद्धान्तिक अन्तर्दृष्टि की अधिक क्षमता रखते थे। इन तीनों से हमारी मुलाक़ात १८४३ में लन्दन में हुई। ये प्रथम क्रान्तिकारी सर्वहारा थे जिनसे मैं मिला था और तफ़सील के मामले में हमारे मतों में चाहे जितनी दूरी रही हो (इस दूरी का कारण यह था कि उनके संकीर्णतापूर्ण समतावादी कम्युनिज़्म* के मुक़ाबले मेरे अन्दर काफ़ी मात्रा में उतना ही संकीर्णतापूर्ण दार्शनिक दम्भ था), मैं कभी नहीं भूल सकता कि इन तीन जवांमर्दों ने मेरे ऊपर, एक ऐसे व्यक्ति के ऊपर जो उस समय मर्द बनने की अभी इच्छा ही कर रहा था, कितनी गहरी छाप डाली थी।

स्विट्ज़रलैण्ड की ही तरह, लन्दन में, लेकिन वहां से अधिक मात्रा में, उन्हें संघ और सभा स्वातन्त्र्य की सुविधा उपलब्ध थी। ७ फ़रवरी १८४० में ही क़ानूनी तौर से कार्य करने वाला जर्मन मज़दूर शिक्षा संघ, जो आज भी विद्यमान है[92], संस्थापित हो गया था। यह संघ लीग को नये सदस्य प्रदान करने का काम देता था और चूंकि, जैसा कि हमेशा होता रहा है, कम्युनिस्ट इस संघ के सबसे सक्रिय और चतुर सदस्य थे, इसलिए स्वभावतः इसका नेतृत्व सम्पूर्णतः लीग के हाथों में था। लीग के शीघ्र ही लन्दन में अनेक संगठन, अथवा जैसा कि उन्हें अब तक पुकारते थे, «lodges» हो गये। स्विट्ज़रलैण्ड और अन्यत्र भी यही प्रगट कार्यनीति अपनायी गयी। जहां मज़दूरों के संघ क़ायम किये जा सके, वहां उनका इसी तरह उपयोग किया गया। जहां उनकी स्थापना पर क़ानूनी रोक थी, वहां लोग संगीत मण्डलियों, व्यायामशालाओं और ऐसे ही अन्य संगठनों में शामिल हो जाते थे। उनमें निरन्तर दौरा करने वाले सदस्यों के ज़रिये सम्पर्क क़ायम रखा जाता था। ये लोग आवश्यकता पड़ने पर प्रणिधि का भी काम करते थे। दोनों ही मामलों में लीग को सरकारों की अक़्लमन्दी की बदौलत सजीव समर्थन प्राप्त हुआ, क्योंकि वे देशनिकाला देकर किसी भी अवांछनीय मज़दूर को (जो दस में नौ मामलों में तो लीग का सदस्य होता ही था) प्रणिधि में परिणत कर देती थी।

---

*जैसा कि मैं कह चुका हूं, समतावादी कम्युनिज़्म से मेरा तात्पर्य उस कम्युनिज़्म से है जो सम्पूर्णतः अथवा प्रधानतः समता की मांग पर अपने को आधारित करता है। (**एंगेल्स का नोट।**)

पुनर्जीवित लीग काफ़ी बड़े पैमाने पर फैली। ख़ासकर स्विट्ज़रलैंड में **वाइटलिंग, अगस्त बेकर** (बेकर अत्यन्त प्रतिभाशाली व्यक्ति थे पर बहुत सारे अन्य जर्मनों की तरह, चरित्र की आन्तरिक अस्थिरता के कारण बरबाद हो गये) और दूसरों ने एक मज़बूत संगठन क़ायम किया जो कमोबेश वाइटलिंग की कम्युनिस्ट पद्धति के समर्थन के लिए वचनबद्ध था। वाइटलिंग के कम्युनिज़्म की आलोचना करने की यह जगह नहीं है। पर जर्मन सर्वहारा के प्रथम स्वतंत्र सैद्धान्तिक स्फुरण के रूप में उसके महत्त्व के बारे में आज भी पेरिस की *«Vorwärts»* पत्रिका में १८४४ में लिखे मार्क्स के इन शब्दों से मैं सहमत हूं—"वाइटलिंग की 'सामंजस्य और स्वाधीनता की प्रत्याभूतियां' के मुक़ाबले में (जर्मन) पूंजीपति—और उनके दार्शनिक तथा विद्वान लेखक क्या **पूंजीपति वर्ग की मुक्ति**—उसकी राजनीतिक मुक्ति—के सम्बन्ध में कोई कृति पेश कर सकते हैं? यदि हम जर्मन राजनीतिक साहित्य के लचर मिठबोले घासलेटीपन का मुक़ाबला जर्मन मज़दूरों के इस अपरिमित प्रतिभायुक्त श्रीगणेश से करें, यदि हम **सर्वहारा के इस विराट बच्चों के जूते** की तुलना पूंजीपतियों के घिसे पुराने राजनीतिक जूतों के बौने आकार से करें तो हमें कहना पड़ेगा कि इन जूतों की स्वामिनी—सिंड्रेला—विशालकाय होगी।" यह विशाल काया आज हमारे सामने खड़ी है, यद्यपि अब भी वह पूरी तरह विकसित नहीं हुई है।

जर्मनी में भी लीग की कई शाखायें विद्यमान थीं। जैसा कि स्वाभाविक था, ये क्षणभंगुर स्वरूप रखती थीं, पर नयी पैदा होने वाली शाखायें कालकवलित होने वाली शाखाओं के रिक्त स्थानों की अति पूर्त्ति कर देती थीं। सात वर्ष के बाद ही, यानी १८४६ के अंत में, पुलिस लीग की टोह बर्लिन में (मेंटेल) और मैग्डेबर्ग में (बैक) लगा सकी, पर वह इस आधार पर और आगे खोज करने की स्थिति में न थी।

पेरिस में वाइटलिंग ने, जो १८४० में भी वहीं मौजूद थे, स्विट्ज़रलैंड रवाना होने से पहले बिखरे तत्त्वों को एक बार फिर जमा किया।

दर्ज़ी लीग की केन्द्रीय शक्ति थे। चाहे स्विट्ज़रलैंड हो, लन्दन हो या पेरिस, जर्मन दर्ज़ी सभी जगह थे। पेरिस में तो इस पेशे के लोगों के बीच जर्मन भाषा का ही बोलबाला था। इसकी एक मिसाल यह है कि १८४६ में मेरा परिचय एक ऐसे नार्वेजियाई दर्ज़ी से हुआ जो ट्रोंडहैम से फ़्रांस सीधे समुद्री मार्ग से आया था और अठारह महीनों के अन्दर फ़्रेंच भाषा का एक शब्द

भी नहीं सीख सका था, किन्तु जर्मन ख़ूब अच्छी तरह जान गया था। १८४७ में पेरिस की दो शाखाएं प्रधानतः दर्ज़ियों की थीं। एक बढ़इयों की थी।

गुरुत्व केन्द्र के पेरिस से लन्दन स्थानान्तरित होने के बाद एक नयी विशेषता उभर कर सामने आयी – लीग धीरे-धीरे जर्मन से **अन्तर्राष्ट्रीय** हो गयी। मज़दूर संघ में जर्मनों और स्विस लोगों के अतिरिक्त उन सभी जातियों के सदस्य मिलते थे जिनके लिए जर्मन भाषा विदेशियों से सम्पर्क का मुख्य माध्यम थी। यानी ख़ास तौर से स्कैण्डिनेवियाई, डच, हंगेरियाई, चेक, दक्षिणी स्लाव और इनके अतिरिक्त रूसी और अल्सासी मिलते थे। १८४७ में उसमें नियमित रूप से आने-जाने वालों में ब्रिटिश गार्ड्स का एक वर्दीपोश ग्रेनेडियर भी था। संघ ने शीघ्र ही अपना नाम **कम्युनिस्ट** मज़दूर शिक्षा संघ रख लिया और उसके सदस्यता-कार्ड में "सभी मनुष्य भाई भाई हैं" शब्द कम से कम बीस भाषाओं में अंकित थे, यद्यपि इन शब्दों को लिखने में जहां-तहां अशुद्धियां थीं। खुले संघ की तरह गुप्त लीग ने भी शीघ्र ही अधिक अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप ग्रहण कर लिया। शुरू में सीमित अर्थ में ही ऐसा हुआ। अमल में इस रूप में कि उसके सदस्य विभिन्न जातियों के थे, और सिद्धान्त में इस अनुभूति के रूप में कि क्रान्ति विजयी तभी हो सकती है जब वह अखिल यूरोपीय क्रान्ति हो। इससे आगे वे नहीं गये थे, पर बुनियाद मौजूद थी।

लन्दन के शरणार्थियों के ज़रिये फ़्रांसीसी क्रान्तिकारियों के साथ घनिष्ठ सम्पर्क रखा जाता था। ये शरणार्थी १२ मई १८३९ के संघर्ष के योद्धाओं के साथ-साथ लड़ चुके थे। इसी तरह अधिक उग्रवादी पोलों के साथ सम्पर्क रखा जाता था। कहने की ज़रूरत नहीं कि पोलैंड के अधिकारी उत्प्रवासी और माज़्ज़िनी भी लीग के मित्र न होकर विरोधी थे। इंगलैंड के चार्टिस्ट अपने आन्दोलन के विशिष्ट अंग्रेज़ चरित्र के कारण, क्रान्तिकारी माने ही नहीं जाते थे और उपेक्षित थे। लीग के लन्दन स्थित नेताओं का उनके साथ सम्पर्क बाद में, मेरे ज़रिये, हुआ।

दूसरे प्रकार भी घटनाओं की प्रगति के साथ लीग का चरित्र परिवर्तित हो गया था। यद्यपि पेरिस अब भी क्रान्ति की जन्मभूमि माना जाता था – यह उस समय बिलकुल सही था – तथापि पेरिस के षड्यंत्रकारियों पर निर्भरता की अवस्था से बाहर निकला जा चुका था। लीग के प्रसार ने उसकी आत्मचेतनता में अभिवृद्धि की। ऐसा महसूस किया जाता था कि

जर्मन मज़दूर वर्ग में उसकी जड़ें अधिकाधिक फैलती जा रही हैं और इन जर्मन मज़दूरों से इतिहास अपेक्षा करता है कि वे उत्तरी और पूर्वी यूरोप के मज़दूरों के झण्डाबरदार बनें। वाइटलिंग के रूप में एक ऐसा कम्युनिस्ट सिद्धान्तकार उपस्थित था जिसे विश्वासपूर्वक उसके समकालीन फ़्रांसीसी प्रतिद्वंद्वियों की बग़ल में खड़ा किया जा सकता था। अन्तिम बात यह है कि १२ मई के अनुभव ने हमें सिखा दिया था कि पर्युत्क्षेपण-षड्यंत्र की चेष्टाओं से कुछ लाभ नहीं होने वाला है। फिर भी यदि कोई हर घटना को आने वाले तूफ़ान का चिह्न बताता था, यदि कोई अब भी पुराने, अर्ध-षड्यंत्रपरक नियमों को ज्यों का त्यों क़ायम रखता था, तो इसमें दोष मुख्यतः पुरानी क्रान्तिकारी उद्धतता का था, जिसका अधिक सुस्वस्थ मत के साथ, जो ज़ोर पकड़ रहा था, अभी से टकराव होने लगा था।

परन्तु लीग का सामाजिक सिद्धान्त अस्पष्ट तो था ही, उसमें एक बहुत बड़ी त्रुटि थी। पर यह ऐसी त्रुटि थी जिसकी जड़ स्वयं परिस्थिति के अन्दर थी। उसके जो सदस्य मज़दूर थे, वे प्रायः सभी के सभी दस्तकार थे। बड़े-बड़े शहरों में भी उनका शोषण करने वाले लोग आम तौर से छोटे-छोटे मालिक ही थे। दस्तकारी के रूप में दर्ज़ीगीरी को बड़े पूंजीपति के लिए काम करने वाले घरेलू उद्योग में परिणत करके दर्ज़ी पेशे का बड़े पैमाने पर शोषण—इसे अब रेडी-मेड कपड़ों का उत्पादन कहते हैं—उस समय लन्दन जैसे शहर में भी शुरू ही हो रहा था। एक ओर तो इन दस्तकारों के शोषक छोटे मालिक थे। दूसरी ओर ये दस्तकार स्वयं यह उम्मीद रखते थे कि अन्ततः वे ख़ुद छोटे मालिक बन जायेंगे। इसके अलावा विरासत में मिली बहुत सारी शिल्पसंघीय धारणाओं से जर्मन दस्तकारों का उस समय तक पिण्ड नहीं छूटा था। ये दस्तकार अत्यधिक सम्मान के पात्र हैं क्योंकि अभी पूरी तरह सर्वहारा न होते हुए भी, बल्कि केवल निम्न-पूंजीपतियों का पुछल्ला मात्र होते हुए भी—ऐसा पुछल्ला जो आधुनिक सर्वहारा में परिणत हो रहा था और अभी तक पूंजीपति वर्ग के, यानी बड़ी पूंजी के प्रत्यक्ष विरोध में नहीं आया था—वे अपने भावी विकास का सहजभावी पूर्वाभास पाने में और अपने को सर्वहारा की पार्टी के रूप में संगठित करने में समर्थ हो सके, भले ही बिना पूर्ण चेतनता के ही उन्होंने ऐसा किया था। पर यह भी अनिवार्य था कि हर क्षण में, जब भी मौजूदा समाज की तफ़सीलवार आलोचना करने यानी आर्थिक तथ्यों की पड़ताल करने का सवाल सामने आये, उनके,

दस्तकारों के पुराने पूर्वाग्रह उनकी राह का रोड़ा वन जायें। और मैं नहीं समझता कि समूचे लीग में उस समय एक भी आदमी ऐसा था जिसने राजनीतिक अर्थशास्त्र पर कभी कोई किताब पढ़ी हो। लेकिन इससे कुछ आता-जाता न था। फ़िलहाल तो "समता", "भ्रातृत्व" और "न्याय" उन्हें हर सैद्धान्तिक बाधा को पार करा देते थे।

इस बीच लीग और वाइटलिंग के कम्युनिज़्म के साथ-साथ एक अन्य, सारतः भिन्न कम्युनिज़्म का उदय हो रहा था। जब मैं मैंचेस्टर में था तो मुझे यह प्रत्यक्ष बोध हुआ कि आर्थिक तथ्य जिन्होंने अभी तक इतिहास लेखन में कोई भूमिका नहीं अदा की है या नगण्य भूमिका ही अदा की है, कम से कम आधुनिक जगत् में निर्णायक ऐतिहासिक शक्ति हैं; कि वे आज के वर्ग-विरोधों के उद्‌भव का मूलाधार हैं; कि ये वर्ग-विरोध अपने आप में, उन देशों के अन्दर जहां बड़े पैमाने के उद्योग के कारण ये पूर्णतः विकसित हो चुके हैं – अतएव विशेषतः इंगलैंड में – राजनीतिक पार्टियों के बनने और पार्टी संघर्षों के छिड़ने और इस प्रकार समूचे राजनीतिक इतिहास का आधार हैं। मार्क्स भी इसी राय पर पहुंच चुके थे, और पहुंच ही नहीं चुके थे, बल्कि *«Deutsch-Französische Jahrbücher»* (जर्मन-फ़्रांसीसी वार्षिकी), १८४४, में इसका इस रूप में सामान्यीकरण भी कर चुके थे कि सामान्यतः राज्य नागरिक समाज का अवस्था-निर्धारण और नियमन नहीं करता, बल्कि नागरिक समाज राज्य का अवस्था-निर्धारण और नियमन करता है; परिणामस्वरूप राजनीति एवं उसके इतिहास की आर्थिक सम्बन्धों और उनके विकास से व्याख्या होनी चाहिए, न कि उल्टे। जब १८४४ की गर्मियों में मैं मार्क्स से पेरिस में मिला तो स्पष्ट हो गया कि सभी सैद्धान्तिक क्षेत्रों में हम दोनों में पूर्ण मतैक्य है, और उसी समय से हमारे संयुक्त कार्य का आरम्भ हुआ। १८४५ के वसन्त में जब हम लोगों की ब्रसेल्स में फिर मुलाक़ात हुई, तो मार्क्स उपर्युक्त मूलाधार से इतिहास के भौतिकवादी सिद्धान्त को, उसकी मुख्य रूपरेखाएं देते हुए, विकसित कर चुके थे। हम दोनों अब सद्यः प्राप्त दर्शन-प्रणाली का अति विविध दिशाओं में विशदीकरण करने में जुट गये।

पर यह खोज, जिसने इतिहास के विज्ञान में क्रान्ति कर दी और जो, जैसा कि हम देख चुके हैं, मूलभूत रूप में मार्क्स की सिद्धि है (इस खोज में मैं एक अति नगण्य भागीदार होने का ही दावा कर सकता हूं), समकालीन मज़दूर आन्दोलन के लिए तात्कालिक महत्त्व की चीज़ थी।

फ़्रांसीसियों और जर्मनों में कम्युनिज़्म, या अंग्रेज़ों में चार्टिज़्म अब ऐसी चीज़ नहीं ज्ञात होती जो आकस्मिक रही हो, अर्थात् जो थी तो थी, पर नहीं भी हो सकती थी। अब यह देखा गया कि ये आन्दोलन आधुनिक उत्पीड़ित वर्ग, सर्वहारा वर्ग के आन्दोलन के ही रूप थे, शासक वर्ग, पूंजीपति वर्ग के विरुद्ध उसके ऐतिहासिक रूप से आवश्यक संघर्ष के न्यूनाधिक विकसित रूप थे। ऐसे वर्ग संघर्ष के रूप थे जो पहले के सभी वर्ग संघर्षों से एक चीज़ में भिन्न था, वह यह कि आज का उत्पीड़ित वर्ग, सर्वहारा वर्ग, अपनी मुक्ति बिना साथ ही साथ समूचे समाज को वर्गों में विभाजन से और इसलिए वर्ग संघर्षों से मुक्त कराये नहीं प्राप्त कर सकता। कम्युनिज़्म का अर्थ अब कल्पना के द्वारा एक पूर्ण से पूर्ण आदर्श समाज को गढ़ना नहीं रह गया, बल्कि सर्वहारा द्वारा चलाये जाने वाले संघर्ष के स्वरूप, उसकी अवस्थाओं और फलतः उसके आम लक्ष्यों की सूझबूझ हो गया।

अब हमारी कदापि यह राय न थी कि नवीन वैज्ञानिक निष्कर्षों को मोटी-मोटी पोथियों के ज़रिये केवल "पंडित समाज" को ही बताया जाये। हमारी राय इसके बिलकुल विपरीत थी। हम दोनों ही राजनीतिक आन्दोलन में काफ़ी गहरे डूब चुके थे और शिक्षित जगत् में, ख़ासकर पश्चिमी जर्मनी में, हमारे कुछ अनुयायी मौजूद थे तथा संगठित सर्वहारा के साथ हमारा व्यापक सम्पर्क था। हमारा यह कर्त्तव्य था कि अपने मत के लिए वैज्ञानिक आधार प्रस्तुत करें, पर उतना ही महत्त्वपूर्ण हमारे लिए यह भी था कि अपने मत के लिए यूरोपीय सर्वहारा तथा प्रथमतः जर्मन सर्वहारा का समर्थन प्राप्त करें। जैसे ही हमारा अपना दिमाग़ साफ़ हुआ वैसे ही हम इस काम में जुट गये। हमने ब्रसेल्स में एक जर्मन मज़दूर समाज की स्थापना की और *«Deutsche Brüsseler Zeitung»* को अपने हांथ में ले लिया। उसने फ़रवरी क्रान्ति तक हमारे मुखपत्र का काम किया[93]। हमने चार्टिस्ट आन्दोलन के केन्द्रीय मुखपत्र *«The Northern Star»*[94] के (इस पत्र में मैं लिखा करता था) सम्पादक जूलियन हार्नी के ज़रिये इंगलैंड के चार्टिस्टों के क्रान्तिकारी भाग के साथ सम्पर्क रखा। इसी प्रकार हमने ब्रसेल्स के जनवादियों (मार्क्स जनवादी समाज के उपाध्यक्ष थे[95]) और *«Réforme»* पत्र (इसको मैं इंगलैंड और जर्मनी के आन्दोलनों के समाचार भेजा करता था) के फ़्रांसीसी समाजवादी-जनवादियों[96] के साथ एक तरह का गठबन्धन कर लिया। संक्षेप में, उग्रपंथी और सर्वहारा संग नों और मुखपत्रों के साथ हमारे सम्बन्ध इतने अच्छे थे जितने कि हम चाह सकते थे।

"न्यायप्रियों की लीग" के साथ हमारा सम्वन्ध निम्न प्रकार का था: लीग के अस्तित्व के बारे में बेशक हमें जानकारी थी; १८४३ में शापर ने मुझसे प्रस्ताव किया था कि मैं उसमें शामिल हो जाऊं पर स्वभावतया उस समय ऐसा करने से मैंने इनकार कर दिया था। पर लन्दन वालों के साथ न केवल हमारा पत्रव्यवहार निरन्तर जारी रहा, बल्कि डॉ० एवरबेक के साथ, जो उस समय पेरिस की शाखाओं के नेता थे, हमारे सम्वन्ध और भी अधिक घनिष्ठ रहे। लीग के आन्तरिक मामलों में न पड़ते हुए भी, हमें हर महत्त्वपूर्ण घटना की जानकारी हासिल हो जाती थी। दूसरी ओर, बातचीत, पत्रव्यवहार और समाचारपत्रों के ज़रिये हमने लीग के सबसे महत्त्वपूर्ण सदस्यों के सैद्धान्तिक विचारों को प्रभावित किया। इस प्रयोजन के लिए हम लिथोग्राफ़ की हुई गश्ती चिट्ठियों का भी प्रयोग करते थे। इन्हें ख़ास-ख़ास अवसरों पर, जब संस्थापित हो रही कम्युनिस्ट पार्टी के आन्तरिक मामलों से सम्बन्धित प्रश्न उपस्थित होते थे, हम दुनिया भर में अपने मित्रों और सहयोगियों को भेजा करते थे। इन चिट्ठियों में कभी-कभी ख़ुद लीग की भी चर्चा होती थी। मिसाल के लिए, हर्मन क्रीगे नामक एक वेस्टफ़ेलियाई छात्र, जो अमरीका गया हुआ था, वहां लीग का प्रणिधि बन बैठा और बावले हैरो हैरिंग के साथ अपना नाता जोड़ा ताकि दक्षिण अमरीका में उथल-पुथल पैदा करने के लिए लीग का इस्तेमाल किया जा सके। उसने एक अख़बार निकाला*, जिसमें लीग के नाम पर उसने "प्रेम" पर आधारित एवं प्रेम से ओतप्रोत प्रेम-स्वप्न के घोर अतिरंजित कम्युनिज़्म का प्रचार आरम्भ कर दिया। इसके ख़िलाफ़ हमने फ़ौरन एक गश्ती चिट्ठी रवाना कर दी, जिसका तुरन्त असर हुआ**। क्रीगे लीग के मैदान से नौ दो ग्यारह हो गया।

बाद में वाइटलिंग ब्रसेल्स आये। पर अब वाइटलिंग वह भोले कारीगर-दर्ज़ी नहीं रह गये थे, जिसने अपनी प्रतिभा से आप चकित होकर अपने मस्तिष्क में कम्युनिस्ट समाज का चित्र स्पष्ट करने की चेष्टा की थी। अब वह एक महापुरुष बन गयें थे जिन्हें उनकी श्रेष्ठता के कारण ईर्ष्यालु लोग सताने पर तुले हुए थे और जिन्हें हर जगह गुप्त प्रतिद्वंद्वी, गुप्त शत्रु और फन्दे दीख पड़ते थे। अब वह एक पैग़म्बर बन गये थे, जिन्हें लगातार एक

---

* *«Der Volks-Tribun»*[97] ।—सं०

** **का० मार्क्स और फ़्रे० एंगेल्स, 'क्रीगे के ख़िलाफ़ एक गश्ती चिट्ठी'।—सं०**

मुल्क से दूसरे मुल्क में खदेड़ा जा रहा था, जिनकी जेब में एक ऐसा तैयार नुस्ख़ा मौजूद था जिसके ज़रिये धरती पर स्वर्ग उतारा जा सकता था, और जिनके दिमाग़ में यह सनक सवार थी कि सभी लोग यह नुस्ख़ा उनसे चुरा लेने की घात में हैं। लन्दन में लीग के सदस्यों के साथ उनका पहले ही झगड़ा हो चुका था, और ब्रसेल्स में भी, जहां मार्क्स और उनकी पत्नी ने अतिमानवीय सहनशीलता के साथ उनकी आवभगत की थी, उनकी किसी से नहीं बन सकी। अतः शीघ्र ही वह पैग़म्बर की अपनी भूमिका आज़माने के लिए अमरीका रवाना हो गये।

इन सभी परिस्थितियों ने लीग में और ख़ासकर लन्दन के उसके नेताओं में धीरे-धीरे हो रहे कायापलट में योगदान किया। कम्युनिज़्म की पहले की धारणाओं की अपर्याप्तता, सीधे-सादे फ़्रांसीसी समतावादी कम्युनिज़्म और वाइटलिंग के कम्युनिज़्म, दोनों की अपर्याप्तता उनके सामने अधिकाधिक साफ़ होती गयी। कम्युनिज़्म की जड़ें आदिम ईसाई धर्म में ढूंढ़ निकालने की वाइटलिंग की खोज का परिणाम (यद्यपि उनके 'ग़रीब पापियों को दिव्य संदेश' के कुछ अंश बड़े ही भव्य हैं) यह हुआ था कि स्विट्ज़रलैण्ड में आन्दोलन अधिकांशतः पहले तो अल्ब्रेख़्त जैसे मूर्खों के हाथ में और उसके बाद कुहलमान जैसे स्वार्थसाधक कपटी पैग़म्बरों के हाथ में चला गया था। कुछ साहित्यिकों द्वारा प्रचारित "सच्चे समाजवाद" ने, जो फ़्रांस की समाजवादी शब्दावली का भ्रष्ट हेगेलपंथी जर्मन में रूपांतरण तथा उथली भावुकता से भरा प्रेम-स्वप्न था ('कम्युनिस्ट घोषणापत्र' में जर्मन या "सच्चा" समाजवाद सम्बन्धी अंश देखिये*) – जो क्रीगे की तथा तत्सम्बन्धित साहित्य के अध्ययन की बदौलत लीग के अन्दर घुस आया था, पुराने क्रान्तिकारियों को जल्द ही विरक्त कर दिया। उसका फूहड़ पिलपिलापन ही इसके लिए काफ़ी था। पहले के सैद्धान्तिक विचारों की अरक्षणीयता से तुलना करने पर और उन विचारों के परिणामस्वरूप होने वाली अमली चूकों से मिलाने पर लन्दन में यह अधिकाधिक महसूस किया जाने लगा कि मार्क्स और मेरे द्वारा प्रतिपादित नवीन सिद्धान्त सही है। निस्सन्देह इस समझ के आने में इस बात का भी हाथ था कि लन्दन स्थित नेताओं में इस समय दो ऐसे व्यक्ति मौजूद थे जो सैद्धान्तिक ज्ञान-क्षमता में उन लोगों से, जिनका

* प्रस्तुत संकलन, भाग १, पृष्ठ ७३–७६। – सं०

पहले ज़िक्र किया जा चुका है, वहुत ऊपर थे। ये थे, हीलब्रोन निवासी सूक्ष्म-चित्रकार कार्ल फ़ैन्दर और थुरिंगिया निवासी दर्ज़ी गेओर्ग इक्कैरियस*।

इतना ही कहना काफ़ी होगा कि १८४७ के वसन्त में मोल ब्रसेल्स में मार्क्स के पास गये और उसके फ़ौरन ही वाद पेरिस में मेरे पास आये और अपने साथियों की ओर से हमें लीग में शामिल हो जाने को बारम्बार आमंत्रित किया। उन्होंने वताया कि उन्हें हमारे दृष्टिकोण के सामान्यतः सही होने के बारे में उतना ही यक़ीन था जितना कि इस बारे में कि लीग को पुरानी षड्यंत्रपरक परम्पराओं और रूपों से मुक्त करना आवश्यक है। उन्होंने कहा कि यदि हम लीग में शामिल हो जायें तो हमें एक घोषणापत्र द्वारा लीग की एक कांग्रेस के समक्ष अपने समीक्षात्मक कम्युनिज़्म की व्याख्या करने का अवसर प्रदान किया जायेगा और तब यह घोषणापत्र लीग के घोषणापत्र के रूप में प्रकाशित किया जायेगा। इस प्रकार हम लीग के पुराने-धुराने संगठन की जगह नये ज़माने और नये लक्ष्यों के अनुरूप संगठन की स्थापना करने में भी योगदान कर सकेंगे।

हमें इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं था कि जर्मन मज़दूर वर्ग के बीच एक संगठन का होना आवश्यक है, और नहीं तो प्रचार-कार्य के लिए आवश्यक है। हमें इसमें भी तनिक सन्देह न था कि इस संगठन को, इसलिए कि वह केवल स्थानीय नहीं होगा, गुप्त संगठन होना होगा – जर्मनी के बाहर भी। लीग की शक्ल में ठीक ऐसा ही एक संगठन मौजूद था। लीग के सम्बन्ध में हमें जिस चीज़ पर आपत्ति थी, उसका लीग के प्रतिनिधियों ने अब स्वयं ही ग़लत कहकर परित्याग किया था और वे हमें उसका पुनर्गठन करने के कार्य में सहयोग देने का बुलावा भी दे रहे थे। फिर क्या हम न कह सकते थे? यक़ीनन् नहीं। अतः हम लीग में दाख़िल हो गये। मार्क्स

---

*फ़ैन्दर की लगभग आठ वर्ष हुए लन्दन में मृत्यु हो गयी। वह अनोखी सूक्ष्म बुद्धि रखने वाले विनोदी, व्यंग्यपटु तथा तार्किक व्यक्ति थे। इक्कैरियस, जैसा कि विदित है, बाद में कई वर्षों तक अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ की जनरल कौंसिल के मंत्री रहे। इस जनरल कौंसिल में अन्यों के अलावा पुरानी लीग के ये सदस्य थे: इक्कैरियस, फ़ैन्दर, लेसनर, लौख़नर, मार्क्स और मैं। बाद में इक्कैरियस अपना सारा समय इंगलैंड के ट्रेड-यूनियन आन्दोलन को देने लगे। (**एंगेल्स का नोट।**)

ने हमारे घनिष्ठ मित्रों को लेकर ब्रसेल्स में लीग की एक शाखा क़ायम की और मैं पेरिस की उसकी तीन शाखाओं में शरीक होने लगा।

१८४७ की गर्मियों में लीग की पहली कांग्रेस लन्दन में हुई। वि० वोल्फ़ ने उसमें ब्रसेल्स की और मैंने पेरिस की शाखाओं का प्रतिनिधित्व किया। इस कांग्रेस में सबसे पहले लीग का पुनर्गठन किया गया। साज़िशी दौर से चले आते पुराने रहस्यपूर्ण नाम जो बच रहे थे, उनका अन्त कर दिया गया; लीग का गठन अब शाखाओं, मण्डलों, उच्च मण्डलों, केन्द्रीय समिति तथा कांग्रेस के रूप में किया गया, और उसका नाम अब से "कम्युनिस्ट लीग" हो गया। उसकी पहली धारा इन शब्दों से आरम्भ होती थी – "लीग का लक्ष्य पूंजीपति वर्ग का तख़्ता उलटना, सर्वहारा का राज क़ायम करना, वर्ग-विरोधों पर आधारित पुराने पूंजीवादी समाज का अन्त करना और एक नये समाज की स्थापना करना है जिसमें वर्ग नहीं होंगे और न व्यक्तिगत सम्पत्ति होगी।" संगठन स्वयं आदि से अन्त तक जनवादी था। इसकी समितियां निर्वाचित होती थीं और जब चाहे तब भंग की जा सकती थीं। यही एक चीज़ षड्यंत्र की लिप्सा पर अंकुश रखती थी, क्योंकि षड्यंत्र के लिए अधिनायकत्व आवश्यक होता है, और लीग – कम से कम साधारण शान्ति-काल के लिए – विशुद्ध प्रचार समाज में परिणत हो गयी थी। यह नयी नियमावली बहस के लिए शाखाओं के समक्ष पेश की गयी (ऐसी जनवादी थी हमारी नयी कार्य-विधि)। इसके बाद दूसरी कांग्रेस ने उस पर फिर बहस की और तब जाकर ८ दिसम्बर १८४७ को उसके द्वारा पास की गयी। वेर्मुथ और श्तीबर की पुस्तक, खण्ड १, पृष्ठ २३९, परिशिष्ट X में यह नियमावली छपी मिलती है।

दूसरी कांग्रेस उसी वर्ष के नवम्बर के अन्त और दिसम्बर के आरम्भ में हुई। इस बार मार्क्स भी उपस्थित थे, और काफ़ी लम्बे वादविवाद में (कांग्रेस दस दिनों तक चली थी) उन्होंने अपने नये सिद्धान्त की व्याख्या की। सभी विरोधों और शंकाओं का आख़िरकार समाधान हो गया, नये मूलभूत सिद्धान्त सर्वसम्मति से स्वीकार कर लिये गये, और मार्क्स को और मुझे घोषणापत्र का मसविदा तैयार करने का काम सौंपा गया। यह काम कांग्रेस के फ़ौरन ही बाद पूरा किया गया। फ़रवरी क्रान्ति के कुछ सप्ताह पूर्व वह छपने के लिए लन्दन भेजा गया*। तब से वह समूची दुनिया का

* प्रस्तुत संस्करण, भाग १, पृष्ठ ३७–८३। – सं०

भ्रमण कर चुका है, प्रायः सभी भाषाओं में उसका अनुवाद हो चुका है और आज भी वह अनेक देशों में सर्वहारा आन्दोलन के पथप्रदर्शक का काम दे रहा है। लीग के पुराने मूलमंत्र, "सभी मनुष्य भाई भाई हैं" के स्थान पर नया जुझारू नारा – "दुनिया के मज़दूरो, एक हो!" मैदान में आया। उसने संघर्ष के अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप का खुलकर ऐलान कर दिया। सत्रह वर्ष बाद यह नारा अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ के नारे के रूप में समूची दुनिया में गूंज उठा, और आज सभी देशों के जुझारू सर्वहारा ने इसको अपने झण्डे पर अंकित कर रखा है।

फ़रवरी क्रान्ति छिड़ गयी। लन्दन की केन्द्रीय समिति ने, जो अब तक कार्य संभाले हुए थी, फ़ौरन अपने अधिकार ब्रसेल्स के उच्च मण्डल को हस्तान्तरित कर दिये। पर यह फ़ैसला उस समय हुआ था जबकि ब्रसेल्स में घेरेबन्दी की हालत लागू हो चुकी थी, और जर्मन लोग ख़ास तौर से अपनी कोई बैठक नहीं कर सकते थे। हम सभी उस समय पेरिस रवाना होने के लिए तैयार बैठे थे, अतएव नयी केन्द्रीय समिति ने भी अपने को भंग कर देने और अपने तमाम अधिकार मार्क्स को सौंप देने तथा उन्हें फ़ौरन पेरिस में एक नयी केन्द्रीय समिति गठित करने का अधिकार प्रदान करने का निर्णय किया। यह निर्णय करने वाले पांच आदमियों ने (३ मार्च १८४८ को) अपने-अपने अलग रास्ते पकड़े ही थे कि पुलिस मार्क्स के घर में घुस आयी, उन्हें गिरफ़्तार कर लिया और अगले दिन फ़्रांस चले जाने को – जहां मार्क्स स्वयं जाना चाह रहे थे – मजबूर किया।

पेरिस में हम सभी शीघ्र ही फिर एकत्र हुए। वहां निम्नांकित दस्तावेज़ तैयार की गयी और नयी केन्द्रीय समिति के सभी सदस्यों द्वारा हस्ताक्षरित हुई। यह समूचे जर्मनी में वितरित की गयी और बहुत-से लोग आज भी इससे कुछ सीख सकते हैं:

जर्मनी में कम्युनिस्ट पार्टी की मांगें[98]

१. समूचे जर्मनी को एक अखण्ड जनतंत्र घोषित किया जाये।

३. जनता के प्रतिनिधियों को वेतन दिया जाये ताकि मज़दूर भी जर्मन जनता की संसद में बैठ सकें।

४. पूरी जनता को हथियारबन्द किया जाये।

७. राजाओं की जागीरें तथा अन्य सामन्ती जागीरें, सभी खान-खदानें आदि राज्य की सम्पत्ति घोषित की जायें। इन जागीरों में बड़े पैमाने पर तथा आधुनिकतम वैज्ञानिक साधनों से पूरे समाज के लाभार्थ खेती की जाये।

८. किसानों के खेतों के रेहननामे राज्य की सम्पत्ति घोषित किये जायें। किसान इन रेहननामों के सूद राज्य को अदा करें।

६. उन ज़िलों में जहां काश्तकारी प्रथा विकसित अवस्था में है, लगान या मालगुज़ारी राज्य को कर के रूप में अदा की जाये।

११. परिवहन के सभी साधन—रेलवे, नहरें, जहाज़, सड़कें, डाक आदि राज्य द्वारा ले लिये जायें। उन्हें राज्य की सम्पत्ति क़रार दिया जाये और सम्पत्तिहीन वर्ग द्वारा उनका उपयोग सुलभ बनाया जाये।

१४. उत्तराधिकार का अधिकार सीमित किया जाये।

१५. प्रवण क्रमवद्ध प्रगामी कर-व्यवस्था लागू की जाये तथा उपभोक्ता मालों पर कर ख़त्म कर दिये जायें।

१६. राष्ट्रीय वर्कशॉप क़ायम किये जायें। राज्य सभी मज़दूरों को रोज़ी की गारंटी देगा और जो काम करने में अक्षम हैं, उनके भरण-पोषण की व्यवस्था करेगा।

१७. सार्विक निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा।

जर्मन सर्वहारा, निम्न-पूंजीपति वर्ग और किसानों का हित इस बात में है कि उपरोक्त उपायों को कार्यान्वित करने में पूरे जोश के साथ लग जायें। क्योंकि इन मांगों की पूर्त्ति से ही जर्मनी के अवाम जो मुट्ठी भर लोगों द्वारा अब तक शोषित होते रहे हैं और जिन्हें आगे भी दासता के बन्धन में जकड़े रखने के लिए कोशिशें की जायेंगी, अपने वे अधिकार तथा वह शक्ति प्राप्त कर सकेंगे जो समस्त सम्पदा के उत्पादक होने के नाते उनकी होनी चाहिए।

समिति :
कार्ल मार्क्स, कार्ल शापर, हे० बावेर,
फ़्रे० एंगेल्स, जो० मोल, वि० वोल्फ़।

उन दिनों पेरिस में क्रान्तिकारी सैनिक दस्ते क़ायम करने की एक ख़ब्त-सी फैली हुई थी। स्पेनी, इतालवी, बेल्जियाई, डच, पोल और जर्मन, सभी अपने अपने देशों को आज़ाद करने के लिए दल के दल एकत्र हो रहे

थे। जर्मन सैनिक दस्ते के नेता हरवे, बोर्नस्टेड, बर्न्सटीन थे। चूंकि क्रान्ति के बाद ही सभी विदेशी मज़दूर अपनी नौकरियों से हाथ धो बैठे थे, और इतना ही नहीं, लोग उन्हें तंग भी कर रहे थे, इसलिए इन सैनिक दस्तों में भर्ती होने वालों की संख्या बहुत बड़ी थी। नयी सरकार ने देखा कि विदेशी मज़दूरों से पिंड छुड़ाने का यह अच्छा तरीक़ा है और उसने उन्हें l'étape du soldat दिया, यानी उनके कूच के रास्ते में छावनियों में ठहरने की सुविधा प्रदान की और सरहद तक ५० सेंटाइम प्रति दिन का मार्च करने का भत्ता दिया। इसके बाद तो बात-बात में आंसू बहाने वाले वाक्पटु विदेश मंत्री, लामार्तीन को इन सैनिकों को उनकी सरकारों के हवाले करते देर न लगी।

क्रान्ति के साथ इस खिलवाड़ का हमने बड़ी ही दृढ़ता के साथ विरोध किया था। जर्मनी की उस समय की उथल-पुथल के मध्य आक्रमण संगठित करने, यानी बाहर से क्रान्ति का बलपूर्वक आयात करने का अर्थ ख़ुद जर्मनी की क्रान्ति की जड़ काटना, सरकारों के हाथ मज़बूत करना और इन सैनिकों को हाथ-पैर बांधकर जर्मन फ़ौज के हवाले करना था। इसकी लामार्तीन ने गारंटी कर ही रखी थी। बाद में जब वियना और बर्लिन में क्रान्ति की जीत हुई, तो सैनिक दस्ते और भी अधिक निष्प्रयोजन हो गये। किन्तु खेल एक बार शुरू हो गया तो हो गया और चलता रहा।

हमने एक जर्मन कम्युनिस्ट क्लब[99] की स्थापना की जिसमें हमने मज़दूरों को सलाह दी कि वे इन सैनिक दस्तों से दूर रहें और उनमें भर्ती होने के बदले अलग अलग घर लौटें और वहां जाकर आन्दोलन के लिए काम करें। हमारे पुराने मित्र फ़्लोकोन ने, जिन्हें अस्थायी सरकार में स्थान प्राप्त था, हमारे द्वारा भेजे मज़दूरों के लिए यात्रा की वे ही सुविधाएं दिला दीं जो स्वयंसेवक सैनिक दस्तों को प्राप्त थीं। इस प्रकार हमने तीन-चार सौ मज़दूरों को जर्मनी वापस भेजा जिनमें लीग के अधिकांश सदस्य भी थे।

जैसा कि आसानी से पहले ही देखा जा सकता था, जितना बड़ा जन-आन्दोलन इस समय छिड़ा हुआ था, उसके लिए लीग एक बहुत ही कमज़ोर लीवर सिद्ध हुई। लीग के तीन-चौथाई सदस्यों ने, जो पहले विदेशों में रह रहे थे, देश वापस लौटकर अपना निवास-स्थान बदल दिया था, फलतः उनकी पहले की शाखाएं बहुत हद तक छिन्न-भिन्न हो गयी थीं और लीग के साथ

उनका अपना सारा सम्पर्क समाप्त हो गया था। उनके एक अंश ने, उन लोगों ने, जो अधिक महत्त्वाकांक्षी थे, इस सम्पर्क को फिर से जोड़ने की कोशिश नहीं की, बल्कि हर एक ने अपने-अपने क्षेत्र में एक अलग आन्दोलन आरम्भ कर दिया। इस सब के अलावा, हर अलग-अलग छोटे-मोटे राज्य, हर प्रान्त और हर शहर के अन्दर अवस्थाएं इतनी भिन्न थीं कि लीग अत्यन्त सामान्य हिदायतें देने के अलावा और कुछ कर सकने में असमर्थ थी। पर ऐसी हिदायतें अख़बारों के ज़रिये कहीं ज़्यादा अच्छी तरह प्रचारित की जा सकती थीं। संक्षेप में, जिस क्षण से उन कारणों का अस्तित्व समाप्त हो गया जिन्होंने गुप्त लीग को आवश्यक बनाया था, उसी क्षण से गुप्त लीग भी अपने आप में निरर्थक हो गयी। लेकिन इससे सबसे कम आश्चर्य उन लोगों को हो सकता था जिन्होंने इस गुप्त लीग के षड्यंत्रपरक स्वरूप के अन्तिम अवशेषों को हाल ही में समाप्त किया था।

पर यह चीज़ अब सिद्ध हो गयी कि लीग क्रान्तिकारी कार्यकलाप का एक शानदार विद्यालय रही थी। राइन में, जहां *«Neue Rheinische Zeitung»* ने एक दृढ़ केन्द्र प्रदान किया था, नस्साऊ में, राइनी हेसन में, – सभी जगहों में लीग के सदस्य चरम जनवादी आन्दोलन के हरावल थे। ऐसा ही हैम्बर्ग में हुआ। दक्षिण जर्मनी में निम्न-पूंजीवादी जनवाद का प्राधान्य एक रोड़ा बन गया। ब्रेस्लाऊ में विल्हेल्म वोल्फ़ ने १८४८ की गर्मियों तक अत्यन्त सफलतापूर्वक कार्य किया; इस के अलावा वह साइलेसिया से फ़्रैंकफ़ुर्ट संसद[100] के एवज़ी सदस्य भी चुने गये। इस सब के अतिरिक्त कम्पोज़िटर स्टीफ़न बोर्न ने, जिन्होंने ब्रसेल्स और पेरिस में लीग के सक्रिय सदस्य के रूप में कार्य किया था, बर्लिन में "मज़दूर बिरादरी" की स्थापना की। यह बिरादरी काफ़ी फैल गयी और १८५० तक क़ायम रही। बोर्न जन्म से एक अत्यन्त प्रतिभाशाली व्यक्ति थे, लेकिन राजनीतिक क्षेत्र में विशिष्टता प्राप्त करने के उतावलेपन के कारण उन्होंने हर ऐरे-ग़ैरे नत्थूखैरे के साथ "भाईचारा" क़ायम कर लिया ताकि उनकी एक जमात खड़ी हो जाये। परन्तु इन आपस में टकराती प्रवृत्तियों में एकता क़ायम करना, अव्यवस्था के अन्धकार में प्रकाश लाना उनके बूते के बाहर की चीज़ थी। फलतः उनकी "बिरादरी" के अधिकृत प्रकाशनों में 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र' के विचारों के साथ शिल्पसंघीय स्मृतियों और शिल्पसंघीय आकांक्षाओं, लूई ब्लां और प्रूदों के कुछ अंशों, संरक्षणवाद और ऐसी ही अन्य चीज़ों की विचित्र खिचड़ी

हुआ करती थी। संक्षेप में, वह सभी को ख़ुश करना चाहते थे। ख़ास तौर पर हड़तालों, ट्रेड-यूनियनों और उत्पादकों की सहकारी समितियों का आरम्भ किया गया और यह भुला दिया गया कि सर्वोपरि प्रश्न, राजनीतिक जीतों के द्वारा वह भूमि सर करने का है जिस पर कि ऐसी चीज़ें टिकाऊ आधार पर प्राप्त की जा सकती हैं। बाद में जब प्रतिक्रियावाद की विजय ने "बिरादरी" के नेताओं को क्रान्तिकारी संघर्ष में प्रत्यक्ष भाग लेने की आवश्यकता बोध करायी, तो स्वभावतः वह पंचमेल भीड़, जो उन्होंने अपने गिर्द जमा कर रखी थी, उन्हें छोड़कर नौ दो ग्यारह हो गयी। बोर्न ने मई १८४९ के ड्रेस्डेन के विप्लव में भाग लिया। ख़ुशक़िस्मती से वह वहां बच गये। परन्तु, सर्वहारा के महान् राजनीतिक आन्दोलन के मुक़ाबले में "मज़दूर बिरादरी" विशुद्ध Sonderbund (पृथक् संघ) सिद्ध हुई; उसका अस्तित्व बड़ी हद तक केवल काग़ज़ के ऊपर था और उसकी भूमिका इतनी गौण रही कि प्रतिक्रिया को १८५० से पहले उसका — और उसकी अवशिष्ट शाखाओं का इसके भी कई साल बाद तक — दमन करने की आवश्यकता नहीं पड़ी। बोर्न, जिनका असली नाम बटरमिल्ख़ था, राजनीतिक क्षेत्र के जाने-माने नेता बनने के बदले स्विट्ज़रलैण्ड में एक मामूली प्रोफ़ेसर बनकर रह गये। यह प्रोफ़ेसर शिल्पसंघीय भाषा में मार्क्स का तरजुमा करना छोड़ कर अपनी लच्छेदार जर्मन भाषा में विनम्र रेनां का तरजुमा किया करता है।

पेरिस में १३ जून १८४९ की तथा जर्मनी में मई की बग़ावत की हार के साथ और रूसियों द्वारा हंगरी की क्रान्ति के कुचल दिये जाने के साथ १८४८ की क्रान्ति के महान् युग का अन्त हो गया। पर प्रतिक्रिया की विजय पूर्ण कदापि नहीं हुई थी। बिखरी हुई क्रान्तिकारी शक्तियों को पुनर्गठित करने की, अतः लीग का भी पुनर्गठन करने की आवश्यकता थी। १८४८ की तरह, परिस्थिति फिर ऐसी थी कि सर्वहारा का खुला संगठन नहीं बन सकता था। अतः फिर गुप्त संगठन बनाना आवश्यक हो गया।

१८४९ की शरत् ऋतु में पहले की केन्द्रीय समितियों और कांग्रेसों के अधिकतर सदस्य फिर लन्दन में जमा हुए। न पहुंचने वालों में केवल शापर और मोल थे। शापर वीज़बैडेन में जेल में बन्द थे और रिहाई के बाद, १८५० के वसन्त में आ पहुंचे थे। मोल कई अत्यन्त ख़तरनाक मिशन पूरा करने तथा प्रचार सम्बन्धी यात्राएं सम्पन्न करने के बाद (उन्होंने राइन

प्रान्त में ऐन प्रशियाई फ़ौज के बीच में से पैलेटिनेट तोपख़ाने* के लिए घुड़सवार तोपची तक भर्ती किये) विलिख़ के सैनिक कोर की बेज़ान्सोन मज़दूरों की कम्पनी में भर्ती हो गये और मुर्ग की लड़ाई में रोटेनफ़ेल्स ब्रिज के सामने सिर में गोली लगने से मारे गये। दूसरी ओर, अब विलिख़ मैदान में उतरे। विलिख़ उन भावुक कम्युनिस्टों में से थे, जो १८४५ के बाद से पश्चिमी जर्मनी में कसरत से पाये जाते थे। अपनी इस भावुकता के कारण ही वह सहजभावी एवं प्रच्छन्न रूप से हमारी आलोचनात्मक प्रवृत्ति के विरोधी थे। इससे भी बड़ी बात यह थी कि वह पूरे एक पैग़म्बर थे, उन्हें इस बात का पक्का विश्वास था कि मैं जर्मन सर्वहारा का त्राता होकर दुनिया में आया हूं। इसलिए वह अपने को फ़ौजी अधिनायकत्व और राजनीतिक अधिनायकत्व दोनों ही का अधिकारी समझते थे। इस प्रकार वाइटलिंग के पुराने ईसाई कम्युनिज़्म के साथ एक तरह का कम्युनिस्ट इस्लाम आ जुड़ा था। परन्तु इस नये मज़हब का प्रचार फ़िलहाल विलिख़ की कमान के शरणार्थी सिपाहियों की बारिकों तक ही सीमित था।

अतः लीग का नये सिरे से संगठन किया गया। मार्च १८५० की 'चिट्ठी'** जारी की गयी (परिशिष्ट IX, अंक १[101]) और हेनरिक बावेर प्रणिधि के रूप में जर्मनी भेजे गये। मार्क्स और मेरे द्वारा तैयार की गयी यह 'चिट्ठी' आज भी दिलचस्पी की चीज़ है क्योंकि निम्न-पूंजीवादी जनवाद ही आज भी वह पार्टी है जिसे आगामी यूरोपीय उथल-पुथल में (यूरोपीय क्रान्तियां १८१५, १८३०, १८४८–१८५२, १८७० में हुईं, यानी हमारी शताब्दी में वे १५ से १८ साल के अन्तर पर हो रही हैं) कम्युनिस्ट मज़दूरों से समाज के रक्षक के रूप में जर्मनी में सबसे पहले सत्तारूढ़ होना है। अतः 'चिट्ठी' में जो बातें कही गयी हैं वे अधिकांशतः आज भी लागू होती हैं। हेनरिक बावेर को अपने कार्य में पूरी सफलता मिली। यह दुबला-पतला विश्वासयोग्य मोची जन्मजात कूटनीतिज्ञ था। बावेर लीग के भूतपूर्व सदस्यों को, जो एक हद तक ढीले और सुस्त पड़ गये थे और एक हद तक

---

*तात्पर्य क्रान्तिकारी फ़ौज के उस तोपख़ाने से है जो मई–जून १८४९ के बेडेन-पैलेटिनेट विद्रोह में प्रशियाई सरकार की सेना से लड़ा था।–सं०

**का० मार्क्स और फ़्रे० एंगेल्स, 'कम्युनिस्ट लीग के नाम केन्द्रीय समिति की चिट्ठी', मार्च १८५०।–सं०

ख़ुदमुख़्तार होकर काम कर रहे थे, फिर सक्रिय संगठन में लौटा लाये। ख़ास तौर से वह "मज़दूर बिरादरी" के उस समय के नेताओं को संगठन में ले आये। लीग १८४८ से पहले के काल से कहीं ज़्यादा बड़े पैमाने पर मज़दूरों और किसानों के संघों में तथा व्यायाम संघों में प्रभुत्वशील भूमिका अदा करने लगी, यहां तक कि शाखाओं को भेजी गयी अगली, जून १८५० की, तिमाही 'चिट्ठी'* में यह सूचना प्रकाशित की जा सकी कि बोन के शुर्ज़ नामक छात्र (बाद में अमरीका का भूतपूर्व मंत्री) ने निम्न-पूंजीवादी जनवाद के हित में जर्मनी का दौरा करते समय "सभी योग्य शक्तियों को लीग के हाथों में पाया है" (देखिये परिशिष्ट IX, अंक २)। निस्सन्देह लीग ही जर्मनी का एकमात्र क्रान्तिकारी संगठन थी जो कुछ महत्त्व रखती थी।

किन्तु यह संगठन किस उद्देश्य की सिद्धि करेगा, यह बहुत बड़ी मात्रा में इस बात पर निर्भर करता था कि क्रान्ति के एक नये उभार की सम्भावनाएं साकार होंगी या नहीं। और १८५० के दौरान इस बात के इमकान बराबर कम होते गये, दरअसल बिलकुल रह ही नहीं गये। १८४७ का औद्योगिक संकट, जिसने १८४८ की क्रान्ति का मार्ग प्रशस्त किया था, दूर हो चुका था; औद्योगिक समृद्धि का एक नया, अभूतपूर्व काल आरम्भ हो गया था। हर आदमी ने, जिसके आंखें थीं और जिसने उन्हें मूंद नहीं लिया था, ज़रूर यह साफ़-साफ़ महसूस किया होगा कि १८४८ का क्रान्तिकारी तूफ़ान धीरे-धीरे ठण्डा पड़ रहा था।

"इस आम समृद्धि के होते हुए, जिसमें पूंजीवादी समाज की उत्पादक शक्तियां पूंजीवादी सम्बन्धों के अन्दर सम्भव अधिकतम प्रचुरता के साथ विकास कर रही हैं, **सच्ची क्रान्ति की कोई बात ही नहीं की जा सकती।** ऐसी क्रान्ति उन कालावधियों में ही सम्भव है जब कि ये दोनों तत्त्व, अर्थात् आधुनिक उत्पादक शक्तियां और पूंजीवादी उत्पादक रूप एक दूसरे से टकराते हों। तरह-तरह के झगड़े, जो यूरोपीय महाद्वीप की अमन की पार्टी के अलग-अलग गुटों के प्रतिनिधिगण किया करते हैं, और जिनमें वे एक दूसरे को बदनाम करते हैं, नयी क्रान्तियों के लिए अवसर नहीं प्रदान करते। ऐसा

---

*का० मार्क्स और फ़्रे० एंगेल्स, 'कम्युनिस्ट लीग के नाम केन्द्रीय समिति की चिट्ठी', जून १८५०।—सं०

करना तो दूर रहा, उलटे वे आज सम्भव ही इसलिए हैं कि सामाजिक सम्बन्धों का आधार तात्कालिक रूप में इतना सुरक्षित, और – ख़ुद प्रतिक्रियावादी जिस चीज़ को नहीं जानते, – इतना **पूंजीवादी** है। पूंजीवादी विकास को रोकने की प्रतिक्रिया की सभी कोशिशें **इस आधारशिला से टकराकर उतने ही निश्चित रूप में विफल हो जायेंगी, जितने निश्चित रूप में जनवादियों का समस्त नैतिक आक्रोश और उनकी जोशीली घोषणाएं हो जायेंगी।**" ये शब्द मार्क्स ने और मैंने 'मई – अक्तूबर १८५० के सिंहावलोकन' में लिखे थे (*«Neue Rheinische Zeitung. Politisch-ökonomische Revue»*, खंड ५ और ६, हैम्बर्ग, १८५०, पृष्ठ १५३)*।

पर जब कि लेद्रू-रोलेन, लूई ब्लां, माज्ज़िनी, कोशुथ जैसे लोग और इनसे कम मशहूर जर्मनों में रूगे, किनकेल, गोएग आदि, सारे लोग भविष्य की अस्थायी सरकारें क़ायम करने के लिए, जो केवल उनके अपने-अपने देशों की न होकर समूचे यूरोप की होने वाली थीं, लन्दन में जमा थे, और जब पलक झपकते ही यूरोपीय क्रान्ति सम्पन्न कर देने और इस क्रान्ति के सहज परिणाम के रूप में विभिन्न देशों में जनतंत्र की स्थापना कर देने के लिए आवश्यकता सिर्फ़ अमरीका से क़र्ज़ के रूप में अपेक्षित धन प्राप्त कर लेने मात्र की थी, ऐसे समय वस्तुस्थिति का हमारा उपरोक्त उत्साहशून्य मूल्यांकन बहुतों को कुफ़्र ज्ञात हुआ। यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि विलिख़ जैसा आदमी इस चक्कर में पड़ गया, कि शापर ने भी अपनी पुरानी क्रान्तिकारी भावना में बहकर अपने को इस सब्ज़बाग़ में फंस जाने दिया, और लन्दन के मज़दूरों का अधिकतर भाग, जो स्वयं बड़ी हद तक शरणार्थियों का था, इनके पीछे चलकर क्रान्ति के पूंजीवादी-जनवादी कृत्रिम निर्माताओं के ख़ेमे में चला गया। इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि हमारा मनोसंवरण इन लोगों के मन को न भाया। उनका ख़्याल था कि क्रान्ति की रचना करने के खेल में हम लोगों को भी शामिल होना चाहिए था। हमने ऐसा करने से अत्यन्त दृढ़तापूर्वक इनकार कर दिया। हमारे यहां फूट पड़ गयी। इसके बारे में विशेष जानकारी 'रहस्योद्घाटन'** से प्राप्त की जा

---

* **का० मार्क्स और फ़्रे० एंगेल्स**, 'कम्युनिस्ट लीग के नाम केन्द्रीय समिति की चिट्ठी', जून १८५०। – सं०

** **का० मार्क्स**, 'कोलोन के कम्युनिस्ट मुक़दमे के बारे में रहस्योद्घाटन'। – सं०

सकती है। इसके बाद हैम्बर्ग में नौथयुंग और फिर हौप्ट भी गिरफ़्तार हो गये। हौप्ट ने ग़द्दारी की, उसने कोलोन की केन्द्रीय समिति के सदस्यों के नाम बता दिये और मुक़दमे में मुख्य गवाह बनाया गया। पर उसके रिश्तेदार बदनामी नहीं मोल लेना चाहते थे, इसलिए उन्होंने उसे रायो-डि-जनीरो रवाना कर दिया। बाद में वहां वह व्यापारी बन गया और अपनी सेवाओं के पुरस्कारस्वरूप पहले प्रशा का और फिर जर्मनी का कौंसल-जनरल बना दिया गया। वह फिर यूरोप वापस आ गया है।*

'रहस्योद्घाटन' की बेहतर समझ के लिये मैं कोलोन के मुक़दमे के अभियुक्तों की सूची दे रहा हूं: १) पी०जी रोज़र, सिगार बनाने वाले; २) हेनरिक बर्गर्स, जिनकी बाद में जब वह विधान-सभा के प्रगतिवादी[102] सदस्य थे, मृत्यु हो गयी; ३) पीटर नौथयुंग, दर्ज़ी, जो ब्रेस्लाऊ में फ़ोटोग्राफ़र का काम करने लगे थे और वहीं कुछ साल पहले उनकी मृत्यु हुई; ४) वि० जो० रैफ़; ५) डॉ० हर्मन बेकर, इस समय कोलोन के मेयर और उच्च सदन के सदस्य हैं; ६) डॉ० रोलान्ड डैनिएल्स, चिकित्सक, जिन्हें जेल में ही तपेदिक़ हो गयी और उसके कारण मुक़दमे के कुछ वर्षों के बाद उनकी मृत्यु हो गयी; ७) कार्ल ओटो, रसायनविज्ञानी; ८) डॉ० अब्राहम जैकोबी, जो इस समय न्यूयार्क में चिकित्सक हैं; ९) डॉ० जो० जै० क्लैन, जो कोलोन में चिकित्सक और नगर सभासद हैं; १०) फ़र्दीनांद फ़्रैलिगराथ, जो पहले ही लन्दन पहुंच गये थे; ११) जो० लु० एर्हार्ड, क्लर्क; १२) फ़्रेडरिक लेसनर, दर्ज़ी, जो अब लन्दन में हैं। इनका खुला मुक़दमा जूरी के समक्ष ४ अक्तूबर से १२ नवम्बर १८५२ तक चला; राजद्रोह के अपराध में रोज़र, बर्गर्स और नौथयुंग को छः साल, रैफ़, ओटो और बेकर को पांच साल और लेसनर

*शापर की सातवें दशक के अन्त में लन्दन में मृत्यु हो गयी। विलिख़ ने अमरीकी गृह-युद्ध में शामिल होकर काफ़ी नाम कमाया। वह ब्रिगेडियर जनरल हो गये। मुफ़्रीज़बोरो (टेनेसी) की लड़ाई में उनके सीने में गोली लगी, पर जान बच गयी और कोई दस साल पहले अमरीका में उनकी मृत्यु हुई। उल्लिखित अन्य व्यक्तियों के बारे में मैं इतना ही कहूंगा कि हेनरिक बावेर आस्ट्रेलिया चले गये जिसके बाद पता नहीं कि उनका क्या हुआ और वाइटलिंग तथा एवरबेक की अमरीका में मृत्यु हुई। (एंगेल्स का नोट।)

को तीन साल की फ़ौजी क़िले में क़ैद की सज़ा मिली। डैनिएल्स, क्लैन, जैकोबी ग्रौर एर्हार्ड रिहा कर दिये गये।

कोलोन के मुक़दमे के साथ जर्मन कम्युनिस्ट मज़दूर ग्रान्दोलन के प्रथम चरण का ग्रन्त हुग्रा। सज़ा सुनाये जाने के तुरंत बाद हमने ग्रपनी लीग को भंग कर दिया; कुछ ही महीनों के बाद विलिख़ – शापर की Sonderbund[103] (पृथक् संघ) भी कालकवलित हुई।

* * *

उस समय ग्रौर ग्राज के बीच एक पूरी पीढ़ी का व्यवधान है। उस समय जर्मनी दस्तकारी ग्रौर हस्त श्रम पर ग्राधारित घरेलू उद्योग का देश था। ग्राज वह एक बड़ा ग्रौद्योगिक देश है जिसका ग्रौद्योगिक रूपान्तरण ग्रब भी जारी है। उस समय ऐसे मज़दूरों को, जिनको मज़दूर की हैसियत से ग्रपनी स्थिति का ग्रौर पूंजी से ग्रपने ऐतिहासिक-ग्रार्थिक विरोध का ज्ञान हो, चिराग़ लेकर ढूंढ़ना होता था, क्योंकि यह विरोध स्वयमेव ग्रभी विकसित होना शुरू ही हुग्रा था। पर ग्राज समूचे जर्मन सर्वहारा को ग्रसाधारण क़ानूनों के ग्रन्तर्गत केवल इसलिए रखना पड़ता है कि उत्पीड़ित वर्ग के रूप में ग्रपनी स्थिति की पूर्ण चेतना के विकास की प्रक्रिया कुछ धीमी की जा सके। उस समय उन थोड़े-से व्यक्तियों को, जिनकी बुद्धि ने तल तक पैठकर सर्वहारा की ऐतिहासिक भूमिका का बोध प्राप्त किया था, चुपके-चुपके मिलना-जुलना पड़ता था, ग्रौर ३ से २० व्यक्तियों की छोटी-मोटी शाखाग्रों में गुप्त रूप से ग्रपनी बैठकें करनी पड़ती थीं। ग्राज जर्मन सर्वहारा को किसी ग्रधिकृत ग्रथवा गुप्त संगठन की ग्रावश्यकता नहीं रह गयी है। समान विचार रखने वाले वर्ग-साथियों का सीधा-सादा, स्वतःप्रगट परस्पर सम्बन्ध ही – बिना किसी नियमावली, समिति, प्रस्ताव या ग्रन्य मूर्त रूपों के – पूरे जर्मन साम्राज्य की नींव हिला देने के लिए काफ़ी है। बिस्मार्क जर्मनी की सीमाग्रों के बाहर यूरोप का भाग्यविधाता है, किन्तु इन सीमाग्रों के ग्रन्दर जर्मन सर्वहारा की भीम काया, जिसके बारे में मार्क्स ने १८४४ में ही भविष्यवाणी की थी, दिनोंदिन विराट् रूप धारण करती जा रही है। इस भीम के लिए कूपमण्डूकों के वास्ते बनी शाही इमारत ग्रभी से ही नाकाफ़ी होती जा रही है। उसका विराट् शरीर ग्रौर उसके चौड़े कंधे इस तरह बढ़ रहे हैं कि एक दिन वह घड़ी ग्राने वाली है जब उसके ग्रपनी सीट से उठ खड़े होने मात्र

से ही शाही संविधान की सम्पूर्ण इमारत ढह पड़ेगी। इतना ही नहीं। यूरोपीय और अमरीकी सर्वहारा का अन्तर्राष्ट्रीय आन्दोलन इतना बलशाली हो गया है कि उसका पहला संकीर्ण रूप, अर्थात् गुप्त लीग ही नहीं, अपितु उसका दूसरा, कहीं अधिक व्यापक रूप, यानी खुला अन्तर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ भी उसके लिए बन्धन बन गया है, और वर्ग-स्थिति की समानता के बोध पर आधारित एकजुटता की सीधी-सादी भावना ही सभी देशों और सभी भाषाभाषी मज़दूरों के बीच सर्वहारा की एक अभिन्न महान् पार्टी का सृजन करने तथा उसकी एकता क़ायम रखने के लिए काफ़ी है। जिस सिद्धान्त का लीग ने १८४७ से १८५२ तक प्रतिनिधित्व किया था और जिसको उस समय हमारे बुद्धिशाली कूपमण्डूकगण कंधों को एक हल्की-सी जुंबिश देकर पागलों का प्रलाप कहकर, इक्के-दुक्के संकीर्णतावादियों का गुप्त सिद्धान्त कहकर उड़ा दिया करते थे, उसके आज दुनिया के सभी सभ्य देशों – साइबेरियाई खानों के निर्वासितों से लेकर कैलिफ़ोर्निया के स्वर्ण-खनकों तक – के अन्दर अनगिनत अनुयायी मौजूद हैं। और इस सिद्धान्त के प्रणेता, कार्ल मार्क्स, जिनके ऊपर घृणा और बदनामियों की अभूतपूर्व बौछार की गयी थी, अपनी मृत्यु के समय पुरानी और नयी दुनिया – दोनों में सर्वहारा वर्ग के सतत् सलाहकार थे जिनकी सलाह हमेशा मांगी जाती थी और जो उसे देने को सतत् तत्पर रहते थे।

फ़्रेडरिक एंगेल्स

लन्दन, ८ अक्तूबर, १८८५

Karl Marx «*Enthüllungen über den Kommunisten-Prozeß zu Köln*». Hottingen-Zürich, 1885, में तथा «*Der Sozialdemokrat*» समाचारपत्र (अंक ४६–४८; १२, १९ और २६ नवम्बर, १८८५) में प्रकाशित।

पुस्तक के मूलपाठ के अनुसार मुद्रित। मूल जर्मन।

फ़्रेडरिक एंगेल्स

परिवार, निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति[101]

१८८४ के पहले संस्करण की भूमिका

निम्नलिखित अध्याय कुछ मानों में एक अंतिम अभिलाषा की पूर्त्ति हैं। स्वयं कार्ल मार्क्स की यह योजना थी कि मौर्गन की खोज के परिणामों को उन निष्कर्षों के साथ सम्बद्ध करते हुए पेश करें जिन पर वह – कुछ सीमाओं के अन्दर मैं कह सकता हूं कि हम दोनों – इतिहास का भौतिकवादी दृष्टिकोण से अध्ययन करने के बाद पहुंचे थे, और इस तरह उनके पूरे महत्त्व को स्पष्ट करें। कारण कि मौर्गन ने अपने ढंग से अमरीका में इतिहास की उस भौतिकवादी धारणा का पुन: आविष्कार किया था, जिसका मार्क्स चालीस साल पहले पता लगा चुके थे, और बर्बर युग तथा सभ्यता के युग का तुलनात्मक अध्ययन करके इस धारणा के आधार पर वह, मुख्य बातों में, उन्हीं नतीजों पर पहुंचे थे जिन पर मार्क्स पहुंचे थे। और जिस तरह जर्मनी के अधिकृत अर्थशास्त्री वर्षों तक मनोयोग के साथ 'पूंजी' की नक़ल करने के साथ-साथ उसे अपनी ख़ामोशी के द्वारा दबा देने में बराबर ही लगे रहे थे, उसी तरह का व्यवहार इंगलैंड के "प्रागैतिहासिक" विज्ञान के प्रवक्ताओं ने मौर्गन की पुस्तक 'प्राचीन समाज'* के साथ किया। जो काम पूरा करना मेरे दिवंगत

---

* «*Ancient Society, or Researches in the Lines of Human Progress from Savagery through Barbarism to Civilization*». By Lewis H. Morgan. London, Macmillan& Co. 1877. ('प्राचीन समाज, या जांगल युग से लेकर और बर्बर युग से होते हुए सभ्यता के युग तक मानव प्रगति की धाराओं की खोज')। यह पुस्तक अमरीका में छपी थी और इंगलैंड में असाधारण कठिनाई से मिलती है। लेखक की, चन्द वर्ष हुए, मृत्यु हो गई। (एंगेल्स का नोट।)

मित्र को न बदा था, उसकी कमी को मेरी यह रचना कुछ ही हद तक पूरा कर सकती है। परन्तु मौर्गन की पुस्तक से लिये लम्बे-लम्बे उद्धरणों के साथ मार्क्स ने जो ग्रालोचनात्मक टिप्पणियां* लिखी थीं, वे मेरे सामने मौजूद हैं और उनको मैंने, जहां भी सम्भव हो सका है, उद्धृत किया है।

भौतिकवादी धारणा के ग्रनुसार, इतिहास में ग्रन्ततोगत्वा निर्णायक तत्त्व तात्कालिक जीवन का उत्पादन ग्रौर पुनरुत्पादन है। परन्तु यह ख़ुद दो प्रकार का होता है। एक ग्रोर तो जीवन-निर्वाह के, भोजन, परिधान तथा ग्रावास के साधनों तथा इन चीज़ों के लिए ग्रावश्यक ग्रौज़ारों का उत्पादन होता है, ग्रौर दूसरी ग्रोर, स्वयं मनुष्यों का उत्पादन, यानी जाति-प्रसारण होता है। किसी विशेष ऐतिहासिक युग तथा किसी विशेष देश के लोग जिन सामाजिक संस्थाग्रों के ग्रन्तर्गत रहते हैं, वे इन दोनों प्रकार के उत्पादनों से, ग्रर्थात् एक ग्रोर श्रम के विकास की ग्रवस्था ग्रौर दूसरी ग्रोर परिवार के विकास की ग्रवस्था से निर्धारित होती हैं। श्रम का विकास जितना ही कम होता है, तथा श्रम-उत्पादन की मात्रा जितनी ही कम होती है, ग्रौर इसलिए समाज की सम्पदा जितनी ही सीमित होती है, समाज-व्यवस्था में यौन-सम्बन्धों का प्रभुत्व उतना ही ग्रधिक जान पड़ता है। लेकिन यौन-सम्बन्धों पर ग्राधारित इस समाज-व्यवस्था के भीतर श्रम की उत्पादन-क्षमता ग्रधिकाधिक बढ़ती जाती है, उसके साथ निजी सम्पत्ति ग्रौर विनिमय बढ़ते हैं, धन का ग्रन्तर बढ़ता है, दूसरों की श्रम-शक्ति को इस्तेमाल करने की सम्भावना बढ़ती है, ग्रौर वर्ग-विरोधों का ग्राधार तैयार होता है। नये सामाजिक तत्त्व बढ़ते हैं जो कई पीढ़ियों के दौरान समाज की पुरानी व्यवस्था को नयी ग्रवस्थाग्रों के ग्रनुकूल ढालने की कोशिश करते हैं, यहां तक कि ग्रन्त में दोनों के बेमेल होने के कारण एक पूर्ण क्रान्ति हो जाती है। यौन-सम्बन्धों पर ग्राधारित जन-समूहों की नींव पर खड़ा पुराना समाज नव-विकसित सामाजिक वर्गों की टक्करों में ध्वस्त हो जाता है; उसकी जगह राज्य के रूप में संगठित एक नया समाज ले लेता है, जिसकी नीचे की इकाइयां यौन-सम्बन्धों पर ग्राधारित जन-समूह नहीं, बल्कि क्षेत्रीय जन-समूह होती हैं, जिसमें पारिवारिक व्यवस्था पूरी तरह सम्पत्ति की व्यवस्था के ग्रधीन होती है, ग्रौर

* एंगेल्स यहां कार्ल मार्क्स के ''मौर्गन के प्राचीन समाज' का सारांश' का ज़िक्र कर रहे हैं। — सं०

जिसमें वे वर्ग-विरोध तथा वर्ग-संघर्ष अब ख़ूब खुलकर बढ़ते हैं, जो अब तक के समस्त लिखित इतिहास की विषयवस्तु हैं।

मौर्गन की महानता इस बात में है कि उन्होंने मोटे रूप में हमारे लिखित इतिहास के इस प्रागैतिहासिक आधार का पता लगाया और उसका पुनर्निर्माण किया। उनकी महानता इस बात में भी है कि उन्होंने उत्तरी अमरीका के आदिवासियों के यौन-सम्बन्धों पर आधारित जन-समूहों के रूप में वह कुंजी ढूंढ़ निकाली जिससे प्राचीनतम यूनानी, रोमन तथा जर्मन इतिहास की सबसे महत्त्वपूर्ण तथा अभी तक अनबूझ बनी हुई पहेलियों को सुलझाया जा सकता था। परन्तु उनकी पुस्तक एक दिन का काम नहीं थी। लगभग चालीस वर्ष तक, जब तक कि वह अपनी सामग्री को पूरी तरह से समझ लेने में कामयाब न हो गये, वह उसके साथ जूझते रहे। यही कारण है कि उनकी पुस्तक हमारे काल की इनी-गिनी युगान्तरकारी रचनाओं में से एक है।

आगे के पृष्ठों में जो व्याख्या दी गयी है उसमें, पाठक आम तौर पर आसानी से यह पहचान लेंगे कि कौनसी बातें मौर्गन की पुस्तक से ली गयी हैं और कौनसी मैंने ख़ुद जोड़ी हैं। यूनान और रोम की चर्चा करनेवाले ऐतिहासिक अंशों में मैंने अपने को केवल मौर्गन की सामग्री तक ही सीमित नहीं रखा, बल्कि मेरे पास जो मसाला मौजूद था, उसका भी इस्तेमाल किया है। केल्ट और जर्मन लोगों से सम्बन्धित हिस्से मुख्यतया मेरे अपने हैं; इस विषय में मौर्गन के पास जो सामग्री थी वह प्रायः सभी की सभी मूल रूप में उनकी अपनी न थी, और जहां तक जर्मन परिस्थितियों का सम्बन्ध है, एक तासितुस को छोड़कर, उन्हें मूल सामग्री के रूप में केवल श्री फ़्रीमैन की भ्रष्ट उदारपंथी झुठाइयां ही उपलब्ध थीं। मौर्गन के उद्देश्य के लिए आर्थिक तर्क भले ही पर्याप्त रहे हों, पर मेरे उद्देश्य के लिए वे बिलकुल अपर्याप्त थे; इसलिए उन्हें मैंने ख़ुद नये सिरे से विशद रूप में प्रस्तुत किया है। और अंतिम बात, ज़ाहिर है, यह कि उन हिस्सों को छोड़कर जहां मौर्गन को स्पष्ट रूप में उद्धृत किया गया है, यहां जो भी नतीजे निकाले गये हैं, उन सब की ज़िम्मेदारी मेरे ऊपर है।

२६ मई, १८८४, के क़रीब लिखित।

Friedrich Engels. «*Der Ursprung der Familie, des Privateigenthums und des Staats*». Hottingen-Zürich, 1884, में प्रकाशित।

१८९१ के चौथे जर्मन संस्करण के मूलपाठ के अनुसार मुद्रित।

१८९१ के चौथे जर्मन संस्करण की भूमिका

इस रचना के पिछले बड़े संस्करण लगभग छः महीने से अप्राप्य हैं और प्रकाशक* कुछ समय से चाहते रहे हैं कि मैं इसका एक नया संस्करण तैयार करूं। कुछ ज्यादा जरूरी कामों में फंसा रहने के कारण अभी तक मैं इस काम को न कर सका था। पहला संस्करण निकले सात वर्ष हो गये हैं, और इस काल में परिवार के प्रारम्भिक रूपों के विषय में हमारे ज्ञान में महत्त्वपूर्ण वृद्धि हुई है। इसलिए, आवश्यक था कि पुस्तक के मूलपाठ में प्रवर्द्धन और सुधार का काम लगन के साथ किया जाये – ख़ास तौर पर इसलिए कि इस नये पाठ के स्टीरियो-मुद्रण का विचार है जिससे आगे कुछ समय के लिए पुस्तक में और परिवर्तन करना मेरे लिए असंभव हो जायेगा।

अतएव, मैंने पूरी किताब को ध्यानपूर्वक संशोधित किया है और उसमें कई जगह नयी बातें जोड़ी हैं, जिनमें, मैं आशा करता हूं, विज्ञान की वर्तमान अवस्था का पूरा-पूरा ध्यान रखा गया है। इसके अलावा, इस भूमिका में, मैंने बाख़ोफ़ेन से लेकर मौर्गन तक, परिवार के इतिहास के विकास पर एक सरसरी नज़र डाली है। यह मुख्यतया इसलिए कि प्रागैतिहासिक काल के अंग्रेज़ इतिहासकार, जिन पर अंधराष्ट्रवाद का असर है, आज भी इस बात की भरसक कोशिश कर रहे हैं कि आदिम समाज के इतिहास की हमारी धारणाओं में मौर्गन की खोजों ने जो क्रांति की है, उसकी चुप्पी साधकर हत्या कर डाली जाये, हालांकि मौर्गन की खोजों के परिणामों को हथिया लेने में वे ज़रा भी नहीं हिचकिचाते। अन्य देशों में भी बहुत अक्सर अंग्रेज़ों के इस उदाहरण का अनुकरण होता है।

---

* जो० दीत्स। – सं०

मेरी रचना का कई भाषाओं में अनुवाद हो चुका है। सबसे पहले उसका इतालवी भाषा में अनुवाद हुआ, जो «*L'origine della famiglia, della proprietà privata e dello stato, versione riveduta dall'autore di Pasquale Martignetti*» नाम से १८८५ में बेनेवेन्टो से प्रकाशित हुआ था। उसके बाद रूमानियाई अनुवाद «*Origina familiei, proprietatei private și a statului, traducere de Joan Nadejde*» नाम से यास्सी से प्रकाशित होनेवाली पत्रिका «*Contemporanul*»[105] में सितम्बर १८८५ से मई १८८६ तक निकला। इसके बाद डेनिश भाषा में इसका अनुवाद «*Familjens, Privatejendommens og Statens Oprindelse, Dansk af Forfatteren gennemgaaet Udgave, besørget af Gerson Trier*» नाम से १८८८ में कोपेनहेगेन से प्रकाशित हुआ। इस जर्मन संस्करण पर आधारित आंरी रावे का किया हुआ फ़्रांसीसी अनुवाद छप रहा है।

* * *

सातवें दशक के प्रारम्भ तक परिवार का इतिहास नाम की कोई वस्तु नहीं थी। इस क्षेत्र में इतिहास विज्ञान उस समय तक पूरी तरह इंजील के उन पांच अध्यायों के असर में था, जिनमें मूसाई शरीअत का जिक्र है। इन अध्यायों में विस्तार से वर्णित – उसका इतना विस्तृत वर्णन और कहीं नहीं मिलता – परिवार के पितृसत्तात्मक रूप को न केवल परिवार का सबसे प्राचीन रूप मान लिया गया था, बल्कि – बहु-पत्नी प्रथा को छोड़कर – उसे और वर्तमान काल के पूंजीवादी परिवार को एक ही चीज समझ लिया गया था, मानो परिवार वास्तव में किसी ऐतिहासिक विकास से गुज़रा ही नहीं है। अधिक से अधिक बस इतना माना जाता था कि सम्भव है कि आदिम काल में यौन-स्वच्छन्दता का कोई युग रहा हो। इसमें शक नहीं कि एक-निष्ठ विवाह के अलावा उस समय भी लोगों को पूर्वीय बहु-पत्नी प्रथा और भारत-तिब्बतीय बहु-पति प्रथा का ज्ञान था। लेकिन इन तीन रूपों को किसी ऐतिहासिक क्रम में नहीं रखा जा सका था और वे साथ-साथ तथा असम्बद्ध रूप में मौजूद दिखाई पड़ते थे। प्राचीन काल की कुछ जातियों में और आजकल के कुछ जांगलियों में भी वंश पिता के नाम से नहीं, बल्कि माता के नाम से चलता है, और इसलिए उनमें केवल स्त्री-परम्परा ही वैध मानी जाती है। वर्तमान काल की बहुत-सी जातियों में कतिपय निश्चित प्रकार के बड़े-बड़े समूहों में विवाह करने पर बंधन लगा हुआ है, और यह प्रथा

संसार के सभी भागों में पायी जाती है, हालांकि उनके विषय में उस वक़्त तक अधिक निकट से खोज नहीं की गयी थी। इन तथ्यों की उस समय भी लोगों को जानकारी थी और उनके नित नये उदाहरण प्रकाश में आ रहे थे। पर इन तथ्यों को लेकर क्या किया जाये, यह कोई नहीं जानता था। यहां तक कि ई०बी० टाइलर की पुस्तक «*Researches into the Early History of Mankind, etc.*» (१८६५) में इन बातों को उसी तरह की "विचित्र प्रथाओं" की श्रेणी में डाल दिया गया, जैसे कुछ जांगलियों में जलती लकड़ी को लोहे के औज़ारों से छूने के निषेध की प्रथा या ऐसी ही अन्य धार्मिक मूर्खताओं को।

परिवार के इतिहास का अध्ययन १८६१ से आरम्भ हुआ जबकि बाख़ोफ़ेन की पुस्तक «*Mother Right*» प्रकाशित हुई थी। इस रचना में लेखक ने नीचे लिखी प्रस्थापनाओं को पेश किया है: १) आरम्भ में मानवजाति यौन-स्वच्छन्दता की अवस्था में रहती थी जिसे लेखक ने दुर्भाग्य से हैटेरिज़्म «hetaerism» (गणिका प्रथा) का नाम दे दिया है; २) इस स्वच्छन्दता के कारण किसी के भी बारे में निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता था कि उसका पिता कौन था, इसलिए वंश केवल माता के नाम से–मातृ-सत्ता के अनुसार ही–चल सकता था, और शुरू में प्राचीन काल की सभी जातियों में यह बात पायी जाती थी; ३) चूंकि नयी पीढ़ी की केवल माताओं के बारे में ही निश्चय हो सकता था, इसलिए स्त्रियों का बहुत आदर और सम्मान किया जाता था, जो बाख़ोफ़ेन के विचार में इतना बढ़ गया था कि पूरा शासन ही स्त्रियों के हाथ में था (gynaecocracy); ४) एकनिष्ठ विवाह की प्रथा के, जिसमें नारी पर केवल एक पुरुष का अधिकार माना जाता था, जारी होने का अर्थ आदिम धार्मिक आदेश का उल्लंघन था (अर्थात् वास्तव में, एक ही स्त्री पर अन्य पुरुषों के प्राचीन परम्परागत अधिकार का उल्लंघन था), और इसलिए, इस उल्लंघन की क्षतिपूर्त्ति के लिए या उसके प्रति सहिष्णुता का मूल्य चुकाने के लिए पति को स्त्री को एक निश्चित समय के लिए पर-पुरुषों के सामने समर्पित करना पड़ता था।

इन प्रस्थापनाओं का प्रमाण बाख़ोफ़ेन को प्राचीन काल के साहित्य में मिला था जिसमें से उन्होंने असाधारण अध्यवसाय के साथ ऐसे अनगिनत अंश जमा किये थे। उनके मतानुसार "हैटेरिज़्म" से एकनिष्ठ विवाह में

और मातृ-सत्ता से पितृ-सत्ता में जो परिवर्तन हुआ, वह, – विशेषकर यूनानी लोगों में, – धार्मिक विचारों के विकास तथा पुराने दृष्टिकोण के प्रतिनिधि पुराने परम्परागत देवकुल में नये दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करनेवाले नये देवताओं के प्रवेश करने के परिणामस्वरूप हुआ, जिन्होंने पुराने देवताओं को अधिकाधिक पीछे ढकेलकर पृष्ठभूमि में कर दिया। इस प्रकार, बाख़ोफ़ेन के मतानुसार, पुरुष और नारी की पारस्परिक सामाजिक स्थिति में जो ऐतिहासिक परिवर्तन हुए हैं उनका कारण उन ठोस अवस्थाओं का विकास नहीं है जिन में मनुष्य रहते हैं, बल्कि उनका कारण मनुष्यों के दिमाग़ों में जीवन की इन परिस्थितियों का धार्मिक प्रतिबिम्ब है। अतः बाख़ोफ़ेन का कहना है कि ईस्खिलस के नाटक 'ओरेस्तिया' में पतनोन्मुख मातृ-सत्ता और विकासोन्मुख तथा विजयी पितृ-सत्ता के उस संघर्ष का चित्रण किया गया है जो वीर काल में चला था। क्लितेम्नेस्त्रा ने अपने प्रेमी एगीस्थस की ख़ातिर अपने पति एगामेम्नोन की हत्या कर डाली, जोकि अभी हाल में त्रोय के युद्ध से लौटा था; लेकिन उसका पुत्र ओरेस्तस, जो एगामेम्नोन से पैदा हुआ था, पिता की हत्या का बदला लेने के लिए अपनी मां को मार डालता है। इस पर मातृ-सत्ता की रक्षिकाएं एरिनी राक्षसियां ओरेस्तस का पीछा करती हैं, क्योंकि मातृ-सत्ता के नियमों के अनुसार मातृ-हत्या सबसे जघन्य अपराध है जिसका कोई प्रायश्चित नहीं है। परन्तु एपोलो, जिसने अपनी मन्दिरवाणी के द्वारा ओरेस्तस को यह कृत्य करने के लिए उकसाया था, और एथेना, जिसे पंच बनाया जाता है – ये दोनों पितृ-सत्ता पर आधारित नयी व्यवस्था के प्रतिनिधि हैं – ओरेस्तस की रक्षा करते हैं। एथेना दोनों पक्षों की बात सुनती है। ओरेस्तस और एरिनी में जो बहस होती है, उसमें इस पूरे विवाद का सार संक्षेप में प्रस्तुत किया गया है। ओरेस्तस कहता है कि क्लितेम्नेस्त्रा ने दोहरा अपराध किया हैं, क्योंकि **अपने** पति की हत्या करके उसने **मेरे** पिता को भी मार डाला है। इसलिए एरिनी राक्षसियां मेरे पीछे क्यों पड़ी हुई हैं; उन्होंने क्लितेम्नेस्त्रा का पीछा क्यों नहीं किया, उसने तो कहीं बड़ा अपराध किया है। जवाब बहुत मार्के का है:

"जिस नर की उसने हत्या की,
नहीं रक्त का था उससे सम्बन्ध"*

* ईस्खिलस, 'ओरेस्तिया'। – सं०

जिस पुरुष से उस पुरुष की हत्या करनेवाली नारी का कोई रक्त-सम्बन्ध नहीं है, भले ही वह उसका पति क्यों न हो, उसकी हत्या परिमार्जनीय है और इसलिए एरिनी राक्षसियों का उससे कोई वास्ता नहीं है। उनका काम तो रक्त-सम्बन्धियों की हत्याओं का बदला लेना है, और इनमें भी सबसे अधिक जघन्य हत्या, मातृ-सत्ता के नियमों के अनुसार, माता की हत्या है। अब ओरेस्तस की तरफ़ से एपोलो बहस में कूदता है। एथेना एरियोपेगाइटीज़ नामक एथेंस के जूरियों से मसले के बारे में अपना मत देने को कहती है। अभियुक्त को बरी कर देने के पक्ष में और सज़ा देने के पक्ष में बराबर-बराबर मत पड़ते हैं। तब अदालत की अध्यक्षा होने के नाते एथेना ओरेस्तस के पक्ष में अपना मत देती है और उसे बरी कर देती है। मातृ-सत्ता पर पितृ-सत्ता की विजय होती है। ख़ुद एरिनी राक्षसियों के शब्दों में "छोटे वंश के देवता" एरिनी राक्षसियों पर विजय प्राप्त करते हैं; और एरिनी राक्षसियां अन्त में नया पद स्वीकार करके नयी व्यवस्था की सेवा करने के लिये क़ायल की जाती हैं।

'ओरेस्तिया' की यह नयी, लेकिन बिलकुल सही व्याख्या जिन पृष्ठों में दी गयी है, वे बाख़ोफ़ेन की पूरी पुस्तक का सबसे अच्छा और सबसे सुन्दर अंश हैं। परन्तु साथ ही उनसे यह बात भी साफ़ हो जाती है कि ख़ुद बाख़ोफ़ेन को भी एरिनी राक्षसियों, एपोलो और एथेना में कम से कम उतना ही विश्वास है जितना ईस्खिलस को अपने काल में था, बल्कि लगता है कि बाख़ोफ़ेन को वाक़ई यक़ीन है कि यूनान में वीर काल में इन्हीं देवताओं ने मातृ-सत्ता को हटाने और उसकी जगह पितृ-सत्ता को क़ायम करने का चमत्कारपूर्ण कार्य सम्पन्न किया था। ज़ाहिर है कि धर्म को विश्व-इतिहास का निर्णायक प्रेरक तत्त्व समझनेवाले इस दृष्टिकोण की परिणति अन्त में घोर रहस्यवाद में ही हो सकती है। इसलिए बाख़ोफ़ेन की मोटी चौपेजी पोथी को पढ़ जाना काफ़ी कठिन काम है और उसे पढ़ना सदैव लाभकर भी नहीं है। परन्तु इन सब बातों से एक अग्रगामी अनुसंधानकर्त्ता के रूप में बाख़ोफ़ेन की महानता कम नहीं होती। कारण कि वह पहले आदमी थे जिन्होंने आदिम काल की उस अज्ञात अवस्था के विषय में, जिसमें स्वच्छन्द यौन-व्यापार चलता था, मात्र शब्दजाल के बजाय यह साबित कर दिखाया कि प्राचीन चिरप्रतिष्ठित साहित्य में इस अवस्था के बहुत सारे चिह्न बिखरे पड़े हैं, जिनसे पता चलता है कि यूनानी तथा एशियाई लोगों

में एकनिष्ठ विवाह की प्रथा जारी होने के पहले यह अवस्था वास्तव में पायी जाती थी और उसमें न केवल पुरुष एक से अधिक स्त्रियों के साथ सम्भोग करता था, बल्कि स्त्री भी एक से अधिक पुरुषों के साथ सम्भोग करती थी, और इससे प्रचलित प्रथा का कोई उल्लंघन नहीं होता था। उन्होंने साबित कर दिखाया कि यह प्रथा तो मिट गयी, किन्तु पर-पुरुषों के आगे स्त्रियों के सीमित आत्मसमर्पण के रूप में अपना चिह्न छोड़ गयी, जिसके द्वारा स्त्रियां एकनिष्ठ विवाह करने का अधिकार ख़रीदने को मजबूर होती थीं। उन्होंने साबित कर दिखाया कि उपरोक्त कारणों से शुरू में केवल स्त्रियों के नाम से ही, एक माता के बाद दूसरी माता के नाम से ही, वंश-परम्परा चल सकती थी, और निश्चित, या कम से कम मान्य पितृत्व के साथ एकनिष्ठ विवाह के प्रचलन के बहुत दिन बाद तक भी एकमात्र स्त्री-परम्परा की वैधता मानी जाती रही। उन्होंने साबित कर दिखाया कि शुरू में चूंकि बच्चों की केवल माता के बारे में ही निश्चय हो सकता था, इसलिए माता का, और आम तौर पर स्त्रियों का समाज में इतना ऊंचा स्थान था, जितना कि उनको बाद में कभी नहीं मिला। बाख़ोफ़ेन ने इन तमाम प्रस्थापनाओं को इतनी स्पष्टता के साथ नहीं रखा था, उनका रहस्यवाद उनके ऐसा करने में बाधक हुआ। परन्तु उन्होंने साबित कर दिखाया कि ये तमाम प्रस्थापनाएं सही हैं, और १८६१ में यह एक पूरी क्रान्ति कर डालने के बराबर था।

बाख़ोफ़ेन का मोटा पोथा जर्मन में, यानी उस जाति की भाषा में लिखा गया था जो उस ज़माने में आधुनिक परिवार के प्रागैतिहासिक काल में सबसे कम दिलचस्पी लेती थी। इसलिए वह अज्ञात ही बने रहे। इस क्षेत्र में उनके एकदम बाद के उत्तराधिकारी, जिन्होंने बाख़ोफ़ेन का नाम भी नहीं सुना था, १८६५ में सामने आये।

यह उत्तराधिकारी जे० एफ़० मैक-लेनन थे। अपने पूर्ववर्ती के वह बिलकुल उल्टे थे। बाख़ोफ़ेन यदि प्रतिभाशाली रहस्यवादी थे, तो मैक-लेनन एकदम नीरस वकील। बाख़ोफ़ेन यदि कवि की उर्वर कल्पना से काम लेते थे, तो मैक-लेनन अदालत में बहस करनेवाले वकील की तरह अपने तर्क पेश करते थे। मैक-लेनन ने प्राचीन तथा आधुनिक काल की बहुत-से जांगल, बर्बर और यहां तक कि सभ्य जातियों में भी विवाह के एक ऐसे रूप का पता लगाया था जिसमें वर को, अकेले या अपने मित्रों के साथ, वधू का उसके सम्बन्धियों के यहां से जबर्दस्ती अपहरण करने का स्वांग रचना पड़ता

था। यह प्रथा अवश्य ही किसी पुरानी प्रथा का अवशेष है, जिसमें एक क़बीले के पुरुष, बाहर की, दूसरे क़बीलों की, लड़कियों का वास्तव में जबर्दस्ती अपहरण करके अपने लिए पत्नियां प्राप्त करते रहे होंगे। तो फिर इस "अपहरण-विवाह" का आरम्भ कैसे हुआ होगा? जब तक पुरुषों को अपने ही क़बीले के अन्दर काफ़ी स्त्रियां मिल सकती थीं, तब तक इस प्रथा को अपनाने का कोई कारण नहीं हो सकता था। लेकिन, इसी तरह से अक्सर हमें यह भी देखने को मिलता है कि अविकसित जातियों में कुछ ऐसे समूह पाये जाते हैं (१८६५ में इन समूहों को और क़बीलों को एक ही चीज़ समझा जाता था), जिनके अन्दर विवाह करने की मनाही है, जिससे कि पुरुषों को अपने लिए पत्नियां और स्त्रियों को अपने लिए पति इन समूहों के बाहर ढूंढ़ने पड़ते हैं। दूसरी ओर कुछ और जातियों में यह प्रथा पायी जाती है कि एक समूह के पुरुषों को अपने समूह की स्त्रियों से ही विवाह करना पड़ता है। मैक-लेनन ने पहले प्रकार के समूहों को बहिर्विवाही और दूसरे प्रकार के समूहों को अन्तर्विवाही नाम दिये, और लगे हाथ बहिर्विवाही तथा अन्तर्विवाही "क़बीलों" को एक दूसरे का बिलकुल व्यतिरेकी बना दिया। और यद्यपि बहिर्विवाह प्रथा के बारे में उनकी अपनी खोज से ही ठीक उनकी नाक के नीचे इस बात के अनेक सबूत आकर मौजूद हो जाते हैं कि, यदि सब या अधिकतर स्थानों में नहीं तो कम से कम बहुत-से स्थानों में यह व्यतिरेक उनकी कल्पना मात्र है, तब भी वह उसे अपने पूरे सिद्धान्त का आधार बना डालते हैं। चुनांचे वह तय कर देते हैं कि बहिर्विवाही क़बीले केवल दूसरे क़बीलों से ही पत्नियां प्राप्त कर सकते हैं, और चूंकि जांगल युग की विशेषता यह थी कि क़बीलों में सदा युद्ध चलता रहता था, इसलिए मैक-लेनन का विश्वास है कि केवल अपहरण करके ही पत्नियों को प्राप्त किया जा सकता था।

मैक-लेनन इसके बाद प्रश्न करते हैं: बहिर्विवाह प्रथा का जन्म कैसे हुआ? रक्त-सम्बन्ध तथा अगम्यागमन की धारणाओं से इस प्रथा का कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता, क्योंकि ये चीज़ें तो बहुत बाद की हैं। परन्तु लड़कियों को पैदा होते ही मार डालने की प्रथा से जो बहुत-से जांगलियों में प्रचलित है उसका कोई सम्बन्ध अवश्य हो सकता है। इस प्रथा के फलस्वरूप हर क़बीले में पुरुषों की बहुतायत हो जाती थी, एक स्त्री पर कई-कई पुरुषों का सम्मिलित अधिकार, यानी बहु-पति प्रथा इसका ज़रूरी

तथा तात्कालिक परिणाम थी। फिर इसका परिणाम यह होता था कि बच्चे की माता का तो पता रहता था, पर कोई नहीं कह सकता था कि उसका पिता कौन है। इसलिए पुरुष-परम्परा को छोड़कर, स्त्री-परम्परा से ही वंश चलता था। यह थी मातृ-सत्ता। क़बीले के अन्दर औरतों की कमी का, जो बहु-पति प्रथा से केवल कुछ कम होती थी, पर पूरी तरह दूर नहीं होती थी, एक और नतीजा ठीक यही होता था कि दूसरे क़बीलों की स्त्रियों का बाक़ायदा ज़बर्दस्ती अपहरण किया जाता था।

> "बहिर्विवाह प्रथा तथा बहु-पति प्रथा का जन्म एक कारण से, यानी स्त्रियों और पुरुषों की संख्या का संतुलन ठीक न होने के कारण से, हुआ। इसलिए हमें मजबूर होकर इस नतीजे पर पहुंचना पड़ता है कि **सभी बहिर्विवाही जातियों में शुरू में बहु-पति प्रथा का चलन था...** इसलिए, हमें इस बात को निर्विवाद रूप से मानना चाहिए कि बहिर्विवाही जातियों में रक्त-सम्बन्ध की पहली व्यवस्था वह थी जो केवल माताओं के ज़रिये होनेवाले रक्त-सम्बन्ध को मानती थी।" (मैक-लेनन, 'प्राचीन इतिहास का अध्ययन', १८८६। 'आदिम विवाह', पृष्ठ १२४।)

मैक-लेनन की तारीफ़ इस में है, कि उन्होंने उस चीज़ के बड़े महत्त्व और व्यापक प्रचलन की ओर ध्यान आकृष्ट किया जिसे उन्होंने बहिर्विवाह प्रथा का नाम दिया था। परन्तु बहिर्विवाही समूहों के अस्तित्व का पता उन्होंने नहीं लगाया था; और यह कहना तो और बड़ी ग़लती होगी कि उन्होंने उनको समझा था। पहले के उन बहुत-से पर्यवेक्षकों के अलावा, जिनके अलग-अलग विवरणों ने मैक-लेनन के लिए सामग्री का काम दिया था, लेथम ने (१८५९ में प्रकाशित 'वर्णनात्मक मानवजाति विज्ञान' में) भारत के मगरों[106] में यह प्रथा जिस रूप में थी उसका ठीक-ठीक और बिलकुल सही वर्णन किया था और कहा था कि यह प्रथा संसार के सभी भागों में मौजूद थी और उसका आम तौर पर चलन था। ख़ुद मैक-लेनन ने उनकी पुस्तक के इस अंश को उद्धृत किया है। और हमारे मौर्गन भी, १८४७ में ही, इरोक्वा लोगों के बारे में अपने पत्रों में (जोकि *«American Review»* में प्रकाशित हुए थे), और १८५१ में 'इरोक्वा संघ' नामक अपनी पुस्तक में बता चुके थे कि इस क़बीले में भी यह प्रथा मौजूद थी, और उन्होंने इस प्रथा का बिलकुल सही वर्णन दिया था। इसके मुक़ाबले में, जैसा हम

आगे चलकर देखेंगे, बाख़ोफ़ेन की रहस्यवादी कल्पनाओं ने मातृ-सत्ता के मामले में जितनी उलझन पैदा की थी, उससे कहीं अधिक उलझन मैक-लेनन की वकीलों जैसी मनोवृत्ति ने इस प्रथा के विषय में पैदा कर दी। मैक-लेनन को इस बात का भी श्रेय है कि उन्होंने इस बात को पहचाना कि माताओं के ज़रिये वंश का पता चलाने की प्रथा ही मौलिक थी हालांकि, जैसा कि बाद में उन्होंने भी ख़ुद स्वीकार किया, बाख़ोफ़ेन उनसे पहले ही इस बात का पता लगा चुके थे। परन्तु इस मामले में भी उनका मत बहुत अस्पष्ट है। वह बराबर "रक्त-संबंध केवल स्त्रियों के ज़रिये" (kinship through females only), की चर्चा करते रहते हैं और इस शब्दावली का, जो प्रारम्भिक अवस्था के लिए बिलकुल उपयुक्त थी, वह विकास की बाद की उन अवस्थाओं के लिए भी प्रयोग करते रहते हैं, जब वंश तथा विरासत का अधिकार तो अवश्य केवल स्त्री-परम्परा द्वारा निश्चित होता था, परन्तु रक्त-सम्बन्ध पुरुष-परम्परा द्वारा भी निश्चित होने और माना जाने लगा था। यह वकीलों जैसा एक संकुचित दृष्टिकोण है। वकील पहले अपने उपयोग के लिए एक बे-लचक क़ानूनी परिभाषा बनाता है, और फिर उसे बिना बदले उन परिस्थितियों पर भी लागू करता जाता है जो इस बीच में बदल गयी है, और जिन पर यह परिभाषा लागू नहीं हो सकती।

मैक-लेनन का सिद्धान्त ऊपर से देखने में विश्वास करने योग्य मालूम पड़ने पर भी लगता है कि ख़ुद लेखक को भी वह एकदम पक्के आधार पर खड़ा नहीं जंचता। कम से कम, वह ख़ुद इस बात को देखकर चकित हैं कि

> (दिखावटी) "अपहरण की प्रथा आज सबसे अधिक स्पष्ट और प्रभावशाली रूप में उन्हीं जातियों में देखी जाती है, जिनमें पुरुष के ज़रिये रक्त-सम्बन्ध निश्चित होता है" (यानी जिनमें पुरुष-परम्परा क़ायम है।) पृष्ठ १४०।)

एक और जगह उन्होंने लिखा है कि

> "यह एक अजीब बात है कि जहां तक हमें ज्ञात है आज किसी भी समाज में, जहां बहिर्विवाह के साथ-साथ रक्त-सम्बन्ध का प्राचीनतम रूप मौजूद है, शिशु-हत्या एक प्रथा के रूप में नहीं पायी जाती।" (पृष्ठ १४६)

ये दोनों तथ्य ऐसे हैं जो उनके सिद्धान्त का सीधे-सीधे खंडन करते हैं, और उनके मुक़ाबले में वह यही कर सकते हैं कि नये, और पहले से भी ज़्यादा उलझे हुए प्रमेय प्रस्तुत करें।

फिर भी, इंगलैंड में उनके सिद्धान्त का बड़े ज़ोरों से स्वागत हुआ और लोगों ने उसकी बड़ी तारीफ़ की। वहां आम तौर पर मैक-लेनन को परिवार के इतिहास का संस्थापक और इस क्षेत्र का सबसे अधिकारी विद्वान मान लिया गया। बहिर्विवाही और अन्तर्विवाही "क़बीलों" के बीच उन्होंने जो वैपरीत्य दिखाया था, वह उनके द्वारा स्वयं माने चन्द अपवादों और संशोधनों के बावजूद, प्रचलित मत के स्वीकृत आधार के रूप में क़ायम रहा। यदि इस क्षेत्र में स्वतंत्रतापूर्वक खोज करना और परिणामस्वरूप, कोई निश्चित प्रगति करना असम्भव हो गया, तो इसका कारण यह था कि खोज करनेवालों की आंखों पर यह पर्दा पड़ा हुआ था। चूंकि इंगलैंड में, और उसकी देखादेखी अन्य देशों में भी, मैक-लेनन के महत्त्व को बहुत बढ़ा-चढ़ाकर बताना एक फ़ैशन-सा बन गया है, इसलिए हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि हम इसके मुक़ाबले में पाठकों का ध्यान इस बात की ओर आकर्षित करें कि बहिर्विवाही तथा अन्तर्विवाही "क़बीलों" में एक सर्वथा ग़लत विरोध दिखा करके मैक-लेनन ने जो नुक़सान किया है, वह उनकी खोजों से हुए फ़ायदे को दबा देता है।

इस बीच, बहुत-से ऐसे तथ्य सामने आ गये जो मैक-लेनन के बनाये हुए सुघड़ चौखटे में फ़िट नहीं बैठते थे। मैक-लेनन विवाह के केवल तीन रूपों से परिचित थे: बहु-पत्नी प्रथा, बहु-पति प्रथा और एकनिष्ठ विवाह। परन्तु जब एक बार लोगों का ध्यान इस प्रश्न की ओर आकर्षित हो गया तो इस बात के नित नये प्रमाण मिलने लगे कि पिछड़ी हुई जातियों में विवाह के ऐसे रूप भी पाये जाते हैं जिनमें पुरुषों का एक दल स्त्रियों के एक दल का सामूहिक रूप से स्वामी होता है; और **लेब्बोक** ने (१८७० में प्रकाशित अपनी 'सभ्यता की उत्पत्ति' नामक पुस्तक में) इस यूथ-विवाह (Communal marriage) को एक ऐतिहासिक सत्य के रूप में ग्रहण किया।

इसके तुरन्त बाद ही, १८७१ में, **मौर्गन** नयी, और कई मानों में, निर्णयात्मक सामग्री लेकर सामने आये। उनको यह विश्वास हो गया था कि इरोक्वा लोगों में रक्त-सम्बन्ध की जो अनोखी व्यवस्था मिलती है, वह

संयुक्त राज्य अमरीका में रहनेवाले सभी आदिवासियों में समान रूप से पायी जाती है और इसलिए वह एक पूरे महाद्वीप में फैली हुई है, हालांकि वह वहां प्रचलित विवाह-प्रथा से उत्पन्न वंशक्रम की प्रत्यक्षतः विरोधी है। तब उन्होंने अमरीका की संघ सरकार को इस बात के लिए राज़ी किया कि वह दूसरी जातियों में पायी जानेवाली रक्त-सम्बन्धों की व्यवस्थाओं के बारे में सूचना संग्रह करे। इस काम के लिए उन्होंने ख़ुद प्रश्नावलियां और तालिकाएं तैयार कीं। उनके जो उत्तर प्राप्त हुए, उन से मौर्गन को पता चला कि: १) अमरीकी इंडियनों में रक्त-सम्बन्धों की जो व्यवस्था मिलती है, वह एशिया के भी अनेक क़बीलों में पायी जाती है, और कुछ संशोधित रूपों में अफ़्रीका और आस्ट्रेलिया में भी पायी जाती है; २) हवाई द्वीप में, तथा अन्य आस्ट्रेलियाई द्वीपों में पाये जानेवाले यूथ-विवाह के एक रूप से, जोकि अब लुप्तप्राय है, इस व्यवस्था का पूरा स्पष्टीकरण हो जाता है, और ३) विवाह के इस रूप के साथ-साथ उन द्वीपों में रक्त-सम्बन्धों की एक ऐसी व्यवस्था पायी जाती है जिसका कारण केवल यही हो सकता है कि इसके भी पहले वहां एक और प्रकार के यूथ-विवाह की प्रथा थी जो अब मिट चुकी है। मौर्गन ने जो सामग्री इकट्ठा की और उससे जो नतीजे निकाले, उनको उन्होंने १८७१ में अपनी पुस्तक 'रक्त-सम्बन्धों और विवाह-सम्बन्धों की प्रणालियां' में प्रकाशित किया और इस प्रकार उन्होंने बहस के क्षेत्र को पहले से कहीं अधिक विस्तृत कर दिया। रक्त-सम्बन्ध की प्रणालियों से आरम्भ करके उन्होंने उनके अनुरूप परिवार के रूपों का पुनर्निर्माण किया और इस तरह मानवजाति के प्रागैतिहासिक काल की खोज और अधिक दूरगामी गतानुदर्शन के लिए एक नया मार्ग खोल दिया। यदि यह प्रणाली सही मान ली जाये, तो मैक-लेनन द्वारा जोड़कर खड़ा किया सुघड़ सिद्धान्त हवा में उड़ जाता है।

मैक-लेनन ने अपनी पुस्तक 'आदिम विवाह' ('प्राचीन इतिहास का अध्ययन', १८७६), के एक नये संस्करण में अपने सिद्धान्त की रक्षा की। यद्यपि वह ख़ुद केवल प्रमेयों के आधार पर परिवार का पूरा इतिहास बहुत ही बनावटी ढंग से गढ़ डालते हैं, तथापि लेब्बोक और मौर्गन से वह मांग करते हैं कि वे अपने प्रत्येक वक्तव्य के लिए न सिर्फ़ प्रमाण पेश करें, बल्कि ऐसे अकाट्य और निर्विवाद प्रमाण पेश करें जैसे प्रमाण ही स्काटलैंड की अदालतों में स्वीकार्य हो सकते हैं। और यह मांग वह आदमी करता है जो

जर्मनों में मामा-भांजे के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध होने से (तासितुस, 'जेर्मनिया', अध्याय २०), सीज़र की इस रिपोर्ट से कि ब्रिटन लोगों में दस-दस बारह-बारह पुरुष सामूहिक पत्नियां रखते थे, और बर्बर लोगों में सामूहिक पत्नियों की प्रथा होने के बारे में प्राचीन लेखकों की अन्य तमाम रिपोर्टों से, बिना किसी हिचकिचाहट के, यह निष्कर्ष निकाल डालता है कि इन तमाम लोगों में बहु-पति प्रथा का नियम था! उनकी बातों को पढ़कर ऐसा लगता है जैसे कोई सरकारी वकील अपने पक्ष में बहस करते समय तो हर तरह की मनमानी करता है, पर बचाव पक्ष के वकील से मांग करता है कि वह अपने हर शब्द को सिद्ध करने के लिए बिलकुल पक्के और क़ानूनी तौर से एकदम सही सबूत पेश करे।

यूथ-विवाह कल्पना की उड़ान भर है – मैक-लेनन कहते हैं, और इस तरह वह बाख़ोफ़ेन की तुलना में भी बहुत पीछे चले जाते हैं। उनका कहना है कि मौर्गन ने जिन्हें रक्त-सम्बन्धों की प्रणालियां समझा है, वे सामाजिक शिष्टाचार के नियमों से अधिक कुछ नहीं हैं और इसका प्रमाण यह है कि अमरीकी इंडियन अजनबियों, गोरे लोगों, को भी "भाई" या "पिता" कहकर पुकारते हैं। यह तो वैसी ही बात हुई जैसे कोई कहे कि चूंकि कैथोलिक पादरियों और भिक्षुणियों को लोग पिता और माता कहते हैं, और चूंकि मठवासी और मठवासिनियां, और यहां तक कि इंगलैंड में अलग-अलग धंधों के शिल्प-संघों के फ़्रीमेसन और मेम्बर भी सभा-सम्मेलनों में एक दूसरे को भाई-बहन कहते हैं, इसलिए पिता, माता, भाई, बहन शब्द सम्बोधन करने के अलग-अलग ढंगों के सूचक मात्र हैं और इससे अधिक उनका कोई अर्थ नहीं है। संक्षेप में यह कि अपने पक्ष की पुष्टि में मैक-लेनन का तर्क बेहद कमज़ोर था।

परन्तु एक बात रह गयी थी जिस पर किसी ने मैक-लेनन को चुनौती नहीं दी थी। बहिर्विवाही और अन्तर्विवाही "क़बीलों" में उन्होंने जो विरोध क़ायम किया था और जिसके आधार पर उनकी पूरी व्यवस्था टिकी हुई थी, वह अभी तक ज़रा भी नहीं हिल पाया था। यही नहीं, बल्कि वह अब भी आम तौर पर परिवार के पूरे इतिहास की मुख्य धुरी माना जाता था। लोग यह स्वीकार करते थे कि इस विरोध का स्पष्टीकरण करने का मैक-लेनन का प्रयास अपर्याप्त था और यहां तक कि उन तथ्यों के भी ख़िलाफ़ जाता था जिन्हें ख़ुद मैक-लेनन ने ही पेश किया था। परन्तु स्वयं इस विरोध को, इस

विचार को कि दो परस्पर अपवर्जी प्रकार के क़बीलों का अस्तित्व था, जो एक दूसरे से पृथक् तथा स्वतंत्र हैं, और जिनमें से एक प्रकार के क़बीलों के पुरुष अपने क़बीलों की ही स्त्रियों से विवाह करते हैं, मगर दूसरी प्रकार के क़बीलों में इस तरह के विवाहों की सख़्त मनाही होती है—इसको लोग अकाट्य ब्रह्मवाक्य मान बैठे थे। मिसाल के लिए, पाठक जिरो-त्यूलों की पुस्तक 'परिवार की उत्पत्ति' (१८७४) और यहां तक कि लेब्बोक की रचना 'सभ्यता की उत्पत्ति' (चौथा संस्करण, १८८२) को भी देख सकते हैं।

यही वह स्थान है जहां मौर्गन की मुख्य पुस्तक, 'प्राचीन समाज' (१८७७), जिस पर मेरी यह किताब आधारित है, बहस में दाख़िल होती है। जिन बातों की १८७१ में मौर्गन ने केवल अस्पष्ट कल्पना की थी, उनकी यहां पूरी समझ-बूझ के साथ विशद विवेचना की गयी है। अन्तर्विवाह और बहिर्विवाह में कोई विरोध नहीं है; अभी तक कहीं भी कोई बहिर्विवाही "क़बीला" नहीं मिलता है। परन्तु जिस समय यूथ-विवाह का चलन था—और संभवतः किसी न किसी समय यह प्रथा हर जगह प्रचलित थी—उस समय क़बीले के अन्दर कई समूह, गोत्र, हुआ करते थे जिनमें से हरेक में माता की ओर के रक्त-सम्बन्धी शामिल होते थे। उनके अन्दर विवाह करने की सख़्त मनाही थी। इसलिए किसी भी गोत्र के पुरुष, क़बीले के अन्दर ही अपने लिए पत्नियां हासिल कर सकते थे, और आम तौर पर वे यही करते थे, पर उन्हें अपने गोत्र के बाहर ही पत्नियां हासिल करनी पड़ती थीं। इस प्रकार जहां कि गोत्र बहिर्विवाह के नियम का सख़्ती से पालन करता था, वहीं क़बीला, जिसमें सभी गोत्र शामिल होते थे, उतनी ही सख़्ती से अन्तर्विवाह करने के नियम का पालन करता था। इस प्रस्थापना के साथ मैक-लेनन ने जो महल बनावटी ढंग से बनाकर खड़ा किया था, उसकी एक ईंट भी बाक़ी न रह गयी।

परन्तु मौर्गन ने इससे ही संतोष नहीं किया। अमरीकी इंडियनों का गोत्र, उनके द्वारा अन्वेषण के इस क्षेत्र में दूसरा निर्णायक क़दम उठाने का साधन भी बन गया। उन्होंने पता लगाया कि मातृ-सत्ता के आधार पर संगठित गोत्र वह प्रारम्भिक रूप था, जिससे ही बाद का, प्राचीन काल के सभ्य लोगों में पाया जानेवाला, पितृ-सत्ता के आधार पर संगठित गोत्र विकसित हुआ। इस प्रकार यूनान तथा रोम के गोत्र, जो पहले

के सभी इतिहासकारों के लिए पहेली बने हुए थे, अमरीकी इंडियनों में पाये जानेवाले गोत्र के प्रकाश में समझ में आ गये, और इस प्रकार आदिम समाज के पूरे इतिहास के लिए एक नया आधार प्रस्तुत हुआ।

सभ्य जातियों के पितृ-सत्तात्मक गोत्र से पहले की अवस्था के रूप में आदिम मातृ-सत्तात्मक गोत्र के आविष्कार का आदिम समाज के इतिहास के लिए वही महत्त्व है जो जीवविज्ञान के लिए डार्विन के विकास के सिद्धान्त का, और राजनीतिक अर्थशास्त्र के लिए मार्क्स के अतिरिक्त मूल्य के सिद्धान्त का है। उसकी बदौलत मौर्गन पहली बार परिवार के इतिहास की एक ऐसी रूपरेखा तैयार करने में सफल हुए जिसमें कम से कम विकास की क्लासिकीय अवस्थाओं को सामान्यतः अस्थायी रूप से, जहां तक इस समय उपलब्ध सामग्री को देखते हुए यह सम्भव था, निश्चित कर दिया गया है। ज़ाहिर है, इससे आदिम समाज के इतिहास के अध्ययन में एक नये युग का श्रीगणेश हो जाता है। अब मातृ-सत्तात्मक गोत्र वह धुरी बन गया है जिसके चारों ओर यह पूरा विज्ञान घूमता है। इसका पता लगने के बाद से हमें इस बात का ज्ञान हो गया है कि हमें किस दिशा में खोज का काम करना चाहिए, किस चीज़ की खोज करनी चाहिए, और खोज के परिणामों का वर्गीकरण किस प्रकार करना चाहिए। परिणामस्वरूप मौर्गन की पुस्तक के प्रकाशित होने के पहले की तुलना में अब इस क्षेत्र में बहुत तेज प्रगति होने लगी है।

मौर्गन ने जिन बातों का पता लगाया है, उन्हें अब इंगलैंड के प्रागैतिहासिक काल के इतिहासवेत्ता भी मानने लगे हैं, या यों कहिए कि उन्होंने उन्हें हथिया लिया है। परन्तु उनमें से शायद ही कोई खुले आम यह माने कि हमारे दृष्टिकोण में जो क्रांति हो गयी है, उसका श्रेय मौर्गन को प्राप्त है। इंगलैंड में उनकी पुस्तक के बारे में यथासम्भव चुप्पी ही साधी गयी है, और ख़ुद मौर्गन को बड़े दया भाव के साथ उनकी पुरानी कृति की प्रशंसा करके निबटा दिया जाता है। उनकी व्याख्या की तफ़सीलों को बड़े चाव से लेकर इनकी आलोचना की जाती है, पर उनकी जो सचमुच महती खोजें हैं उनके बारे में हठपूर्वक मौन धारण किया जाता है जो कभी टूटता नहीं है। 'प्राचीन समाज' का पहला संस्करण अब अप्राप्य है। अमरीका में इस तरह की किताबों के लिए लाभप्रद बाजार ही नहीं है। इंगलैंड में, मालूम

पड़ता है कि मौर्गन की किताब को बाक़ायदा दबाया गया है। और इस युगान्तरकारी रचना का एकमात्र संस्करण जो किताबों के बाज़ार में अब भी प्राप्य है, वह जर्मन अनुवाद में है।

प्रागैतिहासिक काल के हमारे माने हुए विद्वानों की इस चुप्पी का आख़िर क्या कारण है जिसे एक षड्यंत्र न समझना बहुत कठिन है — ख़ास तौर पर इसलिए कि विशेषत: जाने-माने पुरातत्त्वविद अपनी रचनाओं में केवल शिष्टाचार के नाते अन्य लेखकों के अनगिनत उद्धरण देने के आदी हैं और दूसरे तरीक़ों से भी सहयोगियों के प्रति भाईचारा जताते रहते हैं। क्या उनकी चुप्पी का कारण सम्भवत: यह है कि मौर्गन अमरीकी हैं, और अंग्रेज़ पुरातत्त्वविदों के लिए यह कष्टकर है कि उन्हें, बावजूद इसके कि सामग्री इकट्ठा करने में उन्होंने इतना प्रशंसनीय श्रम किया है, इस सामग्री का वर्गीकरण करने तथा उसे व्यवस्थित रूप देने के वास्ते आवश्यक आम दृष्टि-कोण के लिए बाख़ोफ़ेन और मौर्गन जैसे दो विदेशी विद्वानों का सहारा लेना पड़े? जर्मन तो फिर भी उनके गले से उतर सकता है, पर अमरीकी? किसी अमरीकी का सामना होने पर तो हर अंग्रेज़ देशभक्ति की भावना में बह जाता है। जब मैं संयुक्त राज्य अमरीका में था, तो मुझे इसके कई बड़े मज़ेदार उदाहरण देखने को मिले थे[107]। इसके साथ-साथ एक बात और है। वह यह कि मैक-लेनन को एक तरह से सरकारी तौर पर इंगलैंड में इतिहास की प्रागैतिहासिक शाखा का संस्थापक और नेता मान लिया गया था, और मैक-लेनन ने शिशु-हत्या से लेकर, और बहु-पति प्रथा तथा अपहरण-विवाह से होते हुए, मातृ-सत्तात्मक परिवार तक, परिवार के इतिहास का जो सिद्धान्त बनावटी ढंग से खड़ा किया था, इस क्षेत्र के विद्वानों के बीच उसकी अत्यन्त श्रद्धापूर्ण चर्चा एक तरह का रिवाज बन गयी थी। एक दूसरे से बिलकुल अलग और भिन्न, दो प्रकार के "क़बीलों", यानी बहिर्विवाही और अन्तर्विवाही "क़बीलों" के अस्तित्व के बारे में ज़रा भी सन्देह प्रगट करना घोर पाप समझा जाता था। इसलिए जब मौर्गन ने इन समस्त पवित्र जड़सूत्रों को एक चोट से हवा में उड़ा दिया, तो उन्हें एक प्रकार से कुफ़्र करने का दोषी समझा जाने लगा। और फिर मौर्गन ने इस समस्या को इस तरह सुलझाया कि अपनी बात पेश करते ही पूरी चीज़ फ़ौरन स्पष्ट हो गयी। नतीजा यह हुआ कि मैक-लेनन के वे पुजारी जो अभी तक अंधों की तरह बहिर्विवाह और अन्तर्विवाह के बीच भटक रहे थे, अब अपना सिर पीटने

और यह कहने को विवश होने लगे कि हम भी कैसे मूर्ख हैं कि इस ज़रा सी बात का इतने दिनों तक ख़ुद पता न लगा सके!

मौर्गन ने इतना ही अपराध नहीं किया कि अधिकृत शाखा के विद्वानों को अपने प्रति पूर्ण उपेक्षा बरतने से रोक दिया, उन्होंने सभ्यता की, माल उत्पादन करनेवाले समाज की, जो हमारे वर्तमान काल के समाज का बुनियादी रूप है, एक ऐसे अन्दाज़ में आलोचना करके, जिससे फ़ूरिये की याद ताज़ा हो जाती थी, और इतना ही नहीं, बल्कि समाज के भावी रूपान्तरण की भी कुछ ऐसे शब्दों में चर्चा करके जिनका प्रयोग कार्ल मार्क्स कर सकते थे, घड़ा मुंह तक भर लिया। और इसलिए उन्होंने जैसा किया वैसा भुगता! – मैक-लेनन ने रोष के साथ घोषणा की कि मौर्गन "ऐतिहासिक पद्धति से गहरा वैमनस्य रखते हैं", और प्रोफ़ेसर जिरो-त्यूलों ने १८८४ में भी जेनेवा में मैक-लेनन की इस राय का समर्थन किया। क्या यही वह प्रोफ़ेसर जिरो-त्यूलों नहीं थे जो १८७४ में ('परिवार की उत्पत्ति') मैक-लेनन के वहिर्विवाह की भूलभुलैयां में भटक रहे थे, जिसमें से मौर्गन ने ही उनको निकाला?

आदिम समाज के इतिहास ने मौर्गन की खोजों के परिणामस्वरूप और किन बातों में प्रगति की, यह बताना मेरे लिये यहां आवश्यक नहीं है। इस पुस्तक के दौरान यथास्थान उसकी चर्चा पाठक को मिलेगी। मौर्गन की मुख्य पुस्तक का प्रकाशन हुए अब चौदह वर्ष हो रहे हैं। इस दौरान आदिम मानव समाज के इतिहास के सम्बन्ध में हमारे पास और बहुत-सी सामग्री इकट्ठा हो गयी है। मानव विज्ञानियों, यात्रियों तथा पेशेवर पुरातत्त्वविदों के अलावा अब तुलनात्मक क़ानून के विद्यार्थियों ने भी इस क्षेत्र में प्रवेश किया है और बहुत-सी नयी सामग्री और नये दृष्टिकोण हमें दिये हैं। इसके परिणामस्वरूप विशेष बातों से ताल्लुक़ रखनेवाले मौर्गन के कुछ प्रमेय कमज़ोर पड़ गये हैं या अरक्षणीय हो गये हैं। परन्तु इकट्ठी हुई नयी सामग्री उनकी मुख्य धारणाओं की जगह दूसरी धारणाएं स्थापित करने में सफल नहीं हुई है। आदिम समाज के इतिहास को मौर्गन ने जो व्यवस्था प्रदान की थी, वह

अपने मुख्य रूप में आज भी सत्य है। हम यहां तक कह सकते हैं कि इस महती प्रगति के जनक के रूप में उनका नाम छिपाने की जितनी ही कोशिश की जा रही है, इस व्यवस्था को लोग उतना ही अधिक मानते जा रहे हैं*।

लन्दन, १६ जून, १८९१

फ़्रेडरिक एंगेल्स

«*Die Neue Zeit*» पत्रिका, Bd. 2, № 41, 1890—1891 तथा Friedrich Engels. «*Der Ursprung der Familie, des Privateigenthums und des Staats*» पुस्तक, Stuttgart, 1891, में प्रकाशित।

पत्रिका के मूलपाठ से मिलाकर पुस्तक के मूलपाठ के अनुसार मुद्रित। मूल जर्मन।

* सितम्बर, १८८८ में न्यूयार्क से वापसी के समय मेरी मुलाक़ात अमरीकी कांग्रेस के एक भूतपूर्व सदस्य से हुई जो रोचेस्टर से चुने गये थे और जो ल्यूईस मौर्गन को जानते थे। दुर्भाग्यवश वह मुझे मौर्गन के बारे में अधिक नहीं बता सके। उन्होंने बताया कि मौर्गन साधारण नागरिक की तरह रोचेस्टर में रहा करते थे, और अपने अध्ययन में व्यस्त रहते थे। उनके भाई सेना में कर्नल थे और वाशिंगटन में युद्ध-विभाग में किसी पद पर थे। अपने इस भाई की सहायता से मौर्गन सरकार को इस बात के लिए प्रवृत्त करने में सफल हुए कि वह उनकी खोजों में दिलचस्पी ले और उनकी रचनाओं को सरकारी ख़र्च पर छापे। कांग्रेस के इस भूतपूर्व सदस्य का कहना था कि जब तक वह कांग्रेस में रहे, उन्होंने ख़ुद भी मौर्गन की सहायता की थी। **(एंगेल्स का नोट।)**

परिवार, निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति

ल्यूईस मौर्गन की खोज के सम्बन्ध में

१

संस्कृति के विकास की प्रागैतिहासिक अवस्थाएं

मौर्गन विशेष ज्ञान रखनेवाले ऐसे पहले व्यक्ति थे जिन्होंने मनुष्य के प्राक् इतिहास को एक निश्चित क्रम प्रदान करने की चेष्टा की थी। आगे मिलनेवाली महत्त्वपूर्ण सामग्री के कारण यदि कुछ परिवर्तन करना आवश्यक न हुआ, तो आशा करनी चाहिये कि मौर्गन का वर्गीकरण क़ायम रहेगा।

जांगल युग, बर्बर युग, और सभ्यता का युग, इन तीन मुख्य युगों में से स्वभावत: मौर्गन का सम्बन्ध केवल पहले दो युगों से और उनसे तीसरे में संक्रमण से है। इन दो युगों में से प्रत्येक को वह जीवन-निर्वाह के साधनों के उत्पादन में हुई प्रगति के आधार पर निम्न, मध्यम और उन्नत अवस्थाओं में बांटते हैं। कारण कि मौर्गन का कहना है कि

> "इस दिशा में मनुष्यों की दक्षता पर ही यह पूरा सवाल निर्भर करता था कि पृथ्वी पर मनुष्य की प्रभुता क़ायम हो पायेगी, या नहीं। जीवों में केवल मानवजाति ही ऐसी है, जिसके बारे में कहा जा सकता है कि उसने खाद्य के उत्पादन पर पूर्ण नियंत्रण स्थापित कर लिया है। मानव प्रगति के महान् युग, कमोबेश प्रत्यक्ष रूप में, इसी बात से निश्चित होते हैं कि जीवन-निर्वाह के साधनों का कितना विकास हुआ है।"

परिवार का विकास इसके साथ-साथ चलता है, पर उससे हमें ऐसे निश्चित मापदण्ड नहीं प्राप्त होते जिनके द्वारा हम इस विकास-क्रम को विभिन्न कालों में बांट सकें।

१. जांगल युग

१. **निम्न अवस्था**। मानवजाति का शैशव। अभी मनुष्य अपने मूल-निवास स्थान में, यानी उष्ण कटिबंध अथवा उपोष्ण कटिबंध के जंगलों में रहता था, और कम से कम, आंशिक रूप में, पेड़ों के ऊपर निवास करता था। केवल यही कारण है कि बड़े-बड़े हिंसक पशुओं का सामना करते हुए वह जीवित रह सका। कंद, मूल और फल उसके भोजन थे। इस काल की सबसे बड़ी सफलता यह थी कि मनुष्य बोलना सीख गया। ऐतिहासिक काल में हमें जिन जनगण का परिचय मिलता है, उनमें से कोई भी इस आदिम अवस्था में नहीं था। यद्यपि यह काल हज़ारों वर्षों तक चला होगा, तथापि उसके अस्तित्व का कोई प्रत्यक्ष सबूत हमारे पास नहीं है। किन्तु यदि एक बार हम यह मान लेते हैं कि मनुष्य का उद्भव पशु-लोक से हुआ है तो इस संक्रमण-कालीन अवस्था को मानना अनिवार्य हो जाता है।

२. **मध्यम अवस्था**। यह उस समय से आरम्भ होती है जब मनुष्य मछली का (जिसमें हम केकड़े, घोंघे और दूसरे जल-जन्तुओं को भी शामिल करते हैं) अपने भोजन के रूप में उपयोग करने लगा था और आग को इस्तेमाल करना सीख गया था। ये दोनों बातें एक दूसरे की पूरक हैं, क्योंकि मछली का आहार केवल आग के इस्तेमाल से ही पूरी तरह उपलब्ध हो सकता है। परन्तु, इस नये आहार ने मनुष्य को जलवायु और स्थान के बंधनों से मुक्त कर दिया। नदियों और समुद्रों के तटों के साथ-साथ चलता हुआ, मनुष्य अपनी जांगल अवस्था में भी पृथ्वी के धरातल के अधिकांश भाग में फैल गया। पुरा पाषाण युग – तथाकथित पैलियोलिथिक युग – के पत्थर के बने कुघड़, खुरदरे औज़ार, जो पूरी तरह या अधिकतर इसी काल से सम्बन्ध रखते हैं, सभी महाद्वीपों में बिखरे हुए पाये जाते हैं। उनसे इस काल में मनुष्यों के संसार के विभिन्न भागों में फैल जाने का सबूत मिलता है। नये प्रदेशों में बस जाने और खोज की निरन्तर सक्रिय प्रेरणा के फलस्वरूप और साथ ही रगड़ से आग पैदा करने की कला में निपुण होने के कारण, मनुष्य को अनेक खाद्य-पदार्थ सुलभ हो गये, जैसे मण्डमय मूल और कन्द जो या तो गर्म राख में या ज़मीन में खुदी आग की भट्टियों में पका लिये जाते थे। पहले अस्त्रों – गदा और भाले – के आविष्कार के बाद कभी-कभी शिकार किये गये पशुओं का मांस भी भोजन में शामिल हो जाता था। पूर्णतः

शिकारी जातियां, जिनका वर्णन प्राय: पुस्तकों में मिलता है – यानी वे जातियां जो केवल शिकार के सहारे जीती थीं, वास्तव में कभी नहीं थीं। यह सम्भव नहीं था क्योंकि शिकार से भोजन पाना बहुत ही अनिश्चित होता है। खाने की चीज़ों का मिलना सदा बड़ा अनिश्चित रहता था, इसलिए, मालूम होता है, इस काल में नरमांस-भक्षण भी आरम्भ हो गया और बाद में बहुत समय तक चलता रहा। आस्ट्रेलिया के आदिवासी और पोलीनीशियाई जातियों के बहुत-से लोग आज भी जांगल युग की इस मध्यम अवस्था में रह रहे हैं।

३. **उन्नत अवस्था**। यह अवस्था धनुष-बाण के आविष्कार से आरम्भ होती है, जिनके कारण जंगली पशुओं का शिकार एक सामान्य चर्या बन गया और उनका मांस भोजन का नियमित अंग हो गया। धनुष, डोरी और बाण से बना यह अस्त्र अत्यंत संश्लिष्ट प्रकार का है, जिसके आविष्कार के लिए लम्बा संचित अनुभव और अधिक तीक्ष्ण बुद्धि तथा अधिक मानसिक क्षमता पूर्वापेक्षित थी, और इसलिए धनुष-बाण के साथ-साथ इस काल का मनुष्य अन्य अनेक आविष्कारों से भी परिचित रहा होगा। यदि हम इन मनुष्यों की तुलना उनसे करें जो धनुष-बाण से तो परिचित थे, पर मिट्टी के बर्तन-भांडे बनाने की कला अभी नहीं जान पाये थे (मिट्टी के बर्तन बनाने की कला से ही मौर्गन बर्बर युग का प्रारम्भ मानते हैं), तो हम पाते हैं कि इस प्रारम्भिक अवस्था में भी मनुष्य ने गांवों में बसना शुरू कर दिया था, और जीवन-निर्वाह के साधनों के उत्पादन पर किसी क़दर क़ाबू पा लिया था। वह लकड़ी के बर्तन-भांडे बनाने लगा था, पेड़ों की कोमल छाल से निकले रेशे को उंगलियों से (बिना करघे के) बुनना सीख गया था, छाल की और बेंत की टोकरियां बनाने लगा था, और पत्थर के पालिशदार, चिकने औज़ार (नव पाषाण युग के औज़ार) तैयार करने लगा था। अधिकांशत:, आग और पत्थर की कुल्हाड़ी की बदौलत पेड़ का तना खोखला कर बनायी गयी नाव, और कहीं-कहीं मकान बनाने की लकड़ी और तख़्ते भी सुलभ हो गये थे। उदाहरण के लिए उत्तर-पश्चिमी अमरीका के इंडियनों में, जो धनुष-बाण से तो परिचित हैं, पर मिट्टी के बर्तन बनाने की कला नहीं जानते, ये सारी उपलब्धियां पाई जाती हैं। जिस प्रकार लोहे की तलवार बर्बर युग के लिए और आग्नेयास्त्र आदि सभ्यता के युग के लिए निर्णायक अस्त्र सिद्ध हुए, उसी प्रकार जांगल युग के लिए धनुष-बाण निर्णायक अस्त्र सिद्ध हुआ।

२. बर्बर युग

१. **निम्न अवस्था**। यह अवस्था मिट्टी के बर्तनों के प्रचलन से आरम्भ होती है। मिट्टी के बर्तन बनाने की कला की शुरूआत अनेक जगहों पर प्रत्यक्षतः इस तरह हुई, और शायद सब जगह इसी तरह हुई होगी, कि टोकरियों तथा लकड़ी के बर्तनों को आग से बचाने के लिए उन पर मिट्टी का लेप चढ़ा दिया जाता था। तब जल्द ही यह पता चल गया कि अन्दर का बर्तन निकाल लेने पर भी मिट्टी के सांचे से वही काम चल सकता है।

हम मान सकते हैं कि यहां तक, एक निश्चित काल तक मानव-विकास का क्रम सभी लोगों में एक-सा पाया जाता है और प्रदेश चाहे जो रहा हो, उससे इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। परन्तु बर्बर युग में प्रवेश करने के साथ हम एक ऐसी अवस्था में पहुंच जाते हैं जिसमें दोनों बड़े महाद्वीपों की प्राकृतिक देनों का अन्तर अपना प्रभाव दिखाने लगता है। बर्बर युग की विशेषता है पशु-पालन और प्रजनन तथा कृषि। अब पूर्वी महाद्वीप में, जिसे पुरानी दुनिया भी कहा जाता था, पालने के योग्य लगभग सभी पशु, और एक को छोड़कर उगाने के योग्य बाक़ी सभी अन्न उपलब्ध थे, जबकि पश्चिमी महाद्वीप, यानी अमरीका में, और वह भी केवल दक्षिण के एक हिस्से में पालने के लायक़ केवल एक पशु था, जिसे लामा कहते हैं, और उगाने के योग्य केवल एक अन्न, यानी मक्का था, पर वह अन्नों में सर्वश्रेष्ठ था। इन भिन्न प्राकृतिक परिस्थितियों का यह प्रभाव पड़ा कि इस काल से प्रत्येक गोलार्ध की आबादी अपने अलग-अलग रास्ते चली, और दो गोलार्धों में मानव-विकास की विभिन्न अवस्थाओं की सीमाओं की विशेषताएं भी अलग-अलग हो गयीं।

२. **मध्यम अवस्था**। यह अवस्था पूर्व में पशु-पालन से शुरू होती है, और पश्चिम में खाने लायक़ पौधों की सिंचाई के ज़रिए खेती और मकान बनाने के लिए धूप में सुखायी गयी कच्ची ईंटों तथा पत्थर के प्रयोग से शुरू होती है।

पहले हम पश्चिम को लेंगे, क्योंकि यूरोपीय विजय तक, वहां लोग कहीं भी इस अवस्था से आगे नहीं बढ़ सके थे।

इंडियनों का जिस समय पता चला, उस समय ये बर्बर युग की निम्न अवस्था में थे (मिसीसिपी नदी के पूर्व में रहने वाले सभी आदिवासी इसी

अवस्था में थे), और कुछ हद तक मक्का की, और शायद कद्दू, ख़रबूज़ों तथा अन्य तरकारियों आदि की खेती, बगीचे बनाकर करने लगे थे। इनसे ही उन्हें अपने आहार का मुख्य भाग प्राप्त होता था। ये लोग बाड़ों से घिरे गांवों में लकड़ी के मकानों में रहते थे। उत्तर-पश्चिम के क़बीले, विशेषकर कोलम्बिया नदी के प्रदेश में रहने वाले क़बीले, अभी जांगल युग की उन्नत अवस्था में ही पड़े हुए थे। वे न तो मिट्टी के बर्तन बनाना जानते थे, और न किसी तरह के पौधे उगाना। दूसरी ओर, न्यू मैक्सिको के तथाकथित पुएब्लो इंडियन लोग[108], मैक्सिको के निवासी, मध्य अमरीका के और पीरू के निवासी यूरोपीय विजय के समय बर्बर युग की मध्यम अवस्था में थे। ये लोग कच्ची ईंटों या पत्थरों के बने क़िले जैसे मकानों में रहते थे और बगीचे बनाकर और उन्हें ख़ुद सींचकर मक्का की, और स्थान तथा जलवायु के अनुसार, खाने योग्य अन्य पौधों की खेती करते थे, जिनसे ही मुख्यतः उन्हें भोजन मिलता था; उन्होंने कुछ पशुओं तक को पालतू बना लिया था, जैसे मैक्सिको के लोग टर्की और दूसरे पक्षियों को पालते थे, तथा पीरू के लोग लामा को पालते थे। इसके अलावा, ये लोग धातुओं से काम लेना भी जानते थे,–लेकिन लोहे से परिचित नहीं हुए थे और इस कारण अभी पत्थर के बने अस्त्रों और औज़ारों को नहीं छोड़ पाये थे। स्पेनवासियों ने इन लोगों के देश को जीतकर उनका सारा स्वतंत्र विकास बीच में ही रोक दिया।

पूर्व में बर्बर युग की मध्यम अवस्था उस समय आरम्भ हुई जब लोग दूध और मांस देनेवाले पशुओं का पालन करने लगे। पर मालूम होता है कि पौधों की खेती करने का ज्ञान लोगों को इस काल में बहुत समय तक नहीं हुआ। ऐसा लगता है कि चौपायों को पालने और उनकी नस्ल बढ़ाने और पशुओं के बड़े-बड़े झुण्ड बनाने के कारण ही आर्य और सामी लोग बर्बर लोगों से भिन्न हो गये थे। यूरोप और एशिया के आर्य आज भी पशुओं के समान नामों का उपयोग करते हैं, पर कृषि योग्य पौधों के नाम आपस में प्रायः नहीं मिलते।

उपयुक्त स्थानों में पशुओं के रेवड़ या झुण्ड बनने से गड़रियों का जीवन शुरू हो गया। सामी लोगों ने दजला और फ़रात नदियों के घास के मैदानों में यह जीवन आरम्भ किया, आर्यों ने भारत के मैदानों में, ओक्सस और जक्सारतीस[109] नदियों के और दोन तथा द्नेपर नदियों के मैदानों में इस जीवन

की शुरूआत की। जानवरों को पालतू बनाने का काम पहले पहल घास के इन मैदानों की सीमाओं पर ही शुरू हुआ होगा। इसलिए बाद में आनेवाली पीढ़ियों को लगा कि पशुचारी जातियों का उद्भव इन्हीं इलाक़ों में हुआ होगा, जबकि वास्तव में, ये इलाक़े ऐसे थे कि वहां मानवजाति के शैशव-काल में उसका पालन-पोषण होना तो दूर की बात है, ये इन पीढ़ियों के जांगल पूर्वजों के और यहां तक कि बर्बर युग की निम्न अवस्था के लोगों के भी रहने लायक़ नहीं थे। दूसरी ओर, यह बात भी थी कि बर्बर युग की मध्यम अवस्था के लोग एक बार पशुचारी जीवन में प्रवेश करने के बाद यह कभी नहीं सोच सकते थे कि पानी से हरे-भरे घास के इन मैदानों को अपनी इच्छा से छोड़कर वे फिर उन जंगली इलाक़ों में चले जायें जहां उनके पूर्वज रहा करते थे। यहां तक कि जब आर्यों और सामी लोगों को और अधिक उत्तर तथा पश्चिम की ओर खदेड़ दिया गया, तो पश्चिमी एशिया तथा यूरोप के जंगली इलाक़ों में बसना उनके लिए असम्भव हो गया। वहां वे केवल उसी समय बस पाये जब अनाज की खेती की बदौलत कम अनुकूल मिट्टी के बावजूद, उनके लिए अपने पशुओं को खिलाना, और, विशेषकर, जाड़ों में भी इन इलाक़ों में रहना सम्भव हो गया। बहुत सम्भव है कि शुरू में अनाज की खेती पशुओं को खिलाने के लिए चारे की आवश्यकता के कारण ही आरम्भ हुई हो, और बाद में चलकर ही अनाज ने मनुष्यों के भोजन के रूप में महत्त्व प्राप्त किया हो।

आर्यों तथा सामी लोगों के पास भोजन के लिए मांस तथा दूध की प्रचुरता थी, और विशेषकर बच्चों के विकास पर इस भोजन का बहुत अच्छा प्रभाव पड़ता था। शायद यही कारण है कि इन दो नस्लों का विकास औरों से बेहतर हुआ। बल्कि सच तो यह है कि यदि हम न्यू मैक्सिको में रहने वाले पुएब्लो इंडियनों को देखें जो प्रायः पूर्णतः शाकाहारी हो गये हैं, तो हम पाते हैं कि बर्बर युग की निम्न अवस्था में, मांस और मछली अधिक खानेवाले इंडियनों की तुलना में उनका मस्तिष्क छोटा होता है। बहरहाल, इस अवस्था में नरभक्षण धीरे-धीरे लुप्त हो जाता है, और अगर कहीं-कहीं बाक़ी भी रहता है तो केवल एक धार्मिक रीति के रूप में, या फिर जादू-टोने के रूप में, जो इस अवस्था में क़रीब-क़रीब एक ही चीज़ है।

३. **उन्नत अवस्था।** यह अवस्था खनिज लौह को गलाने से शुरू होती है और अक्षर लिखने की कला का आविष्कार होने तथा साहित्यिक लेखन

में उसका प्रयोग होने लगने पर सभ्यता में अंतरित हो जाती है। इस अवस्था में, जिसे, जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं, स्वतंत्र रूप से केवल पूर्वी गोलार्ध के लोग ही पार कर पाये, उत्पादन की जितनी उन्नति हुई, उतनी पहले की तमाम अवस्थाओं में कुल मिलाकर भी नहीं हुई थी। वीर काल के यूनानी, रोम की स्थापना से कुछ समय पहले के इतालवी क़बीले, तासितुस के ज़माने के जर्मन, और वाइकिंगों के काल के नौर्मन लोग[110] इसी अवस्था में रहते थे।

सबसे बड़ी बात यह है कि इस अवस्था में हम पहली बार पशुओं द्वारा खींचे जाने वाले लोहे के हल का इस्तेमाल पाते हैं। इसकी बदौलत बड़े पैमाने पर खेती – **खेतों की जुताई** – और उस समय की परिस्थितियों में जीवन-निर्वाह के साधनों में एक तरह से असीम वृद्धि सम्भव हो गयी। इसके साथ-साथ हम लोगों को जंगलों को काट-काटकर उन्हें खेती की तथा चरागाह की ज़मीनों में बदलते हुए देखते हैं, और यह काम भी लोहे की कुल्हाड़ी और फावड़े की मदद के बिना बड़े पैमाने पर नहीं हो सकता था। परन्तु, इस सब के साथ-साथ जनसंख्या तेज़ी से बढ़ी और छोटे-छोटे इलाक़ों में घनी बस्तियां आबाद हो गयीं। जब तक हल से जुताई नहीं शुरू हुई थी, तब तक केवल बहुत ही असाधारण परिस्थितियों में पांच लाख आदमी एक केन्द्रीय नेतृत्व के नीचे कभी आये होंगे। बल्कि शायद ऐसा कभी नहीं हुआ होगा।

होमर की कविताओं में, और विशेषकर 'इलियाड' में, हम बर्बर युग की उन्नत अवस्था को अपने विकास के चरम शिखर पर पाते हैं। लोहे के बने हुए उन्नत औज़ार, धौंकनी, हथचक्की, कुम्हार का चाक, तेल और शराब बनाना, धातुओं के काम का एक कला के रूप में विकास, गाड़ियां और युद्ध के रथ, तख़्तों और धरनों से जहाज़ बनाना, स्थापत्य का एक कला के रूप में प्रारम्भिक विकास, मीनारों और प्राचीरों से युक्त और चहारदीवारी से घिरे नगर, होमरीय महाकाव्य और समस्त पुराण – इन्हीं वस्तुओं की विरासत को लेकर यूनानियों ने बर्बर युग से सभ्यता के युग में प्रवेश किया था। यदि इसकी तुलना सीज़र के और यहां तक कि तासितुस के उन जर्मनों से संबंधित वर्णनों से करें जो संस्कृति की उस अवस्था के द्वार पर खड़े थे जिसके शिखर पर पहुंचकर होमर के काल के यूनानी अगली अवस्था में प्रवेश करने की तैयारी कर रहे थे, तो हमें पता चलेगा कि बर्बर युग की उन्नत अवस्था में उत्पादन का कितना अधिक विकास हुआ था।

मौर्गन का अनुसरण करते हुए, जांगल युग तथा वर्बर युग से होकर सभ्यता के आरम्भ तक मानवजाति के विकास का जो चित्र मैंने ऊपर खींचा है, वह अनेक नयी विशेषताओं से भरा पूरा है। इससे भी बड़ी बात यह है कि ये विशेषताएं निर्विवाद रूप से सत्य हैं, क्योंकि वे सीधे उत्पादन से ली गयी हैं। फिर भी यह चित्र उस चित्र की अपेक्षा धुंधला और अपर्याप्त लगेगा, जो हमारी यात्रा के अन्त में अनावृत होगा। उसी समय हमारे लिए वर्बर युग से सभ्यता के युग में संक्रमण का पूर्ण चित्र देना और यह दिखलाना संभव होगा कि इन दो युगों के बीच कितना मार्के का अन्तर है। फ़िलहाल, मौर्गन के युग-विभाजन को हम सामान्यीकृत रूप में इस तरह पेश कर सकते हैं: जांगल युग – वह काल जिसमें तत्काल उपयोज्य प्राकृतिक पदार्थों के हस्तगतकरण की प्रधानता थी। मनुष्य मुख्यतया वे औज़ार ही तैयार करता था, जिनसे प्राकृतिक उपज को हस्तगत करने में मदद मिलती थी। वर्बर युग – वह काल जिसमें पशु-पालन तथा खेती करने का ज्ञान प्राप्त हुआ, और जिसमें मानव क्रियाशीलता के द्वारा प्रकृति की उत्पादन-शक्ति को बढ़ाने के तरीक़े सीखे गये। सभ्यता का युग – वह काल जिसमें प्राकृतिक उपज को और भी बदलने का, सही माने में उद्योग का और कला का ज्ञान प्राप्त किया गया।

२

परिवार

मौर्गन ने, जिन्होंने अपने जीवन का अधिकतर भाग इरोक्वा लोगों के बीच बिताया था—ये लोग अभी तक न्यूयार्क राज्य में रहते हैं—और जिन्हें उनके एक क़बीले (सेनेका क़बीले) ने अंगीकार कर लिया था, इन लोगों में रक्त-सम्बद्धता की एक ऐसी प्रणाली पायी जो उनके वास्तविक पारिवारिक सम्बन्धों से मेल न खाती थी। इन लोगों में यह नियम था कि एक-एक जोड़ा आपस में विवाह करता था, और दोनों पक्षों में से कोई भी आसानी से विवाह को भंग कर सकता था। मौर्गन इस प्रणाली को "युग्म-परिवार" कहते थे। ऐसे किसी विवाहित जोड़े की सन्तान को सब लोग जानते-मानते थे, इसलिए इसमें तनिक भी सन्देह नहीं हो सकता था कि किसको किसका पिता, माता, पुत्र, पुत्री, भाई या बहन कहना चाहिए। पर वास्तव में इन शब्दों का प्रयोग बिलकुल उल्टे ढंग से होता था। इरोक्वा पुरुष न सिर्फ़ अपने बच्चों को, बल्कि अपने भाइयों के बच्चों को भी, पुत्र और पुत्री कहता है, और वे उसे पिता कहते हैं। दूसरी ओर, वह अपनी बहनों के बच्चों को अपना भांजा और भांजी कहता है और वे उसे मामा कहते हैं। इसी तरह, इरोक्वा स्त्री स्वयं अपने बच्चों के साथ-साथ अपनी बहनों के बच्चों को भी पुत्र और पुत्री कहती है, और वे उसे माता कहते हैं। दूसरी ओर, वह अपने भाइयों के बच्चों को भतीजा और भतीजी कहती है, और वह स्वयं उनकी बुआ कहलाती है। इसी प्रकार, भाइयों के बच्चे एक दूसरे को भाई-बहन कहते हैं, और बहनों के बच्चे भी एक दूसरे को यही कहकर पुकारते हैं। इसके विपरीत एक स्त्री के बच्चे और उसके भाई के बच्चे एक दूसरे को ममेरे-फुफेरे भाई-बहन कहते हैं। ये केवल कोरे नाम नहीं हैं, बल्कि इन नामों से रक्त-सम्बन्ध के नैकट्य, सांपार्श्विकता, समानता एवं असमानता के बारे में, जो विचार प्रकट होते हैं, उनका वास्तव में चलन है। और इन

विचारों के आधार पर रक्त-सम्बन्ध की एक पूरी विशद प्रणाली टिकी हुई है जिसके द्वारा एक व्यक्ति के सैकड़ों प्रकार के भिन्न सम्बन्धों को बताया जा सकता है। इसके अलावा, यह प्रणाली न सिर्फ़ सभी अमरीकी इंडियनों में पूरे तौर पर लागू पायी जाती है (अभी तक इसका कोई अपवाद नहीं मिला है), बल्कि भारत के आदिवासियों में, दक्षिण भारत में रहनेवाले द्रविड़ क़बीलों में और हिन्दुस्तान में रहनेवाले गौरा क़बीलों में भी यही प्रणाली लगभग ज्यों की त्यों अपरिवर्तित रूप में पायी जाती है। दक्षिण भारत के तामिल लोगों में तथा न्यूयार्क राज्य के सेनेका क़बीले के इरोक्वा लोगों में पाये जानेवाले रक्त-सम्बन्धों के रूप आज भी दो सौ से अधिक भिन्न-भिन्न रिश्तों के बारे में बिलकुल एक से हैं। और अमरीकी इंडियनों की ही भांति, भारत के इन क़बीलों में भी परिवार के प्रचलित रूप से पैदा होनेवाले सम्बन्ध रक्त-सम्बद्धता की प्रणाली के उल्टे हैं।

इसका क्या कारण हो सकता है? जांगल युग तथा वर्बर युग में सभी जातियों की समाज-व्यवस्था में रक्त-सम्बन्धों का जो निर्णायक महत्त्व होता है, उसको देखते हुए इतनी व्यापक रूप से प्रचलित प्रणाली के महत्त्व को केवल शब्दजाल रचकर नहीं उड़ाया जा सकता। जो व्यवस्था सामान्यत: सारे अमरीका में फैली हुई है, जो एशिया की एक बिलकुल दूसरी नस्ल के लोगों में भी पायी जाती है, और जिसके न्यूनाधिक परिवर्तित रूप अफ़्रीका और आस्ट्रेलिया में हर जगह ख़ूब देखने को मिलते हैं, उसका ऐतिहासिक कारण बताना आवश्यक है। उसे इस तरह नहीं उड़ाया जा सकता जिस तरह, मिसाल के लिए, मैक-लेनन ने कोशिश की है। पिता, सन्तान, भाई और बहन कोरे औपचारिक नाम नहीं हैं, वरन् वे बिलकुल ही निश्चित प्रकार के तथा अत्यन्त गम्भीर पारस्परिक कर्त्तव्यों के द्योतक हैं, जो अपने समग्र रूप में इन जातियों की सामाजिक रचना के मूलभूत अंग हैं। और यह कारण ढूंढ़ लिया गया। सैंडविच द्वीप (हवाई) में वर्तमान शताब्दी के पूर्वार्द्ध में परिवार का एक ऐसा रूप मौजूद था, जिसमें ऐसे ही मां-बाप, भाई-बहन, बेटा-बेटी, चाचा-चाची, भतीजा-भतीजी होते थे जैसे कि रक्त-सम्बद्धता की अमरीकी तथा प्राचीन भारतीय प्रणाली द्वारा अपेक्षित हैं। लेकिन अजीब बात यह है कि हवाई में प्रचलित रक्त-सम्वद्धता की प्रणाली वहां मौजूद परिवार के वास्तविक रूप से फिर अनमेल निकली। वहां बहनों और भाइयों के सभी लड़के-लड़कियां निरपवाद रूप से भाई-बहन समझे जाते हैं और वे अपनी मां

और उसकी बहनों या अपने बाप और उसके भाइयों की ही नहीं, बल्कि अपने मां-बाप के सभी भाइयों और बहनों की समान रूप से सन्तान समझे जाते हैं। इस प्रकार जहां एक ओर रक्त-सम्बद्धता की अमरीकी प्रणाली परिवार के एक अधिक प्राचीन रूप की ओर संकेत करती है जिसका अस्तित्व अमरीका में तो अब लुप्त हो गया है परन्तु हवाई में दरअसल अब भी क़ायम है; वहीं, दूसरी ओर हवाई की रक्त-सम्बद्धता की प्रणाली परिवार के एक और भी आदिम रूप की ओर इंगित करती है, जिसके बारे में यद्यपि यह सिद्ध नहीं किया जा सकता कि इस समय भी उसका कहीं अस्तित्व है, तथापि यह मानना होगा कि उसका अस्तित्व **अवश्य ही** रहा होगा, अन्यथा उसके अनुरूप रक्त-सम्बद्धता की प्रणाली का आविर्भाव नहीं हो सकता। इस संबंध में मौर्गन कहते हैं:

"परिवार एक सक्रिय सिद्धान्त का प्रतिनिधित्व करता है। वह कभी भी स्थिर तथा गतिशून्य नहीं होता, बल्कि निम्न रूप से सदा उच्चतर रूप की ओर अग्रसर होता है, उसी प्रकार जिस प्रकार पूरा समाज निम्न से उच्चतर अवस्था की ओर बढ़ता है। इसके विपरीत रक्त-सम्बद्धता की प्रणालियां निष्क्रिय हैं—भिन्न-भिन्न कालों में, जिनके बीच समय का लम्बा व्यवधान होता है, परिवार ने जो प्रगति की है, उसे ये प्रणालियां व्यक्त करती हैं और ये मौलिक रूप से तभी बदलती हैं जब परिवार में मौलिक परिवर्तन हो चुका होता है।"

मार्क्स इस पर कहते हैं: "और यही बात राजनीतिक, क़ानूनी, धार्मिक तथा दार्शनिक प्रणालियों पर भी लागू होती है।" परिवार तो जीवित अवस्था में रहता है, पर रक्त-सम्बद्धता की प्रणाली जड़ीभूत हो जाती है। रक्त-सम्बद्धता की प्रणाली जबकि रूढ़िबद्ध रूप में विद्यमान रहती है, तब परिवार विकसित होकर उसके आगे निकल जाता है। लेकिन जिस प्रकार, पेरिस के नज़दीक प्राप्त एक पशु-कंकाल की शिशुधानी की हड्डियों से, कूविए निश्चयपूर्वक इस निष्कर्ष पर पहुंच सका कि यह कंकाल किसी शिशुधानी पशु का है, और इस प्रकार के पशु जो अब नहीं मिलते, उस क्षेत्र में कभी रहा करते थे, उसी प्रकार इतिहास-क्रम में प्राप्त रक्त-सम्बद्धता की प्रणाली से हम भी उतने ही निश्चयपूर्वक यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि इस प्रणाली के अनुरूप परिवार का रूप जो अब नहीं मिलता, कभी दुनिया में मौजूद था।

रक्त-सम्बद्धता की वे प्रणालियां और परिवार के वे रूप जिनका हमने अभी ज़िक्र किया, आजकल प्रचलित प्रणालियों और रूपों से इस बात में भिन्न हैं कि उनमें हर बच्चे के कई माता-पिता होते थे। रक्त-सम्बद्धता की अमरीका में पायी जानेवाली प्रणाली के अनुसार, जिससे मिलता-जुलता परिवार का रूप हवाई में मौजूद है, भाई और बहन एक ही बच्चे के पिता और माता नहीं हो सकते। परन्तु इसके विपरीत, हवाई में पायी जानेवाली रक्त-सम्बद्धता की प्रणाली के लिए परिवार का ठीक ऐसा ही रूप पूर्वमान्य है जिसमें नियम था कि भाई-बहन एक ही बच्चे के पिता-माता होते थे। अतएव, परिवार के कई ऐसे रूप हमारे सामने आते हैं जो उन रूपों के बिलकुल उल्टे हैं जिन्हें अभी तक एकमात्र प्रचलित रूप माना जाता था। परम्परा केवल एकनिष्ठ विवाह को मानती है, और साथ ही यह स्वीकार करती है कि कुछ पुरुष व्यक्तिगत रूप से बहु-पत्नी विवाह करते हैं और यहां तक कि शायद कुछ स्त्रियां भी बहु-पति विवाह करती हैं। परन्तु वह इस सचाई पर पर्दा डाल देना चाहती है – जैसा कि सदाचार का उपदेश देनेवाले कूपमण्डूक प्रायः किया करते हैं – कि अधिकृत समाज द्वारा लगाये गये इन बंधनों को व्यवहार में लोग ख़ामोशी के साथ, पर बिना किसी संकोच के, प्रायः तोड़ते रहते हैं। पर इसके विपरीत, आदिम समाज के इतिहास का अध्ययन हमें ऐसी अवस्थाओं की सूचना देता है जिनमें एक पुरुष अनेक पत्नियों के साथ रहता था और साथ ही उनमें से हर पत्नी के कई-कई पति होते थे। और इसलिए सब की सन्तानों को सब पुरुषों और सब स्त्रियों की समान रूप से सन्तान समझा जाता था। इतिहास का अध्ययन साथ ही हमें यह भी बताता है कि ख़ुद इन अवस्थाओं में बहुत-से परिवर्तन होते हैं, और उस वक़्त तक होते रहते हैं जब तक कि अन्त में ये अवस्थाएं एकनिष्ठ विवाह में तिरोहित नहीं हो जातीं। ये परिवर्तन इस प्रकार के होते हैं कि समान विवाह के बंधन से बंधे हुए लोगों का दायरा – जो शुरू में बहुत फैला हुआ था – अधिकाधिक छोटा होता जाता है, यहां तक कि अन्त में सिर्फ़ एक जोड़ा बच रहता है, जिसकी आजकल प्रधानता है।

इस प्रकार, परिवार के पिछले इतिहास की पुनः रचना करते हुए मौर्गन, अपने अधिकतर सहयोगियों की सहमति से, उस आदिम अवस्था पर पहुंचे थे जिसमें एक क़बीले के अन्दर अनियंत्रित यौन-सम्बन्ध होते थे और हर स्त्री पर हर पुरुष का, और उसी प्रकार हर पुरुष पर हर स्त्री का समान रूप

से अधिकार होता था। ऐसी आदिम अवस्था की चर्चा पिछली शताब्दी से ही होती आ रही है, परन्तु बहुत ही मोटे तौर पर। पहले पहल बाख़ोफ़ेन ने ही इस अवस्था की संभावना के प्रति गम्भीर ध्यान दिया और ऐतिहासिक तथा धार्मिक परम्पराओं में उसके चिह्नों को खोजने की कोशिश की, और यह उनकी एक बड़ी ख़िदमत थी। आज हम जानते हैं कि जिन चिह्नों को उन्होंने ढूंढ़ा था वे उस सामाजिक अवस्था की सूचना बिलकुल नहीं देते जिसमें अनियंत्रित यौन-सम्बन्ध पाये जाते थे, बल्कि उसके बहुत बाद की उस अवस्था की सूचना देते हैं जिसमें यूथ-विवाह होता था। यह आदिम सामाजिक अवस्था, यदि वह सचमुच कभी थी, तो इतने पुराने किसी युग में थी कि अब हम अतीत में उसके अस्तित्व का कोई **प्रत्यक्ष** सबूत सामाजिक पुरावशेषों, पिछड़े हुए जांगल लोगों में, पाने की आशा नहीं कर सकते। इसका श्रेय बाख़ोफ़ेन को ही है कि उन्होंने इस प्रश्न को अन्वेषण का एक मुख्य प्रश्न बना दिया।*

कुछ दिनों से यह कहना फ़ैशन हो गया है कि मानवजाति के यौन-जीवन के इतिहास में इस प्रारम्भिक अवस्था का अस्तित्व ही न था। उद्देश्य यह कि मानवजाति इस "कलंक" से बच जाये। कहा जाता है कि ऐसी अवस्था

---

* बाख़ोफ़ेन ने जिस चीज़ की खोज की थी, बल्कि कहना चाहिए जिस चीज़ का अनुमान लगाया था, उसको उन्होंने कितना कम समझा था इसका एक सबूत यह है कि उन्होंने इस आदिम अवस्था को **हैटेरिज़्म** कहा था। यह एक यूनानी शब्द है जिसे यूनानियों ने अविवाहित स्त्रियों के साथ अविवाहित पुरुषों का अथवा एकपत्नीत्व की स्थिति में रहनेवाले पुरुषों का यौन-सम्बन्ध व्यंजित करने के लिए प्रयुक्त किया था। इसका सदा यह मतलब होता था कि समाज में विवाह का एक विशेष रूप मौजूद है और यह यौन-सम्बन्ध उसकी सीमाओं के बाहर हो रहा है; और उसमें वेश्यावृत्ति भी, कम से कम एक सम्भावना के रूप में, निहित थी। और किसी अर्थ में इस शब्द का कभी प्रयोग नहीं हुआ। मैं भी, मौर्गन के साथ-साथ, इसी अर्थ में उसका प्रयोग करता हूं। बाख़ोफ़ेन की अति महत्त्वपूर्ण खोजें प्रायः उनके इस अजीबोग़रीब विचार के रहस्यमय आवरण में लिपटी हुई मिलती हैं कि इतिहास की विभिन्न अवस्थाओं में पुरुष और स्त्री के जो सम्बन्ध मिलते हैं, वे मनुष्यों के जीवन की वास्तविक परिस्थितियों से नहीं, बल्कि उनके तत्कालीन धार्मिक विचारों से उत्पन्न हुए थे। **(एंगेल्स का नोट।)**

का कहीं कोई प्रत्यक्ष सबूत नहीं मिलता। इसके अलावा ख़ास तौर पर बाक़ी पशु-लोक की दुहाई दी जाती है। इसी प्रेरणावश लेतूर्नो ने ('विवाह और परिवार का विकास', १८८८) ऐसे बहुत-से तथ्यों को जमा किया जिनसे सिद्ध होता था कि पशु-लोक में भी नीचे की अवस्था में ही पूर्ण रूप से अनियंत्रित यौन-सम्बन्ध पाये जाते हैं। परन्तु इन तमाम तथ्यों से मैं केवल एक ही परिणाम निकाल सकता हूं। वह यह कि जहां तक मनुष्य का और उसकी आदिम जीवनावस्था का सम्बन्ध है, इन तथ्यों से कुछ भी सिद्ध नहीं होता। यदि कशेरुक पशु लम्बे समय तक युग्म-जीवन व्यतीत करते हैं, तो इसके पर्याप्त शरीरक्रियात्मक कारण हो सकते हैं। उदाहरण के लिए, पक्षियों में मादा को अंडे सेने के दिनों में मदद की ज़रूरत होती है। वैसे भी पक्षियों में दृढ़ एकनिष्ठ परिवार के उदाहरणों से मनुष्य के बारे में कुछ भी सिद्ध नहीं होता क्योंकि मनुष्य पक्षियों के वंशज नहीं हैं। और यदि एकनिष्ठ यौन-सम्बन्ध को ही नैतिकता की पराकाष्ठा समझा जाये तो हमें टेपवर्म को सर्वश्रेष्ठ समझना चाहिए, जिसके शरीर के ५० से २०० तक देहखंडों या भागों में से प्रत्येक में नर और मादा दोनों प्रकार का पूरा लैंगिक उपकरण होता है, और जिसका पूरा जीवन, इन भागों में से प्रत्येक में, स्वयं अपने साथ सहवास करने में बीतता है। लेकिन, यदि हम केवल स्तनधारी पशुओं पर विचार करें, तो हमें उनमें हर प्रकार का यौन-जीवन मिलता है। अनियंत्रित यौन-सम्बन्ध, यूथ-सम्बन्ध के चिह्न, एक नर-पशु का अनेक मादा-पशुओं से यौन-सम्बन्ध, और एकनिष्ठ यौन-सम्बन्ध – ये सभी रूप उनमें दिखायी देते हैं। केवल एक रूप – एक मादा-पशु का अनेक नर-पशुओं से सम्बन्ध – उसमें नहीं मिलता। इस रूप तक केवल मनुष्य ही पहुंच सके। हमारे निकटतम सम्बन्धी, चौपाये पशुओं में भी, नर और मादा के सम्बन्धों में हद दर्जे की विभिन्नता पायी जाती है। और यदि हम अपने दायरे को और भी सीमित करना चाहें और केवल चार तरह के पुरुषाभ वानरों पर विचार करें, तो लेतूर्नो से हमें ज्ञात हो सकता है कि वे कभी एकनिष्ठ यौन-जीवन व्यतीत करते हैं तो कभी बहुनिष्ठ जीवन और सोस्सुरे, जिन्हें जिरो-त्यूलों ने उद्धृत किया है, कहते हैं कि वे एकनिष्ठ ही होते हैं। हाल में प्रकाशित 'मानव-विवाह का इतिहास' (लंदन, १८९१) में वेस्टरमार्क ने जो यह दावा किया है कि पुरुषाभ वानरों में एकनिष्ठ यौन-जीवन की प्रवृत्ति पायी जाती है, उसको भी कोई बहुत बड़ा सबूत नहीं माना

जा सकता। संक्षेप में, ये सारी रिपोर्टें इस प्रकार की हैं कि ईमानदार लेतूर्नो को स्वीकार करना पड़ता है कि :

"स्तनधारी पशुओं में बौद्धिक विकास के स्तर तथा यौन-सम्बन्ध के रूप में कोई निश्चित सम्बन्ध नहीं पाया जाता।"

और एस्पिनास ने ('पशु-समाज', १८७७) तो साफ़-साफ़ कह डाला है कि :

"पशुओं में दिखायी पड़नेवाला सर्वोच्च सामाजिक रूप यूथ होता है। **लगता है कि यूथ परिवारों को मिलाकर बना है, पर शुरू से ही परिवार तथा यूथ के बीच एक विरोध बना रहता है,** वे एक दूसरे के उल्टे अनुपात में बढ़ते हैं।"

ऊपर की बातों से स्पष्ट हो जाता है कि हम पुरुषाभ वानरों के परिवार तथा अन्य सामाजिक समूहों के बारे में निश्चित रूप से लगभग कुछ नहीं जानते। रिपोर्टें एक दूसरे की उल्टी हैं। इसमें कोई आश्चर्य की बात भी नहीं है। मानवजाति के जांगल क़बीलों तक के बारे में भी हमें जो रिपोर्टें मिली हैं, वे भी बहुत-सी बातों में एक दूसरे की कितनी उल्टी हैं, और अभी उनका आलोचनात्मक अध्ययन तथा छानबीन करने की कितनी ज़रूरत है! फिर वानर-समाज का अध्ययन करना तो मानव-समाज से कहीं अधिक कठिन है। इसलिए फ़िलहाल, हमें ऐसी एकदम अविश्वसनीय रिपोर्टों से निकाले गये हर परिणाम को नामंज़ूर कर देना चाहिए।

लेकिन, एस्पिनास की पुस्तक का जो अंश हमने ऊपर उद्धृत किया है, उससे हमें एक अच्छा सुराग़ मिलता है। उन्होंने कहा है कि उच्चतर पशुओं में यूथ और परिवार एक दूसरे के पूरक नहीं होते, बल्कि विरोधी होते हैं। एस्पिनास ने बड़े स्पष्ट ढंग से इसका वर्णन किया है कि मैथुन-ऋतु आने पर नर-पशुओं की ईर्ष्या भावना किस प्रकार प्रत्येक यूथ को शिथिल कर देती है, या उसे अस्थायी रूप से भंग कर देती है।

"जहां परिवार घनिष्ठ रूप से एकजुट है, वहां यूथ शायद ही कभी अपवादस्वरूप पाया जाता हो। दूसरी ओर, जहां स्वच्छन्द यौन-सम्बन्ध या नर-पशु का अनेक मादा-पशुओं के साथ सम्बन्ध सामान्यतः पाया जाता है, वहां लगभग स्वाभाविक रूप से यूथ का आविर्भाव होता है... यूथ के आविर्भूत होने के लिए आवश्यक होता है कि परिवार के

सम्बन्ध ढीले पड़ गये हों और व्यक्ति फिर स्वतंत्र हो गया हो। इसी लिए पक्षियों में संगठित वृन्द बहुत कम देखने में आते हैं...दूसरी ओर चूंकि स्तनधारी पशुओं में, व्यक्ति परिवार में नहीं विलीन हो जाता, इसी लिए उनमें कमोबेश संगठित समाज पाये जाते हैं...अतएव यूथ की सामूहिक भावना (सामूहिक अन्तःकरण) का, उसके जन्म के समय, परिवार की सामूहिक भावना से बड़ा शत्रु और कोई नहीं हो सकता। हमें यह कहने में हिचकिचाना नहीं चाहिए कि यदि परिवार से ऊंचा कोई सामाजिक रूप विकसित हो पाया है, तो उसका केवल एक यही कारण हो सकता है कि उस रूप में ऐसे परिवार समाविष्ट हुए जिनमें बुनियादी परिवर्तन हो चुका था। और इस बात से यह सम्भावना नष्ट नहीं हो जाती कि ठीक इसी कारण ये परिवार, बाद में पहले से कहीं अधिक उपयुक्त परिस्थितियां उत्पन्न होने पर, फिर अपनी रचना करने में सफल हुए।" (एस्पिनास, उपरोक्त पुस्तक, जिरो-त्यूलों द्वारा, १८८४ में प्रकाशित 'विवाह और परिवार की उत्पत्ति' में, पृष्ठ ५१८–५२० पर उद्धृत।)

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव-समाजों के बारे में निष्कर्ष निकालने के लिए पशु-समाजों का कुछ महत्त्व निस्संदेह है, पर वह केवल नकारात्मक प्रकार का महत्त्व है। जहां तक हम पता लगा सके हैं, उच्चतर कशेरुक दंडियों में केवल दो प्रकार के परिवार होते हैं: अनेक मादा-पशुओं के साथ एक नर का परिवार, अथवा एक-एक युग्म। दोनों सूरतों में नर केवल एक हो सकता है, यानी पति सिर्फ़ एक हो सकता है। नर की ईर्ष्या भावना, जो परिवार का सम्बन्ध-सूत्र है और उसकी सीमा भी, पशु-परिवार को यूथ का विरोधी बना देती है। मैथुन-ऋतु आने पर, उच्चतर सामाजिक रूप, यूथ कहीं पर बिलकुल असम्भव हो जाता है, कहीं पर ढीला पड़ जाता है, या एकदम टूट जाता है; और यदि अच्छी हालत में रहता है तो भी नर की ईर्ष्या के कारण उसके आगे के विकास में बाधा पड़ती है। इसी एक बात से सिद्ध हो जाता है कि पशु-परिवार और आदिम मानव-समाज, ये दो अनमेल चीज़ें हैं। पशु-अवस्था से ऊपर उठते हुए मनुष्य को या तो परिवार का कोई ज्ञान नहीं था, और यदि था तो ऐसे परिवार का जो पशुओं में नहीं पाया जाता। वेस्टरमार्क ने शिकारियों की रिपोर्टों के आधार पर कहा है कि गोरिल्ला और चिम्पांज़ी वानरों में समूहशीलता का उच्चतम रूप युग्म होता है। इस रूप में, यानी पृथक् युग्मों के रूप में भी, वह

निहत्था जीव, जो मानव-अवस्था में प्रवेश कर रहा था, छोटी संख्या में, जीवित रह सकता था। परन्तु पशु-अवस्था से निकलने के लिए, प्रकृति में ज्ञात इस सबसे महान् प्रगति के लिए, एक और तत्त्व की आवश्यकता थी। उसके लिए आवश्यक था कि व्यक्ति की अपनी रक्षा करने की अपर्याप्त शक्ति का स्थान यूथ की सामूहिक शक्ति और संयुक्त प्रयत्न ले ले। पुरुषाभ वानर आजकल जिन परिस्थितियों में रहते हैं, वैसी ही परिस्थितियों से मानव-अवस्था में संक्रमण एकदम असम्भव होगा। ये वानर तो विकास के मुख्य क्रम से अलग हो गयी ऐसी शाखा प्रतीत होते हैं, जो अब लुप्त हो जाने को है, या जो कम से कम, पतनोन्मुख अवस्था में है। अतएव, उनके परिवारों के रूपों में और आदिम मानव के परिवारों के रूपों में देखी गयी समानता के आधार पर जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं, उन्हें नामंज़ूर कर देने के लिए यही अकेला कारण पर्याप्त है। केवल बड़े-बड़े और स्थायी यूथों में रहते हुए ही पशु-अवस्था से मानव-अवस्था में संक्रमण संभव था। और इन यूथों के निर्माण की पहली शर्त यह थी कि वयस्क नरों के बीच पारस्परिक सहनशीलता हो और वे ईर्ष्या भावना से मुक्त हों। और सचमुच परिवार का वह सबसे पुराना, सबसे आदिम रूप कौनसा है, जिसका इतिहास में अकाट्य प्रमाण मिलता है और जो आज भी कहीं-कहीं देखने में आता है? वह है यूथ-विवाह का रूप, जिसमें पुरुषों के एक पूरे दल का नारियों के एक पूरे दल के साथ सम्बन्ध होता है, और जिसमें ईर्ष्या भावना के लिए नहीं के बराबर स्थान होता है। इसके अलावा, विकास की एक आगे की मंज़िल में हम बहु-पति विवाह की असाधारण प्रथा पाते हैं, जो ईर्ष्या भावना के और भी अधिक विरुद्ध है, और इसलिए जो पशुओं में बिलकुल ही नहीं पायी जाती। परन्तु यूथ-विवाह के जिन रूपों की हमें जानकारी है, उनके साथ ऐसी पेचीदा परिस्थितियां जुड़ी हुई हैं कि लाज़िमी तौर पर उनसे यह प्रकट होता है कि उनके पहले, यौन-सम्बन्धों के कुछ अधिक सरल रूप प्रचलित थे। और इस प्रकार अन्तिम विश्लेषण में, उनसे अनियंत्रित यौन-सम्बन्धों के एक युग का संकेत मिलता है, जो वही युग था जब पशु-अवस्था से मानव-अवस्था में संक्रमण हो रहा था। इसलिए, पशुओं में पाये जानेवाले यौन-सम्बन्धों के रूपों का अध्ययन करने पर हम फिर उसी बिन्दु पर लौट आते हैं, जिस बिन्दु से हमें यह अध्ययन अंतिम रूप से आगे बढ़ानेवाला था।

अस्तु, अनियंत्रित यौन-सम्बन्ध का क्या अर्थ है? इसका अर्थ यह है कि आजकल यौन-सम्बन्ध पर जो प्रतिबंध लगे हुए हैं, या जो पहले जमाने में लगे हुए थे, वे तब नहीं थे। ईर्ष्या ने जो प्राचीर खड़ी की थी, उसको ढहते हुए हम देख चुके हैं। यदि कोई बात निश्चित है तो यह कि ईर्ष्या की भावना अपेक्षाकृत विलंब से विकसित हुई। यही बात अगम्यागमन की धारणा पर लागू होती है। शुरू में न केवल भाई-बहन पति-पत्नी के रूप में रहते थे, बल्कि अनेक जनों में आज भी माता-पिता और उनकी सन्तानों के बीच यौन-सम्बन्ध की इजाज़त है। बैंक्रोफ़्ट ने ('उत्तरी अमरीका के प्रशान्त राज्यों की आदिवासी नस्लें', १८७५, खंड १) बताया है कि बेरिंग जलडमरूमध्य के कावियात लोगों में, अलास्का के नज़दीक रहनेवाले कादियाक लोगों में, और ब्रिटिश उत्तरी अमरीका के अन्दरूनी प्रदेश में रहनेवाले तिन्नेह लोगों में यह चीज़ अब भी पायी जाती है। लेतूर्नो ने इसी प्रथा की रिपोर्टें चिप्पेवा क़बीले के अमरीकी इंडियनों, चिली के रहनेवाले कुकु लोगों, हिन्दचीन के कैरीबियन[111] और करेन लोगों के बारे में जमा की हैं। पार्थवों, फ़ारसियों, शकों और हूणों आदि के बारे में जो वर्णन प्राचीन यूनानियों तथा रोमन लोगों में मिलते हैं, उनका तो ज़िक्र ही क्या। अगम्यागमन का आविष्कार होने के पहले (और है यह एक आविष्कार ही, और वह भी अत्यन्त मूल्यवान), माता-पिता तथा उनकी सन्तान के बीच यौन-सम्बन्ध दो अलग-अलग पीढ़ियों के अन्य व्यक्तियों के यौन-सम्बन्ध से अधिक घृणास्पद नहीं हो सकता था। दो भिन्न पीढ़ियों के व्यक्तियों के बीच ऐसा यौन-सम्बन्ध तो आज दक़ियानूसी से दक़ियानूसी देश में भी पाया जाता है और लोग उस पर बहुत ज़्यादा नाक-भौं नहीं सिकोड़ते। बल्कि सच तो यह है कि साठ वर्ष से ऊपर की बूढ़ी "कुमारियां" तक कभी-कभी, यदि उनके पास काफ़ी दौलत होती है तो, तीस वर्ष के क़रीब के नौजवानों से विवाह करती देखी जाती हैं। परिवार के उन सबसे आदिम रूपों से, जिनकी हमें जानकारी है, यदि हम अगम्यागमन की धारणाओं को—जो हमारी अपनी धारणाओं से बिलकुल भिन्न और प्राय: उनकी उल्टी हैं—अलग कर दें, तो यौन-सम्बन्ध का ऐसा रूप रह जाता है जिसे केवल अनियंत्रित ही कहा जा सकता है। अनियंत्रित इस माने में कि उस पर अभी वे बंधन नहीं लगे थे जो बाद में रीति-रिवाजों ने लगा दिये। इसका अर्थ आवश्यक रूप से यह नहीं होता कि यौन-सम्बन्धों के मामले में रोज़ाना गड़बड़ी रहती थी।

अस्थायी काल के लिए पृथक् युग्मों का अस्तित्व वर्जित न था, बल्कि सच तो यह है कि यूथ-विवाह में भी अब अधिकतर ऐसे ही युग्म देखने में आते हैं। यदि वेस्टरमार्क की, जो यौन-सम्बन्धों के इस आदिम रूप को मानने से इंनकार करने वालों की जमात में सबसे नये शरीक होने वालों में हैं, विवाह की परिभाषा यह है कि जहां कहीं पुरुष और नारी बच्चा पैदा होने के समय तक साथ रहते हैं, वहीं विवाह है, तो कहा जा सकता है कि इस प्रकार का विवाह स्वच्छन्द यौन-सम्बन्धों की परिस्थितियों में भी आसानी से हो सकता था, और उससे स्वच्छन्दता में, अर्थात् यौन-सम्बन्धों पर रीति-रिवाजों के बनाये हुए बंधनों के अभाव की स्थिति में, कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। वेस्टरमार्क निस्संदेह यह दृष्टिकोण लेकर चलते हैं कि

> "स्वच्छन्द यौन-सम्बन्धों का अर्थ व्यक्तिगत इच्छाओं का दमन है", और इसलिए "उसका सबसे सच्चा रूप वेश्यावृत्ति है"।

इसके विपरीत मेरा विचार यह है कि जब तक हम आदिम परिस्थितियों को चकलाघर के चश्मों से देखना बन्द नहीं करेंगे, तब तक हम उन्हें ज़रा भी नहीं समझ पायेंगे। यूथ-विवाह पर विचार करते समय हम इस बात का फिर ज़िक्र करेंगे।

मौर्गन के अनुसार, स्वच्छन्द यौन-सम्बन्धों की इस आदिम अवस्था से, शायद बहुत शुरू में ही, परिवार के इन रूपों का विकास हुआ था:

१. **रक्तसम्बद्ध यूथ-परिवार**। यह परिवार की पहली अवस्था है। यहां विवाह पीढ़ियों के अनुसार यूथों में होता है। परिवार की सीमा के अन्दर सभी दादा-दादियां एक दूसरे के पति-पत्नी होते हैं। उनके बच्चों की, यानी माताओं और पिताओं की भी यही स्थिति होती है। और उनके बच्चों से फिर समान पति-पत्नियों का एक तीसरा दायरा तैयार हो जाता है। इनके बच्चे – पहली पीढ़ी के परपोते और परपोतियां – चौथे दायरे के पति-पत्नी होते हैं। इस प्रकार, परिवार के इस रूप में, केवल पूर्वज और वंशज, यानी माता-पिता और उनके बच्चे (हमारी आजकल की भाषा में) एक दूसरे के साथ विवाह के अधिकार तथा ज़िम्मेदारियां ग्रहण नहीं कर सकते। सगे भाई-बहन, पास के और दूर के चचेरे, फुफेरे, ममेरे भाई-बहन, सब एक दूसरे के भाई-बहन होते हैं और ठीक इसी लिए वे सब एक दूसरे के पति-

पत्नी होते हैं। इस अवस्था में, भाई-बहन के सम्बन्ध में यह बात शामिल है कि वे एक दूसरे के साथ हस्ब मामूल सम्भोग करते हैं।* ऐसे एक ठेठ परिवार में एक माता-पिता के वंशज होंगे और फिर उनमें प्रत्येक पीढ़ी के

---

*वैगनर की रचना 'निबेलुंग' में आदिम काल का जो एकदम झूठा वर्णन दिया गया है, उसके बारे में मार्क्स ने एक पत्र में[112] बहुत ही कड़े शब्दों में अपना मत प्रकट किया है। यह पत्र उन्होंने १८८२ के वसन्त में लिखा था। "वधू के रूप में भाई अपनी बहन का आलिंगन करे, यह कथा क्या किसी ने कभी सुनी है?"[113] वैगनर के इन "विलासी देवताओं" को, जो काफ़ी आधुनिक ढंग से अपने प्रेम-व्यापार में कौटुम्बिक व्यभिचार का भी थोड़ा-सा पुट दिया करते थे, मार्क्स ने यह उत्तर दिया था: "आदिम काल में बहन ही पत्नी होती थी और उस समय यही नैतिक था।" (१८८४ के संस्करण में एंगेल्स का नोट।)

वैगनर के एक फ़्रांसीसी मित्र (बोन्ये) एवं प्रशंसक इस टिप्पणी से सहमत नहीं हैं। वह इस बात की ओर संकेत करते हैं कि प्राचीन 'एड्डा', 'ओगिस्ड्रेका'[114] में, जिसे वैगनर ने अपने आदर्श के रूप में लिया था, लोकी इन शब्दों में फ़्रिया को उलाहना देता है—"तेरे अपने भाई ने देवताओं के सामने तेरा आलिंगन किया है"। उनका दावा है कि उस वक़्त तक भाई और बहन का विवाह वर्जित हो चुका था। 'ओगिस्ड्रेका' काव्य उस काल का प्रतिबिम्ब है जबकि पौराणिक गाथाओं में लोगों को ज़रा भी विश्वास नहीं रह गया था। वह देवताओं पर बिलकुल लूकियन नुमा व्यंग्य है। यदि लोकी मेफ़िस्टोफ़ीलीस की तरह इस प्रकार फ़्रिया को उलाहना देता है, तो यह बात वैगनर के ख़िलाफ़ पड़ती है। इस काव्य में थोड़ा और आगे न्योर्द से लोकी यह भी कहता है कि: "अपनी बहन की कोख से तुमने (ऐसा) एक पुत्र पैदा किया" (vidh systur thinni gaztu slikan mög)। अब न्योर्द आसा नहीं, बल्कि वाना गण का था और 'इंगलिंग वीर-गाथा' में वह कहता है कि वाना-देश में भाइयों और बहनों की शादियों का चलन था, लेकिन आसाओं में ऐसी प्रथा नहीं थी।[115] इससे यह प्रतीत होता है कि वाना गण आसा लोगों से अधिक पुराने देवता थे। बहरहाल, न्योर्द आसाओं के बीच बराबरी के दर्जे पर रहता था और इसलिए 'ओगिस्ड्रेका' से असल में तो यह सिद्ध होता है कि जिस समय नारवे में देवताओं की वीर-गाथाओं

ये वंशज, सब के सब, एक दूसरे के भाई-बहन होंगे और ठीक इसी कारण वे सब एक दूसरे के पति-पत्नी भी होंगे।

रक्तसम्बद्ध यूथ-परिवार एकदम मिट गया है। असंस्कृत से असंस्कृत जातियों में भी, जिनका इतिहास को ज्ञान है, परिवार के इस रूप का कोई ऐसा सबूत नहीं मिलता जिसकी जांच की जा सके। परन्तु हवाई द्वीप में पायी जानेवाली रक्त-सम्बद्धता की प्रणाली, जो आज भी पोलीनीशिया के सभी द्वीपों में प्रचलित है, हमें इस निष्कर्ष पर पहुंचने को बाध्य कर देती है कि परिवार का यह रूप कभी **ज़रूर रहा होगा**। उसमें रक्त-सम्बद्धता के ऐसे दर्जे मिलते हैं जो परिवार के इस रूप के अन्तर्गत ही उत्पन्न हो सकते हैं। और परिवार का आगे का विकास भी, जोकि इस रूप को एक आवश्यक प्रारम्भिक अवस्था मानकर ही चलता है, हमें इस नतीजे पर पहुंचने को मजबूर करता है।

२. **पुनालुआन परिवार**। यदि परिवार के संगठन में प्रगति का पहला क़दम यह था कि माता-पिता और सन्तान को पारस्परिक यौन-सम्बन्धों से अलग कर दिया गया तो उसका दूसरा क़दम यह था कि भाइयों और बहनों को भी अलग कर दिया गया। चूंकि भाई-बहन की आयु अधिक समान होती थी, इसलिए उन्हें अलग करना पहले क़दम से कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण और साथ ही अधिक कठिन भी था। यह क़दम धीरे-धीरे ही उठाया गया था। पहले शायद सगे भाइयों और बहनों (एक ही मां की संतान) के यौन-सम्बन्ध पर रोक लगायी गयी होगी। वह भी शुरू में सिर्फ़ इक्के-दुक्के मामलों में लगी होगी, और बाद में यह नियम बन गया होगा (हवाई में वर्तमान शताब्दी तक इस नियम के अपवाद मौजूद थे)। और अन्त में, बढ़ते-बढ़ते रिश्ते के भाई-बहनों के या, हमारी आजकल की भाषा में, सगे या दूर के मौसेरे,

---

की सृष्टि हुई, उस समय भाइयों और बहनों का विवाह, कम से कम देवताओं में, बुरा नहीं माना जाता था। यदि वैगनर के लिए सफ़ाई ही देनी है तो शायद 'एड्डा' काव्य के बजाय गेटे का साक्ष्य देना बेहतर होगा, क्योंकि गेटे ने अपने 'ईश्वर और देव-नर्त्तकी के गीत' में स्त्रियों के धार्मिक आत्मसमर्पण के बारे में ऐसी ही ग़लती की है और उसको आधुनिक वेश्यावृत्ति से बहुत ज़्यादा मिला दिया है। (**१८९१ के संस्करण में एंगेल्स का नोट।**)

चचेरे, ममेरे या फुफेरे भाई-बहनों के विवाह पर रोक लगा दी गयी होगी। मौर्गन के शब्दों में यह क्रिया

> "नैसर्गिक वरण के सिद्धान्त की कार्य-प्रणाली का एक अच्छा उदाहरण है।"

इस बात में तनिक भी संदेह नहीं है कि जिन क़बीलों में इस क़दम के द्वारा कुटुम्ब में अन्तर्प्रजनन पर रोक लग गयी थी, उन्होंने अनिवार्यतः उन क़बीलों के मुक़ाबले में कहीं जल्दी और अधिक पूर्ण विकास किया, जिनमें भाई-बहनों के बीच अन्तर्विवाह नियम था, और आवश्यक कर्त्तव्य भी। और इस क़दम का कितना ज़बर्दस्त असर पड़ा, यह **गोत्र** की संस्थापना से सिद्ध होता है जो सीधे-सीधे इसी क़दम से पैदा हुई, और उसके कहीं आगे निकल गयी। गोत्र बर्बर युग में संसार की यदि सभी नहीं तो अधिकतर जातियों के सामाजिक संगठन का आधार था, और यूनान तथा रोम में तो हम इससे सीधे सभ्यता के युग में प्रवेश कर जाते हैं।

प्रत्येक आदिम परिवार अधिक से अधिक दो-तीन पीढ़ियों तक चलकर बंट जाता था। बर्बर युग की मध्यम अवस्था के उत्तर काल तक, हर जगह बिना किसी अपवाद के, आदिम कुटुम्ब-समुदायों में ही रहने का चलन था। और उसके कारण कुटुम्ब-समुदाय के आकार और विस्तार की एक विशेष दीर्घतम सीमा निश्चित हो जाती थी, जो परिस्थितियों के अनुसार बदलती रहती थी, परन्तु प्रत्येक स्थान में बहुत कुछ निश्चित रहती थी। जब एक मां के बच्चों के बीच सम्भोग बुरा समझा जाने लगा, तो लाज़िमी था कि इस नये विचार का पुराने कुटुम्ब-समुदायों के विभाजन पर तथा नये कुटुम्ब-समुदायों (Hausgemeinden) की स्थापना पर असर पड़े (पर यह ज़रूरी नहीं था कि ये नये समुदाय यूथ-परिवार के एकरूप हों)। बहनों का एक अथवा अनेक समूह एक कुटुम्ब का मूल-केन्द्र बन जाते थे, जबकि उनके सगे भाई दूसरे कुटुम्ब का मूल-केन्द्र बन जाते थे। रक्तसम्बद्ध यूथ-परिवार से, इस ढंग से या इससे मिलते-जुलते किसी और ढंग से, परिवार का वह रूप उत्पन्न होता है जिसे मौर्गन पुनालुआन परिवार कहते हैं। हवाई की प्रथा के अनुसार कई बहनों के – वे सगी बहनें हों या रिश्ते की (यानी प्रथम या द्वितीय कोटि के संबंध से या और दूर के संबंध से चचेरी, ममेरी, फुफेरी बहनें) – कुछ समान पति होते थे, जिनकी वे समान रूप से पत्नियां हुआ

करती थीं। परन्तु उनके भाइयों को इस सम्बन्ध से अलग रखा जाता था, यानी वे उनके पति नहीं हो सकते थे। ये पति अब एक दूसरे को भाई नहीं कहते थे – और वास्तव में अब उनका भाई होना आवश्यक भी नहीं था – वल्कि "पुनालुआ" कहते थे, जिसका अर्थ है अन्तरंग सखा, या associé* इसी प्रकार, भाइयों का एक दल – वे सगे भाई हों या रिश्ते के – कुछ स्त्रियों के साथ विवाह-सम्बन्ध में बंधा होता था। पर ये स्त्रियां उनकी बहनें **नहीं** होती थीं; और ये स्त्रियां भी एक दूसरे को पुनालुआ कहती थीं। परिवार के ढांचे (Familienformation) का यह प्राचीन रूप था; बाद में इसमें कई परिवर्तन हुए। इस संगठन की बुनियादी विशेषता यह थी कि परिवार के एक निश्चित दायरे में पतियों और पत्नियों का एक समुदाय होता था, पर पत्नियों के भाई – पहले सगे भाई और बाद में रिश्ते के भाई भी – इस दायरे से अलग रखे जाते थे, और उसी प्रकार दूसरी ओर पतियों की बहनें भी इस दायरे से अलग रखी जाती थीं।

अमरीका में पायी गयी रक्त-सम्बन्ध प्रणाली से पारिवारिक सम्बन्धों की जो श्रेणियां निकलती हैं, उनमें से एक-एक परिवार के इस रूप में मिल जाती है। मेरी मां की बहनों के बच्चे उसके भी बच्चे रहते हैं, मेरे पिता के भाइयों के बच्चे उसी प्रकार मेरे पिता के बच्चे भी रहते हैं; और वे सब मेरे भाई-बहन होते हैं। परन्तु मेरी मां के भाइयों के बच्चे अब उसके भतीजे-भतीजियां कहलाते हैं, मेरे पिता की बहनों के बच्चे उसके भांजे-भांजियां कहलाते हैं। और ये सब मेरे ममेरे या फुफेरे भाई-बहन कहलाते हैं। मेरी मां की बहनों के पति उसके भी पति होते हैं और उसी प्रकार मेरे पिता के भाइयों की पत्नियां उसकी भी पत्नियां होती हैं। वास्तव में ऐसा हमेशा नहीं भी होता, तो भी सिद्धान्त में तो ये सम्बन्ध माने ही जाते हैं। परन्तु भाइयों और बहनों के यौन-सम्बन्ध पर सामाजिक प्रतिबंध लग जाने के फलस्वरूप अब रिश्ते के भाई-बहन, जो पहले बिना भेदभाव के भाई-बहन ही समझे जाते थे, अब दो दर्जों में बंट गये: कुछ पहले की ही तरह (समपार्श्विक) भाई-बहन ही रहे; बाक़ी को, एक ओर भाइयों के बच्चों को और दूसरी ओर बहनों के बच्चों को, अब एक दूसरे के भाई-बहन **नहीं** समझा जा सकता था, उनकी समान माता, समान पिता, अथवा समान

---

* साझीदार। – सं०

माता-पिता नहीं हो सकते थे। इसलिए अब पहली बार भतीजों-भतीजियों का, ममेरे और फुफेरे भाई-बहनों का, एक नया दर्जा बनाना आवश्यक हुआ – जो परिवार की पुरानी व्यवस्था में बिलकुल बेमानी होता। रक्त-सम्बन्ध की अमरीका में पायी गयी प्रणाली, जो किसी भी प्रकार के व्यक्तिगत विवाह पर आधारित परिवार की दृष्टि से बिलकुल बेवक़ूफ़ी मालूम पड़ती है, पुनालुआन परिवार के बिलकुल उपयुक्त सिद्ध होती है। उस प्रणाली की एक-एक बात पुनालुआन परिवार के आधार पर स्वाभाविक और विवेकपूर्ण सिद्ध हो जाती है। जिस हद तक रक्त-सम्बद्धता की यह प्रणाली प्रचलित थी, कम से कम ठीक उसी हद तक पुनालुआन परिवार या उससे मिलता-जुलता कोई रूप भी प्रचलित रहा होगा।

यह सिद्ध हो चुका है कि परिवार का यह रूप हवाई में मौजूद था; और यदि अमरीका में स्पेन से आये हुए भिक्षुओं की तरह के धर्मात्मा मिशनरी लोग इन ग़ैर-ईसाई यौन-सम्बन्धों को केवल "पापाचार"* न समझते, तो शायद सारे पोलीनीशिया में परिवार के इस रूप का अस्तित्व सिद्ध किया जा सकता था। सीज़र के काल में ब्रिटन लोग बर्बर युग की मध्यम अवस्था में थे। अतएव जब हम सीज़र के लिखे हुए वर्णन में पढ़ते हैं कि "दस-दस और बारह-बारह के दलों में वे लोग सामूहिक रूप से पत्नियां रखते थे, और अधिकतर भाई-भाई साथ रहते थे और माता-पिता सन्तानों के साथ रहते थे", तो स्पष्ट है कि हम इसे यूथ-विवाह के रूप में ही ग्रहण करके समझ सकते हैं। बर्बर युग की माताओं के दस या बारह पुत्र इतने बड़े नहीं हो सकते थे कि वे सामूहिक रूप से पत्नियां रख सकते, परन्तु अमरीका में पायी गयी रक्त-सम्बन्ध प्रणाली में, जो पुनालुआन परिवार के अनुरूप है, भाइयों की संख्या बहुत बड़ी होती है, क्योंकि हर पुरुष के पास के या दूर

---

* अब इसमें तनिक भी सन्देह नहीं हो सकता कि स्वच्छन्द यौन-सम्भोग, उनके तथाकथित «Sumpfzeugung» के वे चिह्न, जिन्हें बाख़ोफ़ेन अपनी खोज समझते थे, यूथ-विवाह की ओर संकेत करते हैं। "यदि बाख़ोफ़ेन इन पुनालुआन विवाहों को 'अवैध' समझते हैं, तो उस युग का आदमी आजकल के, पास के या दूर के चचेरे और मौसेरे भाई-बहनों के बीच होनेवाले अधिकतर विवाहों को पापाचार, यानी रक्त-सम्बद्ध भाइयों और बहनों के बीच विवाह समझेगा।" (मार्क्स) – (एंगेल्स का नोट।)

के भाई भी उसके सगे भाई की तरह ही माने जाते हैं। "माता-पिता सन्तानों के साथ रहते थे"—यह कथन शायद सीज़र की ग़लतफ़हमी का परिणाम है। हां, इस प्रणाली में यह असम्भव नहीं है कि पिता और पुत्र या माता और पुत्री एक ही विवाह-यूथ में हों, गोकि बाप और बेटी, या मां और बेटे उसमें नहीं रह सकते थे। इसी प्रकार हेरोडोटस और अन्य प्राचीन लेखकों ने जांगल तथा बर्बर लोगों में सामूहिक पत्नियों का जो वर्णन किया है, वह भी परिवार के इसी या इससे मिलते-जुलते यूथ-विवाह के रूप के आधार पर ही सरलता से समझ में आता है। वाटसन और कै ने अपनी पुस्तक «*The People of India*» में (गंगा के उत्तर में) अवध में रहने वाले ठाकुरों का जो वर्णन दिया है, उस पर भी यही बात लागू होती है। उन्होंने इन लोगों के बारे में लिखा है कि

> "वे बड़े-बड़े समुदायों में (यौन-सम्बन्धों की दृष्टि से) बिना किसी भेदभाव के साथ रहते थे और जब दो व्यक्ति विवाहित माने जाते थे, उनका विवाह-सम्बन्ध नाममात्र के लिए ही होता था।"

अधिकतर स्थानों में मालूम होता है कि **गोत्र** सीधे पुनालुआन परिवार से उत्पन्न हुए। हां, वैसे आस्ट्रेलिया की वर्ग-व्यवस्था से भी इसकी शुरूआत हो सकती थी।[110] आस्ट्रेलिया-वासियों में गोत्र तो होते हैं, पर उनमें पुनालुआन परिवार नहीं होता, उनमें यूथ-विवाह का एक अधिक कुघड़ रूप पाया जाता है।

यूथ-विवाह के सभी रूपों में, इस बात का निश्चय नहीं होता कि बच्चे का पिता कौन है। पर इसका निश्चय होता है कि बच्चे की माता कौन है। यद्यपि मां इस कुल परिवार के **सभी** बच्चों को अपनी सन्तान कहती है, और उन सभी के प्रति उसे माता के कर्त्तव्य का पालन करना पड़ता है, तथापि वह यह तो जानती ही है कि उसकी सगी सन्तान कौनसी है। अतएव यह स्पष्ट हो जाता है कि जहां कहीं यूथ-विवाह का चलन होता है, वहां केवल **मां** के वंशजों का ही पता चल सकता है, और **मां ही** के नाम से वंश चलता है। सभी जांगल लोगों में तथा बर्बर युग की निम्न अवस्था में पाये जानेवाले लोगों में, वास्तव में यही बात देखी जाती है और बाख़ोफ़ेन की दूसरी बड़ी उपलब्धि यह थी कि उन्होंने सबसे पहले इसका पता लगाया था। केवल माता के द्वारा वंश का पता लगने तथा इससे कालान्तर में उत्पन्न होनेवाले उत्तराधिकार-सम्बन्धों को, बाखोफ़ेन मातृ-सत्ता के नाम से पुकारते हैं।

संक्षिप्तता की दृष्टि से मैं भी इसी नाम का प्रयोग करूंगा। परन्तु, यह नाम बहुत उपयुक्त नहीं है, क्योंकि समाज के विकास की इस अवस्था में अभी क़ानूनी अर्थ में सत्ता जैसी कोई चीज़ नहीं उत्पन्न हुई है।

अब यदि पुनालुआन परिवार के दो ठेठ समूहों में से हम किसी एक को लें, जिसमें सगी तथा रिश्ते की बहनें (एक पीढ़ी के अन्तर से, दो या और भी अधिक पीढ़ियों के अन्तर से वंशजायें) शामिल हैं और उनके साथ-साथ उनके बच्चे और उनके सगे या मौसेरे भाई (जो हमारी मान्यता के अनुसार उनके पति नहीं होते) भी शामिल हैं, तो हम पायेंगे कि ठीक ये ही वे लोग हैं जो बाद में चलकर, अपने प्रारम्भिक रूप में गोत्र के सदस्य होते हैं। इन सब लोगों की एक समान पूर्वजा होती है, जिसकी वंशजायें पीढ़ी-दर-पीढ़ी आपस में बहनें होती हैं, इसी नाते होती हैं कि वे उसकी वंशजायें हैं। परन्तु इन बहनों के पति लोग अब उनके भाई नहीं हो सकते, यानी वे उसी एक पूर्वजा के वंशज नहीं हो सकते, और इसलिए वे उस रक्त-सम्बद्ध समूह के, जो बाद में गोत्र कहलाने लगा, सदस्य भी नहीं हो सकते। परन्तु उनके बच्चे इस समूह में होते हैं, क्योंकि मातृ-परम्परा ही असन्दिग्ध होने के कारण निर्णायक महत्त्व रखती है। जब एक बार ज़्यादा से ज़्यादा दूर के रिश्ते के मौसेरे भाई-बहनों समेत तमाम भाई-बहनों के यौन-सम्बन्ध पर प्रतिबंध स्थापित हो जाता है, तो उपरोक्त समूह गोत्र में बदल जाता है— यानी, तब वह मातृ-वंशी ऐसे रक्त-सम्बन्धियों का एक बहुत सख़्ती के साथ सीमित दायरा बन जाता है, जिन्हें आपस में विवाह करने की इजाज़त नहीं होती। और इस समय से ही यह गोत्र सामाजिक एवं धार्मिक चरित्र रखने वाली अन्य सामान्य संस्थाओं के द्वारा अपने को अधिकाधिक शक्तिशाली और दृढ़ बनाता जाता है और उसी क़बीले के दूसरे गोत्रों से अपने को अलग करता जाता है। बाद में हम इसकी अधिक विस्तार से चर्चा करेंगे। परन्तु जब हम पाते हैं कि गोत्र न केवल अनिवार्यतः, बल्कि प्रत्यक्षतः भी पुनालुआन परिवार में से विकसित होकर निकले हैं, तो इस बात को भी लगभग पक्का मानने के लिए आधार मिल जाता है कि जिन जातियों में गोत्रीय संस्थाओं के चिह्न मिलते हैं, उन सब में, यानी लगभग सभी बर्बर तथा सभ्य जातियों में परिवार का यह रूप पहले मौजूद था।

जिस समय मौर्गन ने अपनी पुस्तक लिखी थी, उस समय तक भी यूथ-विवाह का हमारा ज्ञान बहुत सीमित था। उस समय आस्ट्रेलिया के निवासियों

में—जो वर्गों में संगठित थे—पाये जानेवाले यूथ-विवाहों के बारे में थोड़ी सी जानकारी थी। इसके अलावा मौर्गन ने १८७१ में ही वह सामग्री प्रकाशित कर दी थी जो उन्हें हवाई के पुनालुआन परिवार के बारे में उपलब्ध हुई थी। पुनालुआन परिवार से, एक ओर तो अमरीकी इंडियनों में पायी गयी रक्त-सम्बन्ध प्रणाली पूरी तरह समझ में आ जाती थी,—ध्यान रहे कि मौर्गन की सारी खोज इसी प्रणाली से आरम्भ हुई थी; दूसरी ओर, उसमें मातृसत्तात्मक गोत्रों के विकास-क्रम का प्रारम्भिक विन्दु मिल जाता था; और अन्त में, वह आस्ट्रेलिया के वर्गों से कहीं अधिक ऊंचे दर्जे के विकास का प्रतिनिधित्व करता था। इसलिए यह समझ में आनेवाली बात है कि मौर्गन ने पुनालुआन परिवार को युग्म-परिवार के पहले आनेवाली विकास की एक आवश्यक मंज़िल समझा और यह मान लिया कि शुरू के ज़माने में परिवार का यह रूप आम तौर पर प्रचलित था। तब से हमें यूथ-विवाह के और भी कई रूपों की जानकारी हो गयी है, और अब हम जानते हैं कि मौर्गन इस दिशा में बहुत दूर तक चले थे। फिर भी, यह उनका सौभाग्य था कि पुनालुआन परिवार के रूप में उन्हें यूथ-विवाह का सर्वोच्च एवं क्लासिकीय रूप मिल गया था, जिससे उच्चतर अवस्था में संक्रमण सबसे अधिक आसानी से समझ में आ सकता है।

यूथ-विवाह के विषय में अपने ज्ञान-भंडार की अत्यन्त मौलिक वृद्धि के लिए हम लौरिमेर फ़ाइसन नामक अंग्रेज़ मिशनरी के आभारी हैं, क्योंकि उन्होंने परिवार के इस रूप का, उसके मूल स्थान, आस्ट्रेलिया में वर्षों तक अध्ययन किया था। दक्षिणी आस्ट्रेलिया में माउंट गैम्बियर नामक पर्वत के नीग्रो लोगों को उन्होंने विकास की सबसे निम्न अवस्था में पाया था। यहां पूरा क़बीला क्रोकी और कुमाइट नामक दो वर्गों में बंटा हुआ है। प्रत्येक वर्ग के अन्दर यौन-सम्भोग पर सख़्त प्रतिबंध है। दूसरी ओर, एक वर्ग का हरेक पुरुष दूसरे वर्ग की हरेक नारी का जन्म से पति होता है और वह उसकी जन्म से पत्नी होती है। व्यक्तियों का नहीं, बल्कि पूरे समूहों का आपस में विवाह होता है; एक वर्ग दूसरे वर्ग से विवाहित होता है। और ध्यान रहे, यहां आयु में अन्तर से, अथवा विशेष प्रकार के रक्त-सम्बन्ध से कोई पाबंदियां नहीं लगतीं। एकमात्र पाबंदी वही है जो दो बहिर्विवाही वर्गों में विभाजन से निर्धारित होती है। क्रोकी वर्ग का प्रत्येक पुरुष कुमाइट वर्ग की प्रत्येक नारी का वैध पति है, परन्तु चूंकि उसकी अपनी पुत्री भी, एक

कुमाइट नारी की सन्तान होने के नाते मातृ-सत्ता के अनुसार कुमाइट होती है, इसलिए वह जन्म से क्रोकी वर्ग के प्रत्येक पुरुष की और अपने पिता की भी पत्नी होती है। जो भी हो यह वर्ग-संगठन, जैसा कि हम उसे जानते हैं, इस संबंध पर प्रतिबंध नहीं लगाता। अतएव या तो यह संगठन उस समय उत्पन्न हुआ होगा, जब अन्तःप्रजनन पर रोक लगाने की अस्पष्ट प्रेरणाओं के बावजूद, माता-पिता और सन्तान के बीच मैथुन को अभी विशेष घृणा की दृष्टि से नहीं देखा जाता था – और ऐसी सूरत में यह वर्ग-संगठन सीधे अनियंत्रित अथवा स्वच्छन्द यौन-सम्बन्धों की अवस्था से उत्पन्न हुआ होगा; और या फिर वर्गों के आविर्भाव के पहले ही माता-पिता तथा सन्तान के यौन-सम्बन्ध पर रीति-रिवाजों ने प्रतिबंध लगा दिया होगा – और ऐसी सूरत में वर्तमान स्थिति रक्त-सम्बद्ध यूथ-परिवार की ओर संकेत करती है और उसके आगे के विकास की पहली मंज़िल के रूप में सामने आती है। ज़्यादा मुमकिन है कि यह दूसरी सूरत ही रही होगी। क्योंकि जहां तक मुझे मालूम है, आस्ट्रेलिया में माता-पिता तथा सन्तान के बीच यौन-सम्बन्ध का कोई उदाहरण नहीं मिला है; और बहिर्विवाह की प्रथा का बाद में आनेवाला रूप, यानी मातृसत्तात्मक गोत्र भी, आम तौर पर ऐसे सम्बन्धों पर लगे हुए प्रतिबंधों को मानकर चलता है, क्योंकि वे उसकी स्थापना के पहले से लगे हुए थे।

दक्षिणी आस्ट्रेलिया के माउंट गैम्बियर के अलावा, यह द्विवर्गीय व्यवस्था उसके भी पूर्व, डार्लिंग नदी के प्रदेश में, और उत्तर-पूर्व, क्वीन्सलैंड में भी पायी जाती है। अर्थात् यह व्यवस्था बहुत दूर-दूर तक फैली हुई है। इस व्यवस्था में केवल भाइयों और बहनों के बीच, भाइयों के बच्चों के बीच और मौसेरी बहनों के बच्चों के बीच विवाह नहीं हो सकता, क्योंकि ये सब एक वर्ग के सदस्य होते हैं। दूसरी ओर, भाई और बहन के बच्चों को विवाह करने की इजाज़त होती है। अन्तःप्रजनन पर एक और प्रतिबंध हम न्यू साउथ वेल्स में डार्लिंग नदी के तट पर रहनेवाले कामिलारोई जाति के लोगों में पाते हैं। यहां पुराने दो वर्गों को चार में बांट दिया गया है और इन चारों में से प्रत्येक वर्ग एक अन्य वर्ग से सामूहिक रूप से विवाहित होता है। पहले दो वर्ग जन्म से एक दूसरे के पति-पत्नी होते हैं। उनके बच्चे तीसरे या चौथे वर्ग के सदस्य हो जाते हैं, जो इस पर निर्भर करता है कि उनकी मां पहले वर्ग की है या दूसरे वर्ग की। इसी प्रकार तीसरे और चौथे वर्ग

आपस में विवाहित होते हैं और उनके बच्चे फिर पहले या दूसरे वर्ग के सदस्य हो जाते हैं। इस प्रकार एक पीढ़ी के लोग सदा पहले और दूसरे वर्गों के सदस्य होते हैं; दूसरी पीढ़ी के लोग सदा तीसरे और चौथे वर्गों के सदस्य होते हैं। और उसके बाद आनेवाली पीढ़ी के लोग फिर पहले और दूसरे वर्गों के सदस्य हो जाते हैं। इस व्यवस्था के अनुसार (मौसेरे) भाइयों व बहनों के बच्चे आपस में विवाह नहीं कर सकते, पर उनके पोते-पोतियां कर सकते हैं। यह विचित्र रूप से जटिल व्यवस्था उस समय और जटिल हो जाती है जब उस पर ऊपर से मातृसत्तात्मक गोत्रों की क़लम लगा दी जाती है, तो भी वह काफ़ी बाद में होता है। पर उसकी चर्चा करना यहां संभव नहीं है। इस प्रकार हम देखते हैं कि अन्तःप्रजनन पर प्रतिबंध लगाने की प्रवृत्ति किस प्रकार बार-बार ज़ोर मारती है, पर उद्देश्य की साफ़ समझ न होने की वजह से, वह सदा स्वयंस्फूर्त्त ढंग से रास्ता टटोलती हुई आगे बढ़ती है।

यूथ-विवाह को, जो आस्ट्रेलिया में अभी वर्ग-विवाह का—यानी एक पूरे महाद्वीप के विभिन्न भागों में बिखरे हुए पुरुषों के एक पूरे वर्ग का, इसी तरह दूर-दूर तक बिखरी हुई नारियों के वर्ग के साथ विवाह का—ही रूप धारण किये हुए है, ज़्यादा नज़दीक से देखने पर वह उतना भयानक नहीं लगता जितना हमारे कूपमंडूकों ने चकलाघर के रंग में रंगी हुई अपनी कल्पना में उसे समझ रखा है। इसके विपरीत, बरसों बीत गये पर किसी को शक तक न हुआ कि यूथ-विवाह जैसी कोई प्रथा अस्तित्व रखती है; और सचमुच अभी हाल में फिर लोगों ने उसके अस्तित्व के बारे में मतभेद प्रकट किया है। महज़ ऊपर की सतही चीज़ों को देखनेवालों को यह एक प्रकार की ढीली-ढाली एकनिष्ठ विवाह की प्रथा मालूम पड़ती थी, जिसमें कहीं-कहीं बहु-पत्नी विवाह भी पाया जाता था और यदा-कदा पति-पत्नी एक दूसरे के साथ बेवफ़ाई करते रहते थे। विवाह की ऐसी अवस्थाओं के नियम का पता लगाने के लिए बरसों तक अध्ययन करने की आवश्यकता है, जैसा कि फ़ाइसन और हौविट ने किया था। व्यवहार में यह नियम, औसत यूरोपवासी को उसके अपने वैवाहिक रीति-रिवाजों की याद दिलाता है। यह इसी नियम का चमत्कार है कि आस्ट्रेलियाई नीग्रो एक कैम्प से दूसरे कैम्प, एक क़बीले से दूसरे क़बीले में चक्कर लगाता हुआ, अपने घर से हज़ारों मील दूर ऐसे लोगों के बीच पहुंच जाता है जिनकी भाषा तक वह नहीं समझता, पर वहां

भी उसे ऐसी स्त्रियां मिल जाती हैं जो मासूमियत के साथ और बिना किसी विरोध के उसके सामने आत्मसमर्पण करती हैं। इसी नियम के अनुसार वह पुरुष जिसके पास कई पत्नियां हैं, अपनी एक पत्नी रात भर के लिए अपने मेहमान को सौंप देता है। यूरोपवासी को जहां केवल अनैतिकता और अराजकता का दौर-दौरा दिखायी देता है, वहां वास्तव में बड़े सख़्त नियमों का पालन होता है। स्त्रियां आगन्तुक के विवाह-वर्ग की हैं और इसलिए वे जन्म से उसकी पत्नियां हैं। नैतिकता के जिस नियम ने एक को दूसरे के हाथ सौंप रखा है, उसी ने एक दूसरे से सम्वन्धित विवाह-वर्गों के बाहर हर प्रकार के यौन-व्यापार पर प्रतिबंध लगा रखा है, और जो कोई इस नियम को तोड़ता है, उसे क़बीले से निकाल दिया जाता है। यहां तक कि जहां स्त्रियों का अपहरण भी होता है, जो अक्सर देखने में आता है और जिसका कहीं-कहीं तो नियम है, वहां भी वर्ग-विधान का कड़ाई के साथ पालन किया जाता है।

स्त्रियों के अपहरण में हमें व्यक्तिगत विवाह की प्रथा में संक्रमण का चिह्न दिखायी देता है। कम से कम युग्म-विवाह के रूप में तो उसकी एक झलक यहां दिखायी ही पड़ती है। जब युवा पुरुष अपने मित्रों की सहायता से लड़की का अपहरण कर लेता है, या उसे भगा लाता है, तो वह और उसके मित्र सब बारी-बारी से लड़की के साथ सम्भोग करते हैं, परन्तु उसके बाद वह पत्नी उसी युवक की मानी जाती है जिसने उसके अपहरण में पहल की थी। और यदि भगायी हुई स्त्री इस पुरुष के पास से भी भाग जाती है और कोई दूसरा पुरुष उस पर अधिकार कर लेता है, तो वह उसकी पत्नी हो जाती है, और पहले पुरुष का विशेषाधिकार ख़त्म हो जाता है। इस प्रकार यूथ-विवाह की प्रणाली के—जो आम तौर पर क़ायम रहती है—साथ-साथ और उसके भीतर, एकांतिक सम्वन्ध, न्यूनाधिक समय के लिए युग्म-जीवन, और बहु-पत्नी विवाह भी पाये जाते हैं। अतएव यूथ-विवाह की प्रथा यहां भी धीरे-धीरे मिट रही है। प्रश्न केवल यह है कि यूरोपीय प्रभाव के फलस्वरूप पहले कौन मिटेगा—यूथ-विवाह, या इस प्रथा को माननेवाले आस्ट्रेलियाई नीग्रो।

कुछ भी हो, पूरे वर्गों के बीच विवाह, जैसा कि आस्ट्रेलिया में प्रचलित है, यूथ-विवाह का बहुत निम्न और आदिम स्वरूप है, जबकि पुनालुआन परिवार, जहां तक हम जानते हैं, यूथ-विवाह का सबसे विकसित स्वरूप है।

मालूम पड़ता है कि पहला स्वरूप घुमन्तू-जांगलियों की सामाजिक स्थिति के अनुकूल था, जबकि दूसरे स्वरूप के लिए आदिम कुटुम्ब-समुदायों की अपेक्षाकृत स्थायी बस्तियां पूर्वमान्य हैं, और उससे सीधे अगली और उच्चतर मंज़िल में अन्तरण होता है। इन दोनों अवस्थाओं के बीच में निस्संदेह कुछ दर्म्यानी अवस्थाएं भी मिलेंगी। इस तरह यहां हमारे सामने खोज का एक विशाल क्षेत्र मौजूद है, जो अभी-अभी खुला है और प्रायः अछूता पड़ा है।

३. **युग्म-परिवार**। न्यूनाधिक समय के लिए युग्म-जीवन यूथ-विवाह के अन्तर्गत, या उसके भी पहले शुरू हो गया था। पुरुष की अनेक पत्नियों में से एक उसकी मुख्य पत्नी (उसे अभी सबसे अधिक चहेती पत्नी नहीं कहा जा सकता) होती थी, और उसके अनेक पतियों में, वह स्वयं उसका मुख्य पति होता था। बहुत हद तक इसी परिस्थिति के कारण मिशनरी लोग यूथ-विवाह को देखकर उलझन में पड़ गये थे, और उसे कभी सामूहिक पत्नियों के साथ अनियंत्रित यौन-सम्बन्ध, और कभी-कभी उच्छृंखल व्यभिचार समझते थे। बहरहाल, जैसे-जैसे गोत्र का विकास हुआ और उन "भाइयों" और "बहनों" के वर्गों की संख्या बढ़ती गयी जिनमें विवाह होना असम्भव बना दिया गया था, वैसे-वैसे लोगों की जोड़े में रहने की आदत भी आवश्यक रूप से बढ़ती गयी। रक्त-सम्बन्धियों के बीच विवाह को रोकने की प्रवृत्ति को गोत्र से जो बढ़ावा मिला, उससे इस चीज़ में और तेज़ी आयी। इस प्रकार, हम पाते हैं कि इरोक्वा और अधिकतर अन्य इंडियन क़बीलों में, जो बर्बर युग की निम्न अवस्था में हैं, उनकी व्यवस्था के अन्तर्गत मान्य **सभी** सम्बन्धियों—और उनकी संख्या कई सौ क़िस्म तक पहुंचती है—के बीच विवाह पर प्रतिबंध लगा हुआ है। विवाह के प्रतिबंधों की यह बढ़ती हुई पेचीदगी यूथ-विवाहों को अधिकाधिक असम्भव बनाती गयी और उनका स्थान **युग्म-परिवार** ने ले लिया। इस अवस्था में, एक पुरुष एक नारी के साथ तो रहता है, लेकिन इस तरह कि एक से अधिक पत्नियां रखने और कभी-कभी पत्नी के सिवा और स्त्रियों से भी सम्भोग करने का पुरुषों का अधिकार बना रहता है; यद्यपि वास्तव में, आर्थिक कारणों से पुरुष बहुधा अनेक पत्नियां नहीं रख पाता। साथ ही सहवास काल में नारी से कठोर पातिव्रत्य की अपेक्षा की जाती है और उसका उल्लंघन करनेवाली स्त्री को कठोर दण्ड दिया जाता है। परन्तु दोनों पक्षों में से कोई भी आसानी से

विवाह-सम्बन्ध को तोड़ सकता है, और बच्चों पर अब भी पहले की तरह माता का ही अधिकार होता है।

निरंतर अधिकाधिक रक्त-सम्बन्धियों के बीच विवाह पर प्रतिबंध लगाने में नैसर्गिक वरण का भी हाथ बना रहता है। मौर्गन के शब्दों में,

> "जो गोत्र रक्त-सम्बद्ध न थे उनके बीच होनेवाले विवाहों से जो सन्तानें पैदा होती थीं वे शरीर और मस्तिष्क दोनों से अधिक बलवान होती थीं। जब दो विकासशील क़बीले मिलकर एक जन-समूह बन जाते हैं ... तो एक नयी खोपड़ी और मस्तिष्क की उत्पत्ति होती है जिसकी लम्बाई-चौड़ाई दोनों की योग्यताओं के योग के बराबर होती है।"

अतएव, गोत्रों के आधार पर संघिटत क़बीले अधिक पिछड़े हुए क़बीलों पर हावी हो जाते हैं, या अपने उदाहरण के द्वारा उनको भी अपने साथ-साथ खींच ले चलते हैं।

इस प्रकार प्रागैतिहासिक काल में परिवार का विकास इसी बात में निहित था कि वह दायरा अधिकाधिक सीमित होता जाता था, जिसमें पुरुष और नारी के बीच वैवाहिक सम्बन्ध की स्वतंत्रता थी। शुरू में, पूरा क़बीला इस दायरे में आ जाता था। लेकिन बाद में, पहले इस दायरे में नज़दीकी सम्बन्धी धीरे-धीरे निकाल दिये गये, फिर दूर के सम्बन्धी अलग कर दिये गये, और अन्त में तो उन तमाम सम्बन्धियों को भी निकाल दिया गया जिनका केवल विवाह का सम्बन्ध था। इस तरह अन्त में, हर प्रकार का यूथ-विवाह व्यवहार में असंभव बना दिया गया। आख़िर में केवल एक फ़िलहाल बहुत ढीले बंधनों से जुड़ा, जोड़ा ही बचा, जो एक अणु की भांति होता है, और जिसके भंग हो जाने पर स्वयं विवाह ही पूरी तरह नष्ट हो जाती है। इसी एक बात से यह स्पष्ट हो जाता है कि एकनिष्ठ विवाह की उत्पत्ति में, व्यक्तिगत यौन-सम्बन्ध का इस शब्द के आधुनिक अर्थ में कितना कम हाथ रहा है। इस अवस्था में लोगों के व्यवहार से इसका एक और सबूत मिल जाता है। परिवार के पुराने रूपों के अन्तर्गत पुरुषों को कभी स्त्रियों की कमी नहीं होती थी, बल्कि सदा बाहुल्य ही रहता था, लेकिन अब इसके विपरीत, स्त्रियों की कमी होने लगी और उनकी तलाश की जाने लगी। अतएव युग्म-विवाह के साथ-साथ स्त्रियों को भगाना और ख़रीदना शुरू होता है–ये बातें कहीं अधिक गम्भीर परिवर्तन के **आसार मात्र** हैं, जो

बहुत व्यापक रूप में दिखायी पड़ती हैं, पर इससे अधिक उनका महत्त्व नहीं है। परन्तु उस पंडिताऊ स्काटलैंडवासी मैक-लेनन ने, इन आसार को, स्त्रियों को प्राप्त करने के इन तरीक़ों को ही, परिवार के अलग-अलग तरह के रूप बना डाला और कहा कि कुछ "अपहरण-विवाह" होते हैं और कुछ "क्रय-विवाह"। इसके अलावा, अमरीकी इंडियनों में, और (विकास की इसी मंज़िल के) कुछ अन्य क़बीलों में भी विवाह का प्रबंध उन दो व्यक्तियों के हाथ में नहीं होता जिनकी शादी होती है, बल्कि उनकी तो बहुधा राय तक नहीं पूछी जाती। विवाह का प्रबंध दोनों व्यक्तियों की माताओं के हाथ में रहता है। इस प्रकार अक्सर दो बिलकुल अजनबी व्यक्तियों की सगाई कर दी जाती है, और उन्हें इस सौदे का ज्ञान केवल विवाह का दिन नज़दीक आने पर ही होता है। विवाह के पहले, वधू के गोत्रीय सम्बन्धियों को (यानी उसकी माता की तरफ़ के सम्बन्धियों को, उसके पिता को या पिता के रिश्तेदारों को नहीं), वर तरह-तरह की वस्तुएं भेंट में देता है। ये वस्तुएं कन्या-दान के प्रतिदान स्वरूप होती हैं। पति या पत्नी कभी भी अपनी इच्छा से विवाह भंग कर सकते हैं। फिर भी बहुत-से क़बीलों में, उदाहरण के लिए इरोक्वा क़बीले में, लोक-भावना ऐसे सम्बन्ध-विच्छेद के धीरे-धीरे ख़िलाफ़ होती गयी। जब कोई झगड़ा खड़ा होता है, तो दोनों पक्षों के गोत्र-सम्बन्धी बीच-बिचाव करने और फिर से मेल करा देने की कोशिश करते हैं, और इन कोशिशों के बेकार हो जाने पर ही सम्बन्ध विच्छेद हो पाता है। ऐसा होने पर, बच्चे मां के साथ रहते हैं और दोनों पक्षों को फिर विवाह करने की आज़ादी होती है।

युग्म-परिवार स्वयं बहुत कमज़ोर और अस्थायी होता था, और इसलिए उसके कारण अलग कुटुम्ब की कोई विशेष आवश्यकता नहीं पैदा हुई थी, और न ही वह वांछनीय समझा गया। अतएव पहले से चला आता हुआ सामुदायिक कुटुम्ब, युग्म-परिवार के कारण टूटा नहीं। किन्तु सामुदायिक कुटुम्ब का मतलब यह है कि घर के भीतर नारी की सत्ता सर्वोच्च होती है,— उसी प्रकार जैसे सगे पिता का निश्चयपूर्वक पता लगाना असम्भव होने के कारण, सगी मां की एकान्तिक मान्यता का अर्थ है स्त्रियों का, अर्थात् माताओं का प्रबल सम्मान। समाज के आदि काल में नारी पुरुष की दासी थी, यह उन बिलकुल बेतुकी धारणाओं में से एक है जो हमें अठारहवीं सदी के जागरण के काल से विरासत में मिली हैं। सभी जांगल लोगों में, और निम्न तथा

मध्यम अवस्था की, यहां तक कि आंशिक रूप से उन्नत अवस्था की बर्बर जातियों में भी, नारी को स्वतंत्र ही नहीं, बल्कि बड़े आदर और सम्मान का भी स्थान प्राप्त था। आर्थर राइट ने सेनेका इरोक्वाओं के बीच बहुत वर्ष तक मिशनरी का काम किया था। युग्म-परिवार में नारी का क्या स्थान था, इस विषय में उनकी गवाही सुनिए :

> "जहां तक उनकी पारिवारिक व्यवस्था का सम्बन्ध है, जब ये लोग पुराने लम्बे घरों में रहते थे" (सामुदायिक कुटुम्बों में, जिनमें कई परिवार साथ-साथ रहते थे) "... तो सम्भवतः उनमें एक कुल" (गोत्र) "की प्रधानता रहती थी, और स्त्रियां दूसरे कुलों" (गोत्रों) "के पुरुषों को अपना पति बनाती थीं... घर में प्रायः नारी पक्ष शासन करता था। घर का भण्डार सब का सामूहिक होता था परन्तु यदि कोई अभागा पति या प्रेमी इतना नालायक़ होता था कि वह अपने हिस्से का सामान न जुटा पाये, तो उसकी मुसीबत आ जाती थी। फिर चाहे उसके कितने ही बच्चे हों और घर में चाहे उसका कितना ही सामान हो, उसे किसी भी समय बोरिया-बिस्तर उठाने का नोटिस़ मिल सकता था। और उसकी ख़ैरियत इसी में थी कि एक बार ऐसा आदेश मिल जाने पर उसका उल्लंघन करने की कोशिश न करे। उसके लिए घर में ठहरना अपनी शामत बुलाना होता और उसे अपने कुल" (गोत्र) "में लौट जाना पड़ता था, या जैसा कि अक्सर होता था, किसी और गोत्र में जाकर उसे एक नया वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश करनी पड़ती थी। अन्य सब स्थानों की भांति कुलों" (गोत्रों) "में भी मुख्य शक्ति स्त्रियों की होती थी। ज़रूरत होती थी, तो वे गोत्र के मुखिया को उसके पद से हटाकर साधारण योद्धाओं की पांत में वापस भेज देने में नहीं हिचकिचाती थीं।"

आदिम काल में आम तौर पर पाये जानेवाले स्त्रियों के प्राधान्य का भौतिक आधार वह सामुदायिक कुटुम्ब था, जिसकी अधिकतर स्त्रियां और यहां तक कि सभी स्त्रियां, एक ही गोत्र की होती थीं और पुरुष दूसरे विभिन्न गोत्रों से आते थे। और बाख़ोफ़ेन ने इस सामुदायिक कुटुम्ब का पता लगाकर तीसरी महान् सेवा अर्पित की है। साथ ही मैं यह भी जोड़ दूं कि यात्रियों तथा मिशनरियों की ये रिपोर्टें कि जांगल तथा बर्बर लोगों में स्त्रियों को कठोर परिश्रम करना पड़ता है, उपरोक्त तथ्य का खण्डन नहीं करतीं। जिन कारणों से समाज में स्त्रियों की स्थिति निर्धारित होती है, और जिन कारणों से

स्त्रियों और पुरुषों के बीच श्रम-विभाजन होता है, वे बिलकुल अलग-अलग हैं। वे लोग, जिनकी स्त्रियों को उससे कहीं ज्यादा मेहनत करनी पड़ती है, जितनी हम उचित समझते हैं, अक्सर स्त्रियों का यूरोपवासियों से कहीं अधिक सच्चा आदर करते हैं। सभ्यता के युग की नारी की, जिसका कि झूठा आदर-सत्कार तो बहुत होता है, और वास्तविक काम से जिसका कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता है, सामाजिक स्थिति बर्बर युग की मेहनत-मशक़्क़त करनेवाली नारी की सामाजिक स्थिति से कहीं नीचे होती है। बर्बर युग की नारियों को उनके अपने लोग सचमुच भद्र महिला (lady, frowa, Frau = मालकिन) समझते थे और उनकी सचमुच समाज में वैसी ही स्थिति थी।

अमरीका में अब युग्म-परिवार ने पूरी तरह यूथ-विवाह का स्थान ले लिया है या नहीं, इसका निर्णय करने के लिए उत्तरी-पश्चिमी अमरीका की, और विशेषकर दक्षिणी अमरीका की उन जातियों का ज्यादा नजदीक से अध्ययन करना होगा, जो अभी तक जांगल युग की उन्नत अवस्था में ही हैं। इन जातियों में यौन-स्वतंत्रता के इतने अधिक उदाहरण मिलते हैं कि उन्हें ध्यान में रखते हुए, हम यह नहीं मान सकते कि इन में यूथ-विवाह की पुरानी प्रथा पूरी तरह मिटा दी गयी है। बहरहाल अभी तक उसके सारे चिह्नों का लोप तो नहीं हो पाया है। उत्तरी अमरीका के कम से कम चालीस क़बीले ऐसे हैं, जिनमें किसी भी परिवार की सबसे बड़ी लड़की से विवाह करनेवाले पुरुष को यह अधिकार होता है कि वह उसकी सभी बहनों को, जैसे ही वे पर्याप्त आयु प्राप्त कर लें, अपनी पत्नी बना ले—यह बहनों के एक पूरे दल के सामूहिक पति होने की प्रथा का अवशेष है। और बैंक्रोफ़्ट बताते हैं कि कैलिफ़ोर्निया प्रायद्वीप के क़बीलों में (जोकि जांगल युग की उन्नत अवस्था में हैं) कुछ ऐसे त्योहार प्रचलित हैं, जिन में कई "क़बीले" स्वच्छन्द मैथुन के लिए एक जगह जमा होते हैं। ज़ाहिर है कि वास्तव में वे ऐसे गोत्र हैं जिन्हें ये त्योहार उन दिनों की धुंधली-सी याद दिलाते हैं, जबकि एक गोत्र के सभी पुरुष दूसरे गोत्र की सभी स्त्रियों के समान पति हुआ करते थे और इसी प्रकार एक गोत्र की सभी स्त्रियां दूसरे गोत्र के पुरुषों की समान पत्नियां हुआ करती थीं। यह प्रथा आस्ट्रेलिया में अभी तक चली आती है। कुछ जातियों में ऐसा होता है कि अपेक्षाकृत बूढ़े लोग, मुखिया और ओझा-पुरोहित आदि, सामूहिक पत्नियों की प्रथा को अपने मतलब के लिए इस्तेमाल करते हैं, और अधिकतर स्त्रियों पर अपना

एकाधिकार क़ायम कर लेते हैं। परन्तु इन लोगों को भी कुछ विशेष उत्सव या बड़े मेलों के समय पुराने सामूहिक अधिकार की पुनःस्थापना की और अपनी पत्नियों को नौजवानों के साथ मौज करने की इजाज़त देनी पड़ती है। वेस्टरमार्क ने (अपनी पुस्तक के पृष्ठ २८–२९ पर) समय-समय पर होनेवाले ऐसे "शनि-महोत्सवों"[117] के अनेक उदाहरण दिये हैं, जिनमें प्राचीन काल के स्वच्छन्द मैथुन की थोड़े समय के लिए फिर स्वतंत्रता हो जाती थी। मिसाल के लिए, उन्होंने बताया है कि ऐसे उत्सव भारत की हो, संथाल, पंजा और कौतार जातियों में और अफ़्रीका की कुछ जातियों में भी होते हैं इत्यादि। अजीब बात यह है कि वेस्टरमार्क इन उत्सवों को यूथ-विवाहों का नहीं, – वेस्टरमार्क यूथ-विवाह को नहीं मानते – बल्कि उस मैथुन-ऋतु का अवशेष मानते हैं जो आदिम मानव तथा अन्य पशुओं, दोनों के लिए समान है।

अब हम बाख़ोफ़ेन के चौथी बड़ी खोज पर आते हैं। हमारा मतलब यूथ-विवाह से युग्म-विवाह में संक्रमण के व्यापक रूप से प्रचलित रूप से है। जिस चीज़ को बाख़ोफ़ेन ने देवताओं के प्राचीन आदेशों का उल्लंघन करने के अपराध का प्रायश्चित्त समझा, – जिसके द्वारा स्त्री सतीत्व के अधिकार का मूल्य चुकाती है, – वह वास्तव में उस प्रायश्चित्त के रहस्यवादी स्वरूप से अधिक कुछ नहीं है, जिसकी क़ीमत देकर नारी बहुत-से पतियों की एकसाथ पत्नी होने के प्राचीन नियम से मुक्ति प्राप्त करती है, और अपने को केवल एक पुरुष को देने का अधिकार पाती है। यह प्रायश्चित्त सीमित आत्मसमर्पण के रूप में होता है। बैबिलोनिया की स्त्रियों को साल में एक बार मिलिटा के मंदिर में जाकर आत्मसमर्पण करना पड़ता था। मध्य पूर्व की दूसरी जातियों के लोग अपनी लड़कियों को कई साल के लिए अनाइतिस के मंदिर में भेज देते थे, जहां उन्हें अपनी पसन्द के पुरुषों के साथ स्वच्छन्द प्रणय-व्यापार करना पड़ता था और उसके बाद ही उन्हें विवाह करने की इजाज़त मिलती थी। भूमध्य सागर और गंगा नदी के बीच के इलाक़े में रहनेवाली लगभग सभी एशियाई जातियों में धार्मिक आवरण से ढंके इसी प्रकार के रीति-रिवाज पाये जाते हैं। मुक्ति पाने के उद्देश्य से किया गया प्रायश्चित्त स्वरूप यह बलिदान कालांतर में धीरे-धीरे कम कठिन होता जाता है, जैसा कि बाख़ोफ़ेन ने कहा है:

"पहले हर साल आत्मसमर्पण करना पड़ता था, अब एक बार आत्मसमर्पण करके काम चल जाता है। पहले विवाहिता स्त्रियों को

हैटेरा होना पड़ता था, अब केवल कुमारियों को। पहले यह विवाह के दौरान होता था, अब विवाह के पहले। पहले बिना किसी भेदभाव के हर किसी के सामने आत्मसमर्पण करना पड़ता था, अब कुछ ख़ास-ख़ास व्यक्तियों के सामने आत्मसमर्पण करने से काम चल जाता है।" ('मातृ-सत्ता', पृष्ठ १९)।

दूसरी जातियों में धार्मिक आवरण भी नहीं है। प्राचीन काल के थेसियावासियों, कैल्ट आदि जातियों के लोगों में, भारत के बहुत-से आदिवासियों में, मलय जाति में, दक्षिण सागर के द्वीपों में रहनेवालों में, और बहुत-से अमरीकी इंडियनों में तो आज भी विवाह के समय तक लड़कियों को अधिक से अधिक यौन-स्वतंत्रता रहती है। विशेष रूप से, पूरे दक्षिणी अमरीका में यह बात पायी जाती है। यदि कोई आदमी थोड़ा भी इस देश के अन्दरूनी हिस्सों में गया है, तो वह ज़रूर इस बात की गवाही दे सकता है। उदाहरण के लिए, वहां के इंडियन नस्ल के एक धनी परिवार के बारे में एग्गास्सिज़ ने (१८८६ में बोस्टन और न्यूयार्क से प्रकाशित अपनी पुस्तक 'ब्राज़ील की यात्रा' में पृष्ठ २६६ पर) यह लिखा है कि जब परिवार की पुत्री से उसका परिचय कराया गया और उसने लड़की के पिता के विषय में पूछा, जो उसकी समझ में लड़की की मां का पति था, और पैरागुए के ख़िलाफ़ युद्ध में एक अफ़सर की हैसियत से सक्रिय भाग ले रहा था, तो मां ने मुस्कराते हुए जवाब दिया : «nao tem pai, é filha da fortuna», अर्थात् "इसका पिता नहीं है, यह तो संयोग की संतान है"।

"इंडियन या दोगली नस्ल की स्त्रियां अपनी जारज संतान के बारे में यहां सदा इसी ढंग से जिक्र करती हैं। इसमें कोई दोष-पाप या लज्जा की बात है, इसकी उनमें तनिक भी चेतना नहीं दिखायी देती। यह इतनी साधारण बात है कि इसकी उल्टी बात ही अपवाद मालूम पड़ती है।" (प्रायः) "बच्चे" (केवल) "अपनी मां के बारे में ही जानते हैं, क्योंकि उनकी परवरिश की पूरी जिम्मेदारी मां पर ही पड़ती है। बच्चों को अपने पिता का कोई ज्ञान नहीं होता, और न ही शायद स्त्री को कभी यह ख़याल होता है कि उसका या उसके बच्चों का उस पुरुष पर कोई दावा है।"

सभ्य मानव को यहां जो कुछ इतना अजीब लग रहा है, वह वास्तव में केवल मातृ-सत्ता तथा यूथ-विवाह के नियमों का परिणाम है।

कुछ ग्रौर जातियों में वर के मित्र ग्रौर सम्बन्धी, या विवाह में ग्राये हुए ग्रतिथि , विवाह के समय ही वधू पर ग्रपने परम्परागत पुराने ग्रधिकार का इस्तेमाल करते हैं, ग्रौर वर की बारी सब के ग्रन्त में ग्राती है। मिसाल के लिए, बलियारिक द्वीपों में, प्राचीन काल की ग्रफ़्रीका की ग्रोगिला जाति में, ग्रौर एबीसीनिया की बारिया जाति में ग्राजकल भी यही चलन है। कुछ ग्रौर जातियों में एक ग्रधिकारी व्यक्ति – क़बीले या गोत्र का प्रमुख, कासिक, शमन, पुरोहित, राजा, या उसकी जो भी उपाधि हो, ऐसा कोई एक व्यक्ति– समुदाय के प्रतिनिधि के रूप में वधू के साथ सुहागरात के ग्रधिकार का प्रयोग करता है। इस प्रथा को नव-रोमांचक रंगों में रंगने की चाहे जितनी कोशिश की जाये, पर इसमें संदेह नहीं कि ग्रलास्का प्रदेश के ग्रधिकतर ग्रादिवासियों में (बैंक्रोफ़्ट, 'ग्रादिवासी नस्लें', भाग १, पृष्ठ ८१), उत्तरी मैक्सिको के ताहू लोगों में (वही, पृष्ठ ५८४), ग्रौर कुछ ग्रन्य जातियों में यह jus primae noctis* यूथ-विवाह के ग्रवशेष के रूप में ग्राज भी पाया जाता है। ग्रौर पूरे मध्य युग में, कम से कम उन देशों में, जहां शुरू में कैल्ट जाति के लोग रहते थे, यह प्रथा, जो वहां सीधे-सीधे यूथ-विवाह से निकली थी, प्रचलित थी। इसका एक उदाहरण ग्रारागों प्रदेश है। जबकि कैस्टील में किसान कभी भूदास नहीं रहा, ग्रारागों में एक ग्रत्यन्त गर्हित भूदास-व्यवस्था प्रचलित थी, ग्रौर वह उस समय तक क़ायम रही जब तक कि १४८६ में कैथोलिक फ़र्दीनांद ने एक फ़रमान जारी कर उसे ख़तम नहीं कर दिया। इस फ़रमान में कहा गया है:

> "हम फ़ैसला देते हैं ग्रौर ऐलान करते हैं कि यदि कोई किसान किसी ग्रौरत से विवाह करता है तो ऊपर जिन लार्डों" (señors, बैरनों) "का ज़िक्र किया गया है... वे पहली रात उसके साथ नहीं सोयेंगे, न वे शादी की रात को ग्रौरत के सोने चले जाने के बाद ग्रपने ग्रधिकार के प्रतीकस्वरूप उसके बिस्तर पर ग्रौर उसके ऊपर ग्रासन जमायेंगे। न ही ये लार्ड किसान के बेटे-बेटियों से, मजूरी देकर या बिना मजूरी के, उनकी मर्ज़ी के ख़िलाफ़ काम लेंगे।" (ज़ुगेनहाइम की पुस्तक 'भूदास प्रथा', पीटर्सबर्ग, १८६१, के मूल कैटेलोनियन भाषा के संस्करण में उद्धृत, पृष्ठ ३५५।)

---

* सुहागरात का ग्रधिकार। – सं०

वाख़ोफ़ेन का यह तर्क भी बिलकुल सही है कि जिस अवस्था को उन्होंने "हैटेरिज़्म" अथवा «Sumpfzeugung» का नाम दिया है, उससे एकनिष्ठ विवाह में संक्रमण मुख्यतः नारी के ही हाथों सम्पन्न हुआ था। जीवन की आर्थिक परिस्थितियों के विकास के फलस्वरूप, अर्थात् आदिम सामुदायिक व्यवस्था के ध्वंस के साथ-साथ तथा आबादी के अधिकाधिक घनी होते जाने के साथ-साथ, पुराने परम्परागत यौन-सम्बन्धों का भोलेपन से भरा हुआ आदिम, अकृत्रिम वन्य स्वरूप जितना ही नष्ट होता गया, उतना ही ये सम्बन्ध नारियों को अपमानजनक और उत्पीड़क प्रतीत हुए होंगे, और इस अवस्था से निष्कृति के रूप में सतीत्व के, एक पुरुष से ही अस्थायी अथवा स्थायी विवाह के अधिकार के लिए उतनी ही उनकी आकांक्षा बढ़ी होगी। पुरुषों की ओर से यह परिवर्तन कभी नहीं आ सकता था – और कुछ नहीं तो केवल इसलिए कि पुरुषों ने आज तक कभी भी वास्तविक यूथ-विवाह के मज़ों को व्यवहार में त्यागने की बात सपने में भी नहीं सोची है। स्त्रियों द्वारा युग्म-विवाह की प्रथा में संक्रमण सम्पन्न किये जाने के बाद ही पुरुष कड़ाई से एकनिष्ठ विवाह लागू कर सके – पर ज़ाहिर है कि यह बंधन भी उन्होंने केवल स्त्रियों पर ही लगाया।

युग्म-परिवार ने जांगल युग तथा बर्बर युग के सीमांत पर जन्म लिया था। वह मुख्यतः जांगल युग की उन्नत अवस्था में, और कहीं-कहीं बर्बर युग की निम्न अवस्था में ही कहीं जाकर, उत्पन्न हुआ था। जिस प्रकार यूथ-विवाह जांगल युग की विशेषता है और एकनिष्ठ विवाह सभ्यता के युग की, इसी प्रकार परिवार का यह रूप – युग्म-विवाह – बर्बर युग की विशेषता है। उसके विकसित होकर स्थायी एकनिष्ठ विवाह में बदल जाने के लिए आवश्यक था कि अभी तक हमने जिन कारणों को काम करते देखा है, उनसे कुछ भिन्न कारण मैदान में आयें। युग्म-परिवार में यूथ घटते-घटते अपनी अन्तिम इकाई में बदल गया था और नारी तथा पुरुष इन दो परमाणुओं से बना एक अणु रह गया था। नैसर्गिक वरण ने सामूहिक विवाह के दायरे को घटाते-घटाते अपना काम पूरा कर दिया था; अब इस दिशा में उसे और कुछ करना बाक़ी न था। अब यदि कोई नयी, **सामाजिक** प्रेरक शक्ति हरकत में न आती, तो कोई कारण न था कि युग्म-परिवार से परिवार का कोई नया रूप उत्पन्न होता। मगर ये नयी प्रेरक शक्तियां हरकत में आने लगीं।

अब हम युग्म-परिवार की प्राचीन भूमि अमरीका से विदा लेते हैं। हमारे

पास इस नतीजे पर पहुंचने के लिए कोई सबूत नहीं है कि अमरीका में परिवार का कोई और उन्नत रूप विकसित हुआ था, या कि अमरीका की खोज तथा उस पर क़ब्ज़ा होने से पहले उसके किसी भी भाग में नियमित एकनिष्ठ विवाह की प्रथा पायी जाती थी। परन्तु पुरानी दुनिया में इसकी उल्टी हालत थी।

यहां पशु-पालन तथा प्रजनन ने सम्पदा का एक ऐसा स्रोत खोल दिया था, जिसकी पहले कल्पना भी नहीं की गयी थी, और नये सामाजिक सम्बन्धों को जन्म दिया था। बर्बर युग की निम्न अवस्था तक मकान, कपड़े, कुघड़ ज़ेवर और नाव, हथियार तथा बहुत मामूली ढंग के घरेलू वर्तन आदि, आहार उपलब्ध तथा तैयार करने के औज़ार मात्र ही, अचल सम्पत्ति में गिने जाते थे। आहार हर रोज़ नये सिरे से प्राप्त करना पड़ता था। परन्तु अब घोड़ों, ऊंटों, गधों, गाय-बैलों, भेड़-बकरियों और सुअरों के रेवड़ों के रूप में, गड़रियों का जीवन बितानेवाले अग्रगामी लोगों को – भारत के पंचनद प्रदेश में तथा गंगा नदी के क्षेत्र के निवासियों तथा ओक्सस और ज़क्सारतीस नदियों के पानी से ख़ूब हरे-भरे, आज से कहीं ज़्यादा हरे-भरे घास के मैदानों में रहनेवाले आर्यों को, और फ़रात तथा दजला नदियों के किनारे रहनेवाले सामी लोगों को – एक ऐसी सम्पदा मिल गयी थी जिसकी केवल ऊपरी देख-रेख और अत्यंत साधारण निगरानी करने से ही काम चल जाता था। यह सम्पदा दिन-दूनी रात-चौगुनी बढ़ती जाती थी और इससे उन्हें दूध तथा मांस के रूप में अत्यधिक स्वास्थ्यकर भोजन मिल जाता था। आहार प्राप्त करने के पुराने सब तरीक़े अब पीछे छूट गये। शिकार करना, जो पहले जीवन के लिए आवश्यक था, अब शौक़ की चीज़ बन गया।

पर इस नयी सम्पदा पर अधिकार किसका था? शुरू में निस्संदेह उस पर गोत्र का अधिकार था। परन्तु पशुओं के रेवड़ों पर बहुत प्राचीन काल में ही निजी स्वामित्व क़ायम हो गया होगा। यह कहना मुश्किल है कि इंजील के तथाकथित प्रथम मूसा-खण्ड के लेखक को पिता इब्राहीम गाय-बैलों और भेड़-बकरियों के रेवड़ों के, एक कुटुम्ब-समुदाय के मुखिया होने के नाते स्वामी प्रतीत हुए थे या किसी गोत्र के वंशपरम्परागत प्रमुख होने के नाते। परन्तु एक वात निश्चित है और वह यह कि हम इब्राहीम को आधुनिक अर्थ में सम्पदा का स्वामी नहीं कह सकते। साथ ही यह बात भी निश्चित है कि प्रामाणिक इतिहास के आरम्भ में ही हम यह पाते हैं कि

पशुओं के रेवड़, परिवार के मुखियाओं की अलग सम्पदा उसी तरह होते थे, जिस तरह बर्बर युग की कला-कृतियां, धातु के बर्तन, ऐश-आराम के सामान, और अन्त में मानव-पशु यानी दास, मुखियाओं की अलग-अलग सम्पत्ति होते थे।

कारण कि अब दास-प्रथा का भी आविष्कार हो चुका था। बर्बर युग की निम्न अवस्था के लोगों के लिए दास व्यर्थ थे। यही कारण था कि अमरीकी इंडियन युद्ध में पराजित अपने शत्रुओं के साथ जो व्यवहार करते थे, वह इस युग की उन्नत अवस्था के व्यवहार से बिलकुल भिन्न था। पराजित पुरुषों को या तो मार डाला जाता था, या विजयी क़बीला उन्हें अपने भाइयों के रूप में स्वीकार कर लेता था। स्त्रियों से या तो विवाह कर लिया जाता था या उन्हें भी, मय उनके बचे हुए बच्चों के, क़बीले का सदस्य बना लिया जाता था। अभी मानव श्रम से इतना नहीं पैदा होता था कि श्रम करनेवाले के जीवन-निर्वाह के ख़र्च के बाद थोड़ा-बहुत बच भी रहे। परन्तु जब पशु-पालन और प्रजनन होने लगा, धातुओं का इस्तेमाल होने लगा, बुनाई शुरू हो गयी, और अन्त में जब खेत बनाकर खेती होने लगी, तब स्थिति बदल गयी। जिस प्रकार पहले पत्नियां बड़ी आसानी से मिल जाती थीं, पर बाद में उनको विनिमय-मूल्य प्राप्त हो गया था और वे ख़रीदी जाती थीं, उसी प्रकार बाद में, विशेषकर पशुओं के रेवड़ों के पारिवारिक सम्पदा बनाये जाने के बाद, श्रम-शक्ति भी ख़रीदी जाने लगी। परिवार उतनी तेज़ी से नहीं बढ़ता था जितनी तेज़ी से रेवड़ बढ़ते थे। रेवड़ की देख-रेख करने के लिए और आदमियों की ज़रूरत होती थी। युद्ध में बंदी बनाये गये लोग इस काम के लिए उपयोगी थे। इसके अलावा पशुओं की तरह उनकी भी नस्ल बढ़ायी जा सकती थी।

इस प्रकार की सम्पदा जब एक बार परिवारों की निजी सम्पत्ति बन गयी और उसकी वहां ख़ूब बढ़ती हुई, तो उसने युग्म-विवाह तथा मातृ-सत्तात्मक गोत्र पर आधारित समाज पर कठोर प्रहार किया। युग्म-विवाह के कारण परिवार में एक नये तत्त्व का प्रवेश हो गया था। सगी मां के साथ-साथ अब प्रमाणित सगा बाप भी मौजूद था, जो शायद आजकल के बहुत-से "बापों" से अधिक प्रमाणित था। परिवार के अन्दर उस जमाने में जिस श्रम-विभाजन का चलन था, उसके अनुसार आहार जुटाने और उसके लिए आवश्यक औज़ार तैयार करने का काम पुरुष का था, और इसलिए इन

औज़ारों पर उसी का अधिकार होता था। पति-पत्नी अलग होते थे तो जिस प्रकार घर का सामान स्त्री के पास रहता था, उसी प्रकार पुरुष इन औज़ारों को अपने साथ ले जाता था। अतएव उस ज़माने की सामाजिक रीति के अनुसार, आहार-संग्रह के इन नये साधनों का – यानी पशुओं का, और बाद में श्रम के नये साधनों का, यानी दासों का भी – मालिक पुरुष हुआ। परन्तु, उसी समाज की, रीति के अनुसार, पुरुष की संतान उसकी सम्पत्ति को उत्तराधिकार में नहीं पाती थी। इस मामले में स्थिति इस प्रकार थी।

मातृ-सत्ता के अनुसार, यानी जब तक कि वंश केवल स्त्री-परंपरा के अनुसार चलता रहा, और गोत्र की मूल उत्तराधिकार-प्रथा के अनुसार, गोत्र के किसी सदस्य के मर जाने पर उसकी सम्पत्ति पहले उसके गोत्र के सम्बन्धियों को मिलती थी। यह आवश्यक था कि सम्पत्ति गोत्र के भीतर ही रहे। शुरू में चूंकि सम्पत्ति साधारण होती थी, इसलिए सम्भव है कि व्यवहार में वह सबसे नज़दीकी गोत्र-सम्बन्धियों को, यानी मां की तरफ़ के रक्त-सम्बन्धियों को मिलती रही हो। परन्तु मृत पुरुष के बच्चे उसके गोत्र में नहीं, बल्कि अपनी मां के गोत्र में होते थे। शुरू में अपनी मां के दूसरे रक्त-सम्बन्धियों के साथ-साथ बच्चों को भी मां की सम्पत्ति का एक भाग मिलता था, और शायद बाद में, उस पर उनका पहला अधिकार मान लिया गया हो। परन्तु उन्हें अपने पिता की सम्पत्ति नहीं मिल सकती थी, क्योंकि वे उसके गोत्र के सदस्य नहीं होते थे, और उसकी सम्पत्ति का उसके गोत्र के अन्दर रहना आवश्यक था। अतएव पशुओं के रेवड़ के मालिक के मर जाने पर, उसके रेवड़ पहले उसके भाइयों और बहनों को और बहनों के बच्चों को, या उसकी मौसियों के वंशजों को मिलते थे। परन्तु उसके अपने बच्चे उत्तराधिकार से वंचित थे।

इस प्रकार जैसे-जैसे सम्पत्ति बढ़ती गयी, वैसे-वैसे इसके कारण एक ओर तो परिवार के अन्दर नारी की तुलना में पुरुष का दर्जा ज़्यादा महत्त्वपूर्ण होता गया, और दूसरी ओर पुरुष के मन में यह इच्छा ज़ोर पकड़ती गयी कि अपनी पहले से मज़बूत स्थिति का फ़ायदा उठाकर उत्तराधिकार की पुरानी प्रथा को उलट दिया जाये ताकि उसके अपने बच्चे हक़दार हो सकें। परन्तु जब तक मातृ-सत्ता के अनुसार वंश चल रहा था, तब तक ऐसा करना असम्भव था। इसलिए आवश्यक था कि मातृ-सत्ता को उल्टा जाये, और यही किया गया। और यह करने में उतनी कठिनाई नहीं हुई जितनी आज मालूम

पड़ती है। कारण कि यह क्रान्ति, जो मानवजाति द्वारा अब तक अनुभूत सबसे निर्णायक क्रांतियों में थी, गोत्र के एक भी जीवित सदस्य के जीवन में किसी तरह का ख़लल डाले बिना सम्पन्न हो सकती थी। सभी सदस्य जैसे पहले थे, वैसे ही अब भी रह सकते थे। बस यह एक सीधा-सादा फ़ैसला काफ़ी था कि भविष्य में गोत्र के पुरुष सदस्यों के वंशज गोत्र में रहेंगे और स्त्रियों के वंशज गोत्र से अलग किये जायेंगे, और उनके पिताओं के गोत्रों में शामिल कर दिये जायेंगे। इस प्रकार मातृक वंशानुक्रम तथा मातृक दायाधिकार की प्रथा उलट दी गयी और उसके स्थान पर पैतृक वंशानुक्रम तथा पैतृक दायाधिकार स्थापित हुआ। यह क्रांति सभ्य जातियों में कब और कैसे हुई, इसके बारे में हम कुछ नहीं जानते। यह पूर्णतः प्रागैतिहासिक काल की बात है। पर यह क्रांति **वास्तव में हुई थी**, यह इस बात से एकदम सिद्ध हो जाता है कि मातृ-सत्ता के जगह-जगह अनेक अवशेष मिले हैं, जिन्हें ख़ास तौर पर बाख़ोफ़ेन ने जमा किया है। यह क्रांति कितनी आसानी से हो जाती है, यह इस बात से प्रकट होता है कि अनेक इंडियन क़बीलों में, यह परिवर्तन अभी हाल में हुआ है और अब भी हो रहा है। यहां यह क्रांति कुछ हद तक बढ़ती हुई दौलत और जीवन की परिवर्तित प्रणालियों (जंगलों से वृक्षविहीन घास के मैदानों में स्थानान्तरण) के प्रभाव के कारण और कुछ हद तक सभ्यता तथा मिशनरियों के नैतिक प्रभाव के कारण हुई है। मिसौरी के आठ क़बीलों में से छः में पैतृक और दो में अब भी मातृक वंशानुक्रम तथा मातृक दायाधिकार क़ायम है। शौनी, मियामी और डेलावेयर क़बीलों में यह रीति बन गयी है कि बच्चों को पिता के गोत्र के नामों में से कोई एक नाम देकर उस गोत्र में शामिल कर दिया जाता है ताकि वे अपने पिता की सम्पत्ति के उत्तराधिकारी बन सकें। "मनुष्य की अन्तर्जात वाक्छल प्रवृत्ति जिसके द्वारा वह वस्तुओं के नाम बदलकर स्वयं उन वस्तुओं को बदलने की चेष्टा करता है! जब भी कोई प्रत्यक्ष हित पर्याप्त प्रेरणा प्रदान करता है, वह परम्परा को तोड़ने के लिए परम्परा के अन्दर छिद्र ढूंढ़ निकालता है।" (मार्क्स।) इसका परिणाम यह हुआ कि बेहद गड़बड़ी मच गयी और उसे ठीक करने का सिर्फ़ यह रास्ता रह गया कि मातृ-सत्ता की जगह पितृ-सत्ता क़ायम की जाये। ऐसा ही करके कुछ हद तक यह गड़बड़ी दूर भी की गयी। "यह कुल मिलाकर बहुत ही स्वाभाविक संक्रमण मालूम पड़ता है।" (मार्क्स।) जहां तक इस बात का सम्बन्ध है कि पुरानी दुनिया की सभ्य जातियों में

यह परिवर्तन जिन तरीक़ों और उपायों से किया गया, उनके बारे में तुलनात्मक क़ानून के विशेषज्ञों का क्या कहना है – ज़ाहिर है कि उनके मत प्रमेय मात्र हैं – पाठक म० कोवालेव्स्की की 'परिवार और सम्पत्ति की उत्पत्ति और विकास की रूपरेखा' नामक पुस्तक को देखें, जो स्टॉकहोम से १८९० में प्रकाशित हुई थी।

मातृ-सत्ता का विनाश **नारी जाति की विश्व-ऐतिहासिक महत्त्व की पराजय थी।** अब घर के अन्दर भी पुरुष ने अपना आधिपत्य जमा लिया। नारी पदच्युत कर दी गयी। वह जकड़ दी गयी। वह पुरुष की वासना की दासी, संतान उत्पन्न करने का एक यंत्र मात्र बनकर रह गयी। वीर-काल के, और उससे भी अधिक क्लासिकीय काल के यूनानियों में नारी की यह गिरी हुई हैसियत ख़ास तौर पर देखी गयी। बाद में धीरे-धीरे तरह-तरह के आवरणों से ढंक कर और सजा कर, और आंशिक रूप में थोड़ी नरम शक्ल देकर, उसे पेश किया जाने लगा, पर वह कभी दूर नहीं हुई।

अब पुरुषों की जो एकमात्र सत्ता स्थापित हुई उसका पहला प्रभाव परिवार के एक अन्तरकालीन रूप – पितृसत्तात्मक परिवार की शक्ल – में प्रगट हुआ, जिसका उस काल में आविर्भाव हुआ। इस रूप की मुख्य विशेषता बहु-पत्नी विवाह नहीं थी – उसका तो हम आगे ज़िक्र करेंगे। उसकी मुख्य विशेषता यह थी कि

> "कई व्यक्ति, जिनमें दास भी होते थे और स्वतंत्र लोग भी, परिवार के मुखिया की पितृ-सत्ता के अधीन एक परिवार में संगठित होते थे। सामी लोगों में इस परिवार के मुखिया के पास कई पत्नियां होती थीं, दास के पास एक पत्नी और बच्चे होते थे, और पूरे संगठन का उद्देश्य एक सीमित क्षेत्र के अन्दर पशुओं के रेवड़ों और ढोरों की देख-रेख करना होता था।" 118

परिवार के इस रूप की सारभूत विशेषताएं दासों का परिवार में समावेश और पितृ-सत्ता थीं। अतएव परिवार के इस रूप का सबसे विकसित रूप रोमन परिवार है। शुरू में familia शब्द का अर्थ वह नहीं था जो हमारे आधुनिक कूपमंडूक का आदर्श है और जिसमें भावुकता और घरेलू कलह का सम्मिश्रण होता है। प्रारंभ काल में रोमन लोगों के बीच इस शब्द में विवाहित दम्पत्ति और उसके बच्चों का संकेत भी न था, वह केवल दासों का ही सूचक था। लैटिन भाषा के famulus शब्द का अर्थ है घरेलू दास, और familia

शब्द का अर्थ – एक व्यक्ति के सारे दासों का समूह। यहां तक कि गायस के समय में भी familia, id est patrimonium (अर्थात् उत्तराधिकार) को लोग एक वसीयतनामे के द्वारा अपने वंशजों के लिए छोड़ जाते थे। रोमन लोगों ने एक नये सामाजिक संगठन का वर्णन करने के लिए इस नाम का आविष्कार किया था। उसमें उसके मुखिया के अधीन उसकी पत्नी, उसके बच्चे और कुछ दास होते थे, और रोमन पितृ-सत्ता के अन्तर्गत उसके हाथ में इन लोगों की ज़िन्दगी और मौत का अधिकार होता था।

"अतएव यह नाम लैटिन क़बीलों की उस लौह आवेष्ठित पारिवारिक व्यवस्था से अधिक पुराना नहीं था, जिसने खेत बना कर खेती करने की प्रथा के शुरू होने, दास-प्रथा के क़ानूनी बन जाने, और साथ ही यूनानियों तथा (आर्य नस्ल के) लैटिन लोगों के अलग हो जाने के बाद जन्म लिया था।"[119]

मार्क्स ने इस वर्णन में ये शब्द और जोड़े हैं कि "आधुनिक परिवार में न केवल दास-प्रथा (servitus), बल्कि भूदास-प्रथा भी बीज-रूप में निहित है, क्योंकि परिवार का सम्बन्ध शुरू से ही खेती के काम-धंधे से रहा है। लघु रूप में इसमें वे तमाम विरोध मौजूद रहते हैं जो बाद में चलकर समाज में और उसके राज्य में बड़े व्यापक रूप से विकसित होते हैं।"

परिवार के इस रूप से पता चलता है कि युग्म-परिवार का किस तरह एकनिष्ठ विवाह में संक्रमण हुआ। पत्नी के सतीत्व की रक्षा करने के लिए, यानी बच्चों के पितृत्व की रक्षा करने के लिए, नारी को पुरुष की निरंकुश सत्ता के अधीन बना दिया जाता है। वह यदि उसे मार भी डालता है, तो वह अपने अधिकार का ही प्रयोग करता है।

पितृसत्तात्मक परिवार के साथ हम लिखित इतिहास के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं, और यह एक ऐसा क्षेत्र है जिसमें तुलनात्मक विधि विज्ञान हमारी बड़ी सहायता कर सकता है। और सचमुच इस क्षेत्र में हम उसके कारण काफ़ी प्रगति करने में सफल हुए हैं। हम मक्सिम कोवालेव्स्की ('परिवार और सम्पत्ति की उत्पत्ति और विकास की रूपरेखा', स्टॉकहोम, १८९०, पृष्ठ ६०–१००) के आभारी हैं कि उन्होंने यह बात साबित कर दी कि पितृसत्तात्मक कुटुम्ब-समुदाय (Hausgenossenschaft), जैसा कि उसे हम सर्बिया और बल्गेरिया के लोगों में आज भी Zádruga (जिसका मतलब बिरादरी जैसी चीज़ है) या Bratstvo (भ्रातृत्व) के नामों से चलता हुआ पाते हैं, और जो थोड़े बदले

हुए रूप में पूरब के लोगों में भी मिलता है, यूथ-विवाह से विकसित होनेवाले मातृसत्तात्मक परिवार के और आधुनिक संसार के व्यक्तिगत परिवार के बीच की संक्रमणकालीन अवस्था है। कम से कम जहां तक पुरानी दुनिया की सभ्य जातियों का – आर्यों तथा सामी लोगों का – सम्बन्ध है, यह बात साबित हो गयी मालूम पड़ती है।

इस प्रकार के कुटुम्ब-समुदाय का सबसे अच्छा उदाहरण आजकल हमें दक्षिणी स्लाव लोगों के Zádruga* के रूप में मिलता है। इसमें एक पिता के कई पीढ़ियों के वंशज और उनकी पत्नियां शामिल होती हैं। ये सब लोग साथ-साथ एक घर में रहते हैं, मिलकर अपने खेतों को जोतते हैं, एक समान भंडार से भोजन और वस्त्र प्राप्त करते हैं और इस्तेमाल के बाद जो चीज़ें बच रहती हैं, वे सब की सामूहिक सम्पत्ति होती हैं। इस समुदाय का प्रबंध घर के मुखिया (domáčin) के हाथ में रहता है। वह बाहरी मामलों में समुदाय का प्रतिनिधित्व करता है, छोटी-मोटी चीज़ों को दे-ले सकता है, घर का हिसाब-किताब रखता है, और इन बातों तथा घर के काम-काज का नियमित रूप से संचालन करने के लिए ज़िम्मेदार समझा जाता है। घर के मुखिया का चुनाव होता है और यह भी ज़रूरी नहीं है कि वह कुटुम्ब का सबसे बूढ़ा सदस्य हो। घर की औरतों और उनके काम का संचालन घर की कर्त्री (domáčica) करती है, जो प्रायः domáčin की पत्नी होती है। लड़कियों के लिए वर चुनने में उसका मत महत्त्वपूर्ण और प्रायः निर्णायक होता है। परन्तु फिर भी सर्वोच्च सत्ता कुटुम्ब-परिषद् के हाथ में रहती है। कुटुम्ब के सभी बालिग़ लोग – पुरुष और नारी – इस परिषद् के सदस्य होते हैं। घर का मुखिया अपना हिसाब इसी परिषद् के सामने रखता है। यह परिषद् ही तमाम महत्त्वपूर्ण सवालों को तय करती है, कुटुम्ब के सदस्यों के बीच न्याय करती है, और महत्त्वपूर्ण वस्तुओं, विशेषकर ज़मीन-जायदाद की ख़रीद-बिक्री आदि का निर्णय करती है।

क़रीब दस बरस पहले की ही बात है जब रूस में भी ऐसे बड़े-बड़े कुटुम्ब-समुदायों के अस्तित्व का प्रमाण मिला था[120]। और अब तो यह बात आम तौर पर मानी जाती है कि रूस की लोक-परम्परा में इन समुदायों की जड़ें भी उतनी ही गहरी जमी हुई हैं जितनी óbščina, अथवा ग्राम-समुदाय की। रूसियों की सबसे प्राचीन विधि-संहिता में – यारोस्लाव के 'प्राव्दा' में – इन समुदायों का उसी नाम (vervj) से ज़िक्र आता है, जिस नाम से डाल्मेशियन

क़ानूनों में[121] आता है। और पोल तथा चेक लोगों की ऐतिहासिक दस्तावेज़ों में भी उनकी चर्चा मिलती है।

ह्यूज़लर के मतानुसार ('जर्मन अधिकार-प्रथाएं') जर्मन लोगों में भी आर्थिक इकाई शुरू में आधुनिक ढंग का व्यक्तिगत परिवार नहीं थी, बल्कि "कुटुम्ब-समुदाय" (Hausgenossenschaft) थी जिसमें कई पीढ़ियां या कई वैयक्तिक परिवार, और अक्सर बहुत-से अधीन लोग भी शामिल होते थे। रोमन परिवार के इतिहास को देखने से उसका भी पूर्व रूप यही कुटुम्ब-समुदाय ठहरता है, और इसके परिणामस्वरूप अभी हाल में रोमन परिवार में घर के मुखिया की निरंकुश सत्ता और परिवार के बाक़ी सदस्यों की मुखिया की तुलना में अधिकारहीन स्थिति के विषय में प्रबल शंका प्रगट की गयी है। यह माना जाता है कि इस प्रकार के कुटुम्ब-समुदाय आयरलैंड के कैल्ट लोगों में भी रहे हैं। फ़्रांस के निवेर्नाई प्रदेश में वे parçonneries के नाम से, फ़्रांसीसी क्रांति के समय तक मौजूद थे, और फ़्रांश-कोम्ते में तो वे आज भी नहीं मिटे हैं। लूहां (साओन तथा ल्वार) के इलाक़े में अब भी ऐसे अनेक बड़े-बड़े किसान घर देखने को मिलेंगे जिनके बीचों-बीच एक ऊंची छत का सामुदायिक हॉल होता है और उसके चारों ओर सोने के कमरे होते हैं जिनमें जाने के लिए छः से आठ तक सीढ़ियों के ज़ीने बने होते हैं और जिनमें एक ही परिवार की कई पीढ़ियां निवास करती हैं।

भारत में सामूहिक ढंग से खेती करनेवाले कुटुम्ब-समुदाय के अस्तित्व के बारे में नियार्कस ने सिकन्दर महान् के समय में ही ज़िक्र किया था, और उसी इलाक़े में, पंजाब में और देश के पूरे उत्तर-पश्चिमी भाग में, इस प्रकार के समुदाय आज भी पाये जाते हैं। ख़ुद कोवालेव्स्की काकेशस में ऐसे समुदाय के अस्तित्व के साक्षी हैं। अल्जीरिया के क़बायलियों में वह आज तक मौजूद है। कहा जाता है कि अमरीका में भी किसी समय इस प्रकार के समुदाय का अस्तित्व था। यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया जा रहा है कि ज़ुरिता ने प्राचीन मैक्सिको के जिस calpullis[122] का वर्णन किया है, वह इसी ढंग का कुटुम्ब-समुदाय था। दूसरी ओर कूनोव ने («*Ausland*»[123], १८९०, अंक ४२–४४) काफ़ी साफ़ तौर पर साबित कर दिया है कि यूरोपीय विजय के समय पीरू में "मार्क" जैसा संगठन था (और अजीब बात यह है कि वहां "मार्क" को marca कहते थे), जिसमें खेती की ज़मीन के समय-समय पर बंटवारे की व्यवस्था थी, यानी जोत वैयक्तिक प्रकार की ही थी।

कुछ भी हो, भूमि पर सामूहिक स्वामित्व तथा सामूहिक जोत के साथ पितृसत्तात्मक कुटुम्ब-समुदाय का अब एक नया ही अर्थ प्रगट होता है जो पहले नहीं समझा गया था। अब इसमें कोई सन्देह नहीं रह गया है कि पुरानी दुनिया की सभ्य तथा अन्य जातियों में, इस समुदाय ने मातृसत्तात्मक परिवार और एकनिष्ठ परिवार के बीच संक्रमणकालीन रूप में बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है। कोवालेव्स्की ने इससे भी आगे जाकर यह कहा है कि इसी संक्रमणकालीन अवस्था में से ग्राम-समुदाय, अथवा मार्क-समुदाय भी निकला है, जिसमें लोग खेती अलग-अलग करते थे और खेती की और चरागाह की ज़मीन इनके बीच, शुरू में थोड़े-थोड़े निश्चित काल के लिए और बाद में स्थायी रूप से बांट दी गयी थी। लेकिन इसकी हम बाद में चर्चा करेंगे।

जहां तक इन कुटुम्ब-समुदायों के भीतर के पारिवारिक जीवन का सम्बन्ध है, हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि कम से कम रूस में घर के मुखिया के बारे में यह प्रसिद्ध है कि वह घर की जवान औरतों के बारे में, ख़ासकर अपनी बहुओं के बारे में अपनी हैसियत का बेजा फ़ायदा उठाता है और घर को अक्सर हरम बना डालता है। रूसी लोक-गीतों में इस अवस्था की आपको स्पष्ट झलक मिलती है।

मातृ-सत्ता के विनाश के बाद बहुत तेज़ी से एकनिष्ठ विवाह का विकास हुआ। पर उसकी चर्चा करने के पहले हम बहु-पत्नी प्रथा एवं बहु-पति प्रथा के बारे में कुछ और शब्द कहना चाहेंगे। यदि ये दोनों प्रथाएं किसी देश . साथ-साथ नहीं मिलतीं—और सर्वविदित है कि वे साथ-साथ नहीं मिलती हैं—तो ज़ाहिर है कि विवाह के ये रूप केवल अपवाद के रूप में ही, इतिहास की विलास-वस्तुओं के रूप में ही, पाये गये हैं। सामाजिक संस्थायें जो भी रही हों, पुरुषों और स्त्रियों की संख्या अभी तक, मोटे तौर पर, सदा बराबर रही है। और चूंकि यह सम्भव नहीं है कि बहु-पत्नी प्रथा में अकेले बच गये पुरुष बहु-पति प्रथा में अकेली बच गयी स्त्रियों से संतोष कर लें, इसलिए ज़ाहिर है कि इन दोनों प्रथाओं में से कोई भी, समाज में आम तौर पर प्रचलित नहीं हो सकती थी। वास्तव में तो पुरुषों द्वारा कई कई पत्नियों को रखने की प्रथा स्पष्टतः दास-प्रथा से उत्पन्न हुई थी और केवल अपवादस्वरूप ही पायी जाती थी। सामी लोगों के पितृसत्तात्मक परिवार में, केवल कुलपति या अधिक से अधिक उसके दो-एक पुत्रों के पास, एक से अधिक पत्नियां होती थीं; परिवार के अन्य सदस्यों को एक-एक पत्नी से ही

संतोष करना पड़ता था। समूचे पूरब में आज भी यही हालत है। बहु-पत्नी विवाह केवल धनिकों तथा बड़े सामन्तों का विशेषाधिकार है, और ये पत्नियां मुख्यत: दासियों के रूप में ख़रीदी जाती हैं। आम लोगों के पास एक-एक पत्नी होती है। इसी प्रकार भारत और तिब्बत में बहु-पति प्रथा अपवादस्वरूप ही मिलती है, जिसकी यूथ-विवाह से उत्पत्ति सिद्ध करने के लिए, जो सचमुच बड़ी दिलचस्प चीज़ होगी, अभी और निकट से खोज करने की आवश्यकता है। इसमें शक नहीं कि व्यवहार में यह प्रथा मुसलमानों के हरमों की प्रथा से, जहां ईर्ष्या का राज रहता है, अधिक सह्य है। कम से कम भारत के नायर लोगों में तो निश्चय ही तीन-तीन, चार-चार, या उससे भी अधिक संख्या में पुरुषों के पास केवल एक पत्नी होती है, परन्तु उनमें से प्रत्येक पुरुष को अधिकार होता है कि चाहे तो तीन या चार अन्य पुरुषों के साथ एक दूसरी पत्नी रखे, और इसी प्रकार तीसरी या चौथी पत्नी रखे। आश्चर्य की बात है कि मैक-लेनन ने इन विवाह-क्लबों को, पुरुष जिनमें से कई का एकसाथ सदस्य बन सकता था और जिनका मैक-लेनन ने ख़ुद वर्णन किया है, विवाह का एक नया रूप – क्लब-विवाह – नहीं समझा। परन्तु **क्लब-विवाह** की यह प्रथा वास्तविक बहु-पति प्रथा नहीं है, बल्कि इसके विपरीत, जैसा कि जिरोत्यूलों ने लक्ष्य किया है, यह यूथ-विवाह का एक विशेष रूप है, जिसमें पुरुषों की अनेक पत्नियां होती हैं और स्त्रियों के अनेक पति होते हैं।

४. **एकनिष्ठ परिवार**। ऊपर ही बताया जा चुका है कि परिवार का यह रूप, बर्बर युग की मध्यम तथा उन्नत अवस्थाओं के बीच के परिवर्तन के युग में, युग्म-परिवार से उत्पन्न होता है; उसकी अंतिम विजय इस बात की एक सूचना थी कि सभ्यता का युग आरम्भ हो गया है। एकनिष्ठ परिवार पुरुष की सर्वोच्च सत्ता पर आधारित होता है। उसका स्पष्ट उद्देश्य ऐसे बच्चे पैदा करना होता है जिनके पितृत्व के बारे में कोई विवाद न हो। यह इसलिए ज़रूरी होता है कि समय आने पर ये बच्चे अपने पिता के प्राकृतिक उत्तराधिकारियों के रूप में उसकी दौलत विरासत में पा सकें। युग्म-विवाह से एकनिष्ठ परिवार इस माने में भिन्न होता है कि इसमें विवाह-सम्बन्ध कहीं ज़्यादा दृढ़ होता है और दोनों में से कोई भी पक्ष उसे जब चाहे तब नहीं तोड़ सकता। अब तो नियम यह बन जाता है कि केवल पुरुष को ही विवाह के सम्बन्ध को तोड़ देने और अपनी पत्नी को त्याग देने का अधिकार होता है।

अपनी पत्नी के प्रति वफ़ादार न रहने का उसका अधिकार अब भी क़ायम रहता है, कम से कम रीति-रिवाज इस अधिकार को मान्यता प्रदान करते हैं। (Code Napoléon में तो साफ़ तौर पर पति को यह अधिकार दिया गया है बशर्ते कि वह अपनी रखैल को अपने घर के अन्दर न लाये[124]), और समाज के विकास के साथ-साथ पुरुष इस अधिकार का अधिकाधिक प्रयोग करता है। परन्तु यदि पत्नी प्राचीन यौन-सम्बन्धों की याद करके उन्हें फिर से लागू करना चाहे, तो उसे पहले से भी अधिक सख़्त सज़ा दी जाती है।

परिवार के इस नये रूप को, ऐसी हालत में जब उसमें ज़रा भी नर्मी नहीं रह गयी है, हम यूनानियों के बीच देखते हैं। जैसा कि मार्क्स ने कहा था यूनानियों की पुराण-कथाओं में देवियों का जो स्थान है, वह उस पूर्व काल का प्रतिनिधित्व करता है, जब स्त्रियों की स्थिति अधिक सम्मानप्रद और स्वतंत्र थी। परन्तु वीर-काल में ही हम यूनानी स्त्रियों को, पुरुष की प्रधानता और दासियों की होड़ के कारण, निरादृत पाते हैं। 'ओडीसी' में आप पढ़ेंगे कि टेलेमाकस किस प्रकार अपनी मां को डांट कर चुप कर देता है*। होमर की रचनाओं में यह वर्णन मिलता है कि जब कभी युवतियां युद्ध में पकड़ी जाती हैं तो वे विजेताओं की काम-लिप्सा का शिकार बनती हैं। विजयी सेना के नायक अपने पदों के क्रमानुसार सबसे सुन्दर युवतियों को अपने लिए छांट लेते हैं। हम सभी को मालूम है कि 'इलियाड' महाकाव्य की पूरी कथा-वस्तु का केन्द्रीय तत्त्व ऐसी ही एक दासी के बारे में एकिलीज़ और एगामेम्नोन का झगड़ा है। होमर की रचनाओं में प्रत्येक महत्त्वपूर्ण नायक के सम्बन्ध में एक ऐसी बंदिनी युवती का ज़िक्र आता है, जो उसकी हमबिस्तर है और हमसफ़र भी। इन युवतियों को उनके मालिक अपने घर ले जाते हैं, जहां उनकी विवाहिता पत्नियां होती हैं, जैसे कि ईस्खिलस महाकाव्य में एगामेम्नोन कसांड्रा को अपने घर ले गया था।** इन दासियों से जो पुत्र पैदा होते हैं, उनको पिता की जायदाद में से एक छोटा-सा हिस्सा मिल जाता है और वे स्वतंत्र नागरिक समझे जाते हैं। तेलामोन का एक ऐसा ही जारज पुत्र त्यूक्रोस है, जिसे अपने पिता का नाम ग्रहण करने की इजाज़त दी गयी। विवाहिता पत्नी से उम्मीद की जाती थी कि वह इन सारी बातों को चुपचाप सहन

* होमर, 'ओडीसी', पहला गीत। – सं०

** ईस्खिलस, 'ओरेस्तिया। एगामेम्नोन।' – सं०

करेगी और ख़ुद कठोर पातिव्रत्यधर्म का पालन करेगी तथा पतिपरायण रहेगी। यह सच है कि वीर-काल में यूनानी पत्नी का, सभ्यता के युग की पत्नी से अधिक आदर होता था। परन्तु पति के लिए उसका केवल यही महत्त्व था कि वह उसके वैध उत्तराधिकारियों की मां है, उसके घर की प्रमुख प्रबंधकर्त्री है, और उसकी उन दासियों की दारोग़ा है जिनको वह जब चाहे, अपनी रखैल बना सकता है, और बनाता भी है। एकनिष्ठ परिवार के साथ-साथ चूंकि समाज में दासता भी प्रचलित थी, और सुन्दर दासियां पूर्णतः पुरुष की सम्पत्ति होती थीं, इसलिए एकनिष्ठ विवाह पर शुरू से ही यह छाप लग गयी कि वह **केवल नारी के लिए** एकनिष्ठ है, परन्तु पुरुष के लिए नहीं। और आज तक उसका यही स्वरूप चला आता है।

जहां तक वीर-काल के बाद के यूनानियों का सवाल है, हमें डोरियनों और आयोनियनों में भेद करना चाहिए। कई बातों में डोरियन लोगों में, जिनकी क्लासिकीय मिसाल स्पार्टा है, होमर द्वारा वर्णित वैवाहिक सम्बन्धों से भी अधिक प्राचीन सम्बन्ध मिलते हैं। स्पार्टा में हम एक ढंग का युग्म-विवाह पाते हैं, जिसे वहां के राज्य ने प्रचलित विचारों के अनुसार थोड़ा परिवर्तित कर दिया था। युग्म-विवाह का वह एक ऐसा रूप है जिसमें यूथ-विवाह के भी अनेक अवशेष मिलते हैं। जिस विवाह से सन्तान नहीं होती थी, उसे भंग कर दिया जाता था। राजा एनाक्सांद्रिदास ने (५६० ई० पू० के लगभग) एक दूसरा विवाह किया क्योंकि उसकी पहली पत्नी से सन्तान नहीं हुई थी और इस प्रकार दो गृहस्थियां क़ायम रखीं। इसी काल के एक और राजा एरिस्तोनस ने अपनी पहली दो बांझ पत्नियों के अलावा एक तीसरी स्त्री से विवाह किया था, परन्तु उसने पहली दो पत्नियों में से एक को अपने यहां से चले जाने दिया था। दूसरी ओर, कई भाई मिलकर एक सामूहिक पत्नी भी रख सकते थे। यदि किसी को अपने मित्र की पत्नी पसन्द आ जाती थी तो वह उसमें हिस्सा बंटा सकता था। और बिस्मार्क के शब्दों में, किसी कामुक "सांड़" के आ जाने पर, यदि वह नागरिक नहीं हो तो भी, अपनी पत्नी को उसके उपभोग के लिए प्रस्तुत करना उचित समझा जाता था। शेमान के अनुसार प्लुटार्क की वह कथा जिसमें स्पार्टा की एक स्त्री अपने एक प्रेमी को, जो उसके पीछे पड़ा हुआ था, अपने पति से बात करने को भेज देती है, और भी अधिक यौन-स्वतंत्रता की ओर इंगित करती है। इस प्रकार वास्तविक व्यभिचार, यानी पति की पीठ पीछे पत्नी का किसी और पुरुष के साथ यौन-सम्बन्ध,

उन दिनों सुनने में भी नहीं ग्राता था। दूसरी ग्रोर, स्पार्टा में, कम से कम उसके उत्कर्ष काल में, घरेलू दास-प्रथा नहीं थी। स्पार्टियेटों को हीलोट[125] कहे जाने वाले भूदासों की स्त्रियों के साथ सम्भोग करने का कम प्रलोभन होता था, क्योंकि ये भूदास ग्रलग बस्तियों में रहते थे। ग्रौर यदि इन सब परिस्थितियों में स्पार्टा की नारियां यूनान की ग्रौर सब नारियों से ग्रधिक सम्मान ग्रौर ग्रादर की पात्र समझी जाती थीं, तो यह स्वाभाविक था। प्राचीन युग के लेखक, यूनानी स्त्रियों में केवल स्पार्टा की नारियों ग्रौर एथेंस की हैटेराग्रों या गणिकाग्रों को ही इस क़ाबिल समझते थे कि उनका ज़िक्र ग्रादर के साथ करें ग्रौर उनकी उक्तियों को ग्रपनी रचनाग्रों में स्थान दें।

ग्रायोनियन लोगों में – जिनका लाक्षणिक उदाहरण एथेंस था – हालत बिलकुल भिन्न थी। वहां लड़कियों को केवल कातना-बुनना ग्रौर सीना-पिरोना सिखाया जाता था। बहुत हुग्रा तो वे थोड़ा पढ़ना-लिखना भी सीख लेती थीं। उन्हें क़रीब क़रीब पर्दे में रखा जाता था ग्रौर वे केवल दूसरी स्त्रियों से ही मिल-जुल सकती थीं। ज़नानख़ाना घर का एक ख़ास ग्रौर ग्रलग हिस्सा होता था, जो ग्राम तौर पर ऊपर की मंज़िल पर या मकान के पिछले हिस्से में होता था, जहां पुरुषों की, ख़ास तौर पर ग्रजनबियों की, ग्रासानी से पहुंच न हो सकती थी। जब मिलने-जुलने वाले मर्द ग्राते, ग्रौरतें वहां चली जाती थीं। स्त्रियां ग्रकेले ग्रौर बिना एक दासी को साथ लिये बाहर नहीं जाती थीं। घर में उन पर लगभग पहरा सा रहता था। एरिस्टोफ़ेनस कहता है कि व्यभिचारियों को पास न फटकने देने के लिए मोलोस्सियन कुत्ते घर में रखे जाते थे[126], ग्रौर कम से कम एशिया के शहरों में ग्रौरतों पर पहरा देने के लिए खोजे रखे जाते थे। हेरोडोटस के काल से ही कियोस में बेचने के लिए खोजे बनाये जाते थे। वाक्समुथ का कहना है कि वे केवल बर्बर लोगों के लिए ही नहीं बनाये जाते थे। यूरिपिडीज़ में पत्नी को oikurema, यानी गृह-प्रबंध के लिए एक वस्तु (यह शब्द नपुंसक लिंग का है) कहा गया है, ग्रौर बच्चे पैदा करने के सिवा, एक एथेंसवासी की दृष्टि में पत्नी का महत्त्व इससे ग्रधिक कुछ नहीं था कि वह उसकी प्रमुख नौकरानी होती थी। पति ग्रखाड़े में जाकर कसरत करता था, सार्वजनिक जीवन में भाग लेता था, पर इस सब से पत्नी को ग्रलग रखा जाता था, ग्रौर इसके ग्रलावा उसके पास दासियां भी होती थीं, ग्रौर एथेंस के उत्कर्ष काल में तो वहां बड़े व्यापक रूप में वेश्यावृत्ति भी होती थी। ग्रौर कम से कम यह तो कहा ही जा सकता है कि

इसे राज्य की तरफ़ से बढ़ावा मिलता था। इस वेश्यावृत्ति के आधार पर ही यूनान का वह एकमात्र प्रसिद्ध नारी-वर्ग विकसित हुआ था जो अपने बुद्धिबल और कला-प्रेम के कारण, प्राचीन काल की नारियों के साधारण स्तर से उतना ही ऊपर उठ गया था, जितना ऊपर स्पार्टा की नारियां अपने चरित्र के कारण उठ गयी थीं। एथेंस की पारिवारिक व्यवस्था पर इससे भयंकर इलज़ाम और क्या लगाया जा सकता है कि नारी को नारी बनने के लिए पहले हैटेरा – गणिका – बनना पड़ता था।

कालान्तर में एथेंस की यह पारिवारिक व्यवस्था न केवल दूसरे आयोनियनों के लिए, बल्कि ख़ास यूनान में रहनेवाले सभी यूनानियों के लिए और यूनान के उपनिवेशों के लिए आदर्श बन गयी, और वे अपने घरेलू सम्बन्धों को भी उसी सांचे में अधिकाधिक ढालने लगे। लेकिन तमाम पर्दे और निगरानी के बावजूद यूनानी स्त्रियां अपने पतियों को धोखा देने के काफ़ी मौक़े ढूंढ़ ही निकालती थीं। पति लोग – जिन्हें अपनी पत्नियों के प्रति ज़रा-सा भी प्रेम प्रकट करने में शर्म आती थी – हैटेराओं के साथ विभिन्न प्रकार की प्रेम लीलाएं किया करते थे। परन्तु नारी के पतन का ख़ुद पुरुष को बदला मिला और वह भी पतन के गर्त में जा पड़ा। यहां तक कि वह लड़कों के साथ अप्राकृतिक व्यभिचार करने की ओर प्रवृत्त हुआ और गैनीमीड की पुराण-कथा द्वारा उसने स्वयं अपने और अपने देवताओं को पतित किया।

प्राचीन काल के सर्वाधिक सभ्य और विकसित लोगों में, जहां तक हम उनकी खोज कर पाये हैं, एकनिष्ठ विवाह की उत्पत्ति इसी प्रकार हुई थी। यह किसी भी हालत में व्यक्तिगत यौन-प्रेम का परिणाम नहीं था, उसके साथ तो एकनिष्ठ विवाह की तनिक भी समानता नहीं है, क्योंकि इस प्रथा के प्रचलित होने के बाद भी विवाह पहले की ही तरह अपना लाभ देखकर किये जाते रहे। यह परिवार का वह पहला रूप था जो प्राकृतिक कारणों पर नहीं, बल्कि आर्थिक कारणों पर आधारित था – यानी जो प्राचीन काल की प्राकृतिक ढंग से विकसित सामूहिक सम्पत्ति के ऊपर व्यक्तिगत सम्पत्ति की विजय के आधार पर खड़ा हुआ था। यूनानी लोग तो खुलेआम स्वीकार करते थे कि एकनिष्ठ विवाह का उद्देश्य केवल यह था कि परिवार में पुरुष का शासन रहे और ऐसे बच्चे पैदा हों जो केवल उसकी अपनी सन्तान हों और जो उसकी सम्पत्ति के उत्तराधिकारी बन सकें। इन बातों के अलावा एकनिष्ठ विवाह केवल एक भार था जिसे ढोना पड़ता था; देवताओं के प्रति, राज्य के प्रति और

पूर्वजों के प्रति एक कर्त्तव्य था जिसका पालन करना ग्रावश्यक था। एथेंस में क़ानून के ग्रनुसार न सिर्फ़ विवाह करना ज़रूरी था, बल्कि पुरुष द्वारा कुछ तथाकथित वैवाहिक कर्त्तव्यों का पालन करना भी ग्रावश्यक था।

ग्रतएव, एकनिष्ठ विवाह इतिहास में पुरुष ग्रौर नारी का पुन:सामंजस्य होकर कदापि प्रगट नहीं हुग्रा। उसे पुरुष ग्रौर नारी के पुन:सामंजस्य का उच्चतम रूप समझना तो ग्रौर भी ग़लत है। इसके विपरीत एकनिष्ठ विवाह, नारी पर पुरुष के ग्राधिपत्य के रूप में प्रगट होता है। एकनिष्ठ विवाह के रूप में पुरुषों ग्रौर नारियों के एक ऐसे विरोध की घोषणा की गयी थी जिसकी मिसाल प्रागैतिहासिक काल में कहीं नहीं मिलती। मार्क्स की ग्रौर ग्रपनी एक पुरानी पांडुलिपि में, जो ग्रभी तक प्रकाशित नहीं हुई है ग्रौर जिसे हम लोगों ने १८४६ में लिखा था, मैं नीचे लिखा वाक्य पाता हूं: "सन्तानोत्पत्ति के लिए पुरुष ग्रौर नारी के बीच श्रम-विभाजन ही पहला श्रम-विभाजन है।"* ग्रौर ग्राज मैं इसमें ये शब्द ग्रौर जोड़ सकता हूं: इतिहास में पहला वर्ग-विरोध, एकनिष्ठ विवाह के ग्रन्तर्गत पुरुष ग्रौर नारी के विरोध के विकास के साथ-साथ, ग्रौर इतिहास का पहला वर्ग-उत्पीड़न पुरुष द्वारा नारी के उत्पीड़न के साथ-साथ प्रगट होता है। इतिहास की दृष्टि से एकनिष्ठ विवाह ग्रागे की ग्रोर एक बहुत बड़ा क़दम था, परन्तु इसके साथ-साथ वह एक ऐसा क़दम भी था जिसने दास-प्रथा ग्रौर व्यक्तिगत धन-सम्पदा के साथ मिलकर उस युग का श्रीगणेश किया, जो ग्राज तक चला ग्रा रहा है ग्रौर जिसमें प्रत्येक ग्रग्रगति साथ ही सापेक्ष रूप से पश्चाद्गति भी होती है, जिसमें एक समूह की भलाई ग्रौर विकास दूसरे समूह को दुख देकर ग्रौर कुचल कर सम्पन्न होते हैं। एकनिष्ठ विवाह सभ्य समाज का वह कोशिका-रूप है जिसमें हम उन तमाम विरोधों ग्रौर द्वन्द्वों का ग्रध्ययन कर सकते हैं जो सभ्य समाज में पूर्ण विकास प्राप्त करते हैं।

युग्म-परिवार की विजय से, या यहां तक कि एकनिष्ठ विवाह की विजय से भी, उनके पहले पायी जानेवाली यौन-सम्बन्धों की ग्रपेक्षाकृत स्वतंत्रता नष्ट नहीं हुई।

"प्रगति करते हुए परिवार को ग्रब भी वह पुरानी विवाह-व्यवस्था घेरे रहती है, जो ग्रब पुनालुग्रान यूथों के धीरे-धीरे मिट जाने के कारण

---

* का० मार्क्स, फ़्रे० एंगेल्स, 'जर्मन विचारधारा'। – सं०

अधिक संकुचित परिधि के अन्दर सीमित हो गयी है, और वह विवाह-व्यवस्था परिवार के साथ-साथ सभ्यता के युग के द्वार तक पहुंच जाती है... अन्त में वह हैटेरिज़्म के नये रूप में तिरोहित हो जाती है, जो परिवार के साथ लगी हुई एक काली छाया के रूप में सभ्यता के युग में भी मानवजाति के पीछे-पीछे चलती है।"

यहां हैटेरिज़्म से मौर्गन का मतलब विवाह के बंधन के बाहर पुरुषों और अविवाहिता स्त्रियों के बीच होनेवाले उस यौन-व्यापार से है, जो एकनिष्ठ विवाह के साथ-साथ चलता है, और जो जैसा कि सभी जानते हैं, सभ्यता के पूरे युग में भिन्न-भिन्न रूपों में फूलता-फलता रहा है और खुली वेश्यावृत्ति के रूप में निरन्तर विकसित होता रहा है। इस हैटेरिज़्म का सीधा सम्बन्ध यूथ-विवाह से है, उसका सीधा सम्बन्ध स्त्रियों के अनुष्ठानात्मक आत्मसमर्पण की प्रथा से है जिसके द्वारा वे सतीत्व का अधिकार प्राप्त करने का मूल्य चुकाती थीं। रुपया लेकर आत्मसमर्पण करना – यह शुरू में एक धार्मिक कृत्य था जो प्रेम की देवी के मन्दिर में किया जाता था और जिससे मिलने वाला रुपया मन्दिर के कोष में चला जाता था। अर्मीनिया में अनाइतिस और कोरिन्थ में एफ़्रोडाइट की हायरोड्यूलें[127] और भारत के मन्दिरों की देव-दासियां जिन्हें «Bayader» भी कहते हैं (यह पुर्तगाली भाषा के bailadeira शब्द का बिगड़ा हुआ रूप है, जिसका अर्थ नर्त्तकी है) – इतिहास की पहली वेश्याएं थीं। यह अनुष्ठानात्मक आत्मसमर्पण पहले सभी स्त्रियों के लिए अनिवार्य था। बाद में मन्दिरों की ये पुजारिनें ही, सभी स्त्रियों की तरफ़ से, आत्मसमर्पण करने लगीं। दूसरी जातियों में हैटेरिज़्म विवाह के पहले लड़कियों को दी गयी यौन-स्वतंत्रता से उत्पन्न होता है। इस प्रकार वह भी यूथ-विवाह का ही एक अवशेष है, बस अन्तर इतना है कि वह एक भिन्न मार्ग से हमारे पास तक आया है। सम्पत्ति को लेकर समाज में भेदों के उत्पन्न होने के साथ-साथ – यानी बर्बर युग की उन्नत अवस्था में ही – दास-श्रम के साथ-साथ कहीं-कहीं मजूरी पर किया जानेवाला श्रम भी दिखायी देने लगा था। और इससे अनिवार्यतः सह-सम्बद्ध रूप में, दासियों के समर्पण के साथ-साथ, जिसमें उनकी मर्ज़ी का सवाल न था, कहीं-कहीं स्वतंत्र नारियों द्वारा वेश्यावृत्ति भी दिखायी देने लगी। अतएव, जिस प्रकार सभ्यता से उत्पन्न प्रत्येक वस्तु दोमुंही, दोरुख़ी, अन्तर्विरोधी और स्वयं अपने अन्दर मुख़ालिफ़ तत्त्वों को लेकर चलनेवाली वस्तु होती है, उसी प्रकार यूथ-विवाह से सभ्यता को मिली विरासत के भी दो पहलू

हैं : एक ओर एकनिष्ठ विवाह, दूसरी ओर हैटेरिज़्म, और उसका चरम रूप – वेश्यावृत्ति। दूसरी सामाजिक प्रथाओं की तरह हैटेरिज़्म भी एक विशिष्ट सामाजिक प्रथा है। वह पुरानी यौन-स्वतंत्रता का ही एक सिलसिला है, लेकिन पुरुषों के लिए ही। हालांकि असल में इस रूप को सहन ही नहीं किया जाता, बल्कि उसका विशेषकर शासक वर्गों द्वारा बड़े शौक़ और मज़े से इस्तेमाल किया जाता है, ताहम शब्दों में सदा उसकी निन्दा ही की जाती है। दरअसल इस निन्दा से, इस प्रथा का व्यवहार करने वाले पुरुषों को कोई नुक़सान नहीं होता है, उससे तो केवल नारियों को चोट पहुंचती है। वे समाज से बहिष्कृत की जाती हैं ताकि एक वार फिर समाज के बुनियादी नियम के रूप में नारी पर पुरुष के पूर्ण प्रभुत्व की घोषणा की जाये।

लेकिन इससे स्वयं एकनिष्ठ विवाह के भीतर एक दूसरा अन्तर्विरोध पैदा हो जाता है। हैटेरिज़्म की प्रथा द्वारा जिसका जीवन सुरभित है, उस पति के साथ-साथ उपेक्षित पत्नी होती है। जिस प्रकार आधा सेब खाने के वाद पूरा सेब हाथ में रखना असम्भव है, उसी प्रकार विरोध के दूसरे पहलू के बिना पहले पहलू का होना भी नामुमकिन है। परन्तु यह मालूम होता है कि जब तक उनकी पत्नियों ने उन्हें सबक़ नहीं सिखाया, तब तक पुरुष ऐसा नहीं सोचते थे। एकनिष्ठ विवाह के साथ-साथ दो नये पात्र समाज के रंगमंच पर स्थायी रूप से उतर आये : एक पत्नी का प्रेमी, जार, दूसरा जारिणी का पति। इसके पहले ये पात्र इतिहास में नहीं देखे गये थे। पुरुषों ने नारियों पर विजय प्राप्त की थी, किन्तु विजेता के माथे पर टीका लगाने का काम पराजित ने बड़ी उदारतापूर्वक अपने हाथ में लिया था। व्यभिचार, परस्त्रीगमन पर प्रतिबंध था, उसके लिए सख़्त सज़ा मिलती थी, पर फिर भी वह दबाया नहीं जा सकता था। वह एकनिष्ठ विवाह और हैटेरिज़्म के साथ-साथ एक लाज़िमी सामाजिक रिवाज बन गया था। पहले की तरह अब भी बच्चों के पितृत्व का निश्चित होना केवल नैतिक विश्वास पर आधारित था, और किसी भी तरह हल न होनेवाले इस अन्तर्विरोध को हल करने के लिए Code Napoléon की धारा ३१२ में यह विधान किया गया था :

> «L'enfant conçu pendant le mariage a pour père le mari»—"विवाह-काल में गर्भ-धारण होने पर पति को बच्चे का पिता समझा जायेगा।"

एकनिष्ठ विवाह प्रथा के तीन हज़ार वर्ष तक चलने का अन्तिम परिणाम यही निकला था।

इस प्रकार, एकनिष्ठ परिवार के वे उदाहरण, जिनके द्वारा उसकी ऐतिहासिक उत्पत्ति सच्चे रूप में प्रतिबिम्बित होती है और जिनके द्वारा पुरुष के एकछत्र आधिपत्य से उत्पन्न पुरुष और नारी का तीखा विरोध साफ़ जाहिर होता है, हमारे सामने उन विरोधों और द्वंद्वों का चित्र लघु रूप में पेश करते हैं, जिनमें से होकर सभ्यता के युग के प्रारम्भ से वर्गों में बंटा हुआ समाज बढ़ रहा है, और जिन्हें वह कभी न तो हल कर पाता है और न दूर कर पाता है। जाहिर है कि मैं यहां एकनिष्ठ विवाह के केवल उन उदाहरणों का ज़िक्र कर रहा हूं जिनमें वैवाहिक जीवन सही माने में इस पूरी प्रथा के प्रारम्भिक स्वरूप के नियमों के अनुसार चलता है, पर जिनमें पति के आधिपत्य के ख़िलाफ़ पत्नी विद्रोह करती है। लेकिन सब विवाहों में ऐसा नहीं होता, यह जर्मन कूपमंडूक से अधिक और कौन जानता है, जो न राज्य में शासन करने के योग्य है और न अपने घर में, और इसलिए जिसकी पत्नी पूर्ण औचित्य के साथ, शासन करती है जिसकी योग्यता पति में नहीं होती। परन्तु अपने को सान्त्वना देने के लिए वह यह कल्पना कर लेता है कि दुःख के अपने फ़्रांसीसी साथी से, जिसकी अधिकांश मामलों में और भी अधिक दुर्गति होती है, वह फिर भी अच्छा है।

लेकिन एकनिष्ठ परिवार, हर जगह और हमेशा अपने उस क्लासिकीय कठोर रूप में नहीं प्रगट हुआ, जिस रूप में वह यूनानियों में प्रगट हुआ था। संसार के भावी विजेताओं की हैसियत से, यूनानियों से कम परिष्कृत, पर कहीं अधिक दूरदर्शी दृष्टिकोण से काम लेनेवाले रोमन लोगों की स्त्रियां अधिक स्वतंत्र थीं और उनका आदर भी अधिक होता था। रोमन पुरुष समझता था कि उसे चूंकि अपनी पत्नी के ऊपर ज़िन्दगी और मौत का अधिकार प्राप्त है, इसलिए वैवाहिक पवित्रता भली-भांति सुरक्षित है। इसके अलावा, पति के समान पत्नी को भी यह अधिकार था कि वह जब चाहे विवाह भंग कर दे। लेकिन एकनिष्ठ विवाह ने सबसे बड़ी उन्नति निश्चय ही उस समय की जब जर्मनों ने इतिहास में प्रवेश किया, क्योंकि लगता है कि उनमें, शायद उनकी ग़रीबी की वजह से, एकनिष्ठ विवाह अभी तक युग्म-विवाह की अवस्था से पूरी तरह नहीं निकल पाया था। तासितुस द्वारा बतायी हुई तीन बातों से हम इस नतीजे पर पहुंचते हैं। एक तो यह कि विवाह की पवित्रता में दृढ़

विश्वास के बावजूद, – "प्रत्येक पुरुष केवल एक पत्नी से संतुष्ट है, और स्त्रियों के चारों ओर उनके सतीत्व की दुर्लंघ्य दीवार है", – उच्च स्तर के पुरुष तथा क़बीले के मुखिया कई-कई पत्नियां रखते थे, अर्थात् जर्मनों में भी अमरीकियों जैसी हालत थी, जिनमें कि युग्म-विवाह का चलन था। दूसरे, इन लोगों में मातृ-सत्ता से पितृ-सत्ता में अंतरण थोड़े दिन ही पहले सम्पन्न हुआ होगा, क्योंकि उनमें मामा – मातृ-सत्ता के अनुसार सबसे निकट का पुरुष गोत्र-सम्बन्धी – अब भी स्वयं पिता से अधिक निकट का सम्बन्धी माना जाता था। यह बात भी अमरीकी इंडियनों के दृष्टिकोण से मिलती है, जिनमें मार्क्स ने, जैसा कि वह अक्सर कहा करते थे, हमारे अपने प्रागैतिहासिक भूत-काल को समझने की कुंजी पायी थी। और तीसरे, जर्मनों में स्त्रियों का बड़ा आदर होता था और वे सार्वजनिक जीवन में भी प्रभावशाली होती थीं। यह बात पुरुष के आधिपत्य से, जो कि एकनिष्ठ विवाह की विशेषता है, सीधे तौर पर टकराती थी। लगभग ये सारी बातें ऐसी हैं जिनमें जर्मन लोग स्पार्टावासियों से मिलते हैं, क्योंकि जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, स्पार्टावासियों में भी युग्म-विवाह पूरी तरह नहीं मिटा था। अतएव जर्मनों के इतिहास के रंगमंच पर उतरने के साथ-साथ इस मामले में भी, एक बिलकुल नये तत्त्व का संसार में प्राधान्य स्थापित हो गया। रोमन संसार के ध्वंसावशेषों पर नस्लों के सम्मिश्रण से एकनिष्ठ विवाह का जो नया रूप विकसित हुआ, उसने पुरुष के आधिपत्य को कुछ कम कठोर रूप दिया और स्त्रियों को, कम से कम बाह्य जीवन में, प्राचीन क्लासिकीय युग से कहीं अधिक स्वतंत्र और सम्मानित स्थान प्रदान किया। इससे इतिहास में पहली बार नैतिक प्रगति का वह सबसे बड़ा क़दम उठाया जा सका, जो एकनिष्ठ विवाह के आधार पर और उसके कारण अभी तक उठाया जा सका है। हमारा मतलब आधुनिक व्यक्तिगत यौन-प्रेम से है, जो इसके पहले संसार में कहीं नहीं देखा गया था। यह विकास कहीं पर एकनिष्ठ विवाह के भीतर हुआ, कहीं उसके समानान्तर हुआ, और कहीं उसका विरोध करके हुआ।

परन्तु, इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस विकास का उद्भव इस स्थिति से हुआ कि जर्मन लोग अब भी युग्म-परिवारों में रहते थे और जहां तक सम्भव था, उन्होंने नारी की तदनुरूप स्थिति को एकनिष्ठ विवाह पर आरोपित कर दिया। इसकी उत्पत्ति कदापि जर्मन मनोवृत्ति की अद्भुत नैतिक शुद्धता के कारण नहीं हुई, जो वास्तव में इस बात तक सीमित थी कि व्यवहार

में युग्म-परिवार के अन्दर वैसे भीषण नैतिक विरोध नहीं प्रगट होते थे, जैसे कि एकनिष्ठ विवाह में होते हैं। इसके विपरीत सच तो यह है कि जर्मन लोग देश से बाहर निकलने पर—विशेष रूप से दक्षिण-पूर्व में काले सागर के तट पर घास के मैदानों में रहनेवाले बंजारों के बीच पहुंचकर—नैतिक दृष्टि से काफ़ी पतित हो गये थे और बंजारों से जर्मनों ने घुड़सवारी सीखने के अलावा भयंकर अप्राकृतिक व्यभिचार भी सीख लिया था। इसकी बहुत साफ़ गवाही एम्मियानस ने टाइफ़ाली के बारे में और प्रोकोपियस ने हेरुली[128] के बारे में दी है।

यद्यपि एकनिष्ठ परिवार ही परिवार का वह एकमात्र ज्ञात रूप है जिससे आधुनिक यौन-प्रेम का विकास हो सकता था तथापि इसका यह मतलब नहीं है कि इस प्रकार के परिवार के भीतर पति-पत्नी के पारस्परिक प्रेम के रूप में,—एकमात्र इस रूप में या अधिकतर इस रूप में ही,—इस यौन-प्रेम का विकास हुआ। पुरुष के आधिपत्य के अंतर्गत कठोर एकनिष्ठ विवाह का पूरा रूप ही ऐसा था कि यह बात असम्भव थी। उन सभी वर्गों में, जो ऐतिहासिक रूप से सक्रिय थे, यानी जो शासन करते थे, विवाह का सदा वही रूप रहा जो युग्म-विवाह के समय से चला आ रहा था, यानी यह कि माता-पिता अपनी सुविधा से बच्चों का विवाह कर देते थे। इतिहास में यौन-प्रेम का जो पहला रूप प्रगट हुआ, अर्थात् आवेग का रूप, ऐसे आवेग का, जिसका (कम से कम शासक वर्ग का) प्रत्येक व्यक्ति अधिकारी समझा जाता था, और जो यौन-भावना का सर्वोच्च रूप समझा जाता था—और यही उसकी ख़ास विशेषता होती है—वह पहला रूप मध्य युग के नाइटों का प्रेम था, जो किसी भी हालत में वैवाहिक प्रेम नहीं था। इसके विपरीत फ़्रांस के प्रोवेंस प्रांत के लोगों में, जहां यह नाइटों का प्रेम अपने क्लासिकीय रूप में विद्यमान था, उसने खुल्लमखुल्ला विवाहेतर प्रेम का रूप धारण किया। उनके कवि-गण खुलेआम इसके गीत गाते थे। «Albas», जर्मन में «Tagelieder» (अर्थात् "उषा के गीत") प्रोवेंसीय प्रेम-काव्य के उत्कृष्ट रूप हैं। इन गीतों में हमें इसका बड़ा रंगीन वर्णन मिलता है कि नाइट किस प्रकार अपनी प्रेमिका के साथ, जो सदा किसी दूसरे पुरुष की पत्नी होती है, विहार करता है, और पहरेदार बाहर खड़ा पहरा देता रहता है और उषा की पहली धुंधली किरणों (alba) के फूटने पर उसे आवाज़ देता है ताकि किसी के देखने से पहले ही वह निकल जाये। इसके बाद विदाई के क्षण के वर्णन में कविता अपने चरम शिखर पर

पहुंच जाती है। उत्तरी फ़्रांस के निवासियों ने, और उनके साथ-साथ हमारे योग्य जर्मनों ने भी, नाइटों के प्रेम के तौर-तरीक़ों के साथ-साथ उनके अनुकूल इस काव्य-शैली को भी अपना लिया, और हमारे अपने बुज़ुर्ग वोल्फ़्राम फ़ॉन एशनबाख़ ठीक इसी विषय पर तीन अत्यन्त सुन्दर उषा के गीत छोड़ गये, जो मुझे उनकी तीन लम्बी वीर रस की कविताओं से कहीं ज़्यादा पसन्द हैं।

हमारे ज़माने का पूंजीवादी विवाह दो तरह का होता है। कैथोलिक देशों में पहले की तरह आज भी माता-पिता अपने युवा पूंजीवादी पुत्र के लिए उपयुक्त पत्नी ढूंढ़ लेते हैं और उसका परिणाम स्वभावतः यह होता है कि एकनिष्ठ विवाह में निहित अन्तर्विरोध पूरी तरह उभर आता है—पति जमकर हैटेरिज़्म करता है, और पत्नी जमकर व्यभिचार करती है। कैथोलिक चर्च ने निस्संदेह तलाक़ की प्रथा को केवल इसलिए ख़तम कर दिया कि उसे विश्वास हो गया था कि जैसे मृत्यु का दुनिया में कोई इलाज नहीं है, वैसे ही व्यभिचार का भी नहीं है। दूसरी ओर, प्रोटेस्टेंट देशों में यह नियम है कि पूंजीवादी पुत्र को अपने वर्ग में से, कमोबेश आज़ादी के साथ, ख़ुद अपने लिए पत्नी तलाश कर लेने की इजाज़त रहती है। अतएव, इन देशों में विवाह का आधार कुछ हद तक थोड़ा-बहुत प्रेम हो सकता है, गो प्रेम हो या न हो, प्रोटेस्टेंटों के बगुलाभगती लोकाचार में माना यही जाता है कि पति-पत्नी में प्रेम है। यहां पुरुष उतने सक्रिय रूप से गणिका-गमन नहीं करते, और स्त्री का परपुरुष से प्रेम करना भी उतना प्रचलित नहीं है। विवाह का चाहे जो भी रूप हो, पर चूंकि वह किसी की प्रकृति नहीं बदल देता, और चूंकि प्रोटेस्टेंट देशों के नागरिक अधिकतर कूपमंडूक होते हैं, इसलिए यदि हम सबसे अच्छे उदाहरणों का औसत निकालें, तो यह पायेंगे कि इस प्रोटेस्टेंट एकनिष्ठ विवाह में पति-पत्नी ऊबा हुआ निरानन्द जीवन, जिसे गृहस्थ-जीवन का परमानन्द कहकर पुकारते हैं, बिताते हैं। विवाह के इन दो रूपों की सबसे अच्छी झलक उपन्यासों में मिलती है—कैथोलिक विवाह को समझना हो, तो फ़्रांसीसी उपन्यास पढ़िए और प्रोटेस्टेंट विवाह का असली स्वरूप देखना हो, तो जर्मन उपन्यास पढ़िए। दोनों में पुरुष को "प्राप्ति हो जाती है"। जर्मन उपन्यास में युवक को लड़की प्राप्त होती है, फ़्रांसीसी उपन्यास में पति को जारिणी-पति का पद प्राप्त होता है। दोनों में से किसका हाल ज़्यादा बुरा है, यह कहना हमेशा आसान नहीं होता। जर्मन उपन्यास की नीरसता फ़्रांसीसी पूंजीपति को उतनी ही भयावनी लगती है, जितनी कि जर्मन कूपमंडूक को फ़्रांसीसी उपन्यास की "अनैतिकता"।

हां, हाल में, जब से "बर्लिन भी एक महानगर बन रहा है", तब से हैटेरिज़्म और व्यभिचार के बारे में, जो बरसों से जर्मनी में होते आये हैं, जर्मन उपन्यास पहले से कुछ कम भीरुता के साथ वर्णन करने लगे हैं।

परन्तु इन दोनों प्रकार के विवाहों में वर और वधू की वर्ग-स्थिति से ही विवाह का निश्चय होता है और इस हद तक वह सुविधा की चीज़ ही रहता है। और दोनों ही सूरतों में सुविधा के विवाह की यह प्रथा अक्सर घोर वेश्या-प्रथा में बदल जाती है। कभी-कभी दोनों ही पक्ष इस प्रथा में शरीक होते हैं, पर आम तौर पर पत्नी कहीं ज़्यादा शरीक होती है। साधारण वेश्या और उसमें केवल यह अन्तर है कि मजूरी पर काम करनेवाले मज़दूर की तरह, वह कार्यानुसार दर पर अपनी देह किराये पर नहीं उठाती, बल्कि एक ही बार में सदा के लिए उसे बेचकर दासी बन जाती है। और फ़ूरिये के ये शब्द सुविधा के सभी विवाहों के लिए सत्य हैं:

> "व्याकरण में जैसे दो नकारों के मिल जाने से एक सकार बन जाता है, ठीक उसी प्रकार विवाह की नैतिकता में वेश्याकर्म और वेश्या-गमन के योग का फल सदाचार है।"

पति-पत्नी के बीच यौन-प्रेम एक नियम के रूप में केवल उत्पीड़ित वर्गों में, अर्थात् आजकल केवल सर्वहारा वर्ग में ही, सम्भव हो सकता है, और होता है—चाहे इस सम्बन्ध को समाज मानता हो या न मानता हो। परन्तु यहां क्लासिकीय एकनिष्ठ विवाह की सारी बुनियाद ही ढह जाती है। जिस सम्पत्ति की रक्षा करने के लिए और उसे अपने पुत्रों को विरासत में सौंपने के लिए एकनिष्ठ विवाह और पुरुष के आधिपत्य की स्थापना की गयी थी, उसका यहां पूर्ण अभाव है। इसलिए, पुरुष का आधिपत्य स्थापित करने के लिए यहां कोई प्रेरणा नहीं रहती। इससे भी बड़ी बात यह है कि इसके लिए साधन भी नहीं रहते। इस आधिपत्य की रक्षा करते हैं पूंजीवादी क़ानून—परन्तु वे तो केवल मिल्की वर्गों के लिए और सर्वहाराओं के साथ उनके कारबार तय करने के लिए होते हैं। क़ानून की शरण लेने में पैसा लगता है और पैसा मज़दूर के पास नहीं होता। इसलिए अपनी पत्नी के साथ जहां तक उसके रवैये का सवाल है, मज़दूर के लिए क़ानून मान्य नहीं है। यहां बिलकुल दूसरे ढंग के निजी और सामाजिक सम्बन्धों का निर्णायक महत्त्व होता है। इसके अतिरिक्त, बड़े पैमाने के उद्योग ने चूंकि नारी को घर से निकालकर श्रम के बाज़ार में और कारखाने में लाकर खड़ा कर दिया है, और अक्सर उसे कुनबा-परवर

बना दिया है, इसलिए सर्वहारा के घर में पुरुष के आधिपत्य के आख़िरी अवशेषों का आधार भी पूरी तरह ख़तम हो जाता है। यदि कुछ बच रहता है तो स्त्रियों के प्रति वह क्रूरता, जो एकनिष्ठ विवाह की स्थापना के बाद से पुरुष की प्रकृति का एक अंग बन गया है। इस प्रकार, सर्वहारा परिवार शुद्धतः एकनिष्ठ परिवार नहीं रह जाता, यहां तक कि उन सूरतों में भी, जहां पति-पत्नी में उत्कट प्रेम होता है और दोनों पक्ष एक दूसरे के प्रति बिलकुल वफ़ादार होते हैं, और जहां चाहे उन्हें सांसारिक तथा आध्यात्मिक सारे सुख हों, वहां भी एकनिष्ठ विवाह का शुद्ध रूप नहीं मिलता। इसलिए एकनिष्ठ विवाह के सदा-सर्वदा साथ चलनेवाली उन दो प्रथाओं की—हैटेरिज़्म और व्यभिचार की—यहां लगभग नगण्य भूमिका रह जाती है। यहां नारी ने वास्तव में पति से अलग हो जाने का अधिकार फिर से प्राप्त कर लिया है, और जब पुरुष और स्त्री साथ-साथ नहीं रह सकते, तो वे अलग हो जाना बेहतर समझते हैं। सारांश यह कि सर्वहारा-विवाह व्युत्पत्तिमूलक अर्थ में, एकनिष्ठ होता है, परन्तु ऐतिहासिक अर्थ में नहीं।

निस्संदेह हमारे न्याय-शास्त्रियों का यह मत है कि क़ानून बनाने में जो प्रगति हुई है, उससे नारी के लिए शिकायत करने के कारण अधिकाधिक ख़तम होते गये हैं। क़ानून की आधुनिक सभ्य प्रणालियां इस बात को अधिकाधिक मानती जा रही हैं कि पहले तो, यदि विवाह को सफल होना है, तो आवश्यक है कि दोनों पक्ष स्वेच्छा से आपस में विवाह करने के लिए राज़ी हों, और दूसरे यह कि विवाह-काल में, दोनों पक्षों के समान अधिकार और समान कर्त्तव्य होने चाहिए। परन्तु यदि इन दोनों सिद्धान्तों पर सचमुच पूरी तरह अमल किया जाये, तो नारियां जो कुछ चाहती हैं, वह सब उन्हें मिल जायेगा।

यह वकीलों जैसी दलील ठीक उसी प्रकार की दलील है जैसी दलीलें देकर उग्रवादी जनतंत्रवादी पूंजीपति सर्वहारा की दलीलों को ख़ारिज कर देता है। मज़दूर और पूंजीपति के बारे में भी तो यही माना जाता है कि उनके बीच श्रम-संविदा स्वेच्छा से की जाती है। परन्तु इस संविदा को स्वेच्छापूर्वक किया गया इसलिए समझा जाता है कि क़ानून की निगाह में काग़ज़ पर दोनों पक्ष समान हैं। एक पक्ष को अपनी भिन्न वर्ग-स्थिति के कारण जो शक्ति प्राप्त है, जो दबाव वह दूसरे पक्ष पर डाल सकता है, उससे, दोनों पक्षों की असली आर्थिक स्थिति से, क़ानून को कोई वास्ता नहीं है।

और क़ानून की निगाह में तो जब तक यह संविदा बरक़रार है, और जब तक दोनों में से कोई एक पक्ष ख़ुद अपने अधिकारों को नहीं त्याग देता, तब तक दोनों पक्षों के समान अधिकार रहते हैं। यदि वास्तविक आर्थिक परिस्थिति मजदूर के पास समान अधिकारों का कोई चिह्न भी नहीं छोड़ती और उसे अपने सारे अधिकार त्याग देने को विवश कर देती है–तो इसमें क़ानून क्या कर सकता है!

जहां तक विवाह का सम्बन्ध है–प्रगतिशील से प्रगतिशील क़ानून भी बस इतनी सी बात से पूरी तरह संतुष्ट हो जाता है कि दोनों पक्ष जाकर सरकारी दफ़्तर में यह दर्ज करा दें कि उन्होंने स्वेच्छा से विवाह किया है। क़ानून के पर्दे के पीछे जहां असली जीवन चलता है, वहां क्या होता है, यह स्वैच्छिक संविदा किस प्रकार सम्पन्न होती है,–इससे क़ानून को या क़ानून के पंडितों को कोई ग़रज़ नहीं। और फिर भी, सचाई यह है कि क़ानून के पंडित यदि विभिन्न क़ानूनों की थोड़ी-सी भी तुलना करके देखें, तो उन्हें तुरन्त मालूम हो जायेगा कि इस स्वैच्छिक संविदा का वास्तविक अर्थ क्या है। उन देशों में जहां क़ानून के अनुसार यह ज़रूरी है कि बच्चों को अपने माता-पिता की जायदाद का एक हिस्सा मिले, और जहां माता-पिता उनको यह हिस्सा देने से इनकार नहीं कर सकते–यानी जर्मनी में, उन देशों में जहां फ़्रांसीसी क़ानून चलता है, आदि में–वहां सन्तान को विवाह के मामले में माता-पिता की मंज़ूरी लेनी पड़ती है। जो देश अंग्रेज़ी क़ानून के मातहत हैं, उनमें क़ानून की दृष्टि से माता-पिता की रज़ामंदी तो ज़रूरी नहीं है, परन्तु वहां माता-पिता को वसीयत के ज़रिए अपनी सम्पत्ति किसी के भी नाम लिख देने का, और यदि वे चाहें तो अपनी सन्तान को एक भी पैसा न देने का पूर्ण अधिकार होता है। अतएव यह स्पष्ट है कि जहां तक उन वर्गों का सम्बन्ध है, जिनके सदस्यों को अपने मां-बाप से कुछ सम्पत्ति मिलने को होती है उनमें, इसके बावजूद,–बल्कि कहना चाहिए कि इसी कारण से,–इंगलैंड और अमरीका में, विवाह की स्वतंत्रता फ़्रांस या जर्मनी से ज़रा भी अधिक नहीं है।

विवाहित अवस्था में, पुरुष और नारी की क़ानूनी समानता के बारे में भी स्थिति इससे अच्छी नहीं है। पुरानी सामाजिक परिस्थितियों की विरासत के रूप में, स्त्री और पुरुष के बीच क़ानून की नज़र में जो असमानता है, वह स्त्रियों के आर्थिक उत्पीड़न का कारण नहीं, बल्कि परिणाम है। पुराने

सामुदायिक कुटुम्ब में, जिसमें अनेक दम्पति और उनकी संतानें शामिल होती थीं, स्त्रियां घर का प्रबंध किया करती थीं, और यह काम उतना ही महत्त्वपूर्ण, सार्वजनिक और सामाजिक दृष्टि से आवश्यक उद्योग-धंधा माना जाता था, जितना कि भोजन जुटाने का वह काम माना जाता था जो पुरुषों को करना पड़ता था। पितृसत्तात्मक परिवार की स्थापना से यह परिस्थिति बदल गयी, और एकनिष्ठ वैयक्तिक परिवार की स्थापना के बाद तो और भी बड़ा परिवर्तन हो गया। घर का प्रबंध करने के काम का सार्वजनिक रूप जाता रहा। अब वह समाज की चिन्ता का विषय न रह गया। यह एक **निजी काम** बन गया। पत्नी को सामाजिक उत्पादन के क्षेत्र से निकाल दिया गया, वह घर की मुख्य दासी बन गयी। केवल बड़े पैमाने के आधुनिक उद्योग ने ही उसके लिए—पर अब भी केवल सर्वहारा स्त्री के ही लिए—सामाजिक उत्पादन के दरवाज़े फिर खोले हैं, पर इस रूप में कि जब नारी अपने परिवार की निजी सेवा में अपना कर्त्तव्य पालन करती है, तब उसे सार्वजनिक उत्पादन के बाहर रहना पड़ता है और वह कुछ कमा नहीं सकती, और जब वह सार्वजनिक उद्योग में भाग लेना और स्वतंत्र रूप से अपनी जीविका कमाना चाहती है, तब वह अपने परिवार के प्रति अपना कर्त्तव्य पूरा करने की स्थिति में नहीं होती। और जो बात कारख़ाने में काम करनेवाली स्त्री के लिए सत्य है, वह डाक्टरी या वकालत करनेवाली स्त्री के लिए भी, यानी सभी तरह के पेशों में काम करनेवाली स्त्रियों के लिए सत्य है। आधुनिक वैयक्तिक परिवार, नारी की खुली या छिपी हुई घरेलू दासता पर आधारित है। और आधुनिक समाज वह समवाय है जो केवल वैयक्तिक परिवारों के अणुओं से मिलकर बना है। आज अधिकतर परिवारों में, कम से कम मिल्की वर्गों में, पुरुष को जीविका कमानी पड़ती है और परिवार का पेट पालना पड़ता है, और इससे परिवार के अन्दर उसका आधिपत्य क़ायम हो जाता है और उसके लिए किसी क़ानूनी विशेषाधिकार की आवश्यकता नहीं पड़ती। परिवार में पति, बुर्जुआ होता है, पत्नी सर्वहारा की स्थिति में होती है। परन्तु उद्योग-धंधों के संसार में सर्वहारा जिस आर्थिक उत्पीड़न के बोझ के नीचे दबा हुआ है, उसका विशिष्ट रूप केवल उसी समय स्पष्ट होता है, जब पूंजीपति वर्ग के तमाम क़ानूनी विशेषाधिकार हटाकर अलग कर दिये जाते हैं और क़ानून की नज़रों में दोनों वर्गों की पूर्ण समानता स्थापित हो जाती है। जनवादी जनतंत्र दोनों वर्गों के विरोध को मिटाता नहीं है, इसके विपरीत, वह तो उनके लिए लड़कर फ़ैसला

कर लेने के वास्ते मैदान साफ़ कर देता है। इसी प्रकार आधुनिक परिवार में नारी पर पुरुष के आधिपत्य का विशिष्ट रूप, और उन दोनों के बीच वास्तविक सामाजिक समानता स्थापित करने की आवश्यकता तथा उसका ढंग, केवल उसी समय पूरी स्पष्टता के साथ हमारे सामने आयेंगे, जब पुरुष और नारी क़ानून की नज़र में बिलकुल समान हो जायेंगे। तभी जाकर यह बात साफ़ होगी कि स्त्रियों की मुक्ति की पहली शर्त यह है कि पूरी नारी जाति फिर से सार्वजनिक उद्योग में प्रवेश करे, और इसके लिए यह आवश्यक है कि समाज की आर्थिक इकाई होने का वैयक्तिक परिवार का गुण नष्ट कर दिया जाये।

* * *

इस प्रकार, मोटे तौर पर मानव विकास के तीन मुख्य युगों के अनुरूप, हमें विवाह के भी तीन मुख्य रूप मिलते हैं: जांगल युग में यूथ-विवाह, बर्बर युग में युग्म-विवाह, और सभ्यता के युग में एकनिष्ठ विवाह और उसके साथ जुड़ा हुआ व्यभिचार तथा वेश्यावृत्ति। बर्बर युग की उन्नत अवस्था में, युग्म-परिवार तथा एकनिष्ठ विवाह के बीच के दौर में, हम दासियों पर पुरुषों का आधिपत्य, और बहुपत्नीत्व पाते हैं।

जैसा कि हमारे पूरे वर्णन से प्रकट होता है कि इस क्रम में जो प्रगति होती है, उसके साथ यह ख़ास बात जुड़ी हुई है कि स्त्रियों से तो यूथ-विवाह के काल की यौन-स्वतंत्रता अधिकाधिक छिनती जाती है, पर पुरुषों से वह नहीं छिनती। पुरुषों के लिए तो, वास्तव में, आज भी यूथ-विवाह प्रचलित है। नारी के लिए जो बात एक ऐसा अपराध समझी जाती है जिसका भयानक सामाजिक और क़ानूनी परिणाम होता है, वही पुरुष के लिए एक सम्मानप्रद बात, या अधिक से अधिक एक मामूली-सा नैतिक धब्बा समझा जाता है जिसे वह ख़ुशी से सहन करता है। पुराने परम्परागत हैटेरिज़्म को, माल का वर्त्तमान पूंजीवादी उत्पादन जितना ही बदलता और अपने रंग में ढालता जाता है, यानी जितना ही वह खुली वेश्यावृत्ति में परिणत होती जाती है, उतना ही समाज पर उसका अधिक ख़राब असर पड़ता है। और वह स्त्रियों से ज़्यादा पुरुषों पर ख़राब असर डालती है। स्त्रियों में वेश्यावृत्ति केवल उन्हीं अभागिनों को पतन के गढ़े में धकेलती है जो उसके चंगुल में फंस जाती हैं, और इन स्त्रियों का भी उतना पतन नहीं होता जितना आम तौर पर समझा जाता है। परन्तु दूसरी ओर, वेश्यावृत्ति सारे पुरुष संसार के चरित्र को बिगाड़ देती

है। और इस प्रकार, दस में से नौ उदाहरणों में, विवाह के पहले सगाई की लंबी अवधि कार्यतः दाम्पत्य बेवफ़ाई की ट्रेनिंग की अवधि बन जाती है।

अब हम एक ऐसी सामाजिक क्रांति की ओर अग्रसर हो रहे हैं जिसके परिणामस्वरूप एकनिष्ठ विवाह का वर्तमान आर्थिक आधार उतने ही निश्चित रूप से मिट जायेगा, जितने निश्चित रूप से एकनिष्ठ विवाह की पूरक, वेश्यावृत्ति का आर्थिक आधार मिट जायेगा। एकनिष्ठ विवाह की प्रथा एक व्यक्ति के—और वह भी एक पुरुष के—हाथों में बहुत-सा धन एकत्रित हो जाने के कारण, और उसकी इस इच्छा के फलस्वरूप उत्पन्न हुई थी कि वह यह धन किसी दूसरे की सन्तान के लिए नहीं, केवल अपनी सन्तान के लिए छोड़ जाये। इस उद्देश्य के लिए आवश्यक था कि स्त्री एकनिष्ठ रहे, परन्तु पुरुष के लिए यह आवश्यक नहीं था। इसलिए नारी की एकनिष्ठता से पुरुष के खुले या छिपे बहुपत्नीत्व में कोई बाधा नहीं पड़ती थी। परंतु आनेवाली सामाजिक क्रांति स्थायी दायाद्य धन-सम्पदा के अधिकतर भाग को—यानी उत्पादन के साधनों को—सामाजिक सम्पत्ति बना देगी और ऐसा करके अपनी सम्पत्ति को बच्चों के लिए छोड़ जाने की इस सारी चिन्ता को अल्पतम कर देगी। पर एकनिष्ठ विवाह चूंकि आर्थिक कारणों से उत्पन्न हुआ था, इसलिए क्या इन कारणों के मिट जाने पर वह भी मिट जायेगा?

इस प्रश्न का यदि कोई यह उत्तर दे तो वह शायद ग़लत न होगा: मिटना तो दूर, एकनिष्ठ विवाह तभी पूर्णता प्राप्त करने की ओर बढ़ेगा। कारण कि उत्पादन के साधनों के सामाजिक सम्पत्ति में रूपान्तरण के फलस्वरूप उजरती श्रम, सर्वहारा वर्ग भी मिट जायेगा, और उसके साथ-साथ यह आवश्यकता भी जाती रहेगी कि एक निश्चित संख्या में—जिस संख्या को हिसाब लगाकर बताया जा सकता है—स्त्रियां पैसे लेकर अपनी देह को पुरुषों के हाथों में सौंप दें। तब वेश्यावृत्ति का अन्त हो जायेगा, और एकनिष्ठ विवाह-सम्बन्ध मिटने के बजाय, पहली बार वास्तविकता बन जायेगा—पुरुषों के लिए भी बन जायेगा।

बहरहाल, तब पुरुषों की स्थिति में बहुत बड़ा परिवर्तन हो जायेगा। परन्तु स्त्रियों की, **सभी** स्त्रियों की स्थिति में भी महत्त्वपूर्ण परिवर्तन होगा। उत्पादन के साधनों के समाज की सम्पत्ति बन जाने से वैयक्तिक परिवार, समाज की आर्थिक इकाई नहीं रह जायेगा। घर का निजी प्रबंध एक

सामाजिक उद्योग-धंधा बन जायेगा। बच्चों का लालन-पालन और शिक्षा एक सार्वजनिक विषय हो जायेगा। समाज सब बच्चों का समान रूप से पालन करेगा, चाहे वे विवाहित की सन्तान हों या अविवाहित की। इस प्रकार, आजकल सबसे ज़्यादा जो बात किसी लड़की को उस पुरुष के सामने स्वतंत्रतापूर्वक आत्मसमर्पण करने से रोकती है, जिसे वह प्यार करती है, यानी यह चिन्ता कि "इसका परिणाम क्या होगा" और जो ऐसे मामलों के लिए वर्तमान समाज में सबसे महत्त्वपूर्ण सामाजिक बात—नैतिक व आर्थिक दोनों ही—बन जाती है, वह चिन्ता तब बिलकुल नहीं रहेगी। प्रश्न उठ सकता है कि तब क्या इस बात के लिए काफ़ी आधार नहीं तैयार हो जायेगा कि धीरे-धीरे अनियंत्रित यौन-व्यापार बढ़ने लगे और उसके साथ-साथ कौमार्य-रक्षा, नारी-कलंक आदि के बारे में जनमत अधिक उदार हो जाये? और अन्तिम बात यह कि क्या हम ऊपर यह नहीं देख चुके हैं कि आधुनिक संसार में एकनिष्ठ विवाह और वेश्यावृत्ति एक दूसरे की उल्टी वस्तुएं होते हुए भी, एक ही सामाजिक परिस्थिति के दो छोर मात्र हैं और इसलिए एक दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते? क्या यह सम्भव है कि वेश्यावृत्ति तो मिट जाये, पर वह अपने साथ एकनिष्ठ विवाह को न लेती जाये?

यहां एक नया तत्त्व काम करने लगता है। यह एक ऐसा तत्त्व है जो एकनिष्ठ विवाह के विकसित होने के समय यदि था तो केवल बीज-रूप में ही था। हमारा मतलब व्यक्तिगत यौन-प्रेम से है।

मध्य-युग के पहले व्यक्तिगत यौन-प्रेम जैसी कोई वस्तु संसार में नहीं थी। ज़ाहिर है कि तब भी व्यक्तिगत सौन्दर्य, अंतरंग साहचर्य, समान रुचि, आदि से नारी और पुरुष में परस्पर सम्भोग की इच्छा उत्पन्न होती थी, और उस वक़्त भी नर-नारी इस प्रश्न की ओर से बिलकुल उदासीन नहीं थे कि वे किस व्यक्ति के साथ यह सबसे अंतरंग सम्बन्ध स्थापित करते हैं। परन्तु उसमें और हमारे काल के यौन-प्रेम में बहुत अन्तर था। प्राचीन काल में शादियां बराबर माता-पिता की इच्छा से होती थीं; लड़के-लड़की चुपचाप उन्हें मान लेते थे। प्राचीन काल में पति-पत्नी के बीच जो प्रेम थोड़ा-बहुत देखने में आता था, वह मनोगत प्रवृत्ति नहीं, वरन् वस्तुगत कर्त्तव्य था, वह विवाह का कारण नहीं, उसका पूरक था। आधुनिक अर्थ में प्रेम-व्यापार प्राचीन काल में केवल अधिकृत समाज से बाहर ही घटित होता था। थियोक्रिटस और मोसकस ने, या 'डाफ़निस और क्लोए' में लांगस ने जिन गड़रियों के प्रम के

गीत गाये हैं और जिनके विरह-मिलन के दुख-सुख का वर्णन किया है, वे दास मात्र थे, उनका राज-काज में कोई भाग नहीं था, क्योंकि वह केवल स्वतंत्र नागरिकों का क्षेत्र था। दासों के सिवा, यदि कहीं प्रेम-व्यापार घटित होता था तो केवल पतनोन्मुख संसार के विघटन के फलस्वरूप ही होता था, और उन स्त्रियों के साथ होता था जो अधिकृत समाज के बाहर समझी जाती थीं – यानी हैटेराओं, अर्थात् विदेशी या स्वतंत्र कर दी गयी स्त्रियों के साथ होता था। एथेंस में यह बात उसके पतन के आरम्भ में देखी गयी थी, और रोम में उसके सम्राटों के काल में। स्वतंत्र नागरिकों में यदि कभी पुरुष और नारी के बीच सचमुच प्रेम होता था, तो केवल विवाह का बंधन तोड़कर व्यभिचार के रूप में। प्राचीन काल में प्रेम के उस प्रसिद्ध कवि, वृद्ध एनाक्रियोन को ही लीजिए। हमारे अर्थ में यौन-प्रेम का उसके लिए इतना कम महत्त्व था कि वह इस बात तक से उदासीन था कि माशूक़ औरत है या मर्द।

प्राचीनकालीन सरल यौन-इच्छा, eros से हमारा यौन-प्रेम बहुत भिन्न है। एक तो, हमारा यौन-प्रेम यह मानकर चलता है कि यह प्रेम दोतरफ़ा है; जिससे प्रेम किया जाये उससे प्रेम मिलता भी है। इस तरह औरत का दर्जा मर्द के बराबर होता है, जबकि प्राचीनकालीन eros में औरत की हमेशा राय भी नहीं ली जाती थी। दूसरे, यौन-प्रेम इतना तीव्र और स्थायी रूप धारण कर लेता है कि दोनों पक्षों को लगता है कि यदि उन्होंने एक दूसरे को न पाया, या वे एक दूसरे से अलग रहे, तो यह यदि सबसे बड़ा नहीं तो बहुत बड़ा दुर्भाग्य अवश्य होगा। एक दूसरे को पाने के लिए वे भारी ख़तरों का सामना करते हैं, यहां तक कि अपने जीवन को भी संकट में डालने में नहीं हिचकिचाते। प्राचीन काल में यह सब, अधिक से अधिक, केवल विवाहेतर यौन-व्यापार में होता था। और अन्तिम बात यह है कि अब सम्भोग का औचित्य अथवा अनौचित्य एक नये नैतिक मानदंड से निश्चित होने लगता है। अब केवल यही सवाल नहीं किया जाता कि सम्भोग वैध है अथवा अवैध, बल्कि यह भी किया जाता है कि वह पारस्परिक प्रेम का परिणाम है या नहीं। कहने की आवश्यकता नहीं कि सामन्ती या पूंजीवादी व्यवहार में दूसरे नैतिक मानदंडों का जो हाल हुआ उससे बेहतर इस नये नैतिक मानदंड का नहीं हुआ, – अर्थात् इसकी भी उपेक्षा कर दी गयी। परन्तु अगर उसका हाल बेहतर नहीं हुआ तो बदतर भी नहीं हुआ। अन्य मानदंडों के समान यह मानदंड

भी सिद्धान्त रूप में, यानी काग़ज़ी तौर पर, सब को मान्य है। और इससे अधिक फ़िलहाल आशा भी नहीं की जा सकती।

जिस बिन्दु पर प्राचीन काल में यौन-प्रेम की ओर प्रगति बीच में रुक गयी थी, मध्य काल में उस बिन्दु से वह प्रारम्भ हुई। हमारा मतलब विवाहेतर प्रेम-व्यापार से है। नाइटों के प्रेम का हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं जिसने "उषा के गीतों" को जन्म दिया था। प्रेम के इस रूप का उद्देश्य था विवाह-सम्बन्ध को तोड़ डालना। इसलिए, ऐसे प्रेम के और उस प्रेम के बीच बहुत चौड़ी खाई थी, जो विवाह-सम्बन्ध की नींव बननेवाला था। नाइटों के प्रेम के काल में यह खाई कभी नहीं पाटी जा सकी। उच्छृंखल लैटिन लोगों को छोड़कर सदाचारी जर्मनों को लीजिए, तो भी हम पाते हैं कि 'नीबेलुंगेनलीड' में क्राइमहिल्ड यद्यपि गुप्त रूप से सिगफ़ाइड से उतना ही प्रेम करती थी, जितना वह ख़ुद उससे करता था, फिर भी जब गुंथर ने उसे बताया कि उसने क्राइमहिल्ड का विवाह एक नाइट के साथ करने का वचन दे दिया है और उसका नाम तक नहीं बताया, तो क्राइमहिल्ड ने केवल यह उत्तर दिया :

> "आपको मुझसे पूछने की आवश्यकता नहीं है, आप जैसा आदेश देंगे, मैं सदा वैसा ही करूंगी। मेरे प्रभु, आप जिसे भी मेरे लिए चुनेंगे, उसी को मैं सहर्ष अपना पति स्वीकार करूंगी।"

इस बात का क्राइमहिल्ड को कभी ख़याल तक नहीं आया कि इस मामले में उसके प्रेम का भी कोई महत्त्व हो सकता है। गुंथर ने ब्रुनहिल्ड को देखा तक नहीं था, तब भी वह उसे विवाह में मांग बैठा। इसी प्रकार, एटज़ेल ने क्राइमहिल्ड को बिना देखे ही उससे विवाह करना चाहा। और 'गुडरुन'[129] नामक काव्य में भी यही होता है। उसमें आयरलैंड का सिगबांट नार्वेवासिनी ऊटा से विवाह करना चाहता है, हेगेलिंगेन का हेटेल आयरलैंड की हिल्डा को विवाह में मांगता है, और अन्त में, मोरलैंड का सिगफ़ाइड, ओर्मनी का हार्टमुट तथा ज़ीलैंड का हेरविग, तीनों ही गुडरुन को विवाह में मांगते हैं; और यहां पहली बार यह होता है कि गुडरुन अपनी इच्छा से हेरविग को वर चुन लेती है। सामान्यतः प्रत्येक युवा राजकुमार के लिए उसके माता-पिता वधू चुनते हैं। यदि वे जीवित नहीं हैं तो राजकुमार ख़ुद अपने सबसे बड़े सरदारों की राय से वधू चुन लेता है, जिनकी बात का सभी मामलों

में बहुत मूल्य होता है। अन्यथा हो भी नहीं सकता। क्योंकि नाइट अथवा सामन्त के लिए, और ख़ुद राजा या राजकुमार के लिए, विवाह एक राजनीतिक मामला होता है। उनके लिए विवाह नये गठबंधन करके अपनी शक्ति बढ़ाने का एक अवसर होता है। इसलिए विवाह में राजकुल अथवा सामन्तकुल के हित निर्णायक होते हैं, न कि व्यक्तिगत इच्छा या प्रवृत्ति। भला ऐसी परिस्थिति में, विवाह का निर्णय प्रेम पर निर्भर होने की आशा कैसे की जा सकती थी?

मध्य युग के नगरों में शिल्प-संघ के सदस्य के लिए भी यही बात सत्य थी। उसे ऐसे विशेषाधिकार प्राप्त थे जो उसकी रक्षा करते थे–जैसे कि शिल्प-संघों के अधिकारपत्र और उनकी विशेष शर्तें, दूसरे शिल्प-संघों से और स्वयं अपने संघ के दूसरे सदस्यों से, तथा अपने मज़दूर कारीगरों और शागिर्दों से, उसे क़ानूनी तौर पर अलग रखने के लिए बनायी गयी बनावटी सीमाएं। पर ये ही विशेषाधिकार उस दायरे को बहुत छोटा कर देते थे जिसमें वह अपने लिए पत्नी तलाश करने की उम्मीद कर सकता था। और यह प्रश्न कि कौनसी लड़की उसके लिए सबसे उपयुक्त है, इस पेचीदा प्रणाली में निश्चय ही व्यक्तिगत इच्छा से नहीं, बल्कि परिवार के हित से तय होता था।

अतएव मध्य काल के अन्त तक, विवाह का अधिकांशतः वही रूप रहा जो शुरू से चला आया था,–यानी वह एक ऐसा मामला बना रहा जिसका फ़ैसला दोनों प्रमुख पक्ष–वर और वधू–नहीं करते थे। शुरू में, व्यक्ति जन्म से विवाहित होता था–पुरुष स्त्रियों के एक पूरे समूह के साथ, और स्त्री पुरुषों के। यूथ-विवाह के बाद के रूपों में भी शायद इसी तरह की हालत चलती रही, बस केवल यूथ अधिकाधिक छोटा होता गया। युग्म-परिवार में सामान्यतः माताएं अपनी सन्तान का विवाह तय करती हैं; और यहां भी निर्णायक महत्त्व इसी बात का होता है कि नये संबंध से गोत्र में और क़बीले के अन्दर विवाहित जोड़े की स्थिति कितनी मज़बूत होती है। और जब सामूहिक सम्पत्ति के ऊपर निजी सम्पत्ति की प्रधानता क़ायम होने और सम्पत्ति को अपनी सन्तान के लिए छोड़ने का सवाल पैदा होने पर, पितृ-सत्ता और एकनिष्ठ विवाह की प्रधानता क़ायम हो जाती है, तब विवाह पहले से भी कहीं ज़्यादा आर्थिक कारणों से निश्चित होने लगता है। क्रय-विवाह का रूप तो ग़ायब हो जाता है, पर विवाह का निश्चय अधिकाधिक इस ढंग से होता है कि न केवल स्त्री का, बल्कि पुरुष का भी, उसके व्यक्तिगत गुणों के

आधार पर नहीं, बल्कि उसकी सम्पत्ति के आधार पर मूल्यांकन किया जाता है। शुरू से ही शासक वर्गों का ऐसा व्यवहार रहा है कि उनमें यह बात कभी सुनी तक नहीं जा सकती थी कि विवाह के मामले में दोनों प्रमुख पक्षों की पारस्परिक इच्छा या प्रवृत्ति का निर्णायक महत्त्व हो सकता है। ऐसी बातें तो ज़्यादा से ज़्यादा क़िस्से-कहानियों में होती थीं, या फिर वे होती थीं उत्पीड़ित वर्गों में, जिनका कोई महत्त्व न था।

जिस समय, भौगोलिक खोजों के युग के बाद पूंजीवादी उत्पादन, विश्व-व्यापार तथा मैनुफ़ेक्चर के ज़रिए दुनिया को जीतने निकला था, उस समय यही परिस्थिति थी। हर आदमी यही सोचेगा कि विवाह का यह रूप पूंजीवादी उत्पादन के सर्वथा उपयुक्त था, और वास्तव में बात भी ऐसी ही थी। परन्तु, विश्व-इतिहास का व्यंग्य देखिए—उसकी गहराई तक कौन पहुंच सकता है। विवाह के इस रूप में सबसे बड़ी दरार पूंजीवादी उत्पादन ने ही डाली। सभी वस्तुओं को बाज़ार में बिकनेवाले मालों में बदलकर उसने सारे प्राचीन एवं परम्परागत सम्बन्धों को भंग कर दिया, और पीढ़ी-दर-पीढ़ी चलते आये रीति-रिवाजों तथा ऐतिहासिक अधिकारों की जगह क्रय-विक्रय और "स्वतंत्र" क़रार की स्थापना की। और अंग्रेज़ विधिवेत्ता एच० एस० मेन को लगा कि मानो उन्होंने बड़ा भारी आविष्कार किया है, जब उन्होंने यह कहा कि पिछले युगों की तुलना में हमारी पूरी प्रगति इस बात में निहित है कि अब हम हैसियत की जगह क़रार को, और बाप-दादों से विरासत में मिली स्थिति की जगह स्वेच्छापूर्वक किये गये क़रार के द्वारा स्थापित स्थिति को, मानने लगे हैं। यह बात, जहां तक वह सही है, बहुत दिन पहले ही 'कम्युनिस्ट घोषणापत्र'* में कह दी गयी थी।

परन्तु क़रार करने के लिए ज़रूरी है कि ऐसे लोग हों जो अपने व्यक्तित्व, अपनी क्रिया-शक्ति और सम्पत्ति का स्वतंत्रतापूर्वक जिस प्रकार चाहें उस प्रकार उपयोग कर सकें, और साथ ही जो समानता के आधार पर मिलें। ठीक ऐसे ही "स्वतंत्र" और "समान" लोगों को प्रस्तुत करना पूंजीवादी उत्पादन का एक मुख्य काम था। यद्यपि शुरू में यह बात अर्द्ध-चेतन ढंग से, और वह भी धार्मिक वेष में हुई, फिर भी लूथर और काल्विन के सुधारों के समय से ही यह पक्का सिद्धान्त बन गया कि कोई व्यक्ति केवल उसी समय

---

* प्रस्तुत संकलन, भाग १, पृष्ठ ४६—५०।—सं०

अपने कामों के लिए पूरी तरह ज़िम्मेदार माना जायेगा, जब इन कामों को करते समय उसे अपनी इच्छानुसार कार्य करने की पूरी स्वतंत्रता रही हो; और यह हर आदमी का नैतिक कर्त्तव्य है कि यदि कोई उस पर अनैतिक कार्य करने के लिए दबाव डालता है, तो वह उसका विरोध करे। परन्तु विवाह की पुरानी प्रथा से यह बात कैसे मेल खाती है? पूंजीवादी विचारों के अनुसार विवाह भी एक क़रार होता है, क़ानूनी क़रार होता है, बल्कि कहना चाहिए कि सबसे महत्त्वपूर्ण क़रार होता है, क्योंकि उसके द्वारा दो व्यक्तियों के तन और मन का जीवन भर के लिए फ़ैसला कर दिया जाता है। इसमें कोई शक नहीं कि रस्मी तौर पर विवाह का क़रार दोनों पक्ष स्वेच्छा से करते थे। दोनों पक्षों की सहमति के बिना विवाह का क़रार नहीं किया जाता था। परन्तु हम यह भी अच्छी तरह जानते हैं कि यह सहमति किस प्रकार ली जाती थी, और वास्तव में विवाह कौन तय करता था। परन्तु यदि दूसरे सभी क़रारों का पूर्ण स्वतंत्रता के साथ निश्चय किया जाना आवश्यक है, तो फिर विवाह के क़रार के लिए यह क्यों आवश्यक नहीं है? दो युवा व्यक्ति, जो युगल दम्पति बनाये जाने वाले हैं, क्या यह अधिकार नहीं रखते कि वे स्वतन्त्रतापूर्वक अपने आप का, अपने शरीर का, और अपनी इन्द्रियों का जिस प्रकार चाहें उस प्रकार उपयोग करें? क्या यह बात सच नहीं है कि यौन-प्रेम नाइटों के प्रेम-व्यापार के कारण प्रचलित हुआ था, और क्या नाइटों के विवाहेतर प्रेम के विपरीत इसका सही पूंजीवादी रूप पति-पत्नी का प्रेम नहीं है? और यदि विवाहित लोगों का कर्त्तव्य है कि वे एक दूसरे से प्रेम करें, तो क्या प्रेमियों का यह कर्त्तव्य नहीं है कि वे केवल एक दूसरे से ही विवाह करें और किसी दूसरे से न करें? और क्या इन प्रेमियों का एक दूसरे से विवाह करने का अधिकार माता-पिता, सगे-सम्बन्धियों और विवाह तय कराने वाले अन्य परम्परागत दलालों के अधिकार से ऊंचा नहीं है? स्वतंत्रतापूर्वक व्यक्तिगत रूप से जांच लेने का अधिकार, यदि धड़धड़ाता हुआ धर्म तथा गिरजाघर में भी पहुंच गया है, तो वह पुरानी पीढ़ी के इस असहनीय दावे के सामने ही कैसे ठिठककर रह जा सकता है कि उसे नयी पीढ़ी के तन-मन, सम्पत्ति और सुख-दुख का फ़ैसला करने का अधिकार है?

ऐसे युग में, जिसने पुराने सारे सामाजिक बंधनों को ढीला कर दिया था और सभी परम्परागत विचारों की नींव हिला दी थी, इन प्रश्नों का उठना स्वाभाविक था। एक ही वार में दुनिया पहले से क़रीब-क़रीब दस गुनी बड़ी

हो गयी थी। एक गोलार्द्ध के चतुर्थांश के बजाय, अब पूरा भू-मंडल पश्चिमी यूरोप के निवासियों की नज़रों के सामने खुल गया था, और वे बाक़ी बचे सात भागों पर जल्दी-जल्दी क़ब्ज़ा करने लगे। और जिस प्रकार स्वदेश की पुरानी संकुचित दीवारें गिर गयी थीं, उसी प्रकार हज़ारों वर्ष पुरानी वे दिमाग़ी दीवारें भी ढह गयीं जिन्हें मध्य-काल की निर्दिष्ट विचार-प्रणाली ने खड़ा कर रखा था। मनुष्य के बाह्य-चक्षुओं और ज्ञान-चक्षुओं, दोनों के सामने एक नया, असीम क्षेत्र खुल गया था। जिस युवक को भारत की अतुलित धन-सम्पदा, मैक्सिको तथा पोतोसी की सोने-चांदी की खानों का आकर्षण निमंत्रण दे रहा था, उसे भला समाज की प्रतिष्ठा और शिल्प-संघों के परम्परागत विशेषाधिकार कैसे रोककर रख सकते थे? यह पूंजीपति वर्ग का वीर-युग था। इसमें भी रोमांस था, इसके भी अपने प्रेम के सपने थे, परन्तु उनका आधार पूंजीवादी था, और अन्तिम विश्लेषण में, उनका उद्देश्य और लक्ष्य भी पूंजीवादी होता था।

इस प्रकार यह बात देखने में आयी कि उठते हुए पूंजीपति वर्ग ने—विशेषकर प्रोटेस्टेंट देशों में जहां तत्कालीन व्यवस्था की जड़ें सबसे ज़्यादा हिली थीं—विवाह के मामले में भी क़रार की स्वतंत्रता को अधिकाधिक माना और उसे उपरोक्त ढंग से लागू किया। विवाह वर्ग-विवाह ही रहा, पर वर्ग की सीमाओं के भीतर दोनों पक्षों को, अपना जीवन-साथी चुनने की स्वतंत्रता कुछ हद तक मिल गयी। और काग़ज़ पर, नैतिक सिद्धान्तों में और कवियों की कविताओं में भी, इस सिद्धान्त से अधिक सर्वमान्य और कोई सिद्धान्त नहीं रहा कि जो विवाह पारस्परिक यौन-प्रेम पर तथा पति-पत्नी के सचमुच स्वैच्छिक क़रार पर आधारित नहीं है, वह अनैतिक है। सारांश यह कि प्रेम-विवाह मनुष्य का अधिकार घोषित कर दिया गया, और यह केवल पुरुष का ही अधिकार (droit de l'homme)* नहीं रहा, बल्कि कभी-कभी अपवादस्वरूप यह नारी का भी अधिकार (droit de la femme)** भी माना जाने लगा।

परन्तु एक बात में यह मानव अधिकार दूसरे सभी तथाकथित मानव अधिकारों से भिन्न था। दूसरे तमाम अधिकार, व्यवहार में शासक वर्ग तक, यानी पूंजीपति वर्ग तक ही सीमित बने रहे और उत्पीड़ित वर्ग से—सर्वहारा

---

* «droit de l'homme» के दो अर्थ हैं: "मानव अधिकार" तथा "मनुष्य (पुरुष) का अधिकार"।—सं०

** "नारी का अधिकार"।—सं०

वर्ग से–प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष ढंग से ये अधिकार छीने जाते रहे। पर इतिहास का व्यंग्य एक बार फिर सामने आया। शासक वर्ग अब भी परिचित आर्थिक प्रभावों के वश में रहता है और इसलिए कुछ अपवादस्वरूप उदाहरणों में ही उसके यहां सचमुच स्वेच्छा से विवाह होते हैं; परन्तु शासित वर्ग में, जैसा कि हम ऊपर देख चुके हैं, आम तौर पर विवाह स्वेच्छा से होते हैं।

अतएव, विवाह में पूर्ण स्वतंत्रता केवल उसी समय आम तौर पर कार्य रूप ले सकेगी जब पूंजीवादी उत्पादन तथा उससे उत्पन्न सम्पत्ति के सम्बन्ध मिट जायेंगे और उसके परिणामस्वरूप वे सब गौण आर्थिक कारण भी मिट जायेंगे जो आज भी जीवन-साथी के चुनाव पर इतना भारी प्रभाव डालते हैं। तब आपस में प्रेम के सिवा और कोई उद्देश्य विवाह के मामले में काम नहीं करेगा।

यौन-प्रेम चूंकि स्वभाव से एकांतिक होता है–यद्यपि यह एकांतिकता आज अपने पूर्ण रूप में केवल नारी के लिए ही होती है,–इसलिए, यौन-प्रेम पर आधारित विवाह स्वभाव से एकनिष्ठ होता है। हम यह देख चुके हैं कि बाख़ोफ़ेन तब कितने सही नतीजे पर पहुंचे थे जब उन्होंने कहा था कि यूथ-विवाह से व्यक्तिगत विवाह तक की प्रगति का श्रेय मुख्यतः स्त्रियों को है। हां, युग्म-विवाह से एकनिष्ठ विवाह में प्रवेश करने का श्रेय पुरुष को दिया जा सकता है। इतिहास की दृष्टि से इस परिवर्तन का सार यह था कि स्त्रियों की स्थिति और गिर गयी और पुरुषों के लिए बेवफ़ाई और आसान हो गयी। जब वे आर्थिक कारण मिट जायेंगे जिनसे स्त्रियां पुरुषों की हस्ब मामूल बेवफ़ाई को सहन करने के लिए विवश हो जाती थीं,–अर्थात् जब स्त्री को अपनी जीविका की और, इस से भी अधिक अपने बच्चों के भविष्य की चिन्ता न रह जायेगी–और इस प्रकार जब स्त्रियों और पुरुषों के बीच सचमुच समानता स्थापित हो जायेगी, तब पहले का सारा अनुभव यही बताता है कि इस समानता का परिणाम उतना यह नहीं होगा कि स्त्री बहुपतिका हो जायेगी बल्कि कहीं अधिक प्रभावपूर्ण रूप से यह होगा कि पुरुष सही माने में एकपत्नीक बन जायेंगे।

परन्तु एकनिष्ठ विवाह से वे सारी विशेषताएं निश्चित रूप में मिट जायेंगी, जो सम्पत्ति के सम्बन्धों से उसके उत्पन्न होने के कारण पैदा हो गयी हैं। वे विशेषताएं ये हैं: एक तो पुरुष का आधिपत्य, और दूसरे विवाह-सम्बन्ध का

अविच्छेद्य रूप। दाम्पत्यजीवन में पुरुष का आधिपत्य केवल उसके आर्थिक प्रभुत्व का एक परिणाम है, और उस प्रभुत्व के मिटने पर वह अपने आप ख़तम हो जायेगा। विवाह-सम्बन्ध का अविच्छेद्य रूप कुछ हद तक उन आर्थिक परिस्थितियों का परिणाम है जिनमें एकनिष्ठ विवाह की उत्पत्ति हुई थी, और कुछ हद तक वह उस समय से चली आती हुई एक परम्परा है जबकि इन आर्थिक परिस्थितियों तथा एकनिष्ठ विवाह के सम्बन्ध को ठीक-ठीक नहीं समझा गया था और धर्म ने उसे अतिरंजित कर दिया था। आज इस परम्परा में हज़ारों दरारें पड़ चुकी हैं। यदि केवल प्रेम पर आधारित विवाह नैतिक होते हैं, तो ज़ाहिर है कि केवल वे विवाह ही नैतिक माने जायेंगे जिनमें प्रेम क़ायम रहता है। व्यक्तिगत यौन-प्रेम के आवेग की अवधि प्रत्येक व्यक्ति के लिए भिन्न होती है। विशेषकर पुरुषों में तो इस मामले में बहुत ही अन्तर होता है। और प्रेम के निश्चित रूप से नष्ट हो जाने पर, या किसी और व्यक्ति से उत्कट प्रेम हो जाने पर, पति-पत्नी का अलग हो जाना दोनों पक्ष के लिए और समाज के लिए भी हितकारक बन जाता है। तब वे तलाक़ के मुक़दमे की कीचड़ में से व्यर्थ में गुज़रने से बच जायेंगे।

अतएव, पूंजीवादी उत्पादन के आसन्न विनाश के बाद यौन-संबंधों का स्वरूप क्या होगा, उसके बारे में आज हम केवल नकारात्मक अनुमान कर सकते हैं,—अभी हम केवल इतना कह सकते हैं कि क्या चीजें तब नहीं रहेंगी। परन्तु उसमें कौनसी नयी चीजें जुड़ जायेंगी? यह उस समय निश्चित होगा जब एक नयी पीढ़ी पनपेगी—ऐसे पुरुषों की पीढ़ी जिसे जीवन भर कभी किसी नारी की देह को पैसा देकर या सामाजिक शक्ति के किसी अन्य साधन के द्वारा ख़रीदने का मौक़ा नहीं मिला है, और ऐसी नारियों की पीढ़ी जिसे कभी सच्चे प्रेम के सिवा और किसी कारण से किसी पुरुष के सामने आत्मसमर्पण करने के लिए विवश नहीं होना पड़ा है, और न ही जिसे आर्थिक परिणामों के भय से अपने को अपने प्रेमी के सामने आत्मसमर्पण करने से कभी रोकना पड़ा है। और जब एक बार ऐसे स्त्री-पुरुष इस दुनिया में जन्म ले लेंगे, तब वे इस बात की तनिक भी चिन्ता नहीं करेंगे कि आज हमारी राय में उन्हें क्या करना चाहिए। वे स्वयं तय करेंगे कि उन्हें क्या करना चाहिए और उसके अनुसार वे स्वयं ही प्रत्येक व्यक्ति के आचरण के बारे में जनमत का निर्माण करेंगे—और बस, मामला ख़तम हो जायेगा।

इस बीच, चलिए, हम लोग फिर मौर्गन के पास लौट चलें जिनसे हम

बहुत दूर भटक गये हैं। सभ्यता के युग में जो सामाजिक संस्थाएं विकसित हुई हैं, उनका ऐतिहासिक अन्वेषण मौर्गन की पुस्तक के क्षेत्र के बाहर है। इसलिए, इस काल में एकनिष्ठ विवाह का क्या होगा, इस विषय की उन्होंने बहुत संक्षेप में चर्चा की है। मौर्गन भी एकनिष्ठ परिवार के विकास को एक प्रगतिशील क़दम मानते हैं। उनकी राय में भी यह नारी और पुरुष की समानता के लक्ष्य की ओर एक क़दम है, पर वह यह नहीं मानते कि इसके द्वारा मानवजाति उस लक्ष्य पर पूरी हद तक पहुंच गयी है। परन्तु मौर्गन के शब्दों में,

> "जब यह सत्य स्वीकार कर लिया जाता है कि परिवार एक के बाद एक, चार अलग-अलग रूपों से गुज़र चुका है और अब वह अपने पांचवें रूप में है, तब फ़ौरन यह सवाल उठता है कि क्या भविष्य में यह रूप स्थायी बना रहेगा? इस सवाल का सिर्फ़ यही जवाब दिया जा सकता है कि जैसा कि भूतकाल में हुआ, समाज की प्रगति के साथ-साथ परिवार का रूप भी प्रगति करेगा और समाज के बदलने के साथ-साथ परिवार का रूप भी बदलेगा। परिवार सामाजिक व्यवस्था की उपज है, और वह उसकी संस्कृति को प्रतिबिम्बित करेगा। सभ्यता के प्रारंभ से लेकर अब तक चूंकि एकनिष्ठ परिवार में बड़ा सुधार हुआ है, और आधुनिक काल में अत्यन्त युक्तिसंगत सुधार हुआ है, इसलिए कम से कम इतना तो माना ही जा सकता है कि उसमें अभी और सुधार हो सकता है और वह उस समय तक होता रहेगा जब तक कि नारी और पुरुष की समानता स्थापित नहीं हो जायेगी। और यदि सुदूर भविष्य में एकनिष्ठ परिवार समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने में असमर्थ सिद्ध होता है, तो आज यह भविष्यवाणी करना असम्भव है कि उसका स्थान विवाह का कौनसा रूप लेगा।"

३

इरोक्वाई गोत्र

अब हम मौर्गन की एक और खोज पर आते हैं, जो कम से कम उतनी ही महत्त्वपूर्ण है जितनी महत्त्वपूर्ण रक्तसम्बद्धता की प्रणालियों के आधार पर परिवार के आदिम रूप की पुनर्रचना थी। मौर्गन ने साबित कर दिया है कि अमरीकी इंडियन क़बीलों में रक्त-सम्बन्धियों के जो समूह थे, और जिनके नाम पशुओं के नामों पर रखे जाते थे, वे बुनियादी तौर पर यूनानियों के genea और रोमन लोगों के gentes से अभिन्न थे; कि गोत्र का प्रारम्भिक रूप वह है जो अमरीका में मिलता है और बाद के रूप वे हैं जो यूनानियों में और रोमन लोगों में पाये गये हैं; कि प्राचीनतम काल के यूनानियों तथा रोमन लोगों में गोत्र, बिरादरियों और क़बीलों के रूप में समाज का जो संगठन मिलता था, हूबहू वैसा ही संगठन अमरीकी इंडियनों में मिलता है; और (जहां तक आज उपलब्ध सूत्रों से हम जान सके हैं) गोत्र एक ऐसा संगठन है जो सभ्यता के युग में प्रवेश करने के पहले तक, और यहां तक कि उसके बाद भी, संसार की सभी बर्बर जातियों में पाया जाता रहा है। यह साबित हो जाने से प्राचीनतम काल के यूनानी तथा रोमन इतिहास की सबसे कठिन गुत्थियां, एक ही वार में सुलझ गयीं। साथ ही इस खोज ने आदिम काल के,–अर्थात् राज्य के आविर्भाव के पहले के–सामाजिक गठन की बुनियादी विशेषताओं पर अप्रत्याशित प्रकाश डाला है। एक बार जानकारी हो जाने पर यह चीज भले ही सरल और सीधी मालूम पड़ती हो, पर मौर्गन ने इसका बिलकुल हाल में ही पता लगाया। १८७१ में उनकी जो रचना प्रकाशित हुई थी*, उसमें वह इस भेद का पता नहीं लगा पाये थे। और जब मौर्गन ने इस रहस्य का पता लगाया तो इंगलैंड के पुरातत्त्वविदों की, जिन्हें अमूमन्

* प्रस्तुत खंड, पृष्ठ १५५।–सं०

अपने में बहुत विश्वास रहता था, कुछ समय के लिए बोलती बंद हो गयी।

मौर्गन ने रक्त-सम्बन्धियों के इस समूह के लिए साधारण रूप से जिस लैटिन शब्द gens का प्रयोग किया है, वह अपने यूनानी पर्याय genos की ही तरह, समान आर्य धातु gan (जो जर्मन भाषा में, आर्य भाषा के g के k बन जाने के नियम के अनुसार kan हो जाता है) से व्युत्पन्न हुआ है, जिसका अर्थ है "जन्म देना"। Gens, genos, संस्कृत भाषा का जनस, गौथिक भाषा का kuni (यह शब्द भी उपरोक्त नियम के अनुसार बना है), प्राचीन नौर्दिक और एंग्लो-सैक्सन भाषा का kyn, अंग्रेज़ी भाषा का kin और मध्योत्तर जर्मन भाषा का künne—इन सब शब्दों का एक ही अर्थ है, और वह है: रक्त-सम्बन्ध, वंश। परन्तु लैटिन भाषा में gens और यूनानी भाषा में genos विशेष रूप से रक्त-संबंधियों के उन समूहों के लिए प्रयुक्त होते हैं जो एक वंश के होने का (यहां एक ही पुरुष के वंशज होने का) दावा करते हैं, और जो कुछ विशेष सामाजिक एवं धार्मिक रीतियों से बंधकर एक विशिष्ट जन-समुदाय बन गये हैं, परन्तु जिनकी उत्पत्ति और प्रकृति के विषय में अभी तक सभी इतिहासकार अंधकार में थे।

हम ऊपर पुनालुआन परिवार के सम्बन्ध में देख चुके हैं कि शुरू में gens, अर्थात् गोत्र कैसे बनता था। उसमें वे तमाम लोग शामिल होते थे जो पुनालुआन विवाह की बदौलत और उसके साथ अनिवार्यतः प्रचलित विचारों के अनुसार, एक निश्चित पूर्वजा के, यानी इस गोत्र की स्थापना करनेवाली नारी के वंशज माने जाते थे। परिवार के इस रूप में चूंकि यह निश्चय के साथ नहीं कहा जा सकता था कि बच्चे का पिता कौन है, इसलिए वंश केवल नारी के नाम से चलता था। और भाई-बहन में चूंकि विवाह वर्जित था, और पुरुष केवल किसी और वंश की स्त्रियों से ही विवाह कर सकता था, इसलिए इन स्त्रियों से पैदा होनेवाले बच्चे मातृ-सत्ता के नियम के अनुसार गोत्र के बाहर होते थे। अतएव, हर एक पीढ़ी की केवल **पुत्रियों** की संतान ही गोत्र में रह पाती थी, और पुत्रों की संतान अपनी माताओं के गोत्रों की मानी जाती थी। अस्तु, इस रक्तसम्बद्ध समुदाय का उस समय क्या होता है जब वह क़बीले के अन्दर, ऐसे ही अन्य समुदायों से पृथक् रूप में गठित होता है?

मौर्गन ने इरोक्वा जाति के, विशेषकर सेनेका क़बीले के गोत्रों को प्रारम्भिक गोत्रों का क्लासिकीय रूप माना है। इन लोगों में आठ गोत्र होते हैं जिनके नाम नीचे लिखे पशुओं के नामों पर रखे गये हैं: (१) भेड़िया,

(२) भालू, (३) कछुआ, (४) ऊदबिलाव, (५) हिरन, (६) कुनाल, (७) वगुला, (८) बाज़। प्रत्येक गोत्र में नीचे लिखी प्रथाएं प्रचलित हैं:

१. गोत्र अपना "साख़ेम" (अर्थात् शांति-काल का नेता) और अपना मुखिया (युद्ध-काल का नेता) चुनता है। साख़ेम को गोत्र में से ही चुनना पड़ता है और यह पदवी गोत्र में वंशगत होती है—इस अर्थ में कि उसका स्थान ख़ाली होते ही उसे तुरन्त भरना पड़ता है। युद्ध-काल का नेता गोत्र के बाहर से भी चुना जा सकता था और यह पद कुछ समय तक ख़ाली रह सकता था। एक साख़ेम का पुत्र कभी उसका स्थान नहीं ले सकता था, क्योंकि इरोक्वा जाति में मातृ-सत्ता थी, और इसलिए पुत्र एक भिन्न गोत्र का सदस्य होता था। परन्तु साख़ेम का भाई या उसका भांजा अक्सर उसके स्थान पर चुन लिया जाता था। चुनाव में सभी नारी व पुरुष दोनों ही भाग लेते थे, परन्तु यह ज़रूरी था कि इस प्रकार जो व्यक्ति चुना जाता था, उसे बाक़ी सातों गोत्र मंजूर करें। इसके बाद ही कहीं उसे बाक़ायदा साख़ेम के पद पर बैठाया जाता था—यह काम पूरे इरोक्वा महासंघ की आम परिषद् करती थी। इसका महत्त्व बाद में स्पष्ट हो जायेगा। गोत्र के भीतर साख़ेम का अधिकार पितातुल्य और केवल नैतिक प्रकार का होता था। उसके पास दमन के कोई साधन नहीं थे। साख़ेम होने के नाते वह सेनेका लोगों की क़बीला-परिषद् का भी सदस्य होता था, और साथ ही इरोक्वा जाति के महासंघ की आम परिषद् का भी। युद्ध-काल का नेता केवल सैनिक अभियान के समय आदेश दे सकता था।

२. गोत्र साख़ेम को और युद्धकालीन नेता को जब चाहे हटा सकता था। यह फ़ैसला भी पुरुष और स्त्रियां मिलकर करते थे। पद से हटाये जाने पर ये व्यक्ति गोत्र के बाक़ी सदस्यों की भांति साधारण योद्धा और साधारण व्यक्ति बन जाते थे। क़बीले की परिषद्, गोत्र की इच्छा के ख़िलाफ़ भी, साख़ेमों को उनके पदों से हटा सकती थी।

३. किसी सदस्य को गोत्र के भीतर विवाह करने की इजाज़त नहीं थी। यह गोत्र का बुनियादी नियम था। यह वह बंधन था जो गोत्र को एकसाथ बांधे रखता था। इस नकारात्मक रूप में, वास्तव में वह अत्यन्त सकारात्मक रक्त-सम्बन्ध प्रगट हुआ था जिसके कारण इस जन-समुदाय में एकत्रित व्यक्ति एक गोत्र के रूप में गठित थे। इस साधारण सत्य की खोज करके मौर्गन ने पहली बार गोत्र के असली स्वरूप को प्रगट किया था। तब तक गोत्र को

लोगों ने कितना कम समझा था, यह जांगल तथा वर्बर जातियों के इसके पहले के उन वर्णनों को पढ़ने पर मालूम हो जाता है, जिनमें विभिन्न समुदायों को, जो सभी गोत्रीय संगठन के अन्तर्गत थे, बिना सोचे-समझे क़बीला, कुटुम्ब और "थुम", आदि नामों से पुकारा गया था। कभी-कभी कहा जाता है कि ऐसे किसी समुदाय के अन्दर विवाह करना मना है। इस प्रकार वह घोर अव्यवस्था पैदा कर दी गयी थी जिसमें मि० मैक-लेनन नेपोलियन की भांति मैदान में आये और उन्होंने यह फ़तवा देकर व्यवस्था स्थापित की कि सभी क़बीले दो श्रेणियों में बंटे होते हैं। एक वे क़बीले होते हैं जिनके भीतर विवाह करना मना है (वहिर्विवाही), और दूसरे वे जिनके अन्दर विवाह करने की इजाज़त है (अन्तर्विवाही)। और इस तरह गड़बड़ी को और भी गड़बड़ करने के बाद मैक-लेनन साहब इस बात की गहरी खोजबीन में व्यस्त हो गये थे कि इन दो बेतुकी श्रेणियों में अधिक पुरानी कौनसी है—अन्तर्विवाही श्रेणी या वहिर्विवाही। रक्त-सम्बन्ध पर आधारित गोत्र का तथा फलत: उसके सदस्यों में विवाह के असम्भव होने का पता लगते ही यह सारी मूर्खता अपने आप बन्द हो गयी। स्पष्ट है कि इरोक्वा जाति विकास की जिस अवस्था में है, उस अवस्था में गोत्र के भीतर विवाह करने पर लगा हुआ प्रतिवंध पूरी सख़्ती के साथ लागू किया जाता है।

४. मृत व्यक्तियों की सम्पत्ति गोत्र के वाक़ी सदस्यों में बांट दी जाती थी क्योंकि हर हालत में सम्पत्ति को गोत्र के भीतर ही रहना था। चूंकि इरोक्वाओं का कोई भी सदस्य मरने पर नगण्य सम्पत्ति ही छोड़ जा सकता था, इसलिए वह गोत्र के भीतर उसके सबसे निकट के सम्वन्धियों में बांट दी जाती थी। जब कोई पुरुष मरता था तो उसकी सम्पत्ति उसके सगे भाई-वहनों और उसके मामा के बीच बांट दी जाती थी और जब कोई स्त्री मर जाती थी तो उसकी सम्पत्ति उसके बच्चों और उसकी सगी वहनों के बीच बांट दी जाती थी, पर उसके भाइयों को उसमें कोई हिस्सा नहीं मिलता था। ठीक यही कारण था कि पति-पत्नी के लिए एक दूसरे की सम्पत्ति उत्तराधिकार में पाना असम्भव था और वच्चे पिता की सम्पत्ति नहीं पा सकते थे।

५. गोत्र के सदस्यों का कर्त्तव्य था कि वे एक दूसरे की मदद और हिफ़ाज़त करें, और यदि कोई वाहर का आदमी गोत्र के किसी सदस्य को चोट पहुंचा गया हो, तो उसका बदला लेने में ख़ास तौर पर मदद करें। व्यक्ति अपनी सुरक्षा के लिए गोत्र की शक्ति पर निर्भर कर सकता था और

करता भी था। जो कोई गोत्र के किसी सदस्य को चोट पहुंचाता था, वह पूरे गोत्र पर चोट करता था। गोत्र के इस रक्त-सम्बन्ध से रक्त-प्रतिशोध के कर्त्तव्य की उत्पत्ति हुई, जिसे इरोक्वा लोग बिला शर्त मानते थे। गोत्र के किसी सदस्य को यदि बाहर का कोई आदमी मार डालता था, तो हत व्यक्ति का पूरा गोत्र ख़ून का बदला ख़ून से लेने के लिए कर्त्तव्यबद्ध होता था। पहले मध्यस्थता की कोशिश की जाती थी। मारनेवाले गोत्र की परिषद् बैठती थी और हत व्यक्ति के गोत्र की परिषद् के पास झगड़ा निपटाने के लिए विभिन्न प्रस्ताव भेजती थी। इसका तरीक़ा प्रायः यह होता था कि जो कुछ हो गया, उस पर दुख प्रकट किया जाता था और काफ़ी मूल्यवान् भेंट भेजी जाती थी। यदि भेंट स्वीकार कर ली गयी तो समझा जाता था कि झगड़ा निपट गया। नहीं, तो हत व्यक्ति का गोत्र अपने एक या एक से अधिक सदस्यों को बदला लेने के लिए नियुक्त करता था, और उनका कर्त्तव्य होता था कि वे क़ातिल का पीछा करें और उसे जान से मार डालें। यदि यह काम पूरा कर लिया जाता था तो क़ातिल के गोत्र को शिकायत करने का कोई अधिकार नहीं होता था; यह समझा जाता था कि हिसाब पूरा हो गया।

६. गोत्र के पास निश्चित नाम या नामों की निश्चित माला होती है, जिन्हें पूरे क़बीले के अन्दर केवल गोत्र विशेष ही इस्तेमाल कर सकता है। इस प्रकार, किसी व्यक्ति का नाम लेने पर यह भी ज्ञात हो जाता है कि वह किस गोत्र का सदस्य है। जो गोत्र के नाम का प्रयोग करता है, उसे स्वभावतः गोत्र के अधिकार भी प्राप्त होते हैं।

७. गोत्र अजनबियों को अपना सदस्य बना सकता है, और इस प्रकार उन्हें पूरे क़बीले में शामिल कर सकता है। जो युद्धबंदी जान से नहीं मारे जाते थे, वे एक गोत्र द्वारा अपनाये जाकर सेनेका क़बीले के सदस्य बन जाते थे और इस प्रकार वे गोत्र के और क़बीले के पूरे अधिकार प्राप्त कर लेते थे। अजनबियों को गोत्र के सदस्यों की व्यक्तिगत प्रार्थना पर सदस्य बनाया जाता था—पुरुष अजनबी को भाई या बहन और स्त्रियां अपनी सन्तान मान लेती थीं। सम्बन्ध के पक्का होने के लिए आवश्यक था कि गोत्र बाक़ायदा रस्मी तौर पर अजनबी को अपना सदस्य स्वीकार करे। जिन गोत्रों के सदस्यों की संख्या बहुत ज़्यादा घट जाती थी, वे अक्सर दूसरे गोत्रों में से, उनकी सहमति से, सामूहिक भर्ती करके फिर भरे-पूरे बन जाते थे। इरोक्वा जाति में बाहरी आदमियों को गोत्र के सदस्य के रूप में अंगीकार करने का अनुष्ठान

क़बीले की परिषद् की एक आम सभा में सम्पन्न किया जाता था। इससे व्यवहार में यह एक धार्मिक अनुष्ठान बन गया था।

८. इंडियन गोत्रों में विशेष धार्मिक अनुष्ठानों का अस्तित्व सिद्ध करना कठिन है; फिर भी इसमें शक नहीं कि इन लोगों के धार्मिक अनुष्ठान न्यूनाधिक गोत्रों से ही सम्बन्धित होते थे। इरोक्वा जाति के छः वार्षिक धार्मिक अनुष्ठानों में अलग-अलग गोत्रों के साख़ेमों और युद्धकालीन नेताओं की गिनती, उनके पदों के कारण, "धर्म पालकों" में होती थी और वे पुरोहितों का काम करते थे।

९. हर गोत्र का एक सामूहिक क़ब्रिस्तान होता है। न्यूयार्क राज्य के इरोक्वा जाति के गोरे लोगों से चारों ओर से घिर जाने के कारण उनका क़ब्रिस्तान अब नहीं मिलता, पर पहले वह था। दूसरे इंडियन क़बीलों में वह अब भी मिलता है। उदाहरण के लिए टस्कारोरास क़बीले में, जिसका कि इरोक्वा से घनिष्ठ सम्बन्ध है। वह यद्यपि ईसाई हो गया है, फिर भी उसके क़ब्रिस्तान में अभी तक हर गोत्र के लिए क़ब्रों की एक अलग पंक्ति है, यानी मां तो उसी पंक्ति में दफ़नायी जाती है जिसमें उसके बच्चे दफ़नाये जाते हैं, पर पिता को उस पंक्ति में स्थान नहीं मिलता। और इरोक्वा जाति में भी, गोत्र के सभी सदस्य अंतिम क्रिया के समय शोक प्रकट करते हैं, क़ब्र खोदते हैं, दफ़नाने के समय के भाषण देते हैं, इत्यादि।

१०. गोत्र की एक परिषद् होती है जो गोत्र के सभी बालिग़ सदस्यों — स्त्री और पुरुष दोनों — की जनसभा है। उसमें सभी सदस्यों की आवाज़ बराबर होती है। यह परिषद् साख़ेमों और युद्ध-काल के नेताओं को चुनती थी और उनको अपदस्थ करती थी और इसी प्रकार शेष "धर्म-पालकों" को भी चुनती और बर्ख़ास्त करती थी। गोत्र के किसी सदस्य के मारे जाने पर वह प्रायश्चित्त के रूप में भेंट लेने या रक्त-प्रतिशोध का निर्णय करती थी। वह अजनबियों को गोत्र का सदस्य बनाती थी। सारांश यह कि वह गोत्र की सार्वभौम सत्ता थी।

एक ठेठ इंडियन गोत्र के ये ही अधिकार थे।

> "इरोक्वाई गोत्र के सभी सदस्य व्यक्तिगत रूप से स्वतंत्र होते थे, और एक दूसरे की स्वतंत्रता की रक्षा करना उनका कर्त्तव्य समझा जाता था। उन्हें समान सुविधाएं प्राप्त थीं और उनके समान व्यक्तिगत अधिकार होते थे। साख़ेम या युद्ध-काल के नेता को कोई विशेष अधिकार नहीं

प्राप्त थे। ये लोग रक्त-सम्बन्ध के बंधन में जुड़े एक भ्रातृसंघ के समान थे। स्वतंत्रता, समता और बंधुत्व—ये गोत्र के मुख्य सिद्धान्त होते थे, यद्यपि किसी ने उनकी इस रूप में स्थापना नहीं की थी। गोत्र समाज-व्यवस्था की एक इकाई था, वह बुनियाद था जिस पर इंडियन समाज खड़ा था। आत्मसम्मान और स्वतंत्रता की वह भावना, जो सर्वत्र इंडियनों के चरित्र की विशेषता थी, इसी की उपज थी।"*

जिस समय इंडियनों का पता लगा, उस समय वे उत्तरी अमरीका में हर जगह मातृसत्तात्मक गोत्रों में संगठित थे। डैकोटा जैसे चन्द क़बीले ही ऐसे थे जिनमें गोत्र-व्यवस्था जर्जर हो गयी थी। ओजिब्वे और ओमाहा जैसे कुछ दूसरे क़बीले पितृ-सत्ता के अनुसार संगठित थे।

इंडियनों के बहुत-से ऐसे क़बीले थे जिन में से हर एक के पांच-पांच छः-छः से अधिक गोत्र थे। इन क़बीलों में, तीन-चार या उससे अधिक संख्या में गोत्र एक विशेष समूह में संयुक्त होते हैं। उसे मौर्गन ने—इंडियन नाम को हूबहू यूनानी भाषा में अनुवाद करके "फ़्रेटरी", अर्थात् बिरादरी कहा है। इस प्रकार सेनेका क़बीले में दो बिरादरियां हैं, पहली में एक से चार नम्बर तक के गोत्र शामिल हैं और दूसरी में पांच से आठ नम्बर तक के। अधिक निकट से खोज करने पर पता चलता है कि ये बिरादरियां, मुख्यतः शुरू के उन गोत्रों का प्रतिनिधित्व करती हैं जिनमें क़बीला सबसे पहले विभाजित हुआ था। क्योंकि जब गोत्रों के भीतर विवाह करने की मनाही कर दी गयी, तो हर क़बीले के लिए आवश्यक हो गया कि उसमें कम से कम दो गोत्र हों ताकि क़बीला अपना स्वतंत्र अस्तित्व क़ायम रख सके। जैसे-जैसे क़बीला बढ़ता गया, हर एक गोत्र फिर दो या दो से अधिक गोत्रों में विभाजित होता गया। और अब इन में से प्रत्येक एक अलग गोत्र हो जाता है, और पुराना गोत्र, जिसमें सभी संतति-गोत्र शामिल होते हैं, बिरादरी के रूप में जीवित रहता है। सेनेका क़बीले में, और इंडियनों के दूसरे अधिकतर क़बीलों में एक बिरादरी में शामिल गोत्र आपस में सगे भ्रातृ-गोत्र होते हैं, और दूसरी बिरादरी के गोत्र उनके रिश्ते के भ्रातृ-गोत्र समझे जाते हैं। हम ऊपर देख चुके हैं कि रक्तसम्बद्धता की अमरीकी प्रणाली में इन नामों का बहुत वास्तविक और भावपूर्ण अर्थ होता है। शुरू में तो सेनेका क़बीले का कोई व्यक्ति अपनी

*'मार्क्स और एंगेल्स का अभिलेख'।—सं०

बिरादरी के भीतर विवाह नहीं कर सकता था, पर अब बहुत अरसे से यह प्रतिबंध नहीं रह गया है और वह केवल गोत्र तक ही सीमित है। सेनेका क़बीले के लोगों में परम्परा थी कि शुरू में "भालू" और "हिरन" नाम के दो गोत्र थे, जिनसे दूसरे गोत्र निकले थे। एक बार जब इस नयी प्रथा ने जड़ पकड़ ली तो आवश्यकता के अनुसार उसमें परिवर्तन कर दिया गया। संतुलन बनाये रखने के लिए कभी-कभी तो, दूसरी बिरादरियों के पूरे के पूरे गोत्र उन बिरादरियों में शामिल किये जाते थे जिनके गोत्र नष्ट हो गये थे। यही कारण है कि विभिन्न क़बीलों की बिरादरियों में हम एक ही नाम के अनेक गोत्रों को विभिन्न समूहों में संगठित पाते हैं।

इरोक्वा जाति में बिरादरी के काम कुछ हद तक सामाजिक और कुछ हद तक धार्मिक हैं। (१) गेंद का खेल खेलते समय एक बिरादरी एक तरफ़ हो जाती है, दूसरी बिरादरी दूसरी तरफ़। हर एक अपने सबसे अच्छे खिलाड़ियों को मैदान में उतारती है। बिरादरी के बाक़ी सदस्य दर्शक होते हैं। ये दर्शक, जो अपनी अपनी बिरादरी के अनुसार समूहबद्ध होते हैं, अपने अपने पक्ष की जीत के बारे में एक दूसरे से शर्त लगाते हैं। (२) क़बीले की परिषद् में प्रत्येक बिरादरी के साख़ेम और युद्ध-काल के नेता एकसाथ बैठते हैं। दो बिरादरियों के लोग एक दूसरे के आमने-सामने बैठते हैं, और प्रत्येक वक्ता हर एक बिरादरी के प्रतिनिधियों को दूसरी के प्रतिनिधियों से अलग मानकर सम्बोधित करता है। (३) यदि क़बीले के अंदर कोई क़त्ल हो गया है, और मारनेवाला तथा मृत व्यक्ति एक बिरादरी के नहीं हैं, तो जिस गोत्र का सदस्य मारा गया है, वह अक्सर अपने भ्रातृ-गोत्रों से अपील करता है। ये बिरादरी की परिषद् बुलाते हैं और फिर मिलकर दूसरी बिरादरी से सामूहिक रूप में बातचीत शुरू करते हैं और उससे कहते हैं कि मामले को निपटाने के लिए वह भी अपनी परिषद् बुलाये। यहां भी बिरादरी अपने शुरू के, यानी मूल गोत्र के, रूप में सामने आती है, और चूंकि वह अपनी सन्तान से, यानी अलग-अलग गोत्रों से अधिक शक्तिशाली होती है, इसलिए ऐसे मामलों में उसके सफल होने की अधिक सम्भावना होती है। (४) किसी बिरादरी के महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों के मर जाने पर, दूसरी बिरादरी अंतिम क्रिया और दफ़नाने आदि की व्यवस्था करती है और मृत व्यक्ति की बिरादरी के लोग मातम मनानेवालों के रूप में साथ जाते हैं। यदि कोई साख़ेम मर जाता है तो उसकी बिरादरी नहीं, दूसरी बिरादरी इरोक्वा जाति की महापरिषद् को सूचना देती

है कि अमुक पद ख़ाली हो गया है। (५) साख़ेम के चुनाव के समय बिरादरी की परिषद् फिर सामने आती है। भ्रातृ-गोत्र द्वारा चुनाव की मंज़ूरी मानी हुई बात समझी जाती है पर हो सकता है कि दूसरी बिरादरी के गोत्र विरोध करें। ऐसी सूरत में इस बिरादरी की परिषद् बैठती है और यदि वह भी चुनाव को अस्वीकार करती है, तो चुनाव रद्द घोषित कर दिया जाता है। (६) पहले इरोक्वा लोगों में कुछ विशेष गुप्त धार्मिक अनुष्ठान हुआ करते थे जिन्हें गोरे लोग medicine lodges कहते थे। सेनेका क़बीले में ये अनुष्ठान दो धार्मिक मंडलियां किया करती थीं; प्रत्येक बिरादरी के लिए एक अलग मंडली होती थी, और नये सदस्यों को उन में भर्त्ती करने के लिए उनका विधिपूर्वक संस्कार किया जाता था। (७) यदि, जैसा कि लगभग निश्चित है, यूरोपीय विजय के समय[130] त्लासकला के चारों भागों में जो चार वंश (रक्तसम्बद्ध समुदाय) रहते थे, वे चार बिरादरियां थे, तो साबित हो जाता है कि यूनानियों की तरह और जर्मनों के बीच रक्त-सम्बन्धियों के समान समुदायों की भांति, यहां भी बिरादरियां सैनिक टुकड़ियों के रूप में भी काम करती थीं। ये चारों वंश जब लड़ने जाते थे, तो हर एक अलग सेना के रूप में चलता था और उसकी अपनी अलग वर्दी, अलग झंडा और अलग नेता होता था।

जिस प्रकार कई गोत्रों से मिलकर एक बिरादरी बनती है, उसी प्रकार ठेठ रूप में, कई बिरादरियों से मिलकर एक क़बीला बनता है। कई क़बीलों में, जो बहुत कमज़ोर हो जाते हैं, बीच की कड़ी – बिरादरी – नहीं होती। अमरीका के इंडियन क़बीलों की मुख्य विशेषताएं क्या हैं?

१. हर क़बीले का अपना इलाक़ा और अपना नाम होता था। इस इलाक़े के अलावा, जहां बस्ती होती थी, हर क़बीले के पास काफ़ी क्षेत्र शिकार करने और मछली मारने के लिए होता था। इसके भी आगे बहुत लम्बी-चौड़ी तटस्थ भूमि होती थी जो दूसरे क़बीले के इलाक़े तक चली जाती थी। यदि दो क़बीलों की भाषाएं मिलती-जुलती होती थीं, तो उनके बीच की यह तटस्थ भूमि विस्तार में अपेक्षाकृत कम होती थी। जहां दो क़बीलों की भाषाओं में कोई सम्बन्ध नहीं होता था, वहां इस भूमि का विस्तार अपेक्षाकृत अधिक होता था। ऐसी तटस्थ भूमि के उदाहरण हैं: जर्मनों का सरहदी जंगल; वह वीरान इलाक़ा जो सीज़र के सुएवी लोगों ने अपने क्षेत्र के चारों ओर बना लिया था; डेनों तथा जर्मनों के बीच का isarnholt (डेन भाषा में jarnved, limes Danicus); जर्मन तथा स्लाव लोगों के बीच का सैक्सन जंगल और branibor

(स्लाव भाषा में "रक्षा-जंगल") जिससे ब्रांडनबुर्ग नाम निकला है। इन अधूरी और अस्पष्ट सीमाओं से घिरा हुआ यह क्षेत्र क़बीले का सामूहिक क्षेत्र होता था जिसे पड़ोस के क़बीले मानते थे। यदि कोई उसमें घुसने की कोशिश करता था तो क़बीला इस इलाक़े की रक्षा करता था। सीमाओं की अस्पष्टता से प्रायः केवल उसी समय व्यावहारिक कठिनाई पैदा होती थी जब आबादी बहुत बढ़ जाती थी। क़बीलों के नाम, मालूम पड़ता है, इतना सोच-समझकर नहीं चुने गये हैं जितना कि संयोग से पड़ गये हैं। समय बीतने के साथ-साथ अक्सर यह होता था कि कोई क़बीला ख़ुद अपने लिए जिस नाम का प्रयोग करता था, पड़ोस के क़बीले उससे भिन्न कोई नाम उसे दे देते थे। उदाहरण के लिए, जर्मन लोगों (die Deutschen) का इतिहास में पहला नाम, जिसकी व्यंजना अत्यन्त व्यापक है, अर्थात् "जर्मन" (Germanen) कैल्ट लोगों का दिया हुआ है।

२. हर क़बीले की अपनी एक ख़ास बोली होती है। बल्कि सच तो यह है कि क़बीला और बोली बड़ी हद तक सहविस्तारी होते हैं। अमरीका में उपविभाजन के द्वारा नये क़बीलों और बोलियों का बनना अभी हाल तक जारी था, और अब भी वह एकदम बंद नहीं हो गया होगा। जब दो कमज़ोर क़बीले मिलकर एक हो जाते हैं, तब अपवादस्वरूप कभी-कभी यह देखने को भी मिलता है कि एक क़बीले में दो बहुत घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित बोलियां बोली जाती हैं। अमरीकी क़बीलों में औसतन् २,००० से कम लोग होते हैं। परन्तु चिरोकियों की संख्या लगभग २६,००० है। अमरीका के एक बोली बोलनेवाले इंडियनों में उनकी संख्या सबसे अधिक है।

३. क़बीलों को गोत्रों द्वारा चुने गये साख़ेमों और युद्ध-काल के नेताओं का अभिषेक करने का अधिकार होता है।

४. उन्हें गोत्र की इच्छा के विरुद्ध भी पद से हटा देने का भी अधिकार क़बीले को प्राप्त है। साख़ेम और युद्ध-काल के नेता चूंकि क़बीले की परिषद् के सदस्य होते हैं, इसलिए उनके बारे में क़बीले के इन अधिकारों के लिए किसी स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है। जहां कुछ क़बीलों का महासंघ क़ायम हो जाता है और इन क़बीलों के प्रतिनिधि एक संघीय परिषद् में जमा होते हैं, वहां उपरोक्त अधिकार परिषद् को सौंप दिये जाते हैं।

५. हर क़बीले की समान धार्मिक धारणायें (पौराणिक कथाएं) और पूजा-पाठ की रीति होती है।

"बर्बर लोगों के ढंग पर अमरीकी इंडियन भी धार्मिक लोग थे।"[131]

उनकी पौराणिक कथाओं की अभी तक कोई भी समीक्षात्मक खोज नहीं हुई है। उन्होंने अपने धार्मिक विचारों को व्यक्ति-रूप—तरह-तरह के भूतप्रेत या देवी-देवताओं का रूप—दिया था, परन्तु बर्बर युग की निम्न अवस्था में, जिसमें वे रह रहे थे, उन्होंने अभी उन्हें प्लैस्टिक रूप, मूर्त्तियों का रूप नहीं दिया था। यह प्रकृति और महाभूतों की पूजा थी, जो धीरे-धीरे बहुदेववाद का रूप धारण कर रही थी। अलग-अलग क़बीलों के अपने नियमित त्योहार होते थे जिनमें विशेष ढंग से, ख़ासकर नृत्य और खेलों के द्वारा, पूजा की जाती थी। विशेष रूप से नृत्य सभी धार्मिक अनुष्ठानों के आवश्यक अंग होते थे; हर क़बीला अपने नृत्य अलग करता था।

६. हर क़बीले की अपनी क़बायली परिषद् होती थी जो क़बीले के आम मामलों का निर्णय करती थी। इस परिषद् में अलग-अलग गोत्रों के सभी साख़ेम और युद्ध-काल के नेता होते थे। ये गोत्रों के सच्चे प्रतिनिधि होते थे, क्योंकि इन्हें कभी भी अपने पद से अलग किया जा सकता था। परिषद् की बैठक खुले रूप से होती थी। बीच में परिषद् बैठती थी, उसके चारों ओर क़बीले के बाक़ी सदस्य बैठते थे और उन्हें बहस में भाग लेने और अपनी राय देने का हक़ होता था। फ़ैसला परिषद् करती थी। आम तौर पर बैठक के समय मौजूद हर आदमी को परिषद् के सामने अपनी बात कहने का अधिकार होता था। यहां तक कि स्त्रियां भी किसी को अपना प्रवक्ता बनाकर उसके ज़रिए अपनी बात परिषद् के सामने रख सकती थीं। इरोक्वा जाति में परिषद् को अपना अंतिम फ़ैसला एकमत से करना पड़ता था। जर्मन लोगों के बहुत-से मार्क-समुदायों के फ़ैसले भी इसी प्रकार होते थे। दूसरे क़बीलों के साथ सम्बन्ध रखने की ज़िम्मेदारी क़बायली परिषद् की ही होती थी। वह दूसरे क़बीलों के दूतों का स्वागत करती थी और उनके पास अपने दूत भेजती थी। वह युद्ध की घोषणा करती थी और शांति-संधि करती थी। युद्ध छिड़ जाने पर आम तौर पर वे ही लोग लड़ने के लिए भेजे जाते थे जो स्वेच्छा से इसके लिए तैयार होते थे। सिद्धान्ततः तो एक क़बीले का उन तमाम क़बीलों से युद्ध का सम्बन्ध होता था जिनसे उसकी बाक़ायदा शांति-संधि नहीं हो गयी हो। ऐसे शत्रुओं के ख़िलाफ़ प्रायः कुछ विशिष्ट योद्धा सैनिक अभियान संगठित करते थे। वे युद्ध-नृत्य करते थे; जो कोई भी नृत्य में शामिल हो जाता था, उसके बारे में समझा जाता था कि उसने अभियान में भाग लेने के अपने निश्चय की घोषणा कर दी है। तब तुरन्त एक दस्ता तैयार करके रवाना कर दिया जाता

था। जब क़बायली इलाक़े पर कोई हमला होता था तो उस वक़्त भी इसी प्रकार मुख्यतः स्वयंसेवक उसकी रक्षा करते थे। ऐसे दस्तों के रवाना होने और लौटने के समय सार्वजनिक उत्सव किया जाता था। ऐसे अभियानों के लिए क़बायली परिषद् से इजाज़त लेना ज़रूरी नहीं होता था। न कोई इजाज़त लेता था, न परिषद् इजाज़त देती थी। ये हूबहू जर्मन ख़िदमतगार सैनिकों के उन निजी युद्ध-अभियानों के समान होते थे जिनका तासितुस ने वर्णन किया है। अन्तर केवल यह था कि जर्मनों में ख़िदमतगार सैनिकों की जमात कुछ अधिक स्थायी रूप धारण कर चुकी थी; वह शांति-काल में संगठित उस केन्द्र-बिन्दु का काम करती थी जिसके चारों ओर युद्ध-काल में और बहुत-से स्वयंसेवक आकर संगठित हो जाते थे। इन फ़ौजी दस्तों में लोगों की संख्या कभी बहुत ज्यादा नहीं होती थी। इंडियनों के अत्यंत महत्त्वपूर्ण अभियानों में भी, उनमें भी, जिनमें काफ़ी बड़ी दूरियां तय की जाती थीं, सैनिकों की संख्या नगण्य ही होती थी। किसी महत्त्वपूर्ण मुहिम के लिए जब ऐसे कई दल इकट्ठा होते थे, तो हर दल सिर्फ़ अपने नेता का हुक्म मानता था। युद्ध योजना की एकसूत्रता कमोबेश इन नेताओं की एक परिषद् द्वारा सुनिश्चित होती थी। चौथी शताब्दी में ऊपरी राइन क्षेत्र के निवासी एलामान्नी लोग भी इसी तरह अपने युद्धों का संचालन करते थे, जैसा कि एम्मियानस मार्सेलिनस के वर्णन से स्पष्ट है।

७. कुछ क़बीलों में एक प्रधान मुखिया भी होता है, परन्तु उसे बहुत कम अधिकार प्राप्त होते हैं। वह साख़ेमों में से ही एक होता है। जब कोई ऐसी समस्या उठ खड़ी होती है जिसका तुरन्त कोई फ़ैसला करना ज़रूरी होता है, तब आरज़ी तौर से प्रधान मुखिया फ़ैसला कर देता है, जो तब तक लागू रहता है जब तक कि क़बायली परिषद् बैठकर कोई अन्तिम फ़ैसला नहीं कर देती। यह कार्यकारी अधिकारी नियुक्त करने की ढीली-ढाली, और जैसा कि बाद में मालूम हुआ, आम तौर पर निष्फल और अधूरी कोशिश थी। वास्तव में, जैसा कि पाठक आगे देखेंगे, हमेशा नहीं, तो प्रायः हर मामले में, क़बीले का सर्वोच्च सेनानायक ही कार्यकारी अधिकारी बन बैठा।

अधिकतर अमरीकी इंडियन कभी क़बायली संगठन की अवस्था से आगे नहीं बढ़ पाये। थोड़े-थोड़े लोगों के अनेक क़बीले होते थे, जो एक दूसरे से कटे हुए रहते थे, क्योंकि उनके बीच बड़े-बड़े सीमान्त प्रदेश होते थे। उनमें सदा लड़ाइयां चलती रहती थीं, जिनसे वे कमज़ोर बने रहते थे। परिणाम यह

था कि थोड़े-से लोग एक बहुत विशाल इलाक़े में बिखरे हुए थे। कहीं कोई अस्थायी संकट आ जाता था तो उसका सामना करने के लिए रक्त-सम्बन्धी क़बीलों में सहयोग हो जाता था, पर संकट के दूर होते ही यह मोर्चा फिर बिखर जाता था। परन्तु कुछ ख़ास इलाक़ों में ऐसे क़बीलों ने, जो शुरू में रक्त-सम्बन्धी थे पर बाद में अलग हो गये थे, स्थायी संघ बनाकर अपनी एकता फिर से क़ायम कर ली। इस प्रकार इन क़बीलों ने राष्ट्र गठन की ओर पहला क़दम उठाया। अमरीका में ऐसे संघ का सबसे विकसित रूप हमें इरोक्वा लोगों में मिलता है। उनका आदिदेश मिसीसिपी नदी के पश्चिम में था। वहां वे शायद महान डैकोटा परिवार की एक शाखा के रूप में रहते थे। अपने आदिदेश को छोड़ने के बाद और बहुत दिनों तक इधर-उधर भटकने के बाद ये लोग उस इलाक़े में बस गये जो आजकल न्यूयार्क राज्य कहलाता है। ये लोग पांच क़बीलों में बंटे हुए थे: सेनेका, कायूगा, ओनोनडगा, ओनीडा और मोहौक। इन लोगों का भोजन था: मछली, शिकार में मारे गये जानवरों का मांस और पिछड़े ढंग की बाग़बानी की उपज। ये लोग प्रायः बाड़ों से घिरे गांवों में रहते थे। उनकी संख्या कभी २०,००० से ज़्यादा नहीं हुई। उनके कई मिले-जुले गोत्र थे जो पांचों क़बीलों में पाये जाते थे। ये एक ही भाषा की कई बोलियां बोलते थे जिनका आपस में निकट का सम्बन्ध होता था। वे साथ लगे हुए इलाक़े में रहते थे जो पांच क़बीलों के बीच बंटा हुआ था। चूंकि इस इलाक़े पर उन्होंने हाल में ही क़ब्ज़ा किया था, इसलिए जिन लोगों को उन्होंने वहां से हटाया था, उनके मुक़ाबले में इन क़बीलों का आपस में हस्ब मामूल सहयोग स्वाभाविक था। अधिक से अधिक पन्द्रहवीं सदी के शुरू तक, इस सहयोग ने बाक़ायदा एक "स्थायी लीग", एक महासंघ का रूप धारण कर लिया था। इस महासंघ ने अपनी नव-प्राप्त शक्ति को महसूस करते ही तुरंत आक्रमणकारी रुख़ अपना लिया। अपनी शक्ति के शिखर पर,—अर्थात् १६७५ के लगभग तक—उसने आसपास के काफ़ी बड़े इलाक़ों को जीत लिया था, और वहां के निवासियों को या तो भगा दिया था, या उन्हें ख़िराज देने पर मजबूर कर दिया था। अमरीका के आदिवासियों में, जो वर्बर युग की निम्न अवस्था से नहीं निकल पाये थे (यानी मैक्सिको, न्यू मैक्सिको और पीरू के आदिवासियों को छोड़कर अमरीका के बाक़ी सभी आदिवासियों में), सामाजिक संगठन का सबसे उन्नत स्वरूप इरोक्वा महासंघ के रूप में मिलता था। इस महासंघ की बुनियादी विशेषताएं ये थीं:

१. पूर्ण समानता और सभी अन्दरूनी क़बायली मामलों में पूर्ण स्वाधीनता के आधार पर पांच रक्तसम्बद्ध क़बीलों का सदा के लिए संश्रय। यह रक्त-सम्बन्ध ही महासंघ का असली आधार था। पांच क़बीलों में से तीन पिता-क़बीले कहलाते थे और एक दूसरे के भाई समझे जाते थे; बाक़ी दो पुत्र-क़बीले कहलाते थे तथा इसी प्रकार वे भी आपस में भाई समझे जाते थे। सबसे पुराने तीन गोत्रों के लोग अभी भी पांचों क़बीलों में पाये जाते थे। दूसरे तीन गोत्रों के सदस्य केवल तीन क़बीलों में पाये जाते थे। इन गोत्रों में से प्रत्येक के सदस्य पांचों क़बीलों में भाई-भाई समझे जाते थे। हर क़बीले में केवल बोली का थोड़ा भेद पाया जाता था और उनकी एक सी भाषा इस बात की सूचक और सबूत थी कि पांचों क़बीले एक ही वंश के हैं।

२. महासंघ के अंग के रूप में एक संघ-परिषद् होती थी जिसके सदस्य पचास साख़ेम थे। इन पचासों का पद और प्रतिष्ठा समान थी। महासंघ से सम्बन्धित सभी मामलों में अन्तिम फ़ैसला यह परिषद् करती थी।

३. जिस समय महासंघ बना, उस समय ये पचास साख़ेम नये पदाधिकारियों के रूप में,—इन पदों की महासंघ के उद्देश्यों को ध्यान में रखकर सृष्टि की गयी थी—विभिन्न क़बीलों और गोत्रों में बांट दिये गये थे। जब किसी पदाधिकारी का स्थान ख़ाली हो जाता था, तो सम्बन्धित गोत्र फिर से उसके लिए चुनाव कर लेता था; गोत्र उसे किसी भी समय पद से हटा सकता था। परन्तु उसका अभिषेक करने का अधिकार संघ-परिषद् के हाथ में रहता था।

४. ये संघीय साख़ेम अपने-अपने क़बीलों में भी साख़ेम थे, और उनमें से हर एक को अपने क़बीले की परिषद् में भाग लेने और वोट देने का अधिकार था।

५. संघ-परिषद् के लिए आवश्यक था कि वह सभी फ़ैसले सर्वसम्मति से करे।

६. वोट क़बीलेवार ली जाती थी, यानी हर क़बीले को, और संघ-परिषद् के हर क़बीले के सदस्य को एकमत होना पड़ता था, तब कहीं जाकर ऐसा फ़ैसला होता था जिसको मानना सब के लिए ज़रूरी होता था।

७. पांचों क़बीलों की परिषदों में से कोई भी संघ-परिषद् की बैठक बुलवा सकती थी, परन्तु संघ-परिषद् को स्वयं अपनी बैठक बुलाने का कोई अधिकार न था।

८. संघ-परिषद् की बैठक जनता की आम सभा के समक्ष होती थी। प्रत्येक इरोक्वा को बोलने का अधिकार था। फ़ैसला सिर्फ़ परिषद् करती थी।

९. महासंघ का कोई अधिकृत अध्यक्ष, कोई प्रमुख कार्याधिकारी नहीं होता था।

१०. परन्तु उसके दो सर्वोच्च युद्ध-काल के नेता अवश्य होते थे, जिनकी समान शक्ति और समान अधिकार होते थे (स्पार्टावासियों के दो "राजा" और रोम में दो कौंसिल होते थे)।

यही वह पूरा समाज-विधान था जिसके मातहत रहते हुए इरोक्वा लोगों को चार सौ साल से अधिक हो गये थे और आज भी वे उसी के मातहत रहते हैं। मौर्गन ने इस समाज-विधान का जो वर्णन किया है, उसे मैंने यहां काफ़ी विस्तार के साथ दिया है, क्योंकि हमें उससे एक ऐसे समाज-संगठन का अध्ययन करने का अवसर मिलता है, जिसमें अभी तक राज्य का अस्तित्व न था। राज्य के लिए सम्बन्धित तमाम लोगों से अलग एक विशेष सार्वजनिक प्राधिकार पूर्वापेक्षित है। इसलिए मारेर ने तब बड़ी सही समझ का परिचय दिया था, जब उन्होंने जर्मनों के मार्क-विधान को बुनियादी तौर पर एक शुद्ध सामाजिक संस्था माना था और कहा था कि राज्य से इसमें बुनियादी भेद है, गोकि आगे चलकर यही मोटे तौर पर उसकी बुनियाद बना। अतएव अपनी सभी रचनाओं में मारेर ने इस बात की खोज की है कि मार्कों, गांवों, जागीरों और क़सबों के पुराने विधानों में से, और उनके साथ-साथ, धीरे-धीरे कैसे सार्वजनिक प्राधिकार का विकास हुआ है। उत्तरी अमरीकी इंडियनों से हमें पता चलता है कि एक क़बीला, जो शुरू में संयुक्त था, धीरे-धीरे किस तरह एक विशाल महाद्वीप में फैल गया; किस प्रकार क़बीलों के विभाजन के परिणामस्वरूप जातियां, क़बीलों के पूरे समूह बन गये; किस प्रकार भाषाएं इतनी बदल गयीं कि न सिर्फ़ एक भाषा को बोलनेवाला दूसरी भाषा को नहीं समझता था, बल्कि उनकी प्राचीन एकता का प्रत्येक चिह्न ग़ायब हो गया; किस प्रकार इसके साथ-साथ क़बीलों के गोत्र भी कई भागों में बंट गये; किस प्रकार पुराने मातृ-गोत्र बिरादरियों के रूप में क़ायम रहे और किस प्रकार इन सबसे प्राचीन गोत्रों के नाम बहुत दिनों से अलग-अलग और बड़ी दूरी पर रहनेवाले क़बीलों में अब भी पाये जाते हैं – मिसाल के लिए "भालू" और "भेड़िया" नाम के गोत्र अब भी अमरीकी आदिवासियों के अधिकतर क़बीलों में मिलते हैं। ऊपर हमने जिस समाज-विधान का वर्णन

किया है, वह ग्राम तौर पर इन सभी क़बीलों पर लागू होता है। ग्रन्तर केवल इतना है कि उन में से बहुत-से क़बीले सम्बन्धी क़बीलों के महासंघ बनाने की ग्रवस्था तक नहीं पहुंच सके।

परन्तु, साथ ही हमने यह भी देखा कि जहां एक बार गोत्र को समाज की इकाई मान लिया गया, वहां उस इकाई से गोत्रों, बिरादरियों ग्रौर क़बीलों की पूरी व्यवस्था मानो ग्रपने ग्राप ग्रौर लाज़िमी तौर पर विकसित हो जाती है। यह विकास लाज़िमी होता है, क्योंकि यही स्वाभाविक विकास है। ये तीनों समूह रक्त-सम्बन्ध के विभिन्न स्तरों का प्रतिनिधित्व करते हैं; उनमें से हर एक ग्रपने में पूर्ण होता है, ग्रौर स्वयं ग्रपनी व्यवस्था ग्रौर प्रबंध करता है, परन्तु साथ ही ग्रन्य सब संगठनों का ग्रनुपूरक भी होता है। इनके हाथों में जो मामले होते हैं, उन में बर्बर युग की निम्न ग्रवस्था के लोगों के सभी सार्वजनिक मामले ग्रा जाते हैं। इसलिए, जहां कहीं भी किसी जाति की सामाजिक इकाई के रूप में गोत्र दिखायी पड़े, वहां हम क़बीले के उपरोक्त ढंग का संगठन पाने की भी ग्राशा कर सकते हैं। ग्रौर जहां कहीं काफ़ी मूल सामग्री मौजूद है, जैसा कि मिसाल के लिए यूनानियों ग्रौर रोमन लोगों के विषय में मौजूद है, वहां हम ऐसा ही संगठन पायेंगे। यही नहीं, जहां कहीं सामग्री कम पड़ जाती है, वहां हम यह विश्वास रख सकते हैं कि ग्रमरीकी समाज-विधान से तुलना करने पर हम ग्रपनी बड़ी से बड़ी कठिनाइयों को हल कर सकेंगे ग्रौर बड़े से बड़े सन्देहों ग्रौर उलझनों को दूर कर सकेंगे।

ग्रौर शिशुवत सीधा-सादा यह गोत्र-संघटन सचमुच एक विलक्षण चीज़ है! न फ़ौज है, न जेन्दार्म ग्रौर न पुलिस; न सामन्त हैं ग्रौर न राजा, न गवर्नर हैं ग्रौर न न्यायाधीश; न ग्रदालतें हैं ग्रौर न जेलख़ाने, ग्रौर तब भी सब काम बड़े मजे से चलता रहता है। कोई झगड़ा उठ खड़ा होता है तो उससे सम्बन्धित सभी लोग – गोत्र या क़बीले या कई ग्रलग ग्रलग गोत्रों के लोग – मिलकर उसे निपटा देते हैं। रक्त-प्रतिशोध भी, केवल उस समय लिया जाता है जब ग्रौर किसी तरह झगड़ा नहीं निपटता, इसलिए उसकी नौबत बहुत कम ग्रा पाती है। हमारा मृत्यु-दंड इसी चीज़ का सभ्य रूप है – जिसमें सभ्यता की ग्रच्छाइयां भी हैं ग्रौर बुराइयां भी। उस समय लोगों को ग्राज से कहीं ग्रधिक मामलों को मिलकर तय करना पड़ता था। कई-कई परिवार एकसाथ मिलकर ग्रौर सामुदायिक ढंग से घर चलाते थे, ज़मीन पूरे क़बीले की सम्पत्ति होती थी, ग्रलग-ग्रलग घरों को केवल छोटे-छोटे बागीचे ग्रस्थायी रूप से मिलते

थे। बहुत सारे काम लोग मिलकर करते थे, फिर भी आजकल के जैसे लम्बे-चौड़े और जटिल प्रशासन-यंत्र की रत्ती बराबर आवश्यकता नहीं होती थी। जिनका जिस मामले से सम्बन्ध होता था, वे ही उसका फ़ैसला कर देते थे और अधिकतर मामले तो सदियों पुराने रीति-रिवाजों के अनुसार अपने आप निपट जाते थे। किसी का ग़रीब या ज़रूरतमन्द होना असम्भव था—सामुदायिक कुटुम्ब और गोत्र को भली-भांति मालूम था कि बूढ़ों, बीमार लोगों और युद्ध में अपंग हो गये व्यक्तियों के प्रति उनका क्या कर्त्तव्य है। सब स्वतंत्र और समान थे—स्त्रियां भी। अभी समाज में न दासों के लिए स्थान था, न ही आम तौर पर, दूसरे क़बीलों को अपने अधीन रखने की गुंजाइश थी। जब इरोक्वा जाति ने १६५१ के लगभग, इरी लोगों को और "तटस्थ जातियों"[132] को जीता, तो उन्होंने उन्हें अपने महासंघ में समान सदस्य की हैसियत से शामिल हो जाने के लिए आमंत्रित किया। जब पराजित क़बीलों ने इस प्रस्ताव को मानने से इनकार किया, सिर्फ़ तभी उन्हें अपने इलाक़ों से खदेड़ दिया गया। और यह समाज कैसे नर-नारी पैदा करता था, यह इस बात से प्रगट होता है कि जो गोरे लोग इन इंडियनों के सम्पर्क में थे, जो अभी भ्रष्ट नहीं हुए थे, उन सभी ने इन बर्बर लोगों की आत्म-गरिमा, सीधे और सरल स्वभाव, चरित्र-बल और वीरता की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

इस वीरता की अनेक मिसालें अभी हाल में हमने अफ़्रीका में देखी हैं। कुछ साल पहले ज़ुलू काफ़िरों ने और दो-एक महीने पहले नुबियनों ने—इन दोनों क़बीलों में गोत्र-संगठन अभी लुप्त नहीं हुआ है—वह काम करके दिखाया जो कोई यूरोपीय सेना नहीं कर सकती थी।[133] उनके पास हथियारों के नाम पर केवल बल्लम और भाले थे। तोप-बन्दूक़ या तमंचे को वे जानते तक न थे। दूसरी ओर से ब्रीचलोडर बन्दूक़ें दनादन गोलियां बरसा रही थीं। पर ये बहादुर बराबर बढ़ते गये, यहां तक कि वे अंग्रेज़ पैदल सेना की संगीनों की नोकों पर जा पहुंचे। और उस अंग्रेज़ सेना को, जो व्यूह बनाकर लड़ने में दुनिया में अपना सानी नहीं रखती थी, उन्होंने अस्त-व्यस्त कर दिया और कई बार तो पीछे हटने पर मजबूर किया, बावजूद इस बात के कि दुश्मन की तुलना में उनके पास मामूली हथियार भी नहीं थे, न उनके यहां सैनिक सेवा नाम की कोई चीज़ कभी रही थी, और न ही उन्होंने कभी फ़ौजी ट्रेनिंग ली थी। उनकी क्षमता और सहनशीलता अंग्रेज़ों की इस शिकायत से प्रगट होती है कि काफ़िर घोड़े से भी ज़्यादा तेज़ चल सकता है और चौबीस घंटे में इससे

ज़्यादा फ़ासला तय कर सकता है। जैसा कि एक अंग्रेज़ चित्रकार ने कहा है, इन लोगों की छोटी से छोटी मांस-पेशियां इस तरह तनी रहती हैं मानो इस्पात की ऐंठी हुई डोरियां हों।

वर्ग-भेदों के पैदा होने से पहले ऐसी थी मानवजाति और मानव समाज। और यदि हम उनकी हालत की आज के अधिकतर सभ्य लोगों की हालत से तुलना करें, तो हम पायेंगे कि वर्तमान सर्वहारा तथा छोटे किसान और प्राचीन काल के किसी गोत्र के स्वतंत्र सदस्य के बीच एक बहुत चौड़ी और गहरी खाई है।

यह तसवीर का एक पहलू है। परन्तु इसको देखने के साथ-साथ हमें यह न भूलना चाहिए कि इस संगठन का मिट जाना अवश्यम्भावी था। उसने कभी क़बीले से आगे विकास नहीं किया। क़बीलों का महासंघ बनने का मतलब, जैसा हम आगे चलकर देखेंगे और जैसा दूसरों को जीतने और अपने अधीन बनाने के इरोक्वा जाति के प्रयत्नों से भी प्रकट होता है, यह था कि इस संगठन का पतन आरम्भ हो गया। क़बीले के बाहर जो कुछ था, वह क़ानून के बाहर था। जहां बाक़ायदा शांति-संधि नहीं हो गयी थी, वहां क़बीलों के बीच जंग चलती रहती थी। और यह जंग उस बेरहमी के साथ चलायी जाती थी जो मनुष्य को दूसरे सब पशुओं से अलग करती है, और जो बाद में केवल स्वार्थवश कुछ कम की गयी। गोत्र-संघटन जब ख़ूब पनप और फूल-फल रहा था, जैसा कि हमने उसे अमरीका में पनपते देखा है, तब उसका लाज़िमी तौर पर यह मतलब होता था कि उत्पादन-प्रणाली बहुत ही पिछड़ी हुई है, बहुत थोड़ी आबादी एक लम्बे-चौड़े इलाक़े में फैली हुई है, और इसलिए मनुष्य पर बाह्य प्रकृति का लगभग पूर्ण आधिपत्य है; प्रकृति उसे परायी, विरोधी, और अज्ञेय प्रतीत होती है। प्रकृति का यह आधिपत्य उसके बचकाने धार्मिक विचारों में प्रतिबिम्बित होता है। अपने से और बाहरी लोगों से मनुष्य के सम्बन्ध पूरी तरह क़बीले तक ही सीमित थे। क़बीला, गोत्र और उनकी प्रथाएं पवित्र और अनुल्लंघनीय थीं; वे सर्वोच्च शक्ति थीं जिन्हें स्वयं प्रकृति ने प्रतिष्ठित किया था। व्यक्ति की भावनाएं, विचार और कर्म— सब पूरी तरह इस शक्ति के अधीन थे। इस युग के लोग हमें भले ही बड़े ज़ोरदार और प्रभावशाली लगते हों, पर वे सारे एक जैसे थे। मार्क्स के शब्दों में वे अभी आदिम समुदाय की नाभिरज्जु से बंधे हुए थे। इन आदिम समुदायों की शक्ति का तोड़ना आवश्यक था, और वह टूटी। परन्तु वह ऐसे कारणों

से टूटी जो हमें शुरू से ही पतन के चिह्न प्रतीत होते हैं, और प्राचीन गोत्र-समाज की सरल नैतिक महानता के नष्ट होने की सूचना देते हैं। घृणित लोभ, पाशविक काम-वासना, ओछी लोलुपता, सामूहिक सम्पत्ति की स्वार्थपूर्ण लूट-खसोट – ऐसी ही कदर्यतम भावनायें नये, सभ्य समाज, वर्ग-समाज को रंगमंच पर लाती हैं। चोरी, बलात्कार, छल-कपट और विश्वासघात जैसे घृणित से घृणित तरीक़ों से पुराने, वर्ग-विहीन, गोत्र-समाज की जड़ खोदी जाती है और उसे ढहाया जाता है। और पिछले ढाई हज़ार वर्षों से जो नया समाज क़ायम है, उसमें विशाल बहुसंख्या, शोषित और दलित जनता, के मत्थे थोड़े-से लोगों के फूलने-फलने के अलावा और कुछ नहीं हुआ है। और आज तो ऐसा हमेशा से ज़्यादा हो रहा है।

४

यूनानी गोत्र

यूनानी, और पेलास्गियन तथा उसी क़बीले से उत्पन्न अन्य जातियां प्रागैतिहासिक काल से उसी क्रम में संगठित थीं जिस में अमरीकी इंडियन संगठित थे: वे भी गोत्र, बिरादरी, क़बीले, और क़बीलों के महासंघ में संगठित थे। सम्भव था कि कहीं बिरादरी न हो, जैसे डोरियनों में नहीं थी, या हर जगह क़बीलों का महासंघ पूरी तरह विकसित न हुआ हो, परन्तु समाज की इकाई हर जगह गोत्र था। जिस समय यूनानियों ने इतिहास में प्रवेश किया, उस समय वे सभ्यता के द्वार पर खड़े थे। यूनानियों और उपरोक्त अमरीकी क़बीलों के बीच विकास के लगभग दो पूरे बड़े युग पड़ते थे, क्योंकि वीर-काल के यूनानी इरोक्वा जाति से इतने ही आगे थे। इस कारण यूनानी गोत्रों का वह आदिम रूप नहीं रह गया था जो हम इरोक्वा गोत्रों में देखते हैं। यूथ-विवाह की छाप काफ़ी धुंधली पड़ती जा रही थी। मातृ-सत्ता की जगह पितृ-सत्ता स्थापित हो गयी थी; उसके कारण नयी बढ़ती हुई निजी धन-सम्पदा ने गोत्र-संघटन में पहली दरार डाल दी थी। पहली दरार के बाद स्वभावतः दूसरी दरार पड़ी: पितृ-सत्ता के क़ायम हो जाने के बाद प्रचुर धन की उत्तराधिकारिणी स्त्री की सम्पदा, उसके विवाह-सम्बन्ध के कारण, उसके पति को ही मिलती, अर्थात् वह अन्य गोत्र में चली जाती। इस तरह समस्त गोत्रीय क़ानून का आधार भंग कर दिया गया और ऐसी सूरत में लड़की को न सिर्फ़ अपने गोत्र के भीतर विवाह करने की इजाज़त दे दी गयी, बल्कि उसके लिए ऐसा करना **अनिवार्य** बना दिया गया ताकि यह सम्पदा गोत्र के भीतर ही रहे।

ग्रोट की किताब 'यूनान का इतिहास' के अनुसार, एथेंस के गोत्र को विशेष रूप से निम्नलिखित तत्त्वों ने एकता के सूत्र में बांध रखा था:

१. समान धार्मिक अनुष्ठान, और एक विशेष देवता के सम्मान में पुरोहितों को मिले हुए विशेषाधिकार। यह देवता गोत्र का आदि-पुरुष समझा जाता था और इस हैसियत से उसका एक विशेष गोत्र-नाम होता था।

२. गोत्र का एक क़ब्रिस्तान (इस सम्बन्ध में डेमोस्थनीज़ का 'इयुबुलिडीज़' भी देखिए)।

३. विरासत के पारस्परिक अधिकार।

४. गोत्र के किसी सदस्य के विरुद्ध बल-प्रयोग होने पर एक दूसरे की सहायता, रक्षा और समर्थन करना सब का कर्त्तव्य।

५. कुछ सूरतों में, विशेषकर वे मां-बाप की लड़कियों और उत्तराधिकारिणी स्त्रियों के मामले में गोत्र के भीतर विवाह करने का पारस्परिक अधिकार और बाध्यता।

६. कम से कम कुछ जगहों पर तो अवश्य ही सामूहिक मिलकियत तथा अपने एक आर्कोन (मजिस्ट्रेट) और कोषाध्यक्ष का होना।

बिरादरी में, जिसमें कई गोत्र शामिल होते थे, इतनी घनिष्ठता नहीं होती थी। पर यहां भी हम इसी प्रकार के पारस्परिक अधिकार और कर्त्तव्य पाते हैं। विशेष रूप से यहां भी पूरी बिरादरी सामूहिक रूप से कुछ विशेष धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेती थी और किसी बिरादर के मारे जाने पर उसे उसकी मौत का बदला लेने का अधिकार होता था। इसके अलावा एक क़बीले की सभी बिरादरियां समय-समय पर एक मजिस्ट्रेट की अध्यक्षता में कुछ सामूहिक पवित्र अनुष्ठान किया करती थीं। यह मजिस्ट्रेट फ़ीलोबेसिलियस (क़बायली मजिस्ट्रेट) कहलाता था, और उसे कुलीनों (इयुपैत्रिदीज़) में से चुना जाता था।

ग्रोट ने यह लिखा है। और मार्क्स ने इसमें इतना जोड़ दिया है: "यूनानी गोत्र में हम साफ़-साफ़ जांगल लोगों को (मिसाल के लिए इरोक्वा लोगों को) देख सकते हैं।" कुछ और खोज करने पर यह मूल जांगल रूप और भी स्पष्ट रूप में दिखायी पड़ने लगता है।

कारण कि यूनानी गोत्र में ये विशेषताएं और होती हैं:

७. पितृ-सत्ता के अनुसार वंश का चलना।

८. उत्तराधिकारिणियों को छोड़कर, बाक़ी सब के लिए गोत्र के भीतर विवाह करने की मनाही। यह अपवाद, और ऐसी सूरत में गोत्र के भीतर ही विवाह करने का आदेश, स्पष्ट रूप में सिद्ध करते हैं कि पुराना नियम अब भी क़ायम है। यह बात इस सर्वमान्य नियम से और स्पष्ट हो जाती है कि

स्त्री विवाह करने पर अपने गोत्र की धार्मिक रीतियों को त्याग देती थी और अपने पति के गोत्र की धार्मिक रीतियों को स्वीकार कर लेती थी। साथ ही पत्नी पति की बिरादरी की सदस्या हो जाती थी। इस नियम से, तथा डिकिआरकीज़ के एक प्रसिद्ध उद्धरण से सिद्ध हो जाता है कि नियम गोत्र के बाहर ही विवाह करने का था। 'चैरीक्लीज़' में बेकर सीधे-सीधे यह मानकर चलते हैं कि किसी को भी अपने गोत्र के भीतर विवाह करने की इजाज़त नहीं थी।

९. गोत्र को अधिकार था कि चाहे तो वह किसी बाहरी आदमी को भी अपना सदस्य बना ले। यह कार्य उसे किसी परिवार का सदस्य बनाकर, परन्तु सार्वजनिक समारोह के द्वारा सम्पन्न होता था। लेकिन ऐसा अपवाद-स्वरूप ही होता था।

१०. गोत्रों को अपने मुखियाओं को चुनने और बर्ख़ास्त करने का अधिकार था। हम यह जानते हैं कि हर गोत्र का एक आर्कोन होता था; परन्तु यह कहीं नहीं लिखा है कि यह पद कुछ विशेष परिवारों के लोगों को ही वंशानुक्रम से मिलता था। बर्बर युग के अन्त तक सदा इसी की अधिक सम्भावना रहती है कि आनुवंशिक पद न होंगे, क्योंकि वे उन अवस्थाओं से मेल नहीं खा सकते जिनके अंतर्गत गोत्र में अमीर और ग़रीब के बिलकुल बराबर अधिकार होते हैं।

ग्रोट ही नहीं, निबूहर, मोम्मसेन और प्राचीन काल के अन्य इतिहासकार भी गोत्र की समस्या को सुलझाने में असमर्थ रहे थे। इन इतिहासकारों ने गोत्र की बहुत-सी विशेषताओं को सही देखा, परन्तु उन्होंने गोत्र को सदा **परिवारों का समूह** समझा, और इसलिए उसकी प्रकृति और उत्पत्ति को समझना उनके लिए असम्भव हो गया। गोत्र-व्यवस्था में परिवार संगठन की इकाई न तो कभी था और न हो सकता था, क्योंकि पति-पत्नी आवश्यक रूप से दो भिन्न गोत्रों के सदस्य होते थे। पूरा गोत्र एक बिरादरी का अंश होता था। बिरादरी क़बीले का हिस्सा होती थी। परन्तु परिवार का आधा भाग पति के गोत्र का होता था और आधा–पत्नी के। राज्य भी सार्वजनिक क़ानून में परिवार को नहीं मानता था; आज भी परिवार को केवल दीवानी क़ानून में मान्यता मिली हुई है। फिर भी, आज तक का समस्त लिखित इतिहास इसी बेतुकी धारणा पर चलता है–और अठारहवीं सदी में तो इसे एक अनुल्लंघनीय सिद्धान्त मान लिया गया–कि एकनिष्ठ व्यक्तिगत परिवार ही, जो सभ्यता

से ज़्यादा पुरानी संस्था नहीं है, वह केन्द्र-बिन्दु है, जिसके चारों ओर समाज और राज्य-सत्ता ने धीरे-धीरे स्थायी रूप धारण किया है।

मार्क्स ने इस विषय में लिखा है: "श्री ग्रोट कृपा करके इस बात को और भी टांक लें कि यूनानियों का विचार गोकि यह था कि उनके गोत्रों का पुराण-कथाओं के देवी-देवताओं से जन्म हुआ है, परन्तु वास्तव में, गोत्र पुराण-कथाओं से और उनके देवी-देवताओं और अर्ध-देवताओं से अधिक पुराने थे, जिन्हें **स्वयं गोत्रों ने ही** पैदा किया था।"

मौर्गन ग्रोट को एक विख्यात एवं असन्दिग्ध गवाह के रूप में उद्धृत करना पसन्द करते हैं। वह आगे बताते हैं कि एथेंस के प्रत्येक गोत्र का एक नाम होता था, यह संज्ञा उसके ख्यात पूर्वज के नाम से प्राप्त होती थी। वह यह भी बताते हैं कि सामान्य नियम के अनुसार सोलन के काल के पहले और उसके बाद किसी आदमी के बिन वसीयत किये मर जाने पर उसकी सम्पत्ति उसके गोत्र के सदस्यों (gennêtes) को मिलती थी। यदि किसी आदमी की हत्या हो जाती थी तो पहले उसके रिश्तेदारों का, फिर उसके गोत्र के सदस्यों का और अन्त में, उसकी बिरादरी के सदस्यों का यह अधिकार और कर्त्तव्य होता था कि वे अपराधी पर अदालत में मुक़दमा चलायें:

> "एथेंस के अति-प्राचीन क़ानूनों के बारे में हम जो कुछ जानते हैं, वह सब गोत्रों और बिरादरियों के विभाजन पर आधारित है।"

"तोतारटंत में पूरे पर ज्ञान में अधूरे कूपमंडूकों" (मार्क्स) के लिए समान पूर्वजों से गोत्रों की उत्पत्ति एक ऐसी पहेली बनी हुई है कि वे सिर पटक-पटककर रह गये हैं, पर उसे समझ नहीं पाये हैं। चूंकि इन लोगों का दावा है कि इस प्रकार के पूर्वज केवल कल्पना की उपज हैं, इसलिए स्वभावतः वे यह समझाने में पूर्णतया असमर्थ हैं कि गोत्र कैसे एक दूसरे से अलग तथा भिन्न, और शुरू में पूरी तरह असम्बद्ध परिवारों से विकसित हुए। लेकिन किसी न किसी प्रकार यह विकास दिखलाना उनके लिए ज़रूरी था, अन्यथा यह बात स्पष्ट नहीं होती थी कि गोत्र क्यों बने। इसलिए वे शब्दों का जाल बुनना शुरू करते हैं और अन्त में उसी में फंसकर रह जाते हैं। वे कहते हैं: वंशावली काल्पनिक है, पर गोत्र वास्तविक है। इस वाक्य के आगे वे नहीं बढ़ पाते। और अन्त में ग्रोट कहते हैं—यहां कोष्ठकों के भीतर जो शब्द दिये गये हैं वे मार्क्स के हैं:

"इस वंशावली की चर्चा बहुत कम सुनने को मिलती है, क्योंकि केवल कुछ बहुत श्रेष्ठ और सम्मानित मामलों में ही वंशावली की सार्वजनिक रूप से चर्चा की जाती है। लेकिन, अधिक विख्यात गोत्रों की ही भांति निचले दर्जे के गोत्रों के भी अपने समान कर्मकांड होते हैं" (कितनी विचित्र बात है यह, मि० ग्रोट!), "और समान अलौकिक पूर्वज तथा वंशावली भी होती है" (सचमुच, मि० ग्रोट, यह तो बड़ी विचित्र बात है, **निचले दर्जे के** गोत्रों में भी!), "सभी गोत्रों में एक सी व्यवस्था और वैचारिक आधार पाया जाता है" (वैचारिक – ideal – नहीं, जनाब, यह पूरी तरह ऐन्द्रिय – carnal – **दैहिक** आधार है!)।"

इस बात का मौर्गन ने जो जवाब दिया है, उसे मार्क्स ने संक्षेप में इस तरह पेश किया है: "रक्तसम्बद्धता की प्रणाली जो गोत्र के आदि के अनुरूप होती थी, – अन्य मनुष्यों की तरह यूनानियों में भी एक समय गोत्र का यह आदि-रूप पाया जाता था, – गोत्र के सभी सदस्यों के पारस्परिक सम्बन्धों के ज्ञान को सुरक्षित रखती थी। इस ज्ञान का उन लोगों के लिए निर्णायक महत्त्व था, और यह ज्ञान उन्हें बचपन में ही व्यवहार से मिल जाता था। जब एकनिष्ठ परिवार का उदय हुआ तो यह ज्ञान विस्मृति के अंधकार में पड़ गया। गोत्र के नाम से जो वंशावली बनती थी, उसके मुक़ाबले में एकनिष्ठ परिवार की वंशावली बहुत छोटी और महत्त्वहीन चीज़ मालूम पड़ती थी। अब गोत्र का नाम इस बात का प्रमाण था कि यह नाम धारण करने वाले लोगों के पूर्वज एक थे। परन्तु गोत्र की वंश-परंपरा इतनी पुरानी थी कि उसके सदस्यों के लिए अब यह सिद्ध करना सम्भव न था कि उनके बीच रक्त-सम्बन्ध है। केवल वे थोड़े-से लोग ही अपना सम्बन्ध सिद्ध करने की स्थिति में थे जिनकी समान पूर्वजों से वंशोत्पत्ति बहुत समय पहले नहीं हुई थी। गोत्र का नाम ख़ुद इस बात का पर्याप्त निर्विवाद प्रमाण था कि उस गोत्र के सदस्यों के पूर्वज एक थे। केवल उन लोगों पर यह प्रमाण लागू नहीं होता था जिनको गोद लिया गया था। ग्रोट* और निबूहर की भांति यह मानने से इनकार करना कि गोत्र के सदस्यों के बीच रक्त-संबंध होता था, और इस प्रकार गोत्र को केवल एक काल्पनिक वस्तु, कल्पना की उड़ान भर बना डालना, यह सिर्फ़ "वैचारिक"

---

*मार्क्स की पांडुलिपि में ग्रोट की जगह दूसरी शताब्दी के यूनानी विद्वान पोलक्स का नाम दिया गया है जिसका ग्रोट अक्सर हवाला देते हैं। – सं०

वैज्ञानिकों को, यानी कुर्सीतोड़ किताबी कीड़ों को ही शोभा देता है। चूंकि पीढ़ियों की शृंखला अब, विशेषकर एकनिष्ठ विवाह की उत्पत्ति के कारण, बहुत दूर की चीज़ बन गयी है, और चूंकि अतीत की वास्तविकता अब पुराण-कथा में प्रतिबिम्बित होती मालूम पड़ती है, इसलिए हमारे भलेमानस कूपमंडूकों ने यह मान लिया और आज भी वे समझे बैठे हैं कि काल्पनिक वंशावली से यथार्थ गोत्र उत्पन्न हैं!"

अमरीकियों की तरह यहां भी **बिरादरी** एक मातृ-गोत्र थी, जो कई संतति-गोत्रों में बंट गयी थी, पर साथ ही उसने उन्हें एक सूत्र में भी बांध रखा था और अक्सर वह उन सब की एक ही वंशमूल से उत्पत्ति का संकेत करती थी। इस प्रकार ग्रोट के अनुसार,

> "हेकेटीयस की बिरादरी के सभी समकालीन सदस्यों का वंश सोलह पीढ़ी ऊपर चढ़ने पर, एक समान देवता के रूप में एक पूर्वज से जाकर मिल जाता है।"

इसलिए, इस बिरादरी के सभी गोत्र शब्दशः भ्रातृ-गोत्र थे। होमर अब भी इस बिरादरी का उस प्रसिद्ध अंश में, जहां एगामेम्नोन को नेस्टर यह सलाह देता है, एक फ़ौजी इकाई के रूप में ज़िक्र करते हैं: अपनी सेना की व्यूह-रचना क़बीलों और बिरादरियों के अनुसार करो ताकि बिरादरी बिरादरी की मदद कर सके और क़बीला क़बीले की।*

बिरादरी का यह अधिकार होता है और उसका यह कर्त्तव्य माना जाता है कि अपने किसी सदस्य का क़त्ल हो जाने पर क़ातिल पर मुक़दमा चलाये। इससे ज़ाहिर होता है कि प्राचीन काल में रक्त-प्रतिशोध लेना बिरादरी का एक कर्त्तव्य था। इसके अलावा हर बिरादरी के समान देव-स्थान और समान त्यौहार होते हैं। कारण कि आर्यों की प्राचीन परम्परागत प्रकृति-पूजा से समस्त यूनानी पुराण का विकास बुनियादी तौर पर गोत्रों और बिरादरियों के कारण और उनके भीतर हुआ था। बिरादरी का एक मुखिया (phratriarchos) भी होता था, और दे कुलांज के मतानुसार उसकी ऐसी परिषदें भी होती थीं जिनका फ़ैसला मानना अनिवार्य होता था, और उसकी एक अदालत तथा शासन व्यवस्था भी होती थी। परवर्ती काल के राज्य तक ने गोत्र की अवहेलना की पर बिरादरी के हाथ में कुछ सार्वजनिक काम छोड़ दिये गये।

---

* **होमर, 'इलियाड', दूसरा गीत। – सं०**

एक दूसरे से सम्बन्धित कई बिरादरियों को मिलाकर एक क़बीला बनता था। ऐतिका में चार क़बीले थे जिनमें से हर एक में तीन-तीन बिरादरियां थीं, और हर एक बिरादरी में तीस-तीस गोत्र थे। समूहों में इस विस्तृत विभाजन से प्रकट होता है कि जो व्यवस्था स्वयंस्फूर्त ढंग से क़ायम हुई थी उसमें सचेतन और सुनियोजित ढंग से हस्तक्षेप किया गया था। ऐसा क्यों, कब, और कैसे किया गया, यह यूनानी इतिहास नहीं बताता, क्योंकि यूनानियों ने जिन स्मृतियों को सुरक्षित रखा था वे वीर-काल से ज़्यादा पुरानी नहीं थीं।

यूनानी लोग चूंकि अपेक्षाकृत छोटे जनसंकुल प्रदेश में रहते थे, इसलिए उनकी बोलियों में उतना स्पष्ट अन्तर नहीं था, जितना अमरीका के विस्तृत जंगलों में रहनेवाले लोगों में विकसित हुआ था। फिर भी हम यहां पाते हैं कि एक मुख्य बोली बोलनेवाले क़बीले ही एक बड़े समुदाय में संघबद्ध होते हैं; यहां तक कि नन्हे से ऐतिका की भी अपनी बोली थी जो बाद में चलकर यूनानी गद्य की प्रचलित भाषा बन गयी थी।

होमर के महाकाव्यों में आम तौर पर हम यह पाते हैं कि यूनानी क़बीलों ने मिलकर छोटी-छोटी जन-जातियां बना ली थीं। परन्तु हर जन-जाति के भीतर गोत्रों, बिरादरियों और क़बीलों को अब भी पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी। उन्होंने अभी से परकोटेदार शहरों में रहना शुरू कर दिया था। जानवरों के रेवड़ों के बढ़ने, खेत बनाकर खेती करने की प्रथा के आरम्भ होने और दस्तकारी की शुरूआत से जनसंख्या में वृद्धि हुई। इसके साथ-साथ सम्पत्ति के भेद बढ़े, जिसके परिणामस्वरूप पुराने, सहज रूप से विकसित जनवादी समाज के भीतर एक अभिजात तत्त्व उत्पन्न हुआ। छोटी-मोटी विभिन्न जन-जातियां सबसे अच्छी ज़मीन पर क़ब्ज़ा करने के लिए, और लूट-मार के उद्देश्य से भी, सदा आपस में लड़ती रहती थीं। युद्धबंदियों को दास बनाने की प्रथा मान्य हो गयी थी।

इन क़बीलों और छोटी-मोटी जन-जातियों का संघटन इस प्रकार का होता था:

१. स्थायी रूप से अधिकार एक **परिषद्** (bulê) के हाथ में होता था। इसके सदस्य शुरू में संभवत: गोत्रों के मुखिया हुआ करते थे, परन्तु बाद में जब उनकी संख्या बहुत बड़ी हो गयी तो उनमें से भी कुछ लोगों को छांटकरम परिषद् में लिया जाने लगा। इससे अभिजात तत्त्व को विकास करने और मज़बूत होने का मौक़ा मिला। डायोनीसियस निश्चित रूप से बताता है कि वीर-काल में प्रतिष्ठित व्यक्ति (kratistoi) परिषद् के सदस्य हुआ करते थे। महत्त्वपूर्ण मामलों में आख़िरी फ़ैसला परिषद् के हाथ में होता था। ईस्खिलस में हम

पढ़ते हैं कि थीबीस की परिषद् ने यह फ़ैसला किया था – और उसे मानना सब के लिए ज़रूरी था – कि इतियोक्लीज़ के शव को पूर्ण सम्मान के साथ दफ़नाया जाये और पोलीनाइसीज़ के शव को कुत्तों के आगे फेंक दिया जाये।* बाद में जब राज्य का उदय हुआ, तो यह परिषद् सीनेट में बदल गयी।

२. **जन-सभा** (agora)। इरोक्वा लोगों में हम देख चुके हैं कि जब उनकी परिषद् बैठती थी तो साधारण लोग, स्त्री और पुरुष, एक घेरा बनाकर चारों ओर खड़े हो जाते थे, व्यवस्थित ढंग से बहस में हिस्सा लेते थे, और इस प्रकार परिषद् के फ़ैसलों पर अपना असर डालते थे। होमर के काल के यूनानियों में यह "घेरा" (Umstand) यदि हम जर्मन भाषा के एक पुराने क़ानूनी शब्द का प्रयोग करें तो, एक पूर्ण जन-सभा में बदल गया था जैसा कि वह प्राचीन जर्मनों में भी बदल गया था। परिषद् महत्त्वपूर्ण मामलों पर विचार करने के लिए जन-सभा को बुलाती थी। सभा में हर पुरुष को बोलने का अधिकार होता था। फ़ैसला या तो हाथ उठाकर किया जाता था (जैसा कि ईस्खिलस के 'प्रार्थी-गण' में वर्णन है), या आवाज़ देकर। जन-सभा का निर्णय सर्वोच्च और अन्तिम होता था, क्योंकि जैसा कि शेमान ने अपनी पुस्तक 'यूनानी पुरातत्त्व' में कहा है:

> "जब कभी किसी ऐसे मामले पर बहस होती थी जिसके निपटारे के लिए जनता का सहयोग लेना आवश्यक होता था, तब जनता से ज़बर्दस्ती कुछ कराने का भी कोई तरीक़ा हो सकता था, इसका होमर की रचनाओं में कोई संकेत नहीं मिलता।"

उस समय, जबकि क़बीले का हर वयस्क पुरुष सदस्य योद्धा होता था, जनता से अलग कोई ऐसी सार्वजनिक सत्ता नहीं थी जो जनता के ख़िलाफ़ खड़ी की जा सके। आदिम जनवाद अभी तक पूरे उरूज पर था। परिषद् और बैसिलियस की शक्ति और हैसियत पर विचार करते समय हमें इस बात पर सबसे पहले ध्यान देना चाहिए।

३. **सेनानायक** (basileus)। इस विषय पर मार्क्स ने यह टीका की: "यूरोपीय विद्वान, जिनमें से अधिकतर जन्म से ही राजाओं के अनुचर थे, बैसिलियस को इस रूप में पेश करते हैं मानो वह आधुनिक ढंग का राजा हो। अमरीकी जनतंत्रवादी मौर्गन इसपर एतराज़ करते हैं। मिठबोले मि० ग्लैडस्टन और

---

* **ईस्खिलस**, 'थीबीस के विरुद्ध सात'। – सं०

उनकी पुस्तक 'संसार की युवावस्था' का ज़िक्र करते हुए मौर्गन ने बहुत व्यंग्य के साथ, किन्तु सचाई के साथ कहा है :

"मि० ग्लैडस्टन ने वीर-काल के यूनानी मुखियाओं को अपने पाठकों के सामने राजाओं और राजकुमारों के रूप में पेश किया है और साथ ही उनमें भद्र पुरुषों के गुण भी जोड़ दिये हैं। परन्तु मि० ग्लैडस्टन भी यह मानने को मजबूर हैं कि कुल मिलाकर यूनानियों में ज्येष्ठाधिकार के क़ानून का प्रचलन काफ़ी स्पष्ट है, पर बहुत अधिक स्पष्ट नहीं है।"

सच तो यह है कि मि० ग्लैडस्टन ने ख़ुद भी यह बात महसूस की होगी कि इस प्रकार की अनिश्चित ज्येष्ठाधिकार व्यवस्था, – जो काफ़ी स्पष्ट है, पर बहुत स्पष्ट नहीं है, – वास्तव में न होने के बराबर है।

इरोक्वा तथा अन्य इण्डियनों में मुखियाओं के पदों के मामले में वंश-परम्परा का क्या स्थान था, यह हम देख चुके हैं। चूंकि सभी पदाधिकारी प्रायः गोत्र के भीतर से ही चुने जाते थे, इसलिए इस हद तक ये पद गोत्र के भीतर पुश्तैनी थे। धीरे-धीरे यह प्रथा बन गयी कि कोई पद ख़ाली होता था तो वह पुराने पदाधिकारी के सबसे निकट के गोत्र-सम्बन्धी – भतीजे या भांजे – को मिलता था। उसे छोड़ दूसरे को यह पद तभी दिया जाता था जब ऐसा करने के पर्याप्त कारण हों। यूनान में चूंकि पितृ-सत्ता थी, इसलिए बैसिलियस का पद प्रायः पुराने बैसिलियस के पुत्र को या उसके अनेक पुत्रों में से एक को मिलता था। लेकिन इस बात से केवल यही ज़ाहिर होता है कि सार्वजनिक चुनाव में पिता की जगह पुत्र का चुना जाना संभाव्य होता था। इससे यह कदापि ज़ाहिर नहीं होता कि बिना सार्वजनिक चुनाव के ही पिता का पद पुत्र को क़ानूनन् मिल जाता था। यहां हम इरोक्वा जाति में तथा यूनानियों में गोत्रों के भीतर ही विशिष्ट कुलीन परिवारों के पहले चिह्न देखते हैं; और यूनानियों में तो यह भविष्य की पुश्तैनी मुखियागीरी या बादशाहत का पहला चिह्न भी था। इसलिए हमें यह मानकर चलना चाहिए कि यूनानियों में बैसिलियस को या तो जनता चुनती थी, या कम से कम उसके लिए जनता की मान्य संस्था – परिषद् या अगोरा – की स्वीकृति आवश्यक होती थी, जैसा कि रोमन "राजा" (rex) के लिए आवश्यक हुआ करता था।

'इलियाड' महाकाव्य में मनुष्यों का शासक एगामेम्नोन, यूनानियों के सर्वोच्च राजा के रूप में नहीं, बल्कि एक ऐसी संघीय सेना के सर्वोच्च सेनापति के रूप में सामने आता है जो एक नगर के चारों ओर घेरा डाले हुए है।

और जब यूनानी लोग आपस में झगड़ने लगते हैं, तब ओडीसियस इस महाकाव्य के एक प्रसिद्ध अंश में उसके इसी गुण की ओर संकेत करते हुए कहता है : बहुत-से सेनानायक होना अच्छी बात नहीं है, हमारा एक सेनानायक होना चाहिए, इत्यादि (बाद में इसमें वह प्रचलित पद भी जोड़ दिया गया जिसमें राजदंड का ज़िक्र आता है)।* "यहां ओडीसियस इस बात का उपदेश नहीं दे रहा है कि सरकार किस तरह की होनी चाहिए, बल्कि इस बात की मांग कर रहा है कि रण-क्षेत्र में सेना के सर्वोच्च सेनानायक के आदेशों का पालन किया जाये। यूनानियों के लिए जो त्रोय के सामने केवल एक सेना के रूप में आते हैं, उनकी अगोरा की कार्यवाही काफ़ी जनवादी ढंग से होती है। जब एकिलीज़ तोहफ़ों के, यानी लूट की चीज़ों के बंटवारे का ज़िक्र करता है तो वह यह कभी नहीं कहता कि एगामेम्नोन या कोई और बैसिलियस इन चीज़ों का वितरण करेगा, बल्कि वह हमेशा यही कहता है कि "एकियनों की सन्तान", अर्थात् जनता उनका वितरण करेगी। गुणवाचक शब्दों से – "ज़ीयस की सन्तान", "ज़ीयस द्वारा पालित-पोषित" कुछ भी सिद्ध नहीं होता क्योंकि हर एक गोत्र किसी न किसी देवता का वंशज होता है और क़बीले के मुखिया का गोत्र किसी "प्रमुख" देवता का – जो इस प्रसंग में ज़ीयस है – वंशज होता है, यहां तक कि सुअर चराने वाला इमुएयस और अन्य भृत्य भी "देव-कुल" के (dioi या theioi) माने गये हैं, और वह भी 'ओडीसी' में, अर्थात् 'इलियाड' से बहुत बाद के काल में भी है। इसी प्रकार हम 'ओडीसी' में यह भी पाते हैं कि मुलिओस नामक मुनादी को और डेमोडोकस** नामक अंधे चारण को भी "वीर" कहा गया है। संक्षेप में, होमर की तथाकथित बादशाहत के लिए यूनानी लेखक जिस basileia शब्द का प्रयोग करते हैं, वह (चूंकि सैनिक नेतृत्व ही उसकी मुख्य विशेषता है) परिषद् तथा जन-सभा समेत महज़ सैनिक लोकतंत्र की व्यंजना करता है, और कुछ नहीं।" (मार्क्स)

सैनिक ज़िम्मेदारियों के अलावा बैसिलियस पर कुछ पुरोहितगीरी की और

---

* होमर, 'इलियाड', दूसरा गीत। – सं०

** मार्क्स की पांडुलिपि में इसके बाद यह वाक्यांश है, जिसे एंगेल्स ने छोड़ दिया है: "'बैसिलियस' की ही भांति 'काइरानोस' शब्द, – जिसका उपयोग ओडीसियस एगामेम्नोन के लिए करता है, – का अर्थ भी 'सेनानायक' या 'मुखिया' ही है। – सं०

कुछ न्याय-सम्बन्धी ज़िम्मेदारियां भी होती थीं। न्याय-सम्बन्धी ज़िम्मेदारियां बहुत साफ़ नहीं थीं; परन्तु पुरोहित का काम वह अपने क़बीले के, अथवा कई क़बीलों के महासंघ के सर्वोच्च प्रतिनिधि की हैसियत से करता था। नागर-ज़िम्मेदारियों, अथवा शासन-प्रबंध की ज़िम्मेदारियों का कहीं ज़िक्र नहीं मिलता। लेकिन मालूम पड़ता है कि बैसिलियस अपने पद के नाते परिषद् का सदस्य होता था। शब्दरचनाशास्त्र की दृष्टि से बैसिलियस का अर्थ जर्मन में «König» लगाना बिलकुल सही है क्योंकि «König» (Kuning) शब्द Kuni या Künne से व्युत्पन्न है जिनका मतलब होता है "गोत्र का मुखिया"। परन्तु «König» शब्द का जो आधुनिक अर्थ है (राजा), पुरानी यूनानी भाषा का "बैसिलियस" उससे क़तई मेल नहीं खाता। थ्युसीडिडीज़ तो प्राचीन basileia को साफ़-साफ़ patrikê कहता है, जिसका मतलब है कि वह गोत्र से उत्पन्न हुआ है। उसने यह भी कहा है कि उसकी निश्चित और सीमित ज़िम्मेदारियां होती थीं। और अरस्तू का कहना है कि वीर-काल में basileia स्वतंत्र नागरिकों का नेतृत्व करता था, और बैसिलियस सेनानायक, न्यायाधीश और मुख्य पुरोहित हुआ करता था। मतलब यह कि बाद के काल की शासन-सत्ता के अर्थ में बैसिलियस के हाथ में कोई शासन-सत्ता न थी।*

इस प्रकार, वीर-काल के यूनानी समाज-संघटन में, जहां हम यह पाते हैं कि पुरानी गोत्र-व्यवस्था अब भी शक्तिशाली है, वहां साथ ही हम उसके

* यूनानी बैसिलियस की तरह एत्सतेक लोगों के सैनिक मुखिया को भी ग़लत ढंग से आधुनिक काल के राजा के रूप में पेश किया जाता है। स्पेनियों ने एत्सतेक लोगों को शुरू में ग़लत समझा, उनका अतिरंजित चित्र दिया, और बाद में तो जान-बूझकर झूठी बातें गढ़ीं। स्पेनियों की रिपोर्टों की ऐतिहासिक दृष्टि से आलोचना सबसे पहले मौर्गन ने की। उन्होंने बताया कि मैक्सिको वासी बर्बर युग की मध्यम अवस्था में थे; पर उनका स्तर न्यू मैक्सिको के पुएब्लो इंडियनों के स्तर से ऊंचा था और उनका समाज-संघटन, जहां तक कोई भ्रष्ट रिपोर्टों से अनुमान कर सकता है, मोटे तौर पर इस ढंग का था: तीन क़बीलों का एक महासंघ था, जो कई अन्य क़बीलों से कर लेते थे; महासंघ का प्रबंध एक महासंघीय परिषद् और महासंघीय सेनानायक द्वारा होता था। इसी सेनानायक को स्पेनियों ने "सम्राट" के रूप में बदल दिया था। (एंगेल्स का नोट।)

पतन का प्रारम्भ भी देखते हैं: पितृ-सत्ता मानी जाने लगी है और पिता की सम्पत्ति बच्चों को मिलने लगी है, जिससे परिवार के अन्दर सम्पत्ति एकत्रित करने की प्रवृत्ति को बल मिलता है और गोत्र के मुक़ाबले में परिवार शक्तिशाली हो जाता है; कुछ लोगों के पास कम और कुछ के पास अधिक धन हो जाने का समाज के संघटन पर असर पड़ता है और आनुवंशिक अभिजात वर्ग और राजतंत्र के पहले अंकुर निकल आते हैं; दास-प्रथा आरम्भ हो जाती है, जो शुरू में युद्धबंदियों तक सीमित थी, पर जिसके परिणामस्वरूप बाद में अपने क़बीले के और यहां तक कि अपने गोत्र के सदस्यों को भी ग़ुलाम बनाने का रास्ता साफ़ हो गया; पुराने ज़माने में क़बीलों के बीच होनेवाले युद्ध भ्रष्ट होकर नया रूप लेते हैं–जीविकोपार्जन के साधन के रूप में ढोर, दास और धन लूटने के लिए ज़मीन और पानी के रास्ते से बाक़ायदा धावे बोले जाते हैं। संक्षेप में, धन-दौलत को दुनिया में सबसे बड़ी चीज़ समझा जाने लगता है, उसे प्रशंसा और आदर की दृष्टि से देखा जाने लगा है और पुराने गोत्र-समाज की संस्थाओं और प्रथाओं को भ्रष्ट किया जाता है ताकि धन-दौलत को ज़बर्दस्ती लूटना उचित ठहराया जा सके। अब केवल एक चीज़ की कमी थी: ऐसी संस्था की, जो न केवल व्यक्तियों की नयी हासिल की हुई निजी सम्पत्ति को गोत्र-व्यवस्था की पुरानी सामुदायिक परम्पराओं से बचा सके, जो निजी सम्पत्ति को, जिसकी पहले अधिक प्रतिष्ठा नहीं थी, न केवल पवित्र क़रार दे और इस पवित्रता को मानव समाज का चरम लक्ष्य घोषित कर दे, बल्कि जो सम्पत्ति प्राप्त करने, और इसलिए सम्पत्ति को लगातार बढ़ाते रहने के नये और विकसित होते हुए तरीक़ों पर सार्वजनिक मान्यता की मुहर भी लगा दे; ऐसी संस्था की, जो न केवल समाज के नवजात वर्ग-विभाजन को, बल्कि सम्पत्तिवान वर्गों द्वारा सम्पत्तिहीन वर्गों के शोषण किये जाने के अधिकार को और सम्पत्तिहीन वर्गों पर सम्पत्तिवान वर्गों के शासन को भी स्थायी बना दे।

और यह संस्था भी आ पहुंची। राज्य का आविष्कार हुआ।

५

एथेनी राज्य का उदय

राज्य का विकास कैसे हुआ, जिसमें गोत्र-व्यवस्था की कुछ संस्थाएं नये ढंग की संस्थाओं में बदल गयीं और कुछ संस्थाओं का स्थान नयी संस्थाओं ने ले लिया, और अन्त में, पुरानी तमाम संस्थाओं की जगह पर असली सरकारी प्राधिकारी आ गये; वास्तविक "सशस्त्र जनता" की जगह, जो अपने गोत्रों, बिरादरियों और क़बीलों के द्वारा ख़ुद अपनी रक्षा किया करती थी, एक सशस्त्र "सार्वजनिक सत्ता" आ गयी, जिसका कि ये प्राधिकारी जैसा चाहें, उपयोग कर सकते थे, और इसलिए जो जनता के ख़िलाफ़ भी इस्तेमाल की जा सकती थी – इस पूरे विकास की रूप-रेखा, कम से कम उसके प्रारम्भिक काल की रूप-रेखा, जितनी स्पष्टता से प्राचीन एथेंस में देखी जा सकती है, उतनी स्पष्टता से वह और कहीं नहीं देखी जा सकती। परिवर्तन के रूप मोटे तौर पर मौर्गन द्वारा बताये गये हैं, परन्तु जिस आर्थिक अन्तर्य से ये उत्पन्न हुए, वह अधिकांशतः मुझे ख़ुद जोड़ देना पड़ा है।

वीर-काल में चार एथेनी क़बीले ऐतिका के चार अलग-अलग हिस्सों में रह रहे थे। बल्कि लगता है कि जिन बारह बिरादरियों को लेकर ये चार क़बीले बने थे, वे भी सेक्रोप्स के बारह शहरों में अलग-अलग रहते थे। क़बीलों का संघटन भी वही वीर-काल वाला था: जन-सभा, जन-परिषद् और एक बैसिलियस। उस प्राचीनतम काल में, जिसका कि लिखित इतिहास मिलता है, हम पाते हैं कि ज़मीन लोगों में बंट चुकी थी और व्यक्तियों की निजी सम्पत्ति बन गयी थी। यह इस बात के अनुरूप ही थी कि इस काल में, बर्बर युग की उन्नत अवस्था के अन्तिम दिनों में, माल का उत्पादन अपेक्षाकृत उन्नति कर चुका था और उसी हद तक माल का व्यापार भी बढ़ गया था। अनाज के अलावा शराब बनाने के लिए अंगूर और तेल निकालने के लिए तिलहन की भी खेती होने लगी थी। ईजियन समुद्र में होनेवाला व्यापार फ़ेनीशियाई लोगों

के हाथों से निकलकर अधिकाधिक ऐतिका वासियों के हाथों में पहुंच रहा था। ज़मीन की ख़रीद और बिक्री तथा खेती और दस्तकारी, व्यापार और जहाज़रानी के बीच श्रम-विभाजन के बराबर बढ़ते जाने के फलस्वरूप गोत्रों, बिरादरियों और क़बीलों के सदस्य जल्दी ही आपस में घुल-मिल गये। जिन इलाक़ों में पहले एक बिरादरी या क़बीले के लोग रहा करते थे, वहां अब नये लोग पहुंच गये, जो इसी देश के निवासी होते हुए भी इन क़बीलों या बिरादरियों के सदस्य नहीं थे, और इसलिए जो ख़ुद अपने निवास-स्थान में अजनबी थे। कारण कि शांति-काल में हर बिरादरी और हर क़बीला ख़ुद अपने मामलों का प्रबंध करता था और एथेंस में बैठी जन-परिषद् या बैसिलियस की सलाह नहीं लेता था। परन्तु किसी बिरादरी या क़बीले के इलाक़े के वे लोग, जो उस बिरादरी या क़बीले के सदस्य नहीं थे, स्वभावतः इस प्रबंध में भाग नहीं ले सकते थे।

इससे गोत्र-व्यवस्था की विभिन्न संस्थाओं के नियमित रूप से काम करने में इतना व्याघात पड़ गया कि वीर-काल में ही इसके इलाज की ज़रूरत महसूस होने लगी थी। चुनांचे एक नया विधान लागू किया गया, जिसके बारे में कहा जाता है कि उसे थीसियस ने तैयार किया था। इस परिवर्तन की ख़ास विशेषता यह थी कि एथेंस में एक केन्द्रीय प्रशासन क़ायम कर दिया गया था। मतलब यह कि कुछ ऐसे मामले, जिनका प्रबंध अभी तक क़बीले स्वतंत्र रूप से किया करते थे, अब सब क़बीलों के सामूहिक मामले घोषित कर दिये गये और उनका प्रबंध एथेंस में बैठी एक आम परिषद् को सौंप दिया गया। इस प्रकार अमरीका की किसी भी आदिवासी जाति ने जितना विकास किया था उससे एथेनी लोग एक क़दम आगे बढ़ गये। पड़ोसी क़बीलों के साधारण संघ से आगे बढ़कर अब सारे क़बीले एक ही जन के रूप में घुल-मिल गये। इससे एथेंसवासियों के सामान्य सार्वजनिक क़ानून की एक पूरी व्यवस्था उत्पन्न हो गयी, जो क़बीलों और गोत्रों के क़ानूनी दस्तूर से ऊपर समझी जाती थी। इस व्यवस्था से एथेंस के सभी नागरिकों को नागरिक की हैसियत से कुछ अधिकार व अतिरिक्त क़ानूनी सुरक्षा उन इलाक़ों में भी प्राप्त हो गयी थी जो उनके अपने क़बीलों के इलाक़े न थे। परन्तु यह गोत्र-व्यवस्था की जड़ खोदने की दिशा में पहला क़दम था, क्योंकि यह ऐसे लोगों को नागरिक बनाने की दिशा में पहला क़दम था, जो किसी भी ऐतिकाई क़बीले से सम्बन्धित नहीं थे और जो एथेंसवासियों की गोत्र-व्यवस्था की परिधि

के एकदम बाहर थे और बाहर ही रहे थे। थीसियस को एक और प्रथा जारी करने का श्रेय दिया जाता है। वह यह कि गोत्रों, बिरादरियों और क़बीलों का लिहाज़ किये बग़ैर पूरी जनसंख्या को तीन वर्गों में बांट दिया गया: eupatrides, यानी कुलीन लोग ; geomoroi, यानी ज़मीन जोतनेवाले, और demiurgi, यानी दस्तकार। सार्वजनिक पदाधिकारी बनने का हक़ केवल कुलीन लोगों को दे दिया गया। यह सच है कि सार्वजनिक पदों को कुलीन लोगों के लिए सुरक्षित कर देने के अलावा, यह विभाजन अमल में नहीं आया, क्योंकि वह विभिन्न वर्गों के बीच कोई और क़ानूनी अन्तर नहीं पैदा करता था। फिर भी यह विभाजन बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उससे वे नये सामाजिक तत्त्व सामने आते हैं, जो इस बीच चुपचाप विकसित हो गये हैं। उससे पता चलता है कि गोत्रों में कुछ परिवारों के सदस्यों के ही पदाधिकारी होने की प्रचलित प्रथा अब बढ़कर इन परिवारों का विशेषाधिकार बन गयी, जिसका कोई विरोध नहीं करता। उससे पता चलता है कि ये परिवार, जो अपनी धन-दौलत की वजह से पहले ही शक्तिशाली हो चुके थे, अब अपने गोत्रों के बाहर एक विशेषाधिकारप्राप्त वर्ग के रूप में संयुक्त होने लगे थे, और जायमान राज्य ने इस अधिकारहरण को मान्यता प्रदान की थी। इसके अतिरिक्त, उससे यह भी पता चलता है कि अब खेतिहर तथा दस्तकार के बीच श्रम-विभाजन इतना मज़बूत हो गया था कि वह समाज में गोत्रों तथा क़बीलों के पुराने विभाजन की श्रेष्ठता को चुनौती देने लगा था। और अन्त में, इस विभाजन ने यह घोषित कर दिया कि गोत्र-समाज तथा राज्य-सत्ता के बीच एक ऐसा विरोध है जिसका समन्वय नहीं हो सकता। राज्य स्थापित करने की इस पहली कोशिश का मतलब यही था कि गोत्र के सदस्यों को विशेषाधिकारप्राप्त उच्च वर्ग और अधिकारहीन निम्न वर्ग में बांटकर गोत्र को छिन्न-भिन्न कर दिया गया और अधिकारहीन वर्ग को दो वृत्तिमूलक वर्गों में बांट दिया गया और इस प्रकार उन्हें एक दूसरे के ख़िलाफ़ खड़ा कर दिया गया।

इसके बाद सोलन के समय तक एथेंस का जो राजनीतिक इतिहास रहा है, उसका हमें केवल अपूर्ण ज्ञान है। बैसिलियस का पद धीरे-धीरे लुप्त प्रयोग हो गया और अभिजात वर्ग में से चुने हुए "आर्कोन" राज्य के प्रमुख बन गये। अभिजात वर्ग की शासन-सत्ता बराबर बढ़ती गयी, यहां तक कि ६०० ई० पू० तक वह असह्य हो उठी। साधारण लोगों की स्वतंत्रता का गला घोंटने के दो मुख्य उपाय थे—मुद्रा और सूदख़ोरी। अभिजात वर्ग के

लोग अधिकतर एथेंस में या उसके इर्द-गिर्द रहते थे, जहां समुद्री व्यापार और कभी-कभी इसके साथ-साथ समुद्री डकैती की वदौलत वे मालामाल हो रहे थे और वहुत-सा रुपया-पैसा अपने हाथों में बटोर रहे थे। यहीं से बढ़ती हुई मुद्रा-व्यवस्था, विनिमयहीन अर्थ-व्यवस्था की नींव पर खड़े गांव-समुदायों के परम्परागत जीवन को तेज़ाब की तरह काटती हुई उसमें घुस गयी। गोत्र-संघटन का मुद्रा-व्यवस्था से क़तई मेल नहीं है। जैसे-जैसे ऐतिका के छोटे-छोटे किसान आर्थिक दृष्टि से बरबाद होते गये, वैसे-वैसे गोत्र-व्यवस्था के वे पुराने बंधन भी ढीले पड़ते गये जो पहले उनकी रक्षा किया करते थे। एथेंसवासियों ने इस समय तक रेहन की प्रथा का भी आविष्कार कर लिया था और महाजन की हुंडी और रेहननामा न तो गोत्र का लिहाज़ करते थे, और न बिरादरी का। परन्तु पुरानी गोत्र-व्यवस्था मुद्रा, उधार और नक़दी क़र्ज़ से अपरिचित थी। इसलिए, अभिजात वर्ग के लगातार बढ़ते हुए मुद्रा-शासन ने क़र्ज़दार से महाजन की रक्षा करने के लिए और रुपये वाले द्वारा छोटे किसान के शोषण को मान्यता प्रदान करने के लिए एक प्रथा के रूप में एक नये क़ानून को जन्म दिया। ऐतिका के देहाती इलाक़ों में जगह-जगह खेतों में खम्भे गड़ गये, हर खम्भे पर लिखा रहता था कि जिस ज़मीन पर यह खम्भा खड़ा है, वह इतने रुपये पर अमुक आदमी को रेहन कर दी गयी है। जिन खेतों में ऐसे खम्भे नहीं थे, उनमें से अधिकतर रेहन की मियाद बीत जाने के कारण, या सूद न अदा होने के कारण बिक चुके थे और अभिजातवर्गीय सूदख़ोरों की सम्पत्ति बन गये थे। किसान अपने को बड़ा भाग्यशाली समझता था यदि उसे लगान देनेवाले काश्तकार के रूप में खेत जोतने की इजाज़त मिल जाती थी और अपनी पैदावार के छः में से पांच हिस्से लगान के रूप में नये मालिक को देकर उसे ख़ुद छठे हिस्से के सहारे जीवित रहने दिया जाता था। यही नहीं, जो ज़मीन रेहन कर दी गयी थी, उसकी बिक्री से यदि महाजन का पूरा रुपया अदा नहीं होता था, या यदि क़र्ज़ के बदले में कोई वस्तु गिरवी नहीं रखी गयी थी, तो क़र्ज़दार को महाजन का रुपया अदा करने के लिए अपने बच्चों को विदेश में ग़ुलामों की तरह बेचना पड़ता था। पिता अपने हाथों अपनी सन्तान को बेच डालता था – पितृ-सत्ता और एकनिष्ठ विवाह का पहला नतीजा यही निकला था! और यदि रक्त शोषक इसके बाद भी संतुष्ट नहीं होता था तो वह ख़ुद क़र्ज़दार को ग़ुलाम की तरह बेच सकता था। एथेंसवासियों में सभ्यता के युग का अरुणोदय इसी प्रकार हुआ था।

पहले, जब लोगों के जीवन की परिस्थितियां गोत्र-व्यवस्था के अनुरूप थीं, तब इस तरह की क्रांति का होना असम्भव था, परन्तु अब यह क्रांति हो गयी थी और किसी को पता तक न चला कि वह हुई कैसे। आइये, कुछ क्षणों के लिए फिर इरोक्वा लोगों के बीच लौट चलें। जैसी स्थिति एथेंसवासियों के बीच अपने आप और मानो, बिना उनके कुछ किये ही, और निश्चय ही उनकी इच्छा के विरुद्ध, पैदा हो गयी, वैसी स्थिति इरोक्वा लोगों में अकल्पनीय होती। वहां जीवन-निर्वाह के साधनों के उत्पादन का ढंग, जो वर्ष-प्रति-वर्ष एक सा ही रहता था और जिसमें कभी कोई परिवर्तन नहीं होता था, ऐसा था कि उस में बाहरी कारकों से आरोपित विरोध कभी पैदा ही नहीं हो सकते थे। उत्पादन के उस ढंग में धनी और ग़रीब का विरोध या शोषकों और शोषितों का विरोध उत्पन्न नहीं हो सकता था। इरोक्वा लोगों के लिए प्रकृति को वशीभूत करना अभी दूर की बात थी, परन्तु प्रकृति ने उनके लिए जो सीमाएं निश्चित कर दी थीं, उनके भीतर वे अपने उत्पादन के स्वामी थे। कभी-कभी उनके छोटे-छोटे बागीचों में फ़सल मारी जा सकती थी, कभी-कभार उनकी झीलों और नदियों में मछलियों या जंगलों में शिकार के पशु-पक्षियों की कमी पड़ सकती थी, पर इन बातों के अलावा वे निश्चित रूप से जानते थे कि उनकी जीविकोपार्जन प्रणाली का क्या परिणाम होगा। उसका परिणाम यही हो सकता था कि जीवन-निर्वाह के साधन प्राप्त हों, कभी प्रचुर तो कभी न्यून; परन्तु उसका परिणाम यह नहीं हो सकता था कि समाज में अप्रत्याशित उथल-पुथल मच जाये, गोत्र-व्यवस्था के बंधन छिन्न-भिन्न हो जायें, गोत्रों और क़बीलों के सदस्यों में फूट पड़ जाये और वे परस्पर विरोधी वर्गों में बंटकर आपस में लड़ने लगें। उत्पादन बहुत सीमित दायरे में होता था, परन्तु उत्पादन करनेवालों का अपनी पैदावार पर पूरा नियंत्रण रहता था। वर्बर युग के उत्पादन का यह बड़ा भारी गुण था जो सभ्यता का उदय होने पर नष्ट हो गया। प्रकृति की शक्तियों पर आज मनुष्य को जो प्रबल अधिकार प्राप्त हो गया है और मनुष्यों के बीच जो स्वतंत्र संघबद्धता आज सम्भव है, उनके आधार पर उत्पादन के इस गुण को फिर से प्राप्त करना अगली पीढ़ियों का काम होगा।

यूनानियों में ऐसी हालत नहीं थी। जब पशुओं के रेवड़ तथा ऐश-आराम के सामान कुछ व्यक्तियों की निजी सम्पत्ति बन गये, तब व्यक्तियों के बीच वस्तुओं का विनिमय होने लगा और उपज माल बन गयी। बाद में जो पूरी

क्रान्ति हुई, उसकी जड़ में यही चीज़ थी। पैदा करनेवाले जब अपनी पैदावार का ख़ुद उपभोग करने की स्थिति में न रह गये, बल्कि विनिमय के दौरान उसे हाथ से निकल जाने देने लगे, तो उस पर उनका नियंत्रण जाता रहा। अब उन्हें इस बात का ज्ञान नहीं रहा कि उनकी पैदावार का क्या हुआ, और इस बात की सम्भावना पैदा हो गयी कि पैदावार एक रोज़ पैदा करनेवालों के ख़िलाफ़ इस्तेमाल की जाये, वह उनका शोषण तथा उत्पीड़न करने का साधन बन जाये। अतएव, यदि कोई समाज व्यक्तियों के बीच होनेवाले विनिमय को बन्द नहीं करता, तो वह बहुत दिनों तक ख़ुद अपने उत्पादन का स्वामी नहीं रह सकता और अपनी उत्पादन की प्रक्रिया के सामाजिक परिणामों पर नियंत्रण नहीं बनाये रख सकता।

एथेंसवासियों को शीघ्र ही यह पता चल गया कि व्यक्तिगत विनिमय के आरम्भ हो जाने तथा उपज के माल में बदल जाने के बाद वह कितनी जल्दी पैदावार करनेवाले पर अपना शासन क़ायम कर लेती है। माल के उत्पादन के साथ-साथ व्यक्तिगत खेती भी शुरू हो गयी। लोग अलग-अलग अपने फ़ायदे के लिए ज़मीन जोतने लगे। उसके थोड़े अरसे बाद ज़मीन पर व्यक्तिगत स्वामित्व क़ायम हो गया। फिर मुद्रा आयी, यानी वह सार्वत्रिक माल आया जिसका अन्य सभी मालों से विनिमय हो सकता है। परन्तु जब मनुष्यों ने मुद्रा का आविष्कार किया, तब उन्होंने यह ज़रा भी नहीं सोचा था कि वे एक नयी सामाजिक शक्ति को, ऐसी सार्वत्रिक शक्ति को पैदा कर रहे हैं जिसके सामने पूरे समाज को झुकना पड़ेगा। यह थी वह नयी शक्ति जो अपने पैदा करनेवालों की मर्ज़ी या जानकारी के बिना अचानक पैदा हो गयी थी, और जिसके यौवन की निर्मम प्रचंडता को एथेंसवासियों को झेलना पड़ा।

परन्तु फिर किया क्या जाता? पुराना गोत्र-संघटन मुद्रा के विजय-अभियान को रोकने में न केवल सर्वथा असमर्थ सिद्ध हो चुका था, वह इस बात के भी सर्वथा अयोग्य था कि मुद्रा, महाजन, क़र्ज़दार, और क़र्ज़ की ज़बर्दस्ती वसूली जैसी चीज़ों को अपनी व्यवस्था के अन्दर स्थान दे सके। परन्तु नयी सामाजिक शक्ति उत्पन्न हो चुकी थी, और न तो लोगों की सदेच्छाओं में यह ताक़त थी, और न पुराने ज़माने को फिर से लौटा लाने की उनकी अभिलाषाओं में यह सामर्थ्य थी कि वे मुद्रा और सूदख़ोरी के अस्तित्व को नष्ट कर सकतीं। इसके अलावा, गोत्र-व्यवस्था में अन्य अनेक छोटी-मोटी दरारें पड़ चुकी थीं। ऐतिका के हर कोने में, खासकर एथेंस नगर में गोत्रों और बिरादरियों के

सदस्य आपस में गडमड हो रहे थे। पीढ़ी-दर-पीढ़ी यह चीज़ बढ़ती ही जा रही थी, हालांकि एथेंसवासियों को अपनी ज़मीन तो गोत्र के बाहर बेचने की इजाज़त थी, पर वे अपने घर को गोत्र के बाहर के लोगों के हाथ अब भी नहीं बेच सकते थे। उद्योग-धंधों और व्यापार की उन्नति के साथ-साथ उत्पादन की विभिन्न शाखाओं के बीच – जैसे कि खेती, दस्तकारी, विभिन्न पेशों के अन्दर के विभिन्न शिल्पों, व्यापार, जहाज़रानी, इत्यादि के बीच – श्रम का विभाजन और भी पूर्ण रूप से विकसित हो गया था। अब लोग अपने-अपने पेशों के अनुसार पहले से अधिक सुनिश्चित समूहों में बंट गये थे, और प्रत्येक समूह के कुछ ऐसे नये, समान हित पैदा हो गये थे जिनके लिए गोत्र में या बिरादरी में कोई स्थान न था, और इसलिए उनकी देखभाल करने के लिए नये पदों को क़ायम करना आवश्यक था। दासों की संख्या बहुत बढ़ गयी थी और इस प्रारम्भिक अवस्था में भी वह स्वतंत्र एथेंसवासियों की संख्या से कहीं अधिक रही होगी। गोत्र-व्यवस्था शुरू में दास-प्रथा से अपरिचित थी, और इसलिए वह ऐसे किसी उपाय को नहीं जानती थी जिसके द्वारा दासों के इस विशाल जन-समुदाय को दबाकर रखा जा सकता। और अन्तिम बात यह है कि व्यापार के आकर्षण से बहुत-से अजनबी एथेंस में आकर बस गये थे, क्योंकि वहां धन कमाना ज़्यादा आसान था; पुराने संघटन के अनुसार इन अजनबियों को न तो कोई अधिकार प्राप्त था और न क़ानून उनकी किसी तरह रक्षा करता था। एथेंसवासियों की सहनशीलता की पुरानी परम्परा के बावजूद, ये लोग जनता के बीच व्याघातकारी एवं विदेशी तत्त्व बने हुए थे।

सारांश यह है कि गोत्र-व्यवस्था का अन्त होने को था। समाज दिन-प्रति-दिन उसकी सीमाओं से आगे निकला जा रहा था। समाज की आंखों के सामने जो घोर चिन्ताजनक बुराइयां पैदा हो रही थीं, वह उन्हें भी दूर करने या कम करने में असमर्थ था। परन्तु, इसी बीच चुपचाप राज्य का विकास हो गया था। पहले शहर और देहात के बीच, और फिर शहरी उद्योग की विभिन्न शाखाओं के बीच श्रम का विभाजन हो जाने से जो नये समूह बन गये थे, उन्होंने अपने हितों की रक्षा करने के लिए नये निकाय उत्पन्न कर डाले थे। नाना प्रकार के सार्वजनिक पद संस्थापित किये गये थे। इसके बाद नव-विकसित राज्य को सबसे अधिक स्वयं अपनी सेना की आवश्यकता थी, जो समुद्र में विचरनेवाले एथेंसवासियों के लिए शुरू में नौ-सेना ही हो सकती थी, जो कभी-कभी छोटी-मोटी लड़ाइयों के लिए, और व्यापारी जहाज़ों की

रक्षा करने के काम आ सके। सोलन के पहले ही किसी अनिश्चित समय में छोटे-छोटे प्रादेशिक ज़िले बना दिये गये थे जो नौक्रेरी कहलाते थे। हर क़बीले के क्षेत्र में बारह नौक्रेरी थे और हर नौक्रेरी के लिए आवश्यक था कि वह एक जंगी जहाज़ को साज़-सामान और सैनिकों से लैस करे और इसके अलावा दो घुड़सवारों को तैनात करे। इस व्यवस्था से गोत्र-संघटन पर दो तरफ़ से चोट होती थी : एक तो उससे एक ऐसी सार्वजनिक सत्ता पैदा हो गयी थी जो समूची सशस्त्र जनता से भिन्न थी, दूसरे, वह जनता को सार्वजनिक कामों के लिए पहली बार रक्त-सम्बन्ध के अनुसार नहीं, बल्कि प्रदेश के अनुसार, **समान निवास-स्थान के आधार पर,** अलग-अलग बांटती थी। आगे हम देखेंगे कि इस चीज़ का क्या महत्त्व था।

शोषित जनता को चूंकि गोत्र-व्यवस्था से कोई सहायता नहीं मिल पाती थी, इसलिए वह केवल नये, उभरते हुए राज्य का ही भरोसा कर सकती थी। और राज्य ने सोलन के विधान के रूप में उसकी सहायता की और साथ ही उसके द्वारा पुरानी व्यवस्था के मत्थे अपने को और सुदृढ़ कर लिया। सोलन के विधान ने – हमारा यहां इस बात से कोई सम्बन्ध नहीं है कि यह विधान ५९४ ई० पू० में किस तरह से क़ायम किया गया – सम्पत्ति के अधिकारों का अतिक्रमण करके तथाकथित राजनीतिक क्रांतियों के एक सिलसिले को शुरू कर दिया। अभी तक जितनी भी क्रांतियां हुई हैं, उन सब का उद्देश्य एक तरह की सम्पत्ति की दूसरी तरह की सम्पत्ति से रक्षा करना था। एक प्रकार की सम्पत्ति की रक्षा वे दूसरे प्रकार की सम्पत्ति पर हमला किये बिना नहीं कर सकतीं। महान् फ़्रांसीसी क्रांति में पूंजीवादी सम्पत्ति को बचाने के लिए सामन्ती सम्पत्ति की क़ुरबानी दी गयी। सोलन की क्रांति में क़र्ज़दारों की सम्पत्ति के हित में महाजनों की सम्पत्ति को नुक़सान उठाना पड़ा। क़र्ज़ सीधे-सीधे मंसूख़ कर दिये गये। विस्तृत जानकारी हमारे पास नहीं है, पर सोलन ने अपनी कविताओं में बड़े गर्व के साथ कहा है कि उसने ऋण-ग्रस्त खेतों से रेहन के खम्भे हटवा दिये हैं और उन सब लोगों को स्वदेश लौटने का अवसर दिया है जो क़र्ज़ के कारण घर छोड़कर भाग गये थे, या जो विदेशों में बेच दिये गये थे। ऐसा सम्पत्ति के अधिकारों पर खुले आम चोट करके ही किया जा सकता था। और सचमुच, आरम्भ से अंत तक सभी तथाकथित राजनीतिक क्रांतियों का उद्देश्य यह था कि एक तरह की सम्पत्ति की रक्षा करने के लिए दूसरी तरह की सम्पत्ति को जब्त करें, यूं भी कहा जा सकता है कि चुरा लें।

इसलिए यह बिलकुल सच है कि २,५०० वर्ष से सम्पत्ति के अधिकारों को तोड़ कर ही निजी सम्पत्ति की रक्षा हो सकी है।

किन्तु अब इस बात की भी व्यवस्था करना आवश्यक था कि स्वतंत्र एथेंसवासियों को दोबारा ग़ुलाम न बनाया जा सके। शुरू में इसके लिए कुछ आम ढंग के क़दम उठाये गये। मिसाल के लिए ऐसे क़रारों पर रोक लगा दी गयी जिनमें ख़ुद क़र्ज़दार को रेहन कर दिया जाता था। इसके अलावा एक सीमा निश्चित कर दी गयी जिससे अधिक ज़मीन कोई व्यक्ति नहीं रख सकता था। इसका उद्देश्य यह था कि किसानों की ज़मीन को हड़पने की अभिजात वर्ग की लिप्सा पर कुछ हद तक रोक लगायी जा सके। इसके बाद संवैधानिक संशोधन किये गये जिनमें से निम्नलिखित हमारे लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं:

परिषद् के सदस्यों की संख्या बढ़ाकर चार सौ कर दी गयी जिनमें हर क़बीले से सौ सदस्य होते थे। अतएव, क़बीला अभी भी आधार का काम दे रहा था। परन्तु पुराने विधान का यही एक पक्ष था जो नये राज्य-संविधान का अंग बनाया गया। इसको छोड़कर सोलन ने नागरिकों को चार वर्गों में बाँट दिया था। इस विभाजन का आधार यह था कि किस नागरिक के पास कितनी ज़मीन है और उस ज़मीन की उपज कितनी है। पहले तीन वर्गों में वे लोग रखे गये थे जिनकी ज़मीन से क्रमशः कम से कम पांच सौ, तीन सौ और डेढ़ सौ मेदिम्नस अनाज की उपज होती थी (१ मेदिम्नस क़रीब ४१ लिटर के बराबर होता है)। जिन लोगों के पास इससे भी कम ज़मीन थी, या बिलकुल नहीं थी, उन्हें चौथे वर्ग में रखा गया था। सार्वजनिक पद केवल पहले तीन वर्गों के सदस्यों को ही मिल सकते थे। सबसे ऊंचे पद पहले वर्ग के लोगों को ही मिलते थे। चौथे वर्ग को केवल जन-सभा में बोलने और वोट देने का अधिकार प्राप्त था। परन्तु सारे पदाधिकारी जन-सभा में ही चुने जाते थे, उसी के सामने उन्हें अपने कामों के लिए जवाब देना पड़ता था, और सारे क़ानून भी यही सभा बनाती थी; और इस सभा में चौथे वर्ग का बहुमत था। कुलीनता के विशेषाधिकारों को कुछ हद तक धन-दौलत के विशेषाधिकारों के रूप में पुनःस्थापित कर दिया गया था, परन्तु निर्णायक शक्ति जनता के हाथों में बनी रही। सेना के पुनःसंगठन का आधार भी इन्हीं चार वर्गों को बनाया गया। पहले दो वर्गों से घुड़सवार सेना में भर्ती की जाती थी, तीसरे वर्ग को बख़्तरबन्द पैदल सेना का काम करना पड़ता

था; और चौथे वर्ग के लोगों को या तो साधारण पैदल सेना का काम करना पड़ता था जो बख़्तरबंद नहीं होती थी, या उन्हें नौ-सेना में भर्ती होना पड़ता था और उन्हें शायद वेतन भी मिलता था।

इस प्रकार संविधान में एक नये तत्त्व का, निजी सम्पत्ति का प्रवेश हो गया। नागरिकों के अधिकार और कर्त्तव्य क्रमानुसार ज़मीन की मिल्कियत के आकार के आधार पर निश्चित हुए और जैसे-जैसे मिल्की वर्गों का प्रभाव बढ़ता गया, वैसे-वैसे पुराने रक्तसम्बद्धता पर आधारित समूह पृष्ठभूमि में पड़ते गये। गोत्र-व्यवस्था की एक और हार हुई।

लेकिन, सम्पत्ति के अनुसार राजनीतिक अधिकारों का श्रेणीकरण राज्य के लिए कोई लाज़िमी नियम नहीं था। राज्यों के संवैधानिक इतिहास में उसका भले ही बहुत बड़ा महत्त्व मालूम पड़ता हो, परन्तु बहुत-से राज्य, और उनमें भी सबसे अधिक विकसित राज्य, इस श्रेणीकरण के बिना ही काम चलाते थे। एथेंस में भी उसकी केवल एक अल्पकालिक भूमिका रही। एरिस्तीदीज़ के समय से सारे सार्वजनिक पद सभी तरह के नागरिकों को मिलने लगे थे।

अगले अस्सी वर्षों में एथेनी समाज ने धीरे-धीरे वह मार्ग पकड़ा जिस पर चलते हुए उसने आगे कई शताब्दियों तक विकास किया। सोलन से पहलेवाले काल में सूदख़ोर जिस तरह ज़मीनें हड़प लिया करते थे, उस पर रोक लगायी गयी और उसके साथ-साथ कुछ लोगों के पास बहुत ज़्यादा ज़मीन इकट्ठा होना रोका गया। व्यापार और दस्तकारी तथा उपयोगी कला-कौशल, जो दास-श्रम के आधार पर अधिकाधिक बड़े पैमाने पर संगठित किये जा रहे थे, मुख्य पेशे बन गये। शिक्षा और ज्ञानोद्दीप्ति की प्रगति होने लगी। अपने नागरिक बन्धुओं का पुराने पाशविक ढंग से शोषण करने के बजाय, अब एथेंसवासी मुख्यतया दासों का और अपने ग़ैर-एथेनी संरक्षितों का शोषण करने लगे। चल सम्पत्ति, नक़दी, दासों और जहाज़ों के रूप में सम्पत्ति बराबर बढ़ती जाती थी। परन्तु पहले काल की परिमिति में यदि यह केवल ज़मीन ख़रीदने का साधन थी, तो अब वह स्वयं साध्य बन गयी। एक ओर तो इससे नया, धनी, औद्योगिक एवं व्यापारी वर्ग अभिजात वर्ग की पुरानी शक्ति को सफलतापूर्वक चुनौती देने लगा; तो दूसरी ओर उससे पुरानी गोत्र-व्यवस्था का अन्तिम आधार भी जाता रहा। इस प्रकार पुराने गोत्र, बिरादरियां और क़बीले, जिनके सदस्य सारे ऐतिका में बिखरे हुए थे और आपस में एकदम घुल-मिल गये थे, राजनीतिक संस्थाओं के रूप में बिलकुल बेकार हो गये।

एथेंस के बहुत-से नागरिक किसी भी गोत्र के सदस्य नहीं थे, वे विदेशों से आये लोग थे जो नागरिक तो बना लिये थे, पर रक्तसम्बद्धता पर आधारित पुरानी संस्थाओं में प्रवेश नहीं कर पाये थे। इसके अतिरिक्त, विदेशों से आये ऐसे लोगों की संख्या भी बराबर बढ़ती रही थी जिन्हें केवल संरक्षण प्राप्त था।[134]

इस बीच, पार्टियों का संघर्ष जारी था। अभिजात वर्ग अपने विशेषाधिकारों को फिर से पाने की कोशिश कर रहा था। कुछ समय के लिए उसका प्रभुत्व फिर से क़ायम हो भी गया। लेकिन ५०९ ई० पू० में क्लाइस्थीनीज़ की क्रान्ति के फलस्वरूप उसका अन्तिम रूप से पतन हुआ, और उसके साथ-साथ गोत्र-व्यवस्था के अन्तिम अवशेष भी मिट गये।

क्लाइस्थीनीज़ ने अपने नये संविधान में गोत्रों और बिरादरियों पर आधारित पुराने चार क़बीलों का कोई ख़याल नहीं रखा। उनकी जगह एक बिलकुल नये संगठन ने ले ली, जिसमें नागरिकों को केवल उनके निवास-स्थान के आधार पर बांटा गया था, जैसा कि पहले ही नौक्रेरियों के द्वारा करने की कोशिश की गयी थी। अब निर्णायक बात यह नहीं थी कि कोई किसी रक्तसम्बद्ध समूह का सदस्य है, बल्कि यह थी कि उसका निवास-स्थान क्या है। अब लोगों का नहीं, बल्कि इलाक़ों का विभाजन किया गया। राजनीतिक दृष्टि से अब लोग केवल उस इलाक़े के पुछल्ले बन गये जिसमें वे रहते थे।

पूरा ऐतिका एक सौ स्वशासित पुरों में बांट दिया गया। वे देम कहलाते थे। प्रत्येक देम के नागरिक (देमोत) अपना एक मुखिया (देमार्क), एक कोषाध्यक्ष और छोटे-छोटे मामलों को तय का अधिकार रखने वाले तीस न्यायाधीश चुनते थे। हर देम के नागरिकों का अपना अलग मन्दिर और रक्षक देवता या वीर-नायक होता था, जिसके पुजारियों को भी ये नागरिक चुनते थे। देम में सर्वोच्च शक्ति देमोतों की सभा के हाथ में होती थी। मौर्गन ने सही ही कहा है कि यह अमरीका की स्वशासित नगरपालिका का मूल रूप था। आधुनिक राज्य अपने विकास के शिखर पर पहुंचकर उसी इकाई पर ख़तम हो जाता है, जिसके साथ एथेंस में नवोदित राज्य ने आरम्भ किया था।

इन दस इकाइयों (देमों) को मिलाकर एक क़बीला बनता था, परन्तु यह क़बीला गोत्र-व्यवस्था पर आधारित पुराने क़बीले (Geschlechtsstamm) से बिलकुल भिन्न था और स्थानिक क़बीला (Ortsstamm) कहलाता था। स्थानिक क़बीला अपना शासन आप चलाने वाली एक राजनीतिक संस्था ही नहीं था,

वह एक सैनिक संस्था भी था। वह एक फ़ीलार्क* या क़बीले का मुखिया चुनता था जिसके हाथ में घुड़सवार सेना की कमान रहती थी, एक टैक्सियार्क चुनता था जिसके हाथ में पैदल सेना की कमान रहती थी, और एक स्ट्रैटिजस चुनता था जिसकी कमान में क़बीले के इलाक़े में भर्ती की गयी पूरी सैनिक टुकड़ी होती थी। इसके अलावा, हर क़बीला पांच जंगी जहाज़ों के लिए नौ-सैनिक तथा उनके नायक देता था। हर क़बीले को ऐतिका के एक वीर-नायक का संरक्षण प्रदान किया जाता था, जो क़बीले का अभिभावक देवता होता और जिसके नाम से क़बीला जाना जाता था। अंतिम बात यह है कि स्थानिक क़बीला एथेंस की परिषद् के लिए ५० सदस्य चुनता था।

कुल मिलाकर जो चीज़ बनी, वह थी एथेंस का राज्य। इसका शासन दस क़बीलों द्वारा चुनी गयी पांच सौ सदस्यों की एक परिषद् चलाती थी। अन्तिम अधिकार जन-सभा के हाथ में था जिसमें एथेंस का प्रत्येक नागरिक भाग ले सकता था और वोट दे सकता था। शासन के विभिन्न विभागों और न्यायालयों का काम आर्कोन तथा दूसरे अधिकारी संभालते थे। एथेंस में ऐसा कोई अधिकारी न था जिसके हाथों में सर्वोच्च कार्यकारी अधिकार सौंप दिया गया हो।

इस नये संविधान का निर्माण करके और बहुत-से आश्रितों को, जिनमें से कुछ बाहर से आये लोग थे और कुछ मुक्त हुए दास, नागरिक श्रेणी में प्रवेश देकर गोत्र-व्यवस्था की संस्थाओं को सार्वजनिक जीवन से हटा दिया गया। वे निजी संस्थाएं और धार्मिक सोसाइटियां बनकर रह गयीं। परन्तु उनका नैतिक प्रभाव, प्राचीन गोत्र-व्यवस्था काल के परम्परागत विचार और धारणाएं बहुत दिनों तक जीवित रहीं और बहुत धीरे-धीरे मिटीं। राज्य की एक अन्य की संस्था से यह बात स्पष्ट हो गयी।

हम यह देख चुके हैं कि राज्य का एक आवश्यक गुण यह है कि वह एक ऐसी सार्वजनिक सत्ता है जो आम जनता से अलग होती है। उस समय एथेंस में केवल एक मिलीशिया (जन-सेना) और एक नौ-सेना थी जिनके लिए सीधे जनता में से ही लोगों को भर्ती किया जाता था और जनता ही इन सैनिकों को अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित करती थी। ये सेनाएं बाहरी दुश्मनों से देश की हिफ़ाज़त करती थीं और दासों पर, जो इस समय तक आबादी की बहुसंख्या बन गये थे, अंकुश रखती थीं। नागरिकों के लिए यह सार्वजनिक सत्ता शुरू

* प्राचीन यूनानी शब्द "फ़ीला" (क़बीला) से। — सं०

में केवल पुलिस के रूप में प्रकट हुई। पुलिस उतनी ही पुरानी चीज है जितना पुराना राज्य है। यही कारण है कि अठारहवीं सदी के भोले फ़्रांसीसी लोग civilized राष्ट्रों की नहीं, बल्कि policed राष्ट्रों की चर्चा किया करते थे (nations policées)*। इस प्रकार, अपना राज्य स्थापित करने के साथ-साथ, एथेंसवासियों ने पुलिस की भी स्थापना कर डाली, जिसमें तीर-कमान से लैस पैदल और घुड़सवार दोनों तरह के सिपाही – दक्षिणी जर्मनी और स्विट्ज़रलैंड की भाषा में Landjäger – थे। पर ये सारे सिपाही **दास** थे। एथेंस के स्वतंत्र नागरिक पुलिस के काम को इतना नीचा समझते थे कि ख़ुद यह नीच काम करने के बजाय वे सशस्त्र दास के हाथों गिरफ़्तार होना बेहतर समझते थे। यह पुरानी गोत्र-व्यवस्था की मनोवृत्ति का ही परिचायक था। बिना पुलिस के राज्य क़ायम नहीं रह सकता था; परन्तु राज्य अभी पैदा ही हुआ था और इतनी नैतिक प्रतिष्ठा प्राप्त नहीं कर पाया था कि पुलिस के काम को, जो पुराने गोत्र के सदस्यों को अवश्य ही घृणित लगता था, सम्मानित काम में बदल देता।

राज्य, जिसका ढांचा अब मोटे तौर पर तैयार हो गया था, एथेंसवासियों की नयी सामाजिक परिस्थिति के कितना उपयुक्त था, यह इस बात से ज़ाहिर है कि इसके बाद एथेंस में धन-दौलत, व्यापार और उद्योग की बड़ी तेज़ी से तरक़्क़ी हुई। अब जिस वर्ग-विरोध पर सामाजिक और राजनीतिक संस्थाएं आधारित थीं, वह अभिजात वर्ग तथा साधारण जनता का विरोध नहीं था, बल्कि वह दासों और स्वतंत्र लोगों का, आश्रितों और स्वतंत्र नागरिकों का विरोध था। जब एथेंस समृद्धि के शिखर पर था, तब वहां स्वतंत्र एथेनी नागरिकों की कुल संख्या, जिसमें स्त्रियां और बच्चे भी शामिल थे, क़रीब ९०,००० थी; दास स्त्री-पुरुषों की संख्या ३,६५,००० थी और आश्रितों की संख्या – जिनमें विदेशों से आये लोग और ऐसे दास थे जो मुक्त कर दिये गये थे – ४५,००० थी। इस प्रकार, एक बालिग़ पुरुष नागरिक के पीछे कम से कम १८ दास और दो से अधिक आश्रित लोग थे। दासों की इतनी बड़ी संख्या होने का कारण यह था कि उनमें से बहुत-से लोग कारख़ानों में काम करते थे। वहां बड़े-बड़े कमरों में बहुत-से दासों को एक जगह जमा होकर ओवरसियरों की देखरेख में काम करना पड़ता था। व्यापार और उद्योग के

* शब्दश्लेष: «policé» – सभ्य, «police» – पुलिस। – सं०

विकास के साथ-साथ चन्द आदमियों के हाथों में अधिकाधिक दौलत इकट्ठी होती गयी; आम स्वतंत्र नागरिक ग़रीबी के गढ़े में गिर गये और उनके सामने दो ही रास्ते रह गये: या तो दस्तकारी का काम शुरू करें और दास श्रमिकों के साथ होड़ करें, जो नागरिकों की प्रतिष्ठा के ख़िलाफ़ और एक नीच बात समझी जाती थी और जिसमें सफलता प्राप्त करने की भी बहुत कम आशा थी; या पूरी तरह मुहताजी के शिकार हो जायें। उस समय जो परिस्थितियां थीं, उनमें मुहताज होनेवाली बात ही हुई; और चूंकि उनकी ही बड़ी संख्या थी इसलिए उनके साथ-साथ पूरे एथेनी राज्य का ध्वंस हो गया। एथेंस का पतन लोकतंत्र के कारण नहीं हुआ, जैसा कि राजाओं के तलवे चाटनेवाले यूरोपीय स्कूलमास्टर हमें बताना चाहते हैं, उसका पतन दास-प्रथा के कारण हुआ था जिसने स्वतंत्र नागरिक के श्रम को तिरस्कार की बात बना दिया था।

एथेंसवासियों के बीच राज्य का जिस प्रकार उदय हुआ, वह आम तौर पर राज्य के निर्माण का एक ठेठ उदाहरण है। कारण कि एक तो वह अपने शुद्ध रूप में हुआ था और उसमें बाहरी या अन्दरूनी बल-प्रयोग ने बाधा नहीं डाली थी (पिसिस्त्रेतस द्वारा सत्तापहरण का काल बहुत जल्दी ख़तम हो गया था, और बाद में उसका कोई चिह्न न रह गया था), दूसरे, वह सीधे गोत्र-समाज से उत्पन्न राज्य के एक अतिविकसित रूप का, अर्थात् लोकतांत्रिक गणराज्य के विकास का उदाहरण है और अन्तिम बात यह कि सभी आवश्यक बातों की हमें पर्याप्त जानकारी है।

६

रोम में गोत्र और राज्य-सत्ता

रोम की स्थापना के विषय में जिस कथा की परम्परा है, उसके अनुसार वहां पहली बस्ती कतिपय लैटिन गोत्रों ने बसायी थी (कथा में उनकी संख्या सौ बतायी गयी है), जो एक क़बीले में संयुक्त थे। उसके बाद शीघ्र ही एक सैबीलियन क़बीला वहां आकर रहने लगा। उसमें भी सौ गोत्र थे। अन्त में एक तीसरा क़बीला भी, जिसमें भिन्न-भिन्न प्रकार के तत्त्व शामिल थे, आकर उन लोगों के साथ रहने लगा और इसमें भी सौ गोत्र थे। इस पूरी कथा पर पहली नज़र डालते ही यह बात बिलकुल साफ़ हो जाती है कि यहां गोत्र के सिवा शायद ही किसी चीज़ को प्राकृतिक उपज माना जा सकता है, और ख़ुद गोत्र भी प्रायः एक मातृ-गोत्र की शाखा होता था और यह मातृ-गोत्र अभी भी पुराने निवास-स्थान में मौजूद होता था। क़बीलों में उनके कृत्रिम रूप से गठित होने के चिह्न मौजूद थे, फिर भी अधिकतर उनमें ऐसे तत्त्व शामिल थे जो एक दूसरे के रक्त-सम्बन्धी होते थे और उन्हें पुराने दिनों के उन क़बीलों के नमूने पर गठित किया गया था, जिनको बनावटी ढंग से नहीं बनाया गया था, बल्कि जिनका स्वाभाविक विकास हुआ था। यह असम्भव नहीं है कि इन तीन क़बीलों में से हर एक के केन्द्र में कोई न कोई पुराना प्राकृतिक क़बीला रहा हो। क़बीले तथा गोत्र के बीच की कड़ी बिरादरी थी, जिसमें दस गोत्र होते थे, और वह यहां क्यूरिया कहलाती थी। अतएव उनकी कुल संख्या तीस थी।

इसे सब मानते हैं कि रोमवासियों का गोत्र और यूनानियों का गोत्र, दोनों एक ही प्रकार की संस्था थे। यदि यूनानियों का गोत्र उसी सामाजिक इकाई का सिलसिला था, जिसका आदिम रूप हमें अमरीका के इंडियनों के यहां देखने को मिलता है, तो ज़ाहिर है कि रोमन गोत्र के बारे में भी यही बात सही है। इसलिए उसकी चर्चा हम अधिक संक्षेप में कर सकते हैं।

कम से कम नगर के अति-प्राचीन काल में रोमन गोत्र का निम्नलिखित संघटन था:

१. एक दूसरे की सम्पत्ति विरासत में पाने का गोत्र के सदस्यों को पारस्परिक अधिकार था। सम्पत्ति गोत्र के भीतर ही रहती थी। यूनानी गोत्र की तरह रोमन गोत्र में भी चूंकि पितृ-सत्ता क़ायम हो चुकी थी, इसलिए मातृ-परम्परा के लोग इस अधिकार से अलग रखे जाते थे। बारह पट्टिकाओं वाले क़ानून के अनुसार, जिससे अधिक पुराने रोम के किसी लिखित क़ानून को हम नहीं जानते[135], जायदाद पर सबसे पहले मृत व्यक्ति की प्राकृत सन्तान का दावा होता था। यदि किसी व्यक्ति की प्राकृत सन्तान नहीं होती थी तो सम्पत्ति "एग्नेटों" को (यानी पितृ-परम्परा के रक्त-सम्बन्धियों को) मिलती थी। "एग्नेटों" के न होने पर सम्पत्ति पर मृत व्यक्ति के गोत्र के सदस्यों का अधिकार होता था। हर हालत में सम्पत्ति गोत्र के भीतर ही रहती थी। यहां हम देखते हैं कि धन-दौलत के बढ़ जाने तथा एकनिष्ठ विवाह की प्रथा के प्रचलित हो जाने के कारण गोत्र-व्यवस्था के व्यवहार में धीरे-धीरे कुछ नये क़ानूनों और नियमों का प्रयोग होने लगता है। पहले गोत्र के सभी सदस्यों का मृत व्यक्ति की सम्पत्ति पर समान अधिकार होता था। फिर व्यवहार में यह अधिकार "एग्नेटों" तक ही सीमित कर दिया गया। यह शायद बहुत समय पहले की बात है, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। बाद में यह अधिकार केवल मृत व्यक्ति की सन्तान तथा उनके पुरुष वंशजों तक ही सीमित रह गया। पर ज़ाहिर है कि बारह पट्टिकाओं में उत्तराधिकार की यह व्यवस्था विपरीत क्रम में दिखायी देती है।

२. हर एक गोत्र का अपना सामूहिक क़ब्रिस्तान होता था। जब क्लौदिया नामक कुलीन गोत्र रेगिली से रोम में बसने के लिए आया तो उसको शहर में ज़मीन का एक टुकड़ा और एक सामूहिक क़ब्रिस्तान मिला। औगस्तस के काल में भी जब ट्यूटोबुर्ग के जंगल में वारस मारा गया तो उसके सिर को रोम में लाकर gentilitius tumulus* में दफ़नाया गया, जिसका मतलब यह है कि उसके गोत्र (क्विंक्टीलिया गोत्र) का उस काल में भी अपना अलग क़ब्रगाह था।

३. गोत्र के सदस्य मिल-जुलकर धार्मिक अनुष्ठान और समारोह करते थे। ये sacra gentilitia** काफ़ी विख्यात हैं।

४. गोत्र के सदस्य गोत्र के भीतर विवाह नहीं कर सकते थे। रोम में

* गोत्र का क़ब्रिस्तान। — सं०

** गोत्र के धार्मिक अनुष्ठान। — सं०

इस प्रतिबंध ने कभी लिखित क़ानून का तो रूप नहीं प्राप्त किया, पर एक प्रथा के रूप में लोग उसे मानते रहे। रोम के असंख्य विवाहित जोड़ों के नामों में जिन्हें आज हम जानते हैं, एक भी जोड़ा ऐसा नहीं है जिसमें पति और पत्नी दोनों के गोत्र का नाम एक हो। विरासत के नियम से भी यही बात सिद्ध होती है। विवाह हो जाने पर स्त्री "एग्नेटों" के अधिकार से वंचित हो जाती थी, अपने गोत्र से अलग हो जाती थी, और उसका या उसके बच्चों का उसके पिता अथवा पिता के भाइयों की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं रहता था। कारण कि यदि ऐसी व्यवस्था न होती तो उसके पिता के गोत्र की सम्पत्ति गोत्र के बाहर चली जाती। ज़ाहिर है कि इस नियम में केवल उसी हालत में कोई तुक हो सकती है जब हम यह मानकर चलें कि स्त्री को स्वयं अपने गोत्र के किसी सदस्य से विवाह करने की इजाज़त नहीं थी।

५. गोत्र का ज़मीन पर सम्मिलित स्वामित्व होता था। आदिम काल में, जब क़बीले की ज़मीन का पहली बार विभाजन हुआ, सदा यही नियम था। लैटिन क़बीलों में हम पाते हैं कि ज़मीन पर कुछ हद तक क़बीले का स्वामित्व था, कुछ हद तक गोत्र का, और कुछ हद तक अलग-अलग कुटुम्बों का, जो ज़ाहिर है कि उस समय एक परिवार मात्र नहीं हो सकते थे। कहा जाता है कि सबसे पहले रोमुलस ने अलग-अलग व्यक्तियों को क़रीब एक-एक हेक्टर (दो जुगेरा) फ़ी आदमी के हिसाब से ज़मीन बांटी थी। लेकिन इसके बाद भी हम पाते हैं कि कुछ ज़मीन गोत्र के पास रहीं। राजकीय भूमि की बात तो अलग ही है जिसको लेकर रोमन गणराज्य का सारा अन्दरूनी इतिहास बनता-बिगड़ता रहा।

६. गोत्रों के सदस्यों का कर्त्तव्य होता था कि वे एक दूसरे की सहायता और रक्षा करें। लिखित इतिहास में इस नियम के कुछ इने-गिने अवशेष ही मिलते हैं। रोमन राज्य ने शुरू से ही इतनी प्रचंड शक्ति का परिचय दिया था कि क्षतिपूर्त्ति की ज़िम्मेदारी उसके कंधों पर आ गयी। जब एप्पियस क्लौदियस गिरफ़्तार किया गया तब उसके पूरे गोत्र ने, और यहां तक कि उसके व्यक्तिगत शत्रुओं ने भी, शोक मनाया था। दूसरे प्युनिक युद्ध के समय[130] विभिन्न गोत्र अपने सदस्यों को, जो बन्दी बना लिये गये थे, रिहा कराने के वास्ते धन जमा करने के लिए एक हुए थे; लेकिन सीनेट ने ऐसा करने की मनाही कर दी थी।

७. गोत्र के सदस्यों को अधिकार था कि वे गोत्र के नाम का प्रयोग करें। यह नियम सम्राटों के काल तक लागू रहा। जो दास मुक्त कर दिया जाता था उसको पहले के अपने मालिकों के गोत्र का नाम धारण करने की अनुमति दे दी जाती थी पर उसे गोत्र के सदस्य के अधिकार नहीं मिलते थे।

८. गोत्र को अधिकार होता था कि अजनबियों को अपने सदस्य बना ले। यह उन्हें किसी परिवार का सदस्य बनाकर किया जाता था (अमरीकी इंडियनों में भी यही प्रथा थी)। परिवार का सदस्य बन जाने पर उन्हें गोत्र की सदस्यता भी मिल जाती थी।

९. मुखियाओं को चुनने और पद से हटाने के अधिकार का कहीं ज़िक्र नहीं मिलता। परन्तु रोम के प्रारम्भिक काल में चूंकि निर्वाचित राजा से लेकर नीचे तक के सभी पदों को चुनाव अथवा नामज़दगी के द्वारा भरा जाता था, और चूंकि विभिन्न क्यूरियाएं अपने पुरोहितों को भी ख़ुद चुनती थीं, इसलिए हमारे लिए यह मान लेना उचित होगा कि गोत्रों के मुखियाओं (principes) को भी इसी तरह चुना जाता रहा होगा – भले ही उन्हें एक ही परिवार से चुनने का नियम पूरी तरह क्यों न माना जाता रहा हो।

ऐसे थे रोमन गोत्र के अधिकार। एक पितृ-सत्ता में पूर्ण संक्रमण को छोड़कर यह हू-ब-हू वही चित्र है जो इरोक्वा गोत्र के अधिकारों और कर्त्तव्यों के बारे में हमें मिला था। यहां भी "इरोक्वा हमें साफ़ दिखायी पड़ता है"।*

रोम की गोत्र-व्यवस्था को लेकर सबसे अधिक अधिकारी इतिहासकारों में भी आज तक कैसा मत-भ्रम फैला हुआ है, इसका उदाहरण देखिए। गणतांत्रिक तथा औगस्तस के युग में रोमन व्यक्तिसूचक नामों के विषय में मोम्मसेन ने जो प्रबंध लिखा है ('रोम सम्बन्धी अनुसंधान', बर्लिन, १८६४, खंड १), उसमें उन्होंने कहा है:

> "गोत्र के नाम का न केवल गोत्र के सभी पुरुष सदस्य प्रयोग करते हैं, जिनमें गोत्र द्वारा अंगीकृत और संरक्षित लोग भी शामिल हैं, बल्कि स्त्रियां भी उसका प्रयोग करती हैं। हां, केवल दासों को गोत्रों के नाम का इस्तेमाल करने का हक़ नहीं होता... क़बीला" (मोम्मसेन ने यहां gens का अनुवाद क़बीला किया है) "... एक ऐसा जन-समुदाय होता है जिसके सदस्यों को एक ही पूर्वज – वास्तविक, ग्रहीत अथवा कल्पित – का वंशज समझा जाता है, और उसे समान रीति-रिवाज, समान क़ब्रिस्तान, और विरासत के समान नियम एकता के सूत्र में बांधे रहते हैं। व्यक्तिगत रूप से स्वतंत्र सभी व्यक्तियों को, और इसलिए स्त्रियों को भी, इसके सदस्यों के रूप में अपना नाम दर्ज कराना पड़ता था। परन्तु किसी विवाहिता स्त्री का गोत्र का नाम निश्चित करने में थोड़ी कठिनाई होती है। ज़ाहिर है कि जब तक यह नियम था कि स्त्रियां अपने गोत्र

* 'मार्क्स और एंगेल्स का अभिलेख'। – सं०

के सदस्यों के सिवा और किसी से विवाह नहीं कर सकतीं, तब तक उनका गोत्र का नाम निश्चित करने में कोई कठिनाई नहीं होती थी, और यह बात भी स्पष्ट है कि एक लम्बे समय तक स्त्रियों के लिए गोत्र के बाहर विवाह करना अपने गोत्र के भीतर विवाह करने के मुक़ाबले बहुत कठिन होता था। छठी शताब्दी तक भी यह gentis enuptio—गोत्र के बाहर विवाह करने का अधिकार—कुछ ख़ास-ख़ास व्यक्तियों को व्यक्तिगत विशेषाधिकार एवं पुरस्कार के रूप में दिया जाता था... परन्तु आदिम काल में जब कभी स्त्रियों का ऐसा विवाह होता होगा, तब उन्हें अपने पति के क़बीले में शामिल कर दिया जाता होगा। इससे अधिक निश्चय के साथ और कोई बात नहीं कही जा सकती कि पुराने धार्मिक विवाह के द्वारा स्त्री पूरी तरह से अपने पति के क़ानूनी एवं धार्मिक समुदाय की सदस्या हो जाती थी, और स्वयं अपने समुदाय को छोड़ देती थी। यह कौन नहीं जानता कि विवाहिता स्त्री अपने गोत्र के सम्बन्धियों की सम्पत्ति पाने और उन्हें अपनी सम्पत्ति देने का अधिकार खो देती है, और वह अपने पति, अपनी सन्तान, और पति के गोत्र के सदस्यों के उत्तराधिकार-समूह में शामिल हो जाती है? और यदि स्त्री का पति उसे अपनी सन्तान के रूप में स्वीकार कर लेता है और उसे अपने परिवार में शामिल कर लेता है, तब वह उसके गोत्र से कैसे अलग रह सकती है?" (पृ० ८—११)।

इस प्रकार, मोम्मसेन का कहना है कि रोमन स्त्रियां शुरू में केवल अपने **गोत्र के भीतर** ही विवाह करने की स्वतन्त्रता रखती थीं; अतः उनके कथनानुसार रोमन गोत्र अन्तर्विवाही था, बहिर्विवाही नहीं। यह मत, जोकि दूसरी तमाम जातियों के अनुभव के ख़िलाफ़ जाता है, प्रधानतया लिवी के केवल एक अंश पर आधारित है, जिस पर बहुत विवाद है। लिवी की पुस्तक (खंड ३६, अध्याय १६) के इस अंश में कहा गया है कि रोम नगर की स्थापना के ५६८ वें वर्ष में, यानी १८६ ई० पू० में सीनेट ने यह आदेश जारी किया था:

«uti Feceniae Hispalae datio, deminutio, gentis enuptio, tutoris optio item esset quasi ei vir testamento dedisset; utique ei ingenuo nubere liceret, neu quid ei qui eam duxisset, ob id fraudi ignominiaeve esset»—

"फ़ेसेनिया हिस्पल्ला को अपनी सम्पत्ति को चाहे जिसे दे देने का, उसे कम करने का, गोत्र के बाहर विवाह करने का और एक अभिभावक चुनने का, उसी प्रकार अधिकार होगा, जिस प्रकार उस हालत में होता यदि उसका" (मृत) "पति वसीयत के द्वारा उसे यह अधिकार दे गया होता; उसे किसी स्वतंत्र नागरिक के साथ विवाह कर लेने की इजाज़त

दी जाती है और जो पुरुष उसके साथ विवाह करेगा, उसके लिए यह दुराचरण या बेइज़्ज़ती की बात नहीं समझी जायेगी।"

निस्सन्देह यहां फ़ेसेनिया को, जोकि मुक्त हुई दासी है, गोत्र के बाहर विवाह करने की इजाज़त दी गयी है। और इसमें भी कोई शक नहीं कि इस अंश के अनुसार पति को यह हक़ था कि वह वसीयत के द्वारा अपनी मृत्यु के बाद अपनी पत्नी को गोत्र के बाहर विवाह करने की इजाज़त दे। परन्तु, प्रश्न है कि **किस** गोत्र के बाहर?

यदि हर स्त्री को अपने गोत्र के भीतर विवाह करना पड़ता था, जैसा कि मोम्मसेन मानकर चलते हैं, तो वह विवाह के बाद भी उसी गोत्र में रहती थी। परन्तु, एक तो अभी यही सिद्ध करना बाक़ी है कि गोत्र में अन्तर्विवाह की प्रथा थी। दूसरे, यदि स्त्री को अपने गोत्र के भीतर विवाह करना पड़ता था, तो पुरुष के लिए भी यही आवश्यक था, वरना उसे पत्नी प्राप्त नहीं हो सकती थी। तब इसका मतलब यह होता है कि वसीयत के द्वारा पुरुष अपनी पत्नी को एक ऐसा अधिकार दे सकता था जिसका उपभोग स्वयं उसे भी उपलब्ध नहीं था। क़ानूनी नज़र से यह एक बिलकुल बेसिर-पैर की बात है। मोम्मसेन भी यह महसूस करते हैं और इसलिए यह अटकल लगाते हैं:

> "बहुत सम्भव है कि गोत्र के बाहर विवाह करने के लिए न केवल अधिकृत व्यक्ति की, बल्कि गोत्र के सभी सदस्यों की अनुमति लेना आवश्यक था" (पृ० १०, टिप्पणी)।

एक तो मोम्मसेन ने यहां एक बहुत ही स्थूल कल्पना की है। दूसरे, यह अनुमान उपरोक्त उद्धरण के स्पष्ट शब्दों के ख़िलाफ़ जाता है। फ़ेसेनिया को यह अधिकार उसके **पति के स्थान पर** सीनेट दे रही है। फ़ेसेनिया का पति उसे जो अधिकार दे सकता था, सीनेट उसे उससे न तो कम दे रही है, और न ज़्यादा। परन्तु सीनेट जो कुछ दे रही है, वह एक **निरपेक्ष** अधिकार है जिस पर किसी तरह का बंधन या शर्त नहीं है, जिससे कि यदि फ़ेसेनिया इस अधिकार का उपयोग करती है तो उसके नये पति को कोई परेशानी न उठानी पड़े। बल्कि सीनेट वर्तमान और भावी कौंसिलों और प्रीटरों को यह आदेश भी देती है कि वे इस बात का ध्यान रखें कि इस अधिकार का उपयोग करने के कारण फ़ेसेनिया को कोई असुविधा न हो। इसलिए मोम्मसेन जो बात मानकर चले हैं, उसे कदापि अंगीकार नहीं किया जा सकता।

फिर, मान लीजिए कि कोई औरत किसी दूसरे गोत्र के सदस्य से विवाह कर लेती है, पर इसके बाद भी अपने गोत्र की ही सदस्या बनी रहती है। उपरोक्त उद्धरण के अनुसार ऐसी सूरत में उसके पति को यह अधिकार होगा कि वह अपनी पत्नी को उसके गोत्र के बाहर विवाह करने की इजाज़त दे दे। मतलब यह कि पति को एक ऐसे गोत्र के मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार होगा जिसका कि वह ख़ुद सदस्य नहीं है। यह बात इतनी अतर्कसंगत है कि उसके बारे में और कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है।

ऐसी हालत में हमारे सामने यह मानकर चलने के सिवा और कोई चारा नहीं रहता कि अपने विवाह के द्वारा स्त्री ने एक अन्य गोत्र के पुरुष से विवाह किया था और ऐसा करके वह तुरन्त अपने पति के गोत्र की सदस्या हो गयी थी। ख़ुद मोम्मसेन भी मानते हैं कि ऐसी सूरत में यही होता था। और यह मानते ही पहेली अपने आप सुलझ जाती है। विवाह द्वारा अपने गोत्र से विच्छिन्न और अपने पति के गोत्र में अंगीकृत इस स्त्री की नये गोत्र में एक विशेष स्थिति है। वह गोत्र की सदस्या तो है, पर गोत्र के बाक़ी लोगों की रक्त-सम्बन्धी नहीं है। जिस रूप में वह गोत्र में अंगीकृत है, उसका ध्यान रखते हुए उस पर यह रोक नहीं लगायी जा सकती कि वह अपने इस नये गोत्र के भीतर विवाह न करे, जिसमें उसने विवाह करके ही प्रवेश किया है। इसके अलावा वह गोत्र के विवाह-समूह में अंगीकृत की गयी है और अपने पति की मृत्यु पर उसकी, अर्थात् गोत्र के एक सह-सदस्य की सम्पत्ति का एक भाग पाने की अधिकारिणी होती है। इससे अधिक स्वाभाविक और क्या व्यवस्था हो सकती है कि सम्पत्ति को गोत्र के बाहर न जाने देने के वास्ते स्त्री के लिए यह आवश्यक बना दिया जाये कि वह अपने पहले पति के गोत्र के ही किसी सदस्य से विवाह करे, और अन्य किसी गोत्र के सदस्य से विवाह न करे? परन्तु यदि इस नियम के अपवादस्वरूप कोई व्यवस्था करनी है, तो इसकी इजाज़त देने का हक़ उस आदमी से, यानी स्त्री के पहले पति से, अधिक और किसको होगा जो अपनी सम्पत्ति उसके लिए छोड़ गया है? जिस समय वह अपनी सम्पत्ति का एक भाग अपनी पत्नी के नाम वसीयत करता है और साथ ही उसे इस बात की इजाज़त दे डालता है कि वह चाहे तो विवाह के द्वारा, या विवाह के परिणामस्वरूप, यह सम्पत्ति किसी और गोत्र को हस्तांतरित कर दे, उस समय वही इस सम्पत्ति का मालिक था; यानी वह अक्षरशः केवल अपनी सम्पत्ति का ही निपटारा कर रहा था। जहां तक स्त्री और पति के गोत्र के

साथ उसके सम्बन्ध का मामला है, उसे गोत्र में—स्वेच्छापूर्वक विवाह करके—लानेवाला था उसका पति। अतएव, यह बात भी बिलकुल स्वाभाविक मालूम पड़ती है कि स्त्री को एक नया विवाह करके इस गोत्र को छोड़ देने की इजाज़त देने वाला उचित व्यक्ति उसका पति ही हो सकता है। सारांश यह कि ज्यों ही हम रोमन गोत्र के अन्तर्विवाही होने की अजीब धारणा त्याग देते हैं, और ज्यों ही हम मौर्गन की तरह उसे मूलतः बहिर्विवाही मान लेते हैं, त्यों ही यह सारा मामला बहुत सीधा और साफ़ मालूम पड़ने लगता है।

अन्त में एक और भी मत है, जिसके अनुयायियों की संख्या शायद सबसे अधिक है। इस मत के माननेवालों का कहना है कि लिवी के उपरोक्त उद्धरण का अर्थ केवल यह है

> "कि मुक्त की हुई दासियां (libertae), बिना विशेष इजाज़त के e gente enubere" (गोत्र के बाहर विवाह) "नहीं कर सकतीं और न कोई ऐसा क़दम उठा सकती हैं, जिसका सम्बन्ध capitis diminutio minima* से हो और जिसके परिणामस्वरूप liberta गोत्र से अलग हो जाये।" (लांगे, 'रोमन पुरावशेष', बर्लिन, १८५६, खंड १, पृ० १९५; वहां हुशके का ज़िक्र करते हुए लिवी के उपरोक्त उद्धरण पर टिप्पणी की गयी है।)

यदि यह धारणा सही है तो लिवी के उद्धरण से रोम की स्वतंत्र स्त्रियों की स्थिति के बारे में और भी कम प्रमाण मिलता है, और तब यह कहने का और भी कम आधार रह जाता है कि रोम की स्वतंत्र स्त्रियां केवल अपने गोत्र के भीतर विवाह करने के लिए बाध्य थीं।

Enuptio gentis—इन शब्दों का इसी एक अंश में प्रयोग हुआ है। रोम के सम्पूर्ण साहित्य में और कहीं ये शब्द नहीं मिलते। Enubere शब्द, जिसका अर्थ बाहर विवाह करना होता है, लिवी की रचना में ही केवल तीन जगहों पर मिलता है, पर कहीं भी उसका प्रयोग गोत्र के संदर्भ में नहीं किया गया है। अतः इस एक उद्धरण के आधार पर ही अजीबोग़रीब ख़याल पैदा हुआ कि रोम की स्त्रियों को केवल अपने गोत्र के भीतर विवाह करने की इजाज़त थी। परन्तु इस बात की बिलकुल पुष्टि नहीं की जा सकती। क्योंकि या तो इस उद्धरण में मुक्त कर दी गयी दास स्त्रियों पर लगाये गये विशेष प्रतिबंधों का ज़िक्र है, और ऐसी हालत में इससे जन्मना स्वतंत्र स्त्रियों (ingenuae) के बारे में कुछ साबित नहीं होता और या यह उद्धरण जन्मना स्वतंत्र स्त्रियों

* पारिवारिक अधिकारों की रंच-मात्र भी हानि।—सं०

से भी सम्बन्धित है और इस सूरत में इससे यही साबित होता है कि स्त्रियां सामान्यतः गोत्र के बाहर विवाह करती थीं और विवाह होने पर वे अपने पतियों के गोत्रों में सम्मिलित हो जाती थीं। इसलिए यह उद्धरण मोम्मसेन के मत के विरुद्ध जाता है और मौर्गन के मत को पुष्ट करता है।

रोम की स्थापना के लगभग तीन सौ वर्ष बाद भी गोत्र के बंधन इतने मज़बूत थे कि फ़ेबियन नामक एक कुलीन गोत्र सीनेट से आज्ञा लेकर पड़ोस के वीई नामक नगर पर अकेले ही चढ़ाई कर सका था। कहा जाता है कि तीन सौ छः फ़ेबियन चढ़ाई करने निकले थे और रास्ते में घात लगाये हुए दुश्मन के हाथों मारे गये। केवल एक लड़का ज़िन्दा बचा, जिससे गोत्र की वंश-परंपरा चली। जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं, दस गोत्रों को मिलाकर एक बिरादरी बनती थी, जो रोम में क्यूरिया कहलाती थी और उसे यूनानी बिरादरी से अधिक महत्त्वपूर्ण ज़िम्मेदारियां मिली हुई थीं। हर एक क्यूरिया के अलग धार्मिक रीति-रिवाज, पवित्र स्मृतिचिह्न और पुरोहित होते थे। पुरोहितों को सामूहिक रूप में रोम का पुरोहित मंडल कहा जाता था। दस क्यूरियाओं से एक क़बीला बनता था जो शुरू में, अन्य लैटिन क़बीलों की तरह, शायद ख़ुद अपना मुखिया – सेनानायक तथा मुख्य पुरोहित – चुना करता था। तीन क़बीले मिलकर रोमन जाति – populus romanus – कहलाते थे।

इस प्रकार, रोमन जाति में केवल वे लोग ही शामिल हो सकते थे जो किसी गोत्र के, और इसलिए किसी क्यूरिया और क़बीले के सदस्य थे। इस जाति का पहला संविधान निम्नलिखित था। सार्वजनिक मामलों का संचालन सीनेट के हाथ में था। सीनेट के सदस्य, जैसा कि पहले पहल निबूहर ने सही-सही बताया था, तीन सौ गोत्रों के मुखिया होते थे। गोत्रों के बुज़ुर्ग होने के नाते वे पिता, patres, कहलाते थे, और सामूहिक रूप से – सीनेट (जिसका अर्थ है वयोवृद्ध लोगों की परिषद्, क्योंकि senex शब्द का मतलब है वयोवृद्ध)। यहां भी चूंकि हर गोत्र के मुखिया को आम तौर पर एक ख़ास परिवार में से चुनने की प्रथा थी, इसलिए इन परिवारों के रूप में पहला वंशगत अभिजात वर्ग पैदा हो गया। ये परिवार अपने को पेट्रीशियन, अर्थात् कुलीन परिवार कहते थे और दावा करते थे कि सीनेट का सदस्य होने तथा अन्य विभिन्न पदों पर नियुक्त किये जाने का अधिकार केवल उन्हीं को है। यह बात कि कुछ समय बाद जनता ने इस दावे को स्वीकार कर लिया और वह एक वास्तविक अधिकार बन गया, इस पौराणिक कथा में कही जाती

है कि प्रथम सीनेटरों तथा उनके वंशजों को रोमुलस ने पेट्रीशियन पद प्रदान किये थे और इस पद के विशेषाधिकार। एथेंस की bulê की भांति, रोमन सीनेट को भी बहुत-से मामलों में फ़ैसला देने का अधिकार था; और अधिक महत्त्वपूर्ण मामलों में, विशेषत: नये क़ानूनों को बनाने के बारे में, प्रारम्भिक बहस सीनेट में होती थी और निर्णय जन-सभा में किया जाता था, जो comitia curiata (क्यूरिया-सभा) कहलाती थी। सभा में हर क्यूरिया के सदस्य एकसाथ बैठते थे, और क्यूरियाओं में शायद हर गोत्र के सदस्य भी एकसाथ बैठते थे। सवालों पर फ़ैसला करते समय तीसों क्यूरियाओं में से हर एक का एक वोट होता था। क्यूरियाओं की यह सभा क़ानून बनाती थी या रद्द करती थी, rex (तथाकथित राजा) समेत सभी ऊंचे पदाधिकारियों को चुनती थी, युद्ध की घोषणा करती थी (परन्तु सुलह सीनेट करती थी), और जिन मामलों में रोमन नागरिकों को मृत्यु-दंड मिला होता था, उन सभी की अपील सर्वोच्च न्यायालय के रूप में सुनती थी। अन्त में सीनेट तथा जन-सभा के साथ-साथ "रेक्स" होता था, जिसे ठीक यूनानी "बैसिलियस" के समान समझना चाहिए, और जो उस तरह का निरंकुश राजा कदापि नहीं था, जैसा कि मोम्मसेन ने उसे बना दिया है।* वह सैनिक मुखिया का, मुख्य पुरोहित का और कुछ न्यायालयों में अध्यक्ष का पद भी रखता था। वह कोई दीवानी काम नहीं करता था। सेनानायक के रूप में अनुशासन क़ायम रखने के अधिकार तथा न्यायालयों के अध्यक्ष के नाते उनके दंडादेशों को क्रियान्वित करने के अधिकार के सिवा उसका नागरिकों के जीवन पर, उनकी स्वतंत्रता पर और उनकी सम्पत्ति पर कोई

---

* लैटिन भाषा का rex शब्द कैल्टिश-आयरिश भाषा के righ (क़बीले का मुखिया) और गौथिक भाषा के reiks का पर्याय है। जर्मन भाषा के शब्द Fürst (अंग्रेज़ी भाषा में first और डेन भाषा में förste) की तरह, इस शब्द का भी शुरू में अर्थ था गोत्र या क़बीले का मुखिया। इसका एक सबूत यह है कि चौथी शताब्दी तक गौथ लोगों के पास बाद के ज़माने के राजा के लिए, पूरी जाति के सैनिक मुखिया के लिए, एक विशेष शब्द हो गया था – thiudans। बाइबिल के उलफ़िला के अनुवाद में अर्दाशीर और हेरोड को कभी reiks नहीं कहा गया है, बल्कि thiudans के नाम से पुकारा गया है, और सम्राट टाइबीरियस के साम्राज्य को reiki नहीं, बल्कि thiudinassus कहा गया है। गौथिक "थियुडान्स", या जैसा कि हम प्राय: ग़लत ढंग से उसका अनुवाद करते हैं, राजा थियुडैराइक्स, थियोडोरिक, अर्थात् डाईट्रिख – में ये दोनों शब्द साथ-साथ चलते हैं। (एंगेल्स का नोट।)

अधिकार न था। रेक्स का पद वंशगत नहीं था। इसके विपरीत, शुरू में, रेक्स का चुनाव हुआ करता था। शायद पिछला रेक्स उसे नामज़द करता था और क्यूरियाओं की सभा उसका चुनाव करती थी, तथा एक दूसरी सभा बुलाकर उसका विधिपूर्वक अभिषेक किया जाता था। उसे गद्दी से हटाया जा सकता था, यह टारक्वीनियस सुपर्बस की कहानी से सिद्ध हो जाता है।

वीर-काल के यूनानियों की तरह, तथाकथित राजाओं के काल के रोमन लोग भी गोत्रों, बिरादरियों तथा क़बीलों पर आधारित और उनसे उत्पन्न एक सैनिक लोकतंत्र में रहते थे। यद्यपि यह सच है कि कुछ हद तक इन क्यूरियाओं और क़बीलों का गठन बनावटी ढंग से हुआ था, परन्तु साथ ही उन्हें उस समाज के सच्चे और प्राकृतिक नमूने पर बनाया गया था जिसमें ये क्यूरिया और क़बीले पैदा हुए थे, और जो समाज अभी भी उनके चारों ओर मौजूद था। और हालांकि उस समय तक पेट्रीशियन कुलीनों का, जो कि स्वाभाविक रूप से विकसित हुए थे, काफ़ी ज़ोर हो गया था, और हालांकि रेक्स लोग धीरे-धीरे अपने अधिकारों का दायरा बढ़ाने की कोशिश कर रहे थे, फिर भी इससे संविधान का प्रारम्भिक तथा बुनियादी स्वरूप नहीं बदलता; और मुख्य बात यही है।

इस बीच रोम नगर तथा रोमन इलाक़े की आबादी काफ़ी बढ़ गयी थी, एक तो आप्रवास के कारण और दूसरे इस कारण कि विजय के फलस्वरूप यह इलाक़ा बढ़ गया था और उसमें विजित ज़िलों के, जो मुख्यतया लैटिन ज़िले के रहनेवाले भी शामिल हो गये थे। यह सारी नयी प्रजा (संरक्षितों को हम अभी छोड़ देते हैं) पुराने गोत्रों, क्यूरियाओं और क़बीलों के बाहर थी और इसलिए populus romanus – असली रोमन जनता – का भाग नहीं थी। ये लोग व्यक्तिगत रूप से स्वतंत्र थे; वे ज़मीन के मालिक हो सकते थे, और वे कर देने के लिए तथा सैनिक सेवा प्रदान करने के लिए बाध्य थे। परन्तु वे लोग किसी पद के अधिकारी नहीं थे, न वे क्यूरियाओं की सभा में भाग ले सकते थे, और न ही जीती हुई राजकीय ज़मीन में से उन्हें कोई हिस्सा मिलता था। ये प्लेबियन – निम्न जन – थे जिनको कोई सार्वजनिक अधिकार प्राप्त नहीं थे। चूंकि उनकी संख्या लगातार बढ़ती जाती थी, उनको सैनिक शिक्षा मिलती थी और उनके पास हथियार भी थे, इसलिए वे उस पुराने populus के लिए एक ख़तरा बन गये, जिसने अब अपनी पांतों को ऐसा समेट लिया था कि कोई उनमें घुस नहीं सकता था। इसके अलावा मालूम पड़ता है कि populus तथा

प्लेबियनों के बीच ज़मीन का काफ़ी समान बंटवारा हुआ था, जबकि व्यापारिक एवं औद्योगिक दौलत, जो अभी अधिक नहीं थी, मुख्यतया प्लेबियनों के पास थी।

रोम के इतिहास के पुराणोक्त आरम्भ के घने अंधकार से आवृत्त होने के कारण – उन क़ानूनी शिक्षा पाये हुए लेखकों के व्याख्या करने के बुद्धिवादी-व्यवहारवादी प्रयासों और वर्णनों ने इस अंधकार को और भी घना कर दिया है, जिनकी कृतियां हमारी स्रोत-सामग्री का काम देती हैं – निश्चित रूप से यह बताना असम्भव है कि पुरानी गोत्र-व्यवस्था को जिस क्रान्ति ने नष्ट किया, वह कब, क्यों और कैसे हुई थी। इस सम्बन्ध में हम निश्चय के साथ केवल एक बात कह सकते हैं और वह यह कि इस क्रांति की जड़ में प्लेबियनों और populus का संघर्ष था।

नये संविधान ने, जिसका निर्माता रेक्स सर्वियस टुल्लियस कहा जाता है और जो यूनानी नमूने के, विशेषकर सोलन के नमूने पर आधारित था, एक नयी जन-सभा की स्थापना की, जिसमें भाग लेने या न लेने का अधिकार populus और प्लेबियनों दोनों को विना किसी भेदभाव के इस आधार पर होता था कि वे सैनिक सेवा प्रदान करते थे या नहीं। आबादी के तमाम पुरुषों को जो सैनिक सेवा प्रदान करने के लिए बाध्य थे, दौलत के आधार पर छः वर्गों में बांट दिया गया था। पहले पांच वर्गों के लिए न्यूनतम साम्पत्तिक अर्हता यह थी: पहला वर्ग – एक लाख एस्से; दूसरा वर्ग – ७५ हज़ार एस्से; तीसरा वर्ग – ५० हज़ार एस्से; चौथा वर्ग – २५ हज़ार एस्से; पांचवां वर्ग – ११ हज़ार एस्से। द्यूरो दे ला माल के अनुसार ये क्रमशः लगभग १४,०००; १०,५००; ७,०००; ३,६०० और १,५७० मार्क के बराबर होते थे। छठा वर्ग सर्वहारा का था जिनके पास इससे भी कम सम्पत्ति थी और जिन्हें न कर देना पड़ता था और न जिनके लिए सेना में काम करना आवश्यक था। नयी जन-सभा में, जिसे सेंटुरियाओं की सभा (comitia centuriata) कहते थे, नागरिक लोग सैनिकों की तरह सौ-सौ की टुकड़ियों (सेंटुरियाओं) में भाग लेते थे और हर सेंटुरिया का एक वोट होता था। पहला वर्ग ८० सेंटुरियाएं भेजता था, दूसरा वर्ग २२, तीसरा वर्ग २०, चौथा वर्ग २२, पांचवां वर्ग ३०, और छठा वर्ग भी औचित्य के ख़याल से १ सेंटुरिया भेजता था। इनके अलावा घुड़सवारों की १८ सेंटुरियाएं होती थीं, जिनमें सबसे अधिक धनी लोग लिये जाते थे। कुल मिलाकर १९३ सेंटुरियाएं होती थीं। बहुमत प्राप्त करने के लिए ९७ वोट ज़रूरी होते थे। मगर केवल घुड़सवारों और पहले वर्ग को ही मिलाकर ९८ वोट हो जाते थे और इस प्रकार नयी जन-सभा

में उनका बहुमत था। जब उनमें मतभेद नहीं होता था, तब वे दूसरे वर्गों से पूछते तक नहीं थे और ख़ुद फ़ैसला कर डालते थे जो वैध माना जाता था।

अब पुरानी क्यूरियाओं की सभा के सभी राजनीतिक अधिकार (कुछ नाम मात्र के अधिकारों को छोड़कर) सेंटुरियाओं की इस नयी सभा को मिल गये। और तब जैसा एथेंस में हुआ था, क्यूरियाओं और उनके अंग, गोत्रों की हैसियत गिरकर महज़ लोगों की निजी तथा धार्मिक संस्थाओं जैसी हो गयी, और इस रूप में वे बहुत दिन तक घिसटते हुए चलते रहे, हालांकि क्यूरियाओं की सभा को लोग जल्दी ही भूल गये। गोत्रों पर आधारित पुराने तीन क़बीलों को भी राज्य से बहिष्कृत करने के लिए चार प्रादेशिक क़बीलों की स्थापना की गयी, जिनमें से हर एक शहर के चौथाई हिस्से में रहता था और कुछेक राजनीतिक अधिकारों का उपभोग करता था।

इस प्रकार रोम में भी, तथाकथित राजतंत्र के ख़त्म होने से पहले ही, व्यक्तिगत रक्त-सम्बन्धों पर आधारित पुरानी समाज-व्यवस्था नष्ट कर दी गयी और उसकी जगह पर प्रादेशिक विभाजन तथा धन-सम्पत्ति के भेदों पर आधारित एक नये संविधान की, एक वास्तविक राज्य-संविधान की स्थापना की गयी। यहां सार्वजनिक सत्ता उन नागरिकों के हाथ में थी जिनपर सैनिक सेवा का दायित्व था और उसकी धार न केवल दासों के ख़िलाफ़ थी, बल्कि उस तथाकथित सर्वहारा के भी ख़िलाफ़ थी जो सैनिक सेवा से बहिष्कृत और शस्त्रधारण करने के अधिकार से वंचित था।

जब अन्तिम रेक्स, टारक्वीनियस सुपर्बस को, जो सत्ता हड़प कर सचमुच राजा बन बैठा था, निकाल बाहर किया गया और रेक्स की जगह पर, समान अधिकार वाले दो सेनानायक (कौंसिल) नियुक्त किये गये (इरोक्वा लोगों में भी यही चलन था), तब नये संविधान का और आगे विकास ही किया गया था। राज्य के पदों तथा राज्य की भूमि के बंटवारे को लेकर चलनेवाले पेट्रीशियनों और प्लेबियनों के समस्त संघर्ष समेत रोमन गणराज्य का पूरा इतिहास-चक्र इसी संविधान की परिधि के भीतर चलता रहा। इसी परिधि के भीतर कुलीन अभिजात वर्ग अन्तिम रूप से उन बड़े-बड़े भूमि और धन पतियों के वर्ग में घुल-मिल गया, जिन्होंने धीरे-धीरे किसानों की, जिन्हें सैनिक सेवा ने बरबाद कर दिया था, सारी ज़मीन हड़प ली और इस तरह हासिल हुई विशाल नयी ज़मीनों पर उन्होंने दासों से खेती कराना शुरू किया, इटली को वीरान कर दिया, और इस तरह न केवल सम्राटों के शासन के लिए, बल्कि उनके बाद आनेवाले जर्मन बर्बरों के लिए भी रास्ता खोल दिया।

७

कैल्ट तथा जर्मन लोगों में गोत्र

आज भी विभिन्न जांगल तथा बर्बर जातियों में गोत्र-व्यवस्था की जो संस्थाएं कमोबेश शुद्ध रूप में पायी जाती हैं, या एशिया की सभ्य जातियों के प्राचीन इतिहास में ऐसी संस्थाओं के जो चिह्न मिलते हैं, उनकी हम यहां स्थानाभाव के कारण चर्चा नहीं कर सकते। ये संस्थाएं या उनके चिह्न सभी जगह मिलते हैं। कुछ उदाहरण देना काफ़ी होगा। जिस समय गोत्र को पहचाना तक नहीं गया था, उसी समय उस आदमी ने गोत्र की ओर इंगित किया था और मोटे तौर पर उसका सही-सही वर्णन किया था जिसने गोत्र को ग़लत ढंग से समझने की सबसे अधिक कोशिश की है। हमारा मतलब मैक-लेनन से है, जिन्होंने कि काल्मिक, चेरकेसियन व सामोयेद* में और वारली, मगर तथा मणीपुरी नाम की तीन भारतीय जातियों में गोत्र-व्यवस्था के पाये जाने के बारे में लिखा था। हाल में मक्सिम कोवालेव्स्की ने इस व्यवस्था का वर्णन किया है, जो उन्हें पृशाव, खे़वसुर, स्वान तथा काकेशिया के अन्य क़बीलों में मिली है। हम यहां पर कैल्ट तथा जर्मन लोगों में गोत्र-व्यवस्था के अस्तित्व के विषय में कुछ संक्षिप्त टिप्पणियों तक ही अपने को सीमित रखेंगे।

प्राचीनतम कैल्ट क़ानूनों में, जो आज भी मिलते हैं, हम गोत्र-व्यवस्था को अभी भी जीता-जागता पाते हैं। आयरलैंड में जहां अंग्रेज़ों ने ज़बर्दस्ती इस व्यवस्था को नष्ट कर डाला है, वह आज भी, कम से कम सहजभावी रूप से लोक-मानस में जीवित है। स्काटलैंड में वह पिछली शताब्दी के मध्य तक पूरे ज़ोर पर थी; और वहां भी उसे अंग्रेज़ों के हथियार, क़ानून और अदालत ही धराशायी कर सके।

---

* सुदूर उत्तर में रहनेवाली नेनेत्स जाति का पुराना नाम। — सं०

वेल्स के पुराने क़ानून, जो अंग्रेज़ों द्वारा वेल्स की विजय[137] के कई सदी पहले, ग्यारहवीं सदी के बाद के लिखे हुए नहीं हैं, यह बताते हैं कि तब भी कहीं-कहीं पूरे गांव के गांव सामुदायिक खेती करते थे, हालांकि ऐसी खेती अपवाद और एक पुरानी ग्राम प्रथा के अवशेष के रूप में ही होती थी। हर परिवार के पास पांच एकड़ ज़मीन ख़ुद जोतने-बोने के लिए होती थी और एक और खेत अन्य परिवारों के साथ मिलकर जोतने के लिए होता था, जिसकी उपज सब में बंट जाती थी। आयरलैंड और स्काटलैंड के इन से मिलते-जुलते उदाहरणों के आधार पर यदि वेल्स के इन गांव-समुदायों का मूल्यांकन किया जाये तो इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता कि वे वास्तव में या तो गोत्र हैं या गोत्रों की उपशाखाएं, हालांकि सम्भव है कि वेल्स के क़ानूनों की फिर से खोज करने पर, जो मैं इस वक़्त समय की कमी के कारण नहीं कर सकता (मेरी टिप्पणियां १८६९ की हैं[138]), इसकी प्रत्यक्ष पुष्टि न हो। परन्तु वेल्स और आयरलैंड की सामग्री से जिस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण मिल जाता है, वह यह है कि ग्यारहवीं सदी तक कैल्ट लोगों में युग्म-परिवार के स्थान पर एकनिष्ठ विवाह पूरी तौर पर क़ायम नहीं हुआ था। वेल्स में विवाह-सम्बन्ध तभी अटूट माना जाता था जब विवाह हुए सात वर्ष पूरे हो जायें, या यों कहें कि सात वर्ष तक विवाह को किसी भी समय नोटिस देकर भंग किया जा सकता था। सात वर्ष पूरे होने में यदि केवल तीन रातों की कमी होती तो भी विवाहित जोड़ा अलग हो सकता था। ऐसा होने पर जोड़े की सम्पत्ति दोनों के बीच बंट जाती थी; स्त्री सारी सम्पत्ति के दो हिस्से करती थी, पुरुष एक हिस्सा चुन लेता था। फ़र्नीचर बांटने के कुछ बहुत ही अजीब नियम थे। यदि पुरुष विवाह को भंग करता था तो उसे स्त्री का दहेज और कुछ अन्य वस्तुएं वापस कर देनी पड़ती थीं। यदि स्त्री विच्छेद चाहती थी तो उसे कम मिलता था। बच्चों में से दो पुरुष को मिलते थे, एक – मझोला बच्चा – स्त्री को मिलता था। यदि स्त्री तलाक़ के बाद फिर विवाह करती थी और उसका पहला पति उसे वापस ले जाने के लिए पहुंच जाता था, तो स्त्री को, भले ही वह अपने नये पति की शय्या पर एक पैर रख चुकी हो, लौट जाना पड़ता था। परन्तु यदि स्त्री पुरुष सात साल तक साथ रह चुके होते थे, तो उन्हें विवाह की रस्म पूरी हुए बिना भी पति-पत्नी समझा जाता था। विवाह के पहले लड़कियों के कौमार्य बनाये रखने के बारे में कोई ख़ास सख़्ती नहीं बरती जाती थी, और न इसकी मांग की जाती थी। इस मामले से सम्बन्ध

रखनेवाले नियम बहुत ही हल्के ढंग के हैं और पूंजीवादी नैतिकता के विपरीत हैं। यदि कोई स्त्री व्यभिचार करती थी तो उसके पति को उसे पीटने का हक़ होता था। जिन तीन सूरतों में पत्नी को पीटने पर भी पति दंड का भागी नहीं समझा होता था, उनमें से एक यह थी। परन्तु पत्नी को पीटने के बाद पति और किसी तरह की क्षतिपूर्ति की मांग नहीं कर सकता था, क्योंकि

> "किसी अपराध का या तो प्रायश्चित्त हो सकता है या उसका बदला लिया जा सकता है, पर दोनों चीजें एकसाथ नहीं हो सकतीं।"[139]

जिन कारणों से स्त्री बंटवारे में अपने अधिकारों को अक्षुण्ण रखती हुई पुरुष को तलाक़ दे सकती थी वे अत्यन्त भिन्न प्रकार के होते थे–पुरुष के मुंह से बदबू आना भी तलाक़ देने के लिए पर्याप्त कारण समझा जाता था। क़ानून में मुआवज़े की उस रक़म का महत्त्वपूर्ण स्थान था जो पहली रात के हक़ के लिए क़बीले के मुखिया या राजा को देनी पड़ती थी (इस हक़ को gobr merch कहते थे, जिससे मध्ययुगीन शब्द marcheta और फ़ांसीसी शब्द marquette निकले हैं)। स्त्रियों को जन-सभाओं में वोट देने का अधिकार था। इस सब के साथ-साथ यदि हम इन बातों पर भी विचार करें कि आयरलैंड में भी इसी प्रकार की हालत पायी जाती थी; वहां भी अस्थायी विवाहों का चलन था, और तलाक़ के समय स्त्री को सुनिश्चित विशेषाधिकार तथा विशेष सुविधाएं मिलती थीं, यहां तक कि उसे घरेलू काम का भी मुआवज़ा मिलता था; अन्य पत्नियों के साथ एक "बड़ी पत्नी" भी होती थी और किसी मृत व्यक्ति की सम्पत्ति बांटने के समय उसकी वैध तथा अवैध सन्तानों में कोई भेद नहीं किया जाता था,–यदि हम इन तमाम बातों को ध्यान में रखें तो हमारे सामने युग्म-विवाह का एक ऐसा चित्र उपस्थित होता है जिसकी तुलना में उत्तरी अमरीका में प्रचलित विवाह पद्धति कठोर मालूम पड़ती है। परन्तु सीज़र के समय जो जाति यूथ-विवाह की अवस्था में रहती थी, वह यदि ग्यारहवीं सदी में युग्म-विवाह की अवस्था में हो तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

आयरलैंड के गोत्र (उसे वे sept कहते थे, और क़बीले को clainne कहते थे) के अस्तित्व का प्रमाण और उसका वर्णन केवल क़ानून की प्राचीन पुस्तकों में ही नहीं मिलता है, बल्कि सत्रहवीं सदी के उन अंग्रेज़ न्यायशास्त्रियों

की रचनाओं में भी मिलता है जो आयरलैंड की क़बायली ज़मीनों को इंगलैंड के राजा की ज़मीनों में बदल डालने के लिए आयरलैंड भेजे गये थे। उसके पहले ज़मीन क़बीले या गोत्र गण की सम्मिलित सम्पत्ति होती थी, सिवाय उस ज़मीन के जिसे मुखियाओं ने अपना निजी इलाक़ा बना लिया था। जब गोत्र का कोई सदस्य मर जाता था और इसलिए जब कोई परिवार भंग हो जाता था, तब गोत्र का मुखिया (अंग्रेज़ न्यायशास्त्री उसे caput cognationis कहते थे) गोत्र की सारी ज़मीन को बाक़ी परिवारों के बीच नये सिरे बांट देता था। यह विभाजन मोटे तौर पर उन्हीं नियमों के अनुसार होता रहा होगा जो जर्मनी में पाये जाते थे। आयरलैंड में आज भी ऐसे कुछ गांव मिल जाते हैं जिनमें लोगों का ज़मीनों पर अधिकार मिला-जुला क़ब्ज़ा होता है। इसे rundale प्रथा कहते हैं। चालीस या पचास साल पहले ऐसे गांवों की संख्या बहुत बड़ी थी। जो ज़मीन कभी गोत्र की सामूहिक सम्पत्ति थी, पर जिसे अंग्रेज़ विजेताओं ने हड़प लिया था, उस पर खेती करने वाला हर काश्तकार, जो अब व्यक्तिगत रूप से खेती करता है, अपने खेत के लिए लगान देता है। परन्तु इसके बावजूद गांव की समस्त कृषियोग्य भूमि और चरागाहों को इकट्ठा कर लिया जाता है और फिर ज़मीन के उपजाऊपन तथा स्थिति का ख़याल रखते हुए उन्हें पट्टियों में, या जैसा कि वे मोज़ेल प्रदेश में कहलाती हैं, «Gewanne» में बांट लेते हैं, और गांव के हर किसान को हर «Gewann» में हिस्सा मिलता है। खादर भूमि और चरागाह का इस्तेमाल सम्मिलित रूप से होता है। सिर्फ़ पचास साल पहले की बात है कि समय-समय पर, कभी-कभी हर साल, गांव की ज़मीन का नये सिरे से बंटवारा हो जाता था। ऐसे किसी rundale प्रथा वाले गांव का नक़्शा देखिए तो आपको लगेगा कि मोज़ेल प्रदेश या होख़वाल्ड में खेतिहर परिवारों के किसी जर्मन समुदाय (Gehöferschaft) का नक़्शा देख रहे हैं। गांवों में पाये जानेवाले «factions» (दलों) के रूप में भी गोत्र जीवित हैं। कभी-कभी आयरलैंड के किसान ऐसे दल बनाते पाये जाते हैं जो बिलकुल बेतुके और अर्थशून्य भेदों पर आधारित मालूम पड़ते हैं और अंग्रेज़ों की बिलकुल समझ में नहीं आते। इन दलों का इसके सिवा और कोई उद्देश्य नहीं मालूम पड़ता कि वे एक दूसरे की भरपूर मरम्मत करने के लोकप्रिय खेल के लिए जमा हों। वास्तव में इन दलों द्वारा, उन गोत्रों को कृत्रिम रूप से पुनरुज्जीवित, बाद के काल में प्रतिस्थापित किया गया है जो अब नष्ट हो चुके हैं; वे अपने विशिष्ट ढंग से वंशगत गोत्र-चेतना के नैरन्तर्य को

प्रकट करते हैं। प्रसंगवश यह भी कह दें कि कुछ स्थानों में एक गोत्र के सदस्य आज भी लगभग उसी इलाक़े में रहते पाये जाते हैं जो उनके गोत्र का पुराना इलाक़ा था। उदाहरण के लिए, इस सदी के चौथे दशक में मोनाघन हलक़े के अधिकतर निवासियों में केवल चार पारिवारिक नाम पाये जाते थे। मतलब यह कि इस हलक़े के तमाम लोग चार गोत्रों या क़बीलों के वंशज थे*।

स्काटलैंड में गोत्र-व्यवस्था का पतन १७४५ के विद्रोह के दमन से आरंभ हुआ है।[141] इस व्यवस्था में स्काटलैंड का क़बीला कौनसी कड़ी था, अभी इसकी खोज होना बाक़ी है; परन्तु वह इस व्यवस्था की एक कड़ी था, इसमें कोई सन्देह नहीं है। स्काटलैंड की पहाड़ियों में यह क़बीला क्या चीज़ थी,

---

* आयरलैंड में मैंने कुछ दिन बिताये[140] तो एक बार फिर मुझे इस बात का अहसास हुआ कि इस मुल्क की देहाती आबादी के मन में आज भी किस हद तक गोत्र युग की धारणायें जीवित हैं। ज़मींदार को, जिससे लगान पर ज़मीन लेकर किसान खेती करता है, वह अभी भी एक प्रकार का क़बायली मुखिया समझता है जो सब के हित में खेती की देखभाल करता है, जिसे किसानों से लगान के रूप में ख़िराज पाने का अधिकार है, पर साथ ही जिसका यह कर्त्तव्य भी है कि ज़रूरत पड़ने पर किसानों की मदद करे। इसी तरह, हर ख़ुशहाल आदमी का यह फ़र्ज़ समझा जाता है कि जब भी उसके ग़रीब पड़ोसी मुसीबत में हों, तो वह उनकी मदद करे। यह मदद ख़ैरात नहीं है। क़बीले के ग़रीब सदस्य को क़बीले के धनी सदस्य या क़बीले के मुखिया से यह मदद पाने का हक़ है। इसी कारण अर्थशास्त्री तथा न्यायशास्त्री अक्सर यह शिकायत करते नज़र आते हैं कि आयरलैंड के किसानों के दिमाग़ में पूंजीवादी सम्पत्ति के आधुनिक विचार को बैठाना असम्भव है। आयरलैंड के निवासी यह समझने में बिलकुल असमर्थ हैं कि कोई ऐसी सम्पत्ति भी हो सकती है जिसके केवल अधिकार होते हैं और कर्त्तव्य नहीं होते। कोई आश्चर्य नहीं कि गोत्र-समाज के ऐसे भोले विचारों को लिये हुए आयरलैंड के लोग जब अचानक इंगलैंड या अमरीका के बड़े शहरों में ऐसी आबादी के बीच पहुंच जाते हैं जिसके नैतिक तथा क़ानूनी मानदंड बिलकुल भिन्न ढंग के होते हैं, तब नैतिकता तथा न्याय दोनों के बारे में उनके विचार गड़बड़ घोटाले में पड़ जाते हैं, वे संतुलन खो बैठते हैं और अक्सर उनकी पूरी की पूरी जमातों का नैतिक पतन हो जाता है। (**१८६१ के संस्करण में एंगेल्स का नोट।**)

यह वाल्टर स्कॉट के उपन्यासों को पढ़कर हमारी आंखों के सामने सजीव हो उठता है। मौर्गन के शब्दों में यह

"संगठन और भावना की दृष्टि से गोत्र-व्यवस्था का एक बहुत अच्छा उदाहरण है और इस बात का एक असाधारण प्रमाण है कि गोत्र-जीवन का अपने सदस्यों पर कितना अधिक ज़ोर होता था... उनके कुलवैर और उनकी रक्त-प्रतिशोध की प्रथा, प्रत्येक गोत्र का स्थान विशेष में निवास, ज़मीनों की संयुक्त रूप से जोताई-बोआई, क़बीले के सदस्यों में मुखिया के प्रति और एक दूसरे के प्रति वफ़ादारी की भावना— इन सब में हमें गोत्र की सामान्य और स्थायी विशेषताओं का दर्शन होता है... वंश पुरुष से चलता था। यानी, केवल पुरुषों के बच्चे क़बीले के सदस्य माने जाते थे और स्त्रियों के बच्चे अपने-अपने पिताओं के क़बीले के सदस्य होते थे।"[142]

पिक्ट्स नामक राज-परिवार इस बात का प्रमाण है कि स्काटलैंड में पहले मातृ-सत्ता क़ायम थी। बेडे के अनुसार इस राज-परिवार में उत्तराधिकार मातृ-परम्परा द्वारा प्राप्त होता था। यहां तक कि स्काट और साथ ही वेल्स लोगों में भी इस बात का एक प्रमाण मिलता है कि उनमें कभी पुनालुआन परिवार का चलन था। हमारा मतलब इस बात से है कि मध्य युग तक उनमें पहली रात के अधिकार की प्रथा पायी जाती थी, अर्थात् क़बीले का मुखिया या राजा, पहले के सामूहिक पतियों के अन्तिम प्रतिनिधि के रूप में, हर नव वधू के साथ पहली रात बिताने का दावा कर सकता था और केवल निष्क्रय-धन देकर ही नव दम्पत्ति को इससे छुटकारा मिलता था।

* * *

यह बात निर्विवाद रूप से सच है कि जातियों के प्रव्रजन के समय तक जर्मन लोग गोत्रों में संगठित थे। हमारे युग (ईसा) के कुछ सौ साल पहले ही ये लोग डैन्यूब, राइन, विस्चुला नदियों और उत्तरी सागरों के बीच के इलाक़ों में आकर बसे होंगे। सिम्वरी और ट्यूटन लोग उस समय तक भी पूरे वेग से प्रव्रजन कर रहे थे, और सुएवी लोग सीज़र के समय तक कहीं टिककर नहीं रहते थे। सीज़र ने साफ़-साफ़ कहा है कि ये लोग गोत्रों और सम्बन्धियों (gentibus cognationibusque) के अनुसार बसे थे; और जब gens Julia* के किसी भी

---

*जुलिया गोत्र।—सं०

रोमन के मुंह से gentibus शब्द निकलता है तो उसका एक निश्चित अर्थ होता है, जिसको किसी तरह तोड़ा-मरोड़ा नहीं जा सकता। यह बात सभी जर्मनों के लिए सच है; यहां तक कि जीते हुए रोमन प्रांतों में भी जर्मन लोग गोत्रों के अनुसार ही बसे थे। 'एलामान्नी क़ानून' से यह बात सिद्ध होती है कि डैन्यूब नदी के दक्षिण के जीते हुए प्रदेश में लोग गोत्रों (genealogiae) के अनुसार जाकर बसे[143]। Genealogia शब्द का प्रयोग यहां ठीक उसी अर्थ में हुआ है जिस अर्थ में बाद में "मार्क" या Dorfgenossenschaft* शब्दों का प्रयोग हुआ। हाल में कोवालेव्स्की ने यह मत प्रगट किया था कि ये genealogiae बड़े-बड़े कुटुम्ब-समुदाय थे, जिनमें ज़मीन बंटी हुई थी और जिनसे बाद में चलकर ग्राम-समुदाय बन गये। Fara के बारे में भी यही बात सच हो सकती है। बर्गण्डी और लैंगोबार्ड लोग – पहला एक गौथ क़बीला है और दूसरा हर्मीनोनी या उत्तरी जर्मन क़बीला – यदि ठीक उसी चीज़ के लिए नहीं, तो लगभग उसी चीज़ के लिए इस fara शब्द का प्रयोग करते थे, जिसके लिए 'एलामान्नी क़ानून' में genealogia शब्द का प्रयोग किया गया है। यह चीज़ वास्तव में गोत्र थी अथवा कुटुम्ब-समुदाय यह निश्चय करने के लिए अभी और खोज होना आवश्यक है।

भाषा सम्बन्धी सामग्री से यह बात एकदम साफ़ नहीं होती कि सभी जर्मन गोत्र के लिए एक ही नाम का प्रयोग करते थे या नहीं, और यदि करते थे तो वह नाम क्या था। शब्दरचनाशास्त्र के अनुसार, यूनानी genos और लैटिन gens, गौथ भाषा के kuni तथा मध्योत्तर जर्मन भाषा के künne के समान हैं, और इन सब शब्दों का एक ही अर्थ में प्रयोग होता है। और यह बात कि यूनानी भाषा का gyne, स्लाव शब्द žena, गौथ शब्द qvino, और प्राचीन नोर्स भाषा के kona, kuna – "स्त्री" के ये विभिन्न पर्याय सब एक ही धातु से निकले हैं, मातृसत्ता-काल की ओर इंगित करती है। जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि लैंगोबार्ड तथा बर्गण्डी लोगों में făra नाम पाया जाता है, जो ग्रिम के अनुसार कल्पित धातु fisan – जन्म देना – से निकला है। मेरे विचार से हमें इस शब्द का मूल faran धातु मानना चाहिए, जिसका अर्थ है विचरना या प्रव्रजन करना**। तब fara का मतलब होगा प्रव्रजन करनेवाले दल का एक

* ग्राम-समुदाय। – सं०

** जर्मन भाषा में fahren। – सं०

सुनिश्चित भाग। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि इसमें सगे-सम्बन्धी लोग होते थे। पहले पूर्व की ओर, फिर पश्चिम की ओर कई सदियों तक घूमते रहने के दौरान यह नाम धीरे-धीरे स्वयं गोत्र-समुदाय के साथ जुड़ गया। इसके अलावा गौथ शब्द sibja, एंग्लो-सैक्सन शब्द sib, प्राचीन उत्तर जर्मन भाषा के sippia, sippa – रक्त-सम्बन्धी जन* शब्द से निकले हैं। प्राचीन नोर्स में केवल बहुवचन – sifjar, अर्थात् सम्बन्धीगण है; एकवचन Sif एक देवी का नाम है। अंत में एक और शब्द है, जो 'हिल्डेब्रांड के गीत'[144] में उस स्थल में मिलता है, जहां हिल्डेब्रांड हाडुब्रांड से पूछता है:

"जाति के पुरुषों में तेरा पिता कौन है... अर्थात् तेरा वंश कौनसा है?" («eddo huêlihhes cnuosles du sîs»).

यदि गोत्र के लिए सभी जर्मन एक नाम का प्रयोग करते थे तो बहुत सम्भव है कि यह नाम गौथिक भाषा का kuni हो, क्योंकि न सिर्फ़ गौथ से मिलती-जुलती दूसरी भाषाओं में इसी शब्द का प्रयोग मिलता है, बल्कि kuning – राजा** शब्द भी, जिसका आरम्भ में अर्थ गोत्र या क़बीले का मुखिया था, इसी शब्द से निकला है। Sibja – रक्त-सम्बन्धी जन – शब्द ध्यान देने के योग्य नहीं मालूम पड़ता; कम से कम प्राचीन नोर्स में sifjar का अर्थ केवल रक्त-सम्बन्धी ही नहीं होता है, बल्कि विवाह से सम्बन्धित लोग भी इस शब्द के अन्तर्गत आते हैं। अर्थात् उसके अंतर्गत कम से कम **दो गोत्रों** के सदस्य आते हैं और इस प्रकार sif शब्द का गोत्र के लिए प्रयोग नहीं हो सकता था।

मैक्सिकोवासियों तथा यूनानियों की तरह जर्मनों में भी, घुड़सवार दस्ते तथा पैदल सिपाहियों के शंकु सदृश दस्ते गोत्रों के अनुसार समूहों में बंटकर व्यूह-रचना करते थे। जब तासितुस परिवारों और सम्बन्धियों की बात करते हैं तो वह इस अस्पष्ट शब्द का प्रयोग इसलिए करते हैं कि रोम में उस समय गोत्र एक जीवित संस्था नहीं रह गया था।

तासितुस का वह अंश निर्णायक महत्त्व रखता है जिसमें उसने लिखा है: मामा अपने भांजे को अपना पुत्र समझता है; कुछ लोगों की तो यह तक

---

* जर्मन भाषा में Sippe। – सं०

** जर्मन भाषा में König। – सं०

राय है कि मामा और भांजे का रक्त-सम्बन्ध पिता और पुत्र के सम्बन्ध से अधिक पवित्र और घनिष्ठ है; और चुनांचे जब ओल की मांग की जाती है तब जिस आदमी को इस तरह बंधन में बांधना उद्देश्य होता है, उसके सगे बेटे से उसके भांजे को अधिक ज़्यादा अच्छा बन्धक समझा जाता है। यह प्रथा मातृ-सत्ता का, और इसलिए प्रारम्भिक गोत्र का एक जीवित अवशेष है; और उसका जर्मनों की ख़ास विशेषता के रूप में वर्णन किया गया है।* यदि ऐसे किसी गोत्र का कोई सदस्य अपने किसी वादे की ज़मानत के रूप में अपने सगे बेटे को दे देता था और फिर वचन पूरा नहीं करता था तथा बेटे को उसका दंड भुगतना पड़ता था, तो यह केवल उसके पिता का मामला समझा जाता था। परन्तु यदि किसी आदमी के भांजे की क़ुरबानी हो जाती थी तो वह गोत्र के अति पवित्र नियमों की अवहेलना मानी जाती थी। मामा निकटतम सकुल्य होता था और सबसे अधिक यह उसका कर्त्तव्य था कि वह लड़के या युवक की रक्षा करता, परन्तु वही उसकी मृत्यु के लिए उत्तरदायी हुआ। उसे चाहिए था कि या तो ज़मानत में लड़के को न देता, या अपना

---

* मामा और भांजे के नाते की विशेष घनिष्ठता, जो बहुत-सी जातियों में मातृ-सत्ता के एक अवशेष के रूप में पायी जाती है, यूनानियों में केवल वीर-काल की पुराण-कथाओं में पायी जाती थी। दिओदोरस के खंड ४, अध्याय ३४ में मीलियागेर अपनी मां आल्थिया के भाइयों, थेस्टियस के पुत्रों को मार डालता है। आल्थिया इन हत्याओं को इतना घृणित समझती है कि हत्या करनेवाले को, जो ख़ुद उसका पुत्र है, शाप दे डालती है और प्रार्थना करती है कि उसकी मृत्यु हो जाये। लिखा है कि "देवताओं ने उसकी प्रार्थना सुन ली और मीलियागेर के जीवन का अन्त कर दिया"। इसी लेखक के अनुसार (खंड ४, अध्याय ४३ और ४४) जब हेरक्लीज़ के नेतृत्व में आर्गोनाट्स थ्रेसिया में उतरे तो उन्होंने पाया कि फ़िनियस अपनी दूसरी पत्नी के कहने में आकर अपनी पहली परित्यक्त पत्नी, बोरियेड क्लियोपैट्रा से उत्पन्न दो पुत्रों के साथ लज्जाजनक रूप से दुर्व्यवहार कर रहा है। परन्तु आर्गोनाट्सों में भी कुछ बोरियेड वंश के लोग, यानी क्लियोपैट्रा के भाई थे और जो इस प्रकार दुर्व्यवहारग्रस्त लड़कों के मामा थे। मामाओं ने तुरन्त अपने भांजों की मदद की, उन्हें मुक्त कर दिया, और उनको क़ैद में रखनेवाले पहरेदारों को मार डाला। (**एंगेल्स का नोट।**)

वचन पूरा करता। यदि जर्मनों में गोत्र-संघटन का कोई और चिह्न न भी मिलता, तो केवल यह अंश ही उसका पर्याप्त प्रमाण था।

इससे भी अधिक निर्णायक एक पुराने नोर्स गीत का वह अंश है जिसमें देवताओं के युग की गोधूलि-बेला और महाप्रलय «Völuspâ» का वर्णन है। यह अंश अधिक निर्णायक है क्योंकि यह उपरोक्त अंश से ८०० साल बाद की चीज़ है। इस अंश में, जिसे 'दिव्य-दर्शिणी की भविष्यवाणी' कहा गया है, और जिसमें, जैसा कि बैंग और बुग्गे ने अब सिद्ध कर दिया है, ईसाई धर्म के भी कुछ तत्त्व मिले हुए हैं, बताया गया है कि प्रलय के पहले सर्वव्यापी अनाचार और भ्रष्टाचार का एक युग आता है, जिसका वर्णन इन शब्दों में किया गया है:

«Broedhr munu berjask ok at bönum verdask, munu *systrungar* sifjum spilla».

"भाई भाई से युद्ध करेगा, भाई भाई का सिर काटेगा और **बहनों की सन्तान** रक्त-सम्बन्ध के नाते को तोड़ डालेगी।"

Systrungar शब्द मां की बहन के बेटे के लिए प्रयुक्त हुआ है। कवि की दृष्टि में मौसेरे भाइयों के रक्त-सम्बन्ध को तिलांजलि देना भ्रातृवध के अपराध की चरम सीमा है। यानी चरम सीमा systrungar शब्द पर पहुंचने पर आती है, जो माता के पक्ष के रक्त-सम्बन्ध पर ज़ोर देता है। यदि इस शब्द की जगह पर syskina-börn—यानी भाई व बहन की सन्तान, या syskina-synir – यानी भाई व बहन के बेटे शब्द का प्रयोग किया जाता, तो पहली पंक्ति की तुलना में दूसरी पंक्ति में बात का ज़ोर बढ़ने के बजाय उल्टा घट जाता। इस प्रकार, वाइकिंगों के काल में भी, जबकि «Völuspâ» की रचना हुई थी, स्कैंडीनेविया में मातृ-सत्ता की स्मृति एकदम नष्ट नहीं हुई थी।

परन्तु तासितुस के समय में, कम से कम जर्मनों में जिनसे वह अधिक परिचित था, मातृ-सत्ता की जगह पितृ-सत्ता क़ायम हो गयी थी; बच्चे अपने पिता के उत्तराधिकारी होते थे और उसके बच्चों के अभाव में भाई तथा चाचा और मामा उत्तराधिकारी होते थे। मामा को भी उत्तराधिकार देना उपरोक्त प्रथा से सम्बन्ध रखता है और सिद्ध करता है कि उस समय जर्मनों में पितृ-सत्ता कितनी नयी चीज़ थी। मध्य युग के उत्तर काल में भी हमें मातृ-सत्ता के चिह्न मिलते हैं। इस काल में, विशेषकर भूदासों में, किसी का पिता कौन है, इसका पूर्ण निश्चय न होता था; और इसलिए जब कोई

सामन्त किसी भागे हुए भूदास को किसी शहर से वापस मंगवाना चाहता था तो उदाहरणार्थ आग्सबर्ग, वाज़ल और कैसरस्लौटर्न में उसके लिए ज़रूरी होता था कि वह भूदास की केवल माता के पक्ष के छः निकटतम रक्त-सम्बन्धियों के शपथ-पत्रों द्वारा यह प्रमाणित करे कि वह उसका भूदास था। (मारेर, 'नागरिक विधान', खंड १, पृष्ठ ३८१)।

मातृ-सत्ता का एक और अवशेष था, जो उस समय तक लुप्त होने लगा था और जो रोमवासियों के दृष्टिकोण से समझ में न आने वाली बात थी। वह यह कि जर्मन लोग नारी जाति का बड़ा आदर करते थे। जर्मनों से यदि किसी क़रार को पूरा कराना होता था तो उसका सबसे अच्छा तरीक़ा यह समझा जाता था कि उनके कुलीन परिवारों की लड़कियों को ओल बना लिया जाये। युद्ध के समय जर्मनों की हिम्मत सबसे ज़्यादा इस हौलनाक ख़याल से बढ़ती थी कि यदि उनकी हार हो गयी तो दुश्मन उनकी वहू-बेटियों को पकड़ ले जायेंगे और अपनी दासियां बना लेंगे। जर्मन लोग नारी को पवित्र मानते थे और समझते थे कि वह अनागतदर्शिका होती है। चुनांचे वे सबसे महत्त्वपूर्ण मामलों में स्त्रियों की सलाह पर कान देते थे। ब्रक्टेरिया क़बीले की लिप्पे नदी के किनारे रहनेवाली पुजारिन, वेलेडा, बटाविया के उस पूरे विद्रोह की प्रेरक शक्ति थी, जिसके द्वारा जर्मनों और बेल्जियनों ने सिविलिस के नेतृत्व में गाल प्रदेश में रोमन शासन की नींव हिला दी थी[145]। मालूम पड़ता है कि घर के अन्दर नारियों का एकछत्र राज था। तासितुस कहता है कि औरतों को, बूढ़ों और बच्चों के साथ सारा काम करना पड़ता था, क्योंकि मर्द शिकार करने जाते थे, शराब पीते थे और आवारागर्दी करते थे। परन्तु वह यह नहीं बताता कि खेत कौन जोतता था और चूंकि उसने साफ़-साफ़ कहा है कि दासों को केवल कर देना पड़ता था और उनसे बेगार नहीं लिया जाता था, इसलिए मालूम पड़ता है कि खेती का जो थोड़ा-बहुत काम होता था, उसे मर्द लोगों की बहुसंख्या ही करती थी।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, विवाह का रूप युग्म-परिवार का था जो धीरे-धीरे एकनिष्ठ विवाह में बदलता जा रहा था। अभी एकनिष्ठता का सख़्ती के साथ पालन नहीं किया जाता था क्योंकि विशिष्ट वर्ग के लोगों को कई पत्नियां रखने की इजाज़त थी। (कैल्ट लोगों के विपरीत) जर्मन लोग मोटे तौर पर इस बात पर सख़्ती के साथ ज़ोर देते थे कि लड़कियों का कौमार्य नष्ट न हो। तासितुस इस बात का बड़े उत्साह के साथ ज़िक्र करता है कि

जर्मनों में विवाह का बंधन अटूट समझा जाता था। वह बताता है कि तलाक़ की इजाज़त केवल उसी सूरत में मिलती थी जब स्त्री ने पर-पुरुष के साथ व्यभिचार किया हो। परन्तु तासितुस की रिपोर्ट में अनेक कमियां हैं और इसके अलावा यह बात भी है कि सदाचार का उदाहरण सामने रखकर वह दुराचारी रोमवासियों को नैतिकता का पाठ पढ़ाने की ज़रूरत से ज़्यादा कोशिश करता है। इतनी बात तो हम निश्चय के साथ कह सकते हैं कि जंगलों में रहते हुए जर्मन लोग भले ही सदाचार और नैतिकता के आदर्श रहे हों, पर बाहरी दुनिया का स्पर्श मात्र ही उन्हें यूरोप की दूसरी औसत जातियों के धरातल पर खींच लाने के लिए काफ़ी था। रोमन जीवन के तेज़ भंवर में पड़कर जर्मनों की कठोर नैतिकता के अन्तिम चिह्न, उनकी भाषा से भी अधिक शीघ्रता से मिट गये। इसके लिए तूर्स के ग्रेगरी द्वारा लिखित इतिहास को पढ़ना काफ़ी है। कहने की आवश्यकता नहीं कि जर्मनी के आदिम जंगलों में वह ऊंचे दरजे की ऐयाशी सम्भव नहीं थी, जो रोम में सम्भव थी। इसलिए इस मामले में भी जर्मन लोग रोमवासियों से काफ़ी बेहतर थे, लेकिन यह मानने के लिए जर्मनों को जितेन्द्रिय बना देना आवश्यक नहीं है, क्योंकि कोई भी पूरी की पूरी जाति ऐसी कभी नहीं हुई है।

गोत्र-व्यवस्था से हर आदमी का यह कर्त्तव्य पैदा हुआ कि वह अपने पिता तथा सम्बन्धियों के दुश्मनों को अपना दुश्मन माने और उनके दोस्तों को अपना दोस्त। उसी से "वेरगिल्ड" (wergild) की प्रथा पैदा हुई जिसमें किसी हत्या या चोट के बदले में जुर्माना अदा कर देने से काम चल जाता था और रक्त-प्रतिशोध की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। एक पीढ़ी पहले "वेरगिल्ड" को एक ऐसी प्रथा समझा जाता था जो ख़ास तौर पर जर्मनों में पायी जाती थी; परन्तु अब यह साबित हो चुका है कि रक्त-प्रतिशोध का यह अधिक हल्का रूप सैकड़ों जातियों में पाया जाता था और यह गोत्र-व्यवस्था से उत्पन्न हुआ था। उदाहरण के लिए, अतिथि-सत्कार की प्रथा के समान यह प्रथा भी अमरीकी इण्डियनों में पायी जाती है। जर्मनों में अतिथि-सत्कार की प्रथा का जो वर्णन तासितुस ने दिया है ('जेर्मनिया', अध्याय २१), वह छोटी-मोटी बातों में भी लगभग वही है जो मौर्गन ने अपने इण्डियनों के बारे में दिया है।

एक समय इस बात पर बड़ी गरम और अविराम बहस छिड़ी हुई थी कि तासितुस के समय तक जर्मनों ने खेती की ज़मीन का अन्तिम रूप से विभाजन

कर डाला था या नहीं, और इस प्रश्न से सम्बन्धित तासितुस के इतिहास के अंशों का क्या अर्थ लगाया जाये। पर अब यह बहस ख़त्म हो चुकी है। अब यह साबित हो गया है कि लगभग सभी जातियों में शुरू में पूरा गोत्र, और बाद में सामुदायिक कुटुम्ब मिल-जुलकर ज़मीन जोतता-बोता था और सीज़र ने अपने समय में भी सुएवी लोगों में यह प्रथा देखी थी। बाद में अलग-अलग परिवारों के बीच ज़मीन बांट देने और समय-समय पर फिर से बंटवारा करने की प्रथा जारी हुई। जर्मनी के कुछ भागों में तो खेती की ज़मीन को एक निश्चित अवधि के बाद फिर से बांट देने की यह प्रथा आज तक पायी जाती है। यह सब साबित हो जाने के बाद अब उस बहस में और माथा खपाने की ज़रूरत नहीं रह गयी है। डेढ़ सौ साल के अरसे में यदि जर्मन लोग सामूहिक खेती से – जिसके बारे में सीज़र ने साफ़ शब्दों में कहा है कि सुएवी लोगों में ज़मीन का बंटवारा या व्यक्तिगत खेती नहीं होती थी – आगे बढ़कर तासितुस के काल में हर साल ज़मीन को फिर से बांटने और व्यक्तिगत ढंग से खेती करने की प्रथा पर पहुंच गये थे, तो मानना पड़ेगा कि उन्होंने काफ़ी प्रगति की। इतने कम समय में और बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के इस अवस्था से आगे बढ़कर ज़मीन पर पूरी तौर पर निजी स्वामित्व की अवस्था में पहुंच जाना नितांत असम्भव था। अतएव मैं तासितुस के शब्दों का केवल वही अर्थ लगाता हूं जो उसने लिखा है, और उसने यह लिखा है: वे हर साल खेती की ज़मीन को बदल देते हैं (या फिर से बांट लेते हैं) और ऐसा करने के दौरान काफ़ी सामूहिक ज़मीन बच जाती है। खेती और भूमि के अधिकरण की यह अवस्था जर्मनों की उस काल की गोत्र-व्यवस्था के बिलकुल अनुरूप थी।

उपरोक्त पैराग्राफ़ को मैंने बिना किसी परिवर्तन के उसी रूप में छोड़ दिया है जिस रूप में वह इस पुस्तक के पुराने संस्करणों में छपा है। परन्तु इस बीच सवाल का एक और पहलू सामने आ गया है। कोवालेव्स्की ने यह सिद्ध कर दिया है (देखिए इस पुस्तक का पृष्ठ ४४*) कि मातृसत्तात्मक सामुदायिक परिवार और आधुनिक पृथक् परिवार को जोड़नेवाली बीच की कड़ी के रूप में पितृसत्तात्मक सामुदायिक कुटुम्ब का अस्तित्व सभी जगहों में नहीं तो बहुत अधिक जगहों में रहा है। जब से यह सिद्ध हुआ है तब से बहस

* प्रस्तुत खण्ड, पृष्ठ २०६ – २०७। – सं०

की बात यह नहीं रह गयी है कि ज़मीन सामूहिक सम्पत्ति थी अथवा निजी, — जिस बात को लेकर मारेर और वेट्ज़ के बीच बहस चल रही थी, — बल्कि अब बहस की बात यह है कि सामूहिक सम्पत्ति का उस समय क्या रूप था। इसमें तनिक भी संदेह नहीं हो सकता कि सीज़र के समय में सुएवी लोगों में न केवल भूमि पर सामूहिक स्वामित्व हुआ करता था, बल्कि सब लोग मिलकर साझे की खेती करते थे। इन लोगों की आर्थिक इकाई क्या थी — गोत्र, सामुदायिक कुटुम्ब, या कोई बीच का रक्तसम्बद्ध सामुदायिक समूह, अथवा क्या भूमि की विभिन्न स्थानीय अवस्थाओं के फलस्वरूप ये तीनों ही रूप पाये जाते थे — इस सवाल पर अभी बहुत दिन तक बहस चलती रहेगी। कोवालेव्स्की का कहना है कि तासितुस ने जिन परिस्थितियों का वर्णन किया है, वे परिस्थितियां मार्क या ग्राम-समुदाय के लक्षण नहीं हैं, बल्कि उस सामुदायिक कुटुम्ब के लक्षण हैं जो बहुत बाद में चलकर आबादी के बढ़ जाने के कारण ग्राम-समुदाय में बदल गया।

इसलिए यह दावा किया जाता है कि रोमन काल में जिस इलाक़े में जर्मन रहते थे उसमें, और बाद में जो इलाक़ा उन्होंने रोमन लोगों से छीना, उस में भी जर्मन बस्तियां गांवों के रूप में नहीं, बल्कि बड़े-बड़े सामुदायिक कुटुम्बों के ही रूप में रही होंगी, जिनमें कई पीढ़ियां एकसाथ रहती थीं और जो अपने आकार के अनुसार ज़मीन के बड़े बड़े ख़ित्तों को जोतते थे और इर्दगिर्द के जंगली इलाक़े को अपने पड़ोसियों के साथ मिलकर सामूहिक भूमि — मार्क — के रूप में इस्तेमाल करते थे। यदि यह बात सही मान ली जाये तो खेती की ज़मीन को हर साल बदलने के बारे में तासितुस के इतिहास के अंश को कृषि विज्ञान के अर्थ लेना पड़ेगा, यानी तब यह समझना होगा कि हर सामुदायिक कुटुम्ब हर साल नयी ज़मीन पर खेती करता था और पिछले साल जोती गयी ज़मीन को हल चलाकर ख़ाली छोड़ देता था, या उसे बिलकुल काम में न लाता था। चूंकि आबादी बहुत कम थी, इसलिए जंगली ज़मीन की कोई कमी न होती थी और ज़मीन को लेकर होनेवाले झगड़ों की भी कोई आवश्यकता न थी। कई सदियां बीत जाने के बाद, जब कुटुम्ब के सदस्यों की संख्या इतनी अधिक हो गयी कि उत्पादन की तत्कालीन परिस्थितियों में मिलकर खेती करना असम्भव हो गया, तब कहीं जाकर ये सामुदायिक कुटुम्ब भंग हुए। पहले जो साझे के खेत और चरागाह थे, उन्हें प्रचलित तरीक़े से अलग-अलग कुटुम्बों के बीच बांट दिया गया जो उस समय तक बन गये थे। शुरू में यह

बंटवारा एक निश्चित अवधि के बाद बार-बार होता रहता था, फिर यह एक बार सदा के लिए हो गया, लेकिन जंगल, चरागाह और जलागार सामूहिक सम्पत्ति बने रहे।

जहां तक रूस का सम्बन्ध है, विकास का यह क्रम ऐतिहासिक रूप से पूरी तरह प्रमाणित हो चुका मालूम पड़ता है। जहां तक जर्मनी का और अन्य सभी जार्मनिक देशों का सम्बन्ध है, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि तासितुस के समय तक ग्राम-समुदाय का सिलसिला दिखाने के पुराने ख़याल के मुक़ाबले में यह मत बहुत सी बातों में मूल सामग्री का अधिक अच्छा स्पष्टीकरण करता है और कठिनाइयों को ज़्यादा आसानी से हल करता है। सबसे पुरानी दस्तावेज़ों को – उदाहरण के लिए «Codex Laureshamensis»[146] को – मार्क ग्राम-समुदाय की तुलना में सामुदायिक कुटुम्ब के आधार पर ज़्यादा आसानी से समझा जा सकता है। दूसरी ओर इस मत से नयी कठिनाइयां भी पैदा हो जाती हैं और नयी समस्याएं उठ खड़ी होती हैं, जिन्हें हल करना ज़रूरी है। यह मामला और खोज होने पर ही तय हो सकेगा। परन्तु मैं इस बात से इनकार नहीं कर सकता कि बहुत सम्भव है कि जर्मनी, स्कैण्डिनेविया और इंगलैंड में भी सामुदायिक कुटुम्ब बीच की मंज़िल भी रहा हो।

जहां सीज़र के समय में जर्मनों ने कुछ हद तक अभी हाल बस्ती बनाकर रहना शुरू कर किया था, और कुछ हद तक वे रहने के लिए उपयुक्त स्थानों की तलाश कर रहे थे, वहां तासितुस के समय तक उन्हें बस्तियों में जमकर रहते हुए पूरी एक सदी हो चुकी थी। इससे जीवन निर्वाह के साधनों के उत्पादन में जो उन्नति हुई, वह निर्विवाद है। ये लोग लकड़ी के लट्ठों के बने मकानों में रहते थे; उनके कपड़े अभी तक आदिम जंगलियों के ढंग के थे। वे मोटे ऊनी लबादे और जानवरों की खालें पहनते थे। स्त्रियां और अभिजात लोग अंतर्वस्त्र के लिए लिनेन का प्रयोग करते थे। इन लोगों का भोजन था दूध, मांस, जंगली फल और जैसा कि प्लिनी ने बताया है, जई का दलिया (जो आज भी आयरलैंड तथा स्काटलैंड में कैल्ट लोगों का जातीय भोजन बना हुआ है)। उनका धन उनके मवेशी थे, पर उनकी नस्ल अच्छी नहीं थी – जानवर छोटे, बेढंगे और बिना सींगों के होते थे। उनके घोड़े छोटे-छोटे टट्टुओं जैसे होते थे जो तेज़ नहीं दौड़ सकते थे। मुद्रा बहुत कम थी और उसका यदा-कदा ही इस्तेमाल होता था और वह भी बहुत थोड़ी मात्रा में। केवल

रोमन मुद्रा ही चलती थी। वे लोग सोने या चांदी की चीज़ें नहीं बनाते थे, न वे इन धातुओं को कोई महत्त्व ही देते थे। लोहे की बहुत कमी थी, और कम से कम राइन तथा डैन्यूब नदियों के किनारे रहनेवाले क़बीले, मालूम होता है, अपनी ज़रूरत का सारा लोहा बाहर से मंगाते थे और ख़ुद खनन नहीं करते थे। रूनिक लिपि (जो यूनानी और लैटिन लिपि की नक़ल थी) एक गूढ़ संकेत-लिपि के रूप में महज़ धार्मिक जादू-टोने के लिए इस्तेमाल होती थी। मनुष्य-बलि की प्रथा अभी तक जारी थी। सारांश यह कि उस समय जर्मनों ने बर्बर युग की मध्यम अवस्था से हाल ही में निकलकर उन्नत अवस्था में प्रवेश किया था। जिन क़बीलों का रोमवासियों से सीधा सम्पर्क क़ायम हो गया था और इसलिए जो आसानी से रोम की औद्योगिक पैदावार का आयात कर सकते थे, वे इस कारण ख़ुद धातु तथा कपड़े के उद्योगों का विकास नहीं कर पाये; परन्तु इसमें तनिक भी संदेह नहीं हो सकता कि बाल्टिक सागर के तट पर रहनेवाले, उत्तर-पूर्व के क़बीलों ने इन उद्योगों का विकास कर लिया था। श्लेज़विग के दलदल में ज़िरहबख़्तर के जो टुकड़े मिले हैं – लोहे की लम्बी तलवार, बख़्तर, चांदी का शिरस्त्राण, आदि जो चीज़ें दूसरी सदी के अंत के रोमन सिक्कों के साथ मिली हैं – और जातियों के प्रव्रजन से जर्मनों की बनायी हुई धातु की जो चीज़ें चारों ओर फैल गयी हैं, वे और उनमें वे भी जो रोम की नक़ल हैं, एक अनोखे ढंग की और बहुत बढ़िया कारीगरी की नमूना हैं। जब उन लोगों ने सभ्य रोमन साम्राज्य में प्रवेश किया तो एक इंगलैंड को छोड़ अन्य सभी जगहों में उनके अपने उद्योग ख़तम हो गये। इन उद्योगों का जन्म और विकास बिलकुल एक ढंग से और एक गति से हुआ था। इसका एक अच्छा प्रमाण है कांसे के बने हुए ब्रूच। बर्गण्डी में, रूमानिया में और अज़ोव सागर के तट पर मिले ब्रूचों के नमूनों को ब्रिटेन और स्वीडेन में बने ब्रूचों से मिलाने से मालूम पड़ेगा जैसे सब एक ही कारख़ाने में बने हैं, और इस बात में ज़रा भी संदेह नहीं कि ये सब जर्मन कारीगरी के नमूने हैं।

इन लोगों का संविधान भी बर्बर युग की उन्नत अवस्था के अनुरूप था। तासितुस के अनुसार आम तौर से मुखियाओं (principes) की एक परिषद् होती थी जो कम महत्त्व के मामलों को तय कर देती थी और अधिक महत्त्व के प्रश्नों को जन-सभा के सामने फ़ैसले के लिए पेश कर देती थी। बर्बर युग की निम्न अवस्था में, कम से कम उन लोगों में जिनकी हमें जानकारी है, अमरीका के आदिवासियों में, जन-सभा केवल गोत्र में होती थी। उस समय तक

क़बीले में, या क़बीलों के महासंघ में जन-सभा की प्रथा नहीं थी। इरोक्वा लोगों की तरह जर्मनों में भी परिषद् के मुखियाओं (principes) व युद्धकालीन मुखियाओं (duces) में बहुत साफ़ अन्तर रखा जाता था। पहली कोटि के मुखिया क़बीले के सदस्यों से गाय-बैल, अनाज, आदि की भेंट लेने लगे थे और यह आंशिक रूप से उनकी जीविका का आधार बन गया था। अमरीका की तरह ये मुखिया भी आम तौर पर एक ही परिवार से चुने जाते थे। पितृ-सत्ता क़ायम हो जाने के परिणामस्वरूप यूनान और रोम की भांति यहां भी जिन पदों का पहले चुनाव हुआ करता था, वे धीरे-धीरे पुश्तैनी बन गये। इस प्रकार हर एक गोत्र में एक अभिजात परिवार का उदय हो गया। इस प्राचीन तथाकथित क़बायली अभिजात वर्ग का अधिकतर भाग जातियों के प्रव्रजन के दौरान या उसके कुछ समय बाद ख़तम हो गया। सैनिक नेताओं का चुनाव केवल उनके गुणों के आधार पर होता था, उसमें उनके परिवार का कोई ख़याल नहीं किया जाता था। उनके पास बहुत कम अधिकार होते थे और दूसरों से अपनी आज्ञा का पालन कराने के लिए उन्हें पहले उनके सामने ख़ुद उदाहरण पेश करना पड़ता था। जैसा तासितुस ने साफ़-साफ़ कहा है सेना के अंदर अनुशासन क़ायम रखने का असली अधिकार पुरोहितों के हाथ में होता था। वास्तविक सत्ता जन-सभा के हाथ में थी। राजा अथवा क़बीले का मुखिया सभापतित्व करता था और जनता निर्णय करती थी। मर्मरध्वनि का अर्थ होता था "नहीं", ज़ोर से नारे लगाने और हथियार खड़काने का मतलब होता था "हां"। जन-सभा न्यायालय का भी काम करती थी। उसके सामने शिकायतें पेश की जाती थीं और उनका फ़ैसला किया जाता था; और मृत्यु-दंड तक दिया जाता था। मृत्यु-दंड केवल कायरता, विश्वासघात और अप्राकृतिक दुराचार के मामलों में दिया जाता था। गोत्र और अन्य उपशाखाएं भी सामूहिक रूप से और अपने मुखिया के सभापतित्व में मुक़दमों की सुनवाई करती थीं। जर्मनों के शुरू के सभी न्यायालयों की भांति यहां भी सभापति को केवल जिरह करने और अदालत की कार्रवाई का संचालन करने का अधिकार होता था। जर्मनों में हर जगह और हमेशा यही प्रथा थी कि दंड का निर्णय पूरा समुदाय करता था।

सीज़र के समय से क़बीलों के महासंघ बनने लगे। उनमें से कुछ में अभी से राजा भी होने लगे थे। यूनानियों और रोमवासियों की तरह इन लोगों में भी सर्वोच्च सेनानायक शीघ्र ही तानाशाह बनने की आकांक्षा करने लगे।

कभी-कभी वे अपनी आकांक्षा पूरी करने में सचमुच सफल भी हो जाते थे। इस तरह जो लोग सत्ता का अपहरण करने में सफल हो जाते थे वे कदापि निरंकुश शासक नहीं होते थे। परन्तु फिर भी वें गोत्र-व्यवस्था के बंधनों को तोड़ने लगे। जिन दासों को मुक्त किया जाता था, उनकी आम तौर पर नीची हैसियत होती थी, क्योंकि वे किसी गोत्र के सदस्य नहीं हो सकते थे, परन्तु नये राजाओं के ये कृपापात्र अक्सर ऊंचे पद, धन और सम्मान प्राप्त करने में सफल हो जाते थे। रोमन साम्राज्य को जीतने के बाद सेनानायकों के साथ यही हुआ और वे बड़े-बड़े देशों के राजा बन गये। फ़्रैंक लोगों में राजा के दासों और मुक्त दासों ने शुरू में राज-दरवार में और वाद में पूरे राज्य में बड़ी भूमिका अदा की। नये अभिजात वर्ग का एक बड़ा भाग इन्हीं लोगों का वंशज था।

राजतंत्र के उदय में एक संस्था से विशेष रूप से सहायता मिली और वह थी निजी सैन्य दल। हम ऊपर देख चुके हैं कि किस प्रकार अमरीकी इंडियनों में गोत्रों के साथ-साथ स्वतंत्र रूप से युद्ध चलाने के लिए निजी संस्थाएं बनायी जाती थीं। जर्मनों में इन निजी संस्थाओं ने स्थायी संगठनों का रूप धारण कर लिया। जो सेनानायक ख्याति प्राप्त कर लेता था, उसके चारों ओर लूट के माल के इच्छुक नौजवान योद्धाओं का एक दल जमा हो जाता था। यह दल सेनानायक के प्रति व्यक्तिगत रूप से वफ़ादार होता था और सेनानायक अपने दल के प्रति। वह उन्हें खिलाता-पिलाता था, समय-समय पर उन्हें तोहफ़े देता था, और दरजावार तरतीब से उनका संगठन करता था: एक अंगरक्षक दल तथा छोटे-मोटे अभियानों में तत्काल भाग लेने के लिए सन्नद्ध एक टुकड़ी और बड़ी लड़ाइयों के लिए प्रशिक्षित अफ़सरों का एक जत्था होता था। ये निजी सैन्य दल यद्यपि काफ़ी कमज़ोर होते होंगे और थे भी, जैसा कि बाद में, उदाहरण के लिए, इटली में ओडोआसर के तहत सावित हुआ, परन्तु उन्होंने प्राचीन जन-स्वातन्त्र्यों के ह्रास के लिए घुन का काम किया, जैसा कि जातियों के प्रव्रजन के दौरान तथा उसके बाद भी देखा गया। कारण कि एक तो उन्होंने शाही ताक़त के पनपने के लिए अनुकूल भूमि प्रस्तुत की; दूसरे, जैसा कि तासितुस ने कहा है, इन सेनाओं को बनाये रखने के लिए ज़रूरी था कि उन्हें सदा लड़ाइयों तथा लूट-मार की मुहिमों में लगाये रखा जाये। लूट-पाट उनका मुख्य उद्देश्य बन गया। यदि उनके सरदार को अपने पास-पड़ोस में कोई सम्भावना नहीं दिखायी

देती थी, तो वह अपनी सेना को लेकर दूसरे देशों में चला जाता था, जहां युद्ध चलता होता तथा लूट का माल हासिल करने की सम्भावना दिखायी देती थी। जो जर्मन सहायक सेनाएं रोमन झंडे के नीचे स्वयं जर्मनों से भी एक बड़ी संख्या में लड़ी थीं, वे आंशिक रूप में ऐसे ही दलों से बनी थीं। यही वह पहला बीज था जिससे बाद में चलकर Landsknecht व्यवस्था* ने जन्म लिया जो जर्मनों के लिए कलंक और अभिशाप बन गयी। रोमन साम्राज्य को जीतने के बाद दासों तथा रोमन दरबारी ख़िदमतगारों के साथ राजाओं के ये निजी सैन्य दल भी बाद के काल में अभिजात वर्ग के दूसरे संघटक भाग बन गये।

इस प्रकार, जातियों के रूप में गठित जर्मन क़बीलों का संघटन उसी प्रकार का था जैसा वीर-काल के यूनानियों और तथाकथित राजाओं के काल के रोमन लोगों में विकसित हुआ था: जन-सभाएं, गोत्रों के मुखियाओं की परिषदें और सेनानायक, जिन्होंने अभी से असली राजा बनने के सपने देखना शुरू कर दिया था। गोत्र-व्यवस्था इससे अधिक विकसित ढंग का संघटन नहीं पैदा कर सकती थी। वह बर्बर युग की उन्नत अवस्था का आदर्श संघटन था। जैसे ही समाज उन सीमाओं से बाहर निकल गया, जिनके लिए यह संघटन पर्याप्त था, वैसे ही गोत्र-व्यवस्था का अंत हो गया। गोत्र-व्यवस्था टूट गयी और उसका स्थान राज्य ने ले लिया।

---

*भाड़े के सिपाही।—सं०

८

जर्मनों में राज्य का गठन

तासितुस का कहना है कि जर्मन लोगों की संख्या बहुत बड़ी थी। अलग-अलग जर्मन जातियों की क्या तादाद थी, इसका एक मोटा ख़ाका सीज़र ने दिया है। उसका कहना है कि राइन नदी के बायें तट पर प्रकट होनेवाले उसीपैटनों और टेंक्टेरनों की संख्या, औरतों और बच्चों को शामिल करके, १,८०,००० थी। इस प्रकार, मोटे तौर पर, हर एक जाति में क़रीब-क़रीब एक लाख लोग थे।* ज़ाहिर है कि सबसे अधिक उन्नति के काल में भी इरोक्वा लोगों की संख्या इससे बहुत कम थी। जिस समय ग्रेट लेक्स से लेकर ओहिओ और पोतोमैक नदियों तक का पूरा देश उनसे आतंकित था, उस समय इरोक्वा लोगों की संख्या २०,००० भी नहीं थी। यदि हम राइन प्रदेश की उन जातियों को, जिनके बारे में रिपोर्टों की बदौलत हमें ज़्यादा जानकारी है, नक़्शे पर अलग-अलग अंकित करें तो हम पायेंगे कि उनमें से हर जाति औसतन प्रशा के एक प्रशासकीय ज़िले के बराबर के इलाक़े में, यानी १०,००० वर्ग किलोमीटर या १८२ भौगोलिक वर्ग मील में फैली हुई थी। लेकिन रोमवासियों का Germania Magna** जो विस्चुला नदी तक जाता था, क़रीब ५,००,००० वर्ग किलोमीटर में फैला हुआ था। यदि

---

* गाल प्रदेश के कैल्ट लोगों के बारे में दिओदोरस ने जो कुछ कहा है, उससे इस संख्या की पुष्टि होती है। उसने लिखा है: "गाल में छोटी-बड़ी बहुतेरी जन-जातियां रहती हैं। सबसे बड़ी जन-जाति में २,००,००० लोग हैं और सबसे छोटी में ५०,०००।" (Diodorus Siculus, खंड ५, परिच्छेद २५।) इससे सवा लाख का औसत निकलता है। पर गाल की कई जन-जातियां चूंकि अधिक विकास कर चुकी थीं, इसलिए निश्चय ही जर्मनों से उनकी संख्या अधिक रही होगी। (एंगेल्स का नोट।)

** महान जर्मनी। – सं०

एक जाति के लिए औसतन एक लाख की आबादी का हिसाब रखा जाये तो Germania Magna की कुल आबादी ५० लाख हो जाती है—जो वर्बर युग की जातियों के एक समूह के लिए ज़रा बड़ी संख्या है, गोकि १० आदमी प्रति वर्ग किलोमीटर, या ५५० आदमी प्रति भौगोलिक वर्ग मील की आबादी आजकल की हालत के मुक़ाबले में बहुत कम है। परन्तु इस संख्या में उस काल में मौजूद तमाम जर्मन शामिल नहीं हैं। हम जानते हैं कि गौथ नस्ल की जर्मन जातियां, अर्थात्, वास्तर्नियन, प्युकिनियन वग़ैरह लोग कार्पेथियन पर्वत के किनारे-किनारे डैन्यूब नदी के मुहाने तक रहते थे। संख्या में ये जातियां इतनी बड़ी थीं कि प्लिनी ने उन्हें जर्मनों का पांचवां मुख्य क़बीला कहा था। १८० ई० पू० में ही ये लोग मेसीडोनिया के राजा पर्सियस के भाड़े के सिपाही बने हुए थे और औगस्तस के राज के शुरू के वर्षों में वे एड्रियानोपल के पास तक बढ़ गये थे। यदि यह मानकर चला जाये कि इन लोगों की संख्या केवल दस लाख थी तो ईसवी सन् के आरम्भ में जर्मनों की कुल संख्या शायद साठ लाख से कम नहीं थी।

जर्मनी (Germanien) में बस जाने के बाद इनकी आबादी अधिकाधिक तेज़ी से बढ़ती गयी होगी। ऊपर हमने जिस औद्योगिक उन्नति का ज़िक्र किया, वह इसका पर्याप्त प्रमाण है। श्लेज़विग के दलदल में जो वस्तुएं मिली हैं, वे तीसरी सदी की मालूम पड़ती हैं, क्योंकि उनके साथ जो रोम के सिक्के प्राप्त हुए हैं, वे इसी काल के हैं। इसका मतलब यह है कि तीसरी सदी तक बाल्टिक सागर के तट पर धातु तथा कपड़े के उद्योग का काफ़ी विकास हो चुका था, रोमन साम्राज्य के साथ काफ़ी व्यापार होता था, और धनिक वर्ग कुछ हद तक ऐश से रहने लगा था। ये तमाम बातें बताती हैं कि आबादी पहले से कहीं अधिक घनी हो गयी थी। इसी काल में जर्मनों ने राइन नदी, रोम के सरहदी परकोटे और डैन्यूब नदी से बननेवाली सीमा के एक छोर से लेकर दूसरे छोर तक, उत्तरी सागर से लेकर काले सागर तक, आम चढ़ाई शुरू कर दी। यह बात बताती है कि जर्मनों की आबादी बराबर बढ़ रही थी और अपने इलाक़ों से बाहर निकलने की कोशिश कर रही थी। संघर्ष के तीन सौ वर्षों में, गौथ लोगों का मुख्य समूह (स्कैंडिनेविया के गौथ लोगों तथा वर्गण्डियों को छोड़कर) दक्षिण-पूर्व की ओर बढ़ गया और वह इस हमलावर मोर्चे का बायां भाग बन गया। उत्तरी जर्मन लोग (हर्मीनोनियन) ऊपरी डैन्यूब के तट पर मोर्चे के केन्द्र में बढ़ आये

ग्रौर इस्तीवोनियन लोग, जो इस समय तक फ़्रैंक कहलाने लगे थे, राइन नदी के किनारे-किनारे मोर्चे के दायें भाग में बढ़ ग्राये। ब्रिटेन को जीतने का काम इंगीवोनियन लोगों के ज़िम्मे पड़ा। पांचवीं सदी के ग्रंत में शक्तिहीन, रक्तहीन ग्रौर नि:सहाय रोमन साम्राज्य के द्वार जर्मन ग्राक्रमणकारियों के लिए बिलकुल खुले हुए थे।

पिछले ग्रध्यायों में हमने प्राचीन यूनानी ग्रौर रोमन सभ्यता के शैशव काल को देखा। ग्रब हम उसके मृत्यु काल को देख रहे हैं। कई सदियों से भूमध्य सागर के सभी देशों पर रोम की विश्व शक्ति का रन्दा चल रहा था। उन जगहों को छोड़कर जहां यूनानी भाषा ने उसका मुक़ाबला किया, तमाम जातीय भाषाएं एक विकृत ढंग की लैटिन के सामने पराजित हो गयी थीं। जाति-भेद नाम की कोई चीज़ नहीं रह गयी थी। गाल, ग्राइबीरियन, लाइगुरियन, नौरिक[147] जातियां नहीं रह गयी थीं। ग्रब सब रोमन हो गये थे। रोमन शासन-व्यवस्था ग्रौर रोमन क़ानून ने पुराने रक्तसम्बद्ध समूहों को हर जगह नष्ट कर दिया था ग्रौर इस प्रकार स्थानीय तथा जातीय ग्रात्म-ग्रभिव्यक्ति के ग्रन्तिम ग्रवशेषों को ध्वस्त कर दिया था। नया ग्रधकचरा रोमवाद इस क्षति को पूरा नहीं कर सकता था। वह किसी जातीयता को नहीं, बल्कि केवल जातीयता के ग्रभाव को प्रगट करता था। नये राष्ट्रों के निर्माण के तत्त्व हर जगह मौजूद थे। विभिन्न प्रान्तों की लैटिन बोलियां एक दूसरे से ग्रधिकाधिक भिन्न होती जा रही थीं। जिन प्राकृतिक सीमाग्रों ने एक समय इटली, गाल, स्पेन, ग्रफ़्रीका को स्वतंत्र प्रदेश बना दिया था, वे ग्रब भी मौजूद थीं ग्रौर उनका प्रभाव ग्रभी भी पड़ रहा था। फिर भी कोई ऐसी शक्ति नहीं दिखायी पड़ती थी जो इन तत्त्वों को मिलाकर नये राष्ट्र गठित करने में समर्थ होती। सृजन शक्ति को तो जाने दीजिए, विकास की क्षमता या प्रतिरोध की शक्ति का भी कोई चिह्न कहीं नहीं दिखायी देता था। उस विस्तृत भूखंड में रहने वाले विशाल जन-समुदाय को केवल एक चीज़ ने— रोमन राज्य ने—बांध रखा था ग्रौर वही समय बीतते-बीतते इस जन-समुदाय का सबसे बड़ा शत्रु ग्रौर उत्पीड़क बन गया था। प्रान्तों ने रोम को बरबाद कर दिया था, रोम ख़ुद ग्रौर सभी नगरों के समान एक प्रान्तीय नगर बन गया था। उसे ग्रब भी विशेष रुतबा हासिल था, पर ग्रब वह शासन नहीं करता था, ग्रब वह विश्व साम्राज्य का केंद्र नहीं रह गया था, यहां तक कि ग्रब वह सम्राटों ग्रौर स्थानापन्न सम्राटों का निवास-स्थान भी नहीं था।

वे लोग अब कुस्तुनतुनिया, त्रियेर और मिलान में रहने लगे थे। रोमन राज्य एक विराट्, जटिल मशीन वन गया था, जिसका निर्माण केवल प्रजा का शोषण करने के उद्देश्य को लेकर किया गया था। तरह-तरह के करों, राज्य के लिए सेवाओं और उगाहियों से आम लोग ग़रीबी के दलदल में अधिकाधिक धंसते जाते थे। कोषाधिकारी, कर वसूल करने वाले कर्मचारी और सिपाही जनता के साथ जिस तरह की जोर-जबर्दस्ती करते थे, उससे यह दबाव असह्य हो गया था। जिस रोमन राज्य ने सारे संसार को अपने अधीन बना डाला था, उसने यह हालत पैदा कर दी: अपने अस्तित्व का औचित्य सिद्ध करने के लिए उसने साम्राज्य के अंदर व्यवस्था और बर्बर विदेशियों से हिफ़ाज़त को अपना आधार बनाया। परन्तु उसकी व्यवस्था बुरी से बुरी अव्यवस्था से भी अधिक जानलेवा थी और जिन बर्बर लोगों से वह अपने नागरिकों को बचाने का ढोंग किया करता था, उन्हीं का उसकी प्रजा ने तारनहार के रूप में स्वागत किया।

सामाजिक अवस्थाएं भी कम निराशाजनक नहीं थीं। गणराज्य के अन्तिम वर्षों में विजित प्रान्तों का क्रूर शोषण रोम के शासन का आधार वन गया था। सम्राटों ने इस शोषण का अंत नहीं किया, उल्टे उसे व्यवस्थित रूप दे दिया। जैसे-जैसे साम्राज्य पतन के गढ़े में गिरता गया, वैसे-वैसे कर और बेगार बढ़ती गयी, और उतनी ही अधिक बेशर्मी से अफ़सर लोग जनता को लूटने और उस पर धौंस जमाने लगे। पूरी जातियों पर राज करने में व्यस्त रोमवासियों का धंधा व्यापार और उद्योग कभी नहीं रहा था। केवल सूदख़ोरी में वे सबसे बढ़-चढ़ कर थे—अपने पहले के लोगों से और बाद के लोगों से भी। जो थोड़ा-बहुत व्यापार होता था और किसी तरह चल रहा था उसे अफ़सरों की जबरिया कर-वसूली ने तबाह कर डाला। और जितना बचा था, वह भी साम्राज्य के पूर्वी, यानी यूनानी भाग में होता था परन्तु वह इस पुस्तक के क्षेत्र के बाहर है। सर्वव्यापी ग़रीबी और तबाही, व्यापार, दस्तकारी और कला की अवनति, आबादी का ह्रास, नगरों की पतनोन्मुखता, खेती का गिरकर पहले से भी नीची अवस्था में पहुंच जाना—रोम के विश्व प्रभुत्व का अंत में यही परिणाम हुआ था।

खेती प्राचीन काल में सदा उत्पादन की निर्णायक शाखा रही है जो अब और भी निर्णायक हो गयी थी। गणराज्य के अंत के समय से ही जो बड़ी-बड़ी जागीरें (latifundia) इटली की लगभग पूरी भूमि पर

फैली हुई थीं, उनका दो तरह से इस्तेमाल किया जाता था: या तो चरागाहों के रूप में, जिन पर मनुष्यों का स्थान भेड़ों और गाय-बैलों ने ले लिया था, जिनकी देखभाल के लिए चंद दास काफ़ी होते थे; और या ऐसी जागीरों के रूप में जिन पर बड़ी संख्या में दासों की सहायता से बड़े पैमाने पर बाग़बानी की जाती थी। इन बागीचों की उपज कुछ हद तक तो उनके मालिकों के ऐश-आराम के काम में आती थी, और कुछ हद तक शहरी बाज़ारों में बेच दी जाती थी। बड़े-बड़े चरागाहों को क़ायम रखा गया था और उनका कुछ विस्तार भी किया गया था। परन्तु बड़ी-बड़ी जागीरें और उनके बागीचे उनके मालिकों के ग़रीब हो जाने तथा शहरों के ह्रास के परिणामस्वरूप बरबाद हो गये। दास श्रम पर खड़ी बड़ी-बड़ी जागीरों की व्यवस्था अब लाभप्रद नहीं रह गयी थी, परन्तु उस समय बड़े पैमाने की खेती केवल इसी ढंग से हो सकती थी। इसलिए फिर से केवल छोटे पैमाने की खेती ही लाभप्रद रह गयी। एक के बाद एक जागीरें बंटने लगीं और या तो छोटे-छोटे टुकड़ों में पुश्तैनी काश्तकारों को, जो एक निश्चित लगान देते थे, दे दी गयीं, या partiarii* को दे दी गयीं, जिन्हें काश्तकार न कहकर फ़ार्म मैनेजर कहना ज्यादा सही होगा। इन लोगों को अपनी मेहनत के बदले में साल भर की उपज का केवल छठा या नवां हिस्सा ही मिलता था। मगर इनसे भी ज्यादा बड़ी संख्या में ये छोटे-छोटे खेत coloni को दे दिये गये जो मालिक को हर साल एक निश्चित रक़म देते थे। वे ज़मीन से बंधे हुए थे, और ये खेतों के साथ बेचे जा सकते थे। ये लोग दास नहीं थे, पर साथ ही स्वतंत्र नागरिक भी नहीं थे। उन्हें स्वतंत्र नागरिकों के साथ विवाह की इजाज़त नहीं थी, और यदि वे आपस में विवाह करते थे तो वह भी क़ानूनी नहीं माना जाता था, बल्कि जैसा कि दासों में होता था, उस विवाह की हैसियत रखैलपन (contubernium) की होती थी। ये लोग मध्य युग के भूदासों के पूर्ववर्ती थे।

प्राचीन काल की दास-प्रथा पुरानी पड़ गयी। न तो उससे देहात में बड़े पैमाने की खेती में, और न शहरों के कारख़ानों में उपयुक्त आय होती थी। उसकी पैदावार के लिए बाज़ार का लोप हो गया था। साम्राज्य के समृद्धि काल के विशाल उत्पादन की जगह पर अब केवल छोटे पैमाने की खेती और

* हिस्सेदार। – सं०

छोटी-मोटी दस्तकारियां रह गयी थीं, और उनमें दासों की बड़ी संख्या के लिए कोई स्थान न था। अब समाज में केवल धनी लोगों के घरेलू कामों को करनेवाले तथा उनकी ऐश-आराम की ज़रूरतों को पूरा करनेवाले दासों के लिए ही स्थान रह गया था। परन्तु मरणोन्मुख दास-प्रथा अभी भी इतनी शक्तिशाली ज़रूर थी कि हर प्रकार का उत्पादक काम दास-श्रम मालूम पड़े जिसे करना स्वतंत्र रोमन अपनी शान के ख़िलाफ़ समझें—और अब हर कोई स्वतंत्र रोमन नागरिक था। इसलिए एक ओर तो फ़ालतू दासों की संख्या में वृद्धि हो गयी थी, और वे भार बन जाने के कारण मुक्त कर दिये जाते थे, और दूसरी ओर coloni तथा भिखारी स्वतंत्रों की संख्या में वृद्धि हो गयी थी (अमरीका के भूतपूर्व दास-प्रथा वाले राज्यों के ग़रीब गोरों की तरह)। प्राचीन काल की दास-प्रथा यदि इस प्रकार धीरे-धीरे मर गयी तो इसका ईसाई धर्म को कोई दोष नहीं दिया जा सकता। ईसाई धर्म ने रोमन साम्राज्य में कई सौ वर्ष तक दास-प्रथा से लाभ उठाया था। बाद में जब स्वयं ईसाइयों ने भी दासों का व्यापार करना शुरू किया, जैसा कि उत्तर में जर्मन लोग करते थे, या भूमध्य सागर में वेनिस के लोग करते थे, या जैसा कि और भी बाद में नीग्रो लोगों का व्यापार होता था,* तो ईसाई धर्म ने उसे रोकने की कभी कोशिश नहीं की। दास-प्रथा लाभप्रद नहीं रह गयी थी, इसलिए वह मर गयी। लेकिन मरते-मरते भी वह ज़हरीला डंक छोड़ गयी, यह ठप्पा लगा गयी कि यदि स्वतंत्र नागरिक उत्पादक काम करेंगे, तो वह नीच माना जायेगा। यह थी वह बंद गली जिसमें रोम का संसार फंस गया था: दास-प्रथा का अस्तित्व आर्थिक दृष्टि से असम्भव हो गया था, परन्तु स्वतंत्र लोगों के श्रम पर नैतिक रोक लगी हुई थी। पहली अब सामाजिक उत्पादन का बुनियादी रूप नहीं बनी रह सकती थी, दूसरी बुनियादी रूप अभी बन नहीं सकती थी। इस स्थिति में पूर्ण क्रांति ही कुछ कर सकती थी।

प्रांतों की हालत इससे बेहतर नहीं थी। हमारे पास जो रिपोर्टें हैं, उनमें अधिकांश गाल प्रदेश के बारे में है। यहां coloni के साथ-साथ स्वतंत्र छोटे किसान अभी भी मौजूद थे। अफ़सरों, जजों और सूदख़ोरों के अत्याचारों

---

* क्रेमोना के पादरी ल्युतप्रांद ने बताया है कि दसवीं सदी में वेर्देें में, अर्थात् पवित्र जर्मन साम्राज्य में,[148] प्रधान उद्योग हिजड़े बनाना था, जो मूर लोगों के हरमों के वास्ते बड़े मुनाफ़े पर स्पेन भेजे जाते थे। (एंगेल्स का नोट।)

से बचने के लिए ये किसान अक्सर शक्तिमान व्यक्तियों के संरक्षण में, उनकी सरपरस्ती में रहते थे; अलग-अलग व्यक्ति ही नहीं, बल्कि पूरे के पूरे समुदाय ऐसा करते थे। यहां तक कि चौथी सदी के सम्राट अक्सर फ़रमान जारी कर इस प्रथा पर प्रतिबंध लगाते थे। पर ऐसे संरक्षण से उन लोगों को क्या मदद मिलती थी जो इसे प्राप्त करने की कोशिश करते थे? संरक्षक इस शर्त पर उन्हें संरक्षण प्रदान करता था कि वे अपनी ज़मीनें उसके नाम कर दें, बदले में वह उन्हें जीवन भर इन ज़मीनों को इस्तेमाल करने का हक़ दे देता था। पवित्र गिरजाघर ने इस चाल को याद रखा और नवीं तथा दसवीं सदी में इसका ख़ूब इस्तेमाल किया, जिससे भगवान का गौरव भी बढ़ा और गिरजाघर की ज़मीन-जायदाद में भी बड़ा इज़ाफ़ा हुआ। परन्तु हां, उस समय, सन् ४७५ के क़रीब, हम देखते हैं कि मार्सेई का पादरी सालवियेनस इस डकैती की ज़ोरदार निन्दा कर रहा है। वह हमें बताता है कि रोम के अधिकारियों और बड़े ज़मींदारों का अत्याचार इतना असह्य हो उठा था कि बहुत से "रोमन" उन इलाक़ों में भाग गये थे जिन पर बर्बर लोगों का क़ब्ज़ा हो चुका था, और ऐसे ज़िलों में जो रोमन नागरिक बस गये थे, उन्हें सबसे ज्यादा इस बात का भय था कि उनका इलाक़ा कहीं फिर से रोमन शासन के अधीन न हो जाये। उस ज़माने में अक्सर ग़रीब मां-बाप अपने बच्चों को दासों की तरह बेच डालते थे—यह बात इस प्रथा को रोकने के लिए बने एक क़ानून से सिद्ध होती है।

रोमनों को ख़ुद उनके राज्य से मुक्त करने के एवज़ में जर्मन बर्बरों ने पूरी ज़मीन का दो-तिहाई भाग ख़ुद हड़प लिया और उसे आपस में बांट लिया। बंटवारा गोत्र-व्यवस्था के अनुसार किया गया। विजेता चूंकि संख्या में कम थे, इसलिए बड़े-बड़े भूखंड बिना बंटे रह गये। इनमें से कुछ तो पूरी जाति की सम्पत्ति रहे और कुछ अलग-अलग क़बीलों या गोत्रों की। हर गोत्र में अलग-अलग कुटुम्बों के बीच खेतों व चरागाहों का बंटवारा बराबर-बराबर हिस्से बनाकर परची डालकर किया गया। उस काल में यह बंटवारा बार-बार हुआ करता था या नहीं, इस बात को हम नहीं जानते। पर इतना निश्चित है कि रोमन प्रांतों में जल्द ही यह प्रथा बंद हो गयी और हर कुटुम्ब का हिस्सा उसकी निजी सम्पत्ति, "एलोडियम", बन गयी। जंगल और चरागाहों को नहीं बांटा गया, वे सब के इस्तेमाल के लिए थे। उनके इस्तेमाल और बंटी हुई ज़मीन के जोतने का ढंग प्राचीन रीति के अनुसार तथा पूरे

समुदाय की इच्छा से तय होता था। गोत्र को अपने गांव में बसे जितने ज़्यादा दिन बीतते गये, और समय बीतने के साथ-साथ जर्मन और रोमन लोग आपस में जितने ज़्यादा घुलते-मिलते गये, उतना ही रक्त-सम्बन्ध गौण और प्रादेशिक सम्बन्ध प्रधान होता गया। अंततः गोत्र मार्क-समुदाय में तिरोहित हो गया, पर उसमें सदस्यों के मूल रक्त-सम्बन्ध के पर्याप्त चिह्न दिखायी देते थे। इस प्रकार, कम से कम उन देशों में, जहां मार्क-समुदायों को क़ायम रखा गया था – फ़्रांस के उत्तर में, और इंगलैंड, जर्मनी, तथा स्कैंडिनेविया में – गोत्र-व्यवस्था धीरे-धीरे प्रादेशिक व्यवस्था में बदल गयी और इस प्रकार वह इस योग्य बन गयी कि राज्य-व्यवस्था के साथ फ़िट बैठ सके। फिर भी उसका वह स्वाभाविक जनवादी स्वरूप क़ायम रहा जो पूरी गोत्र-व्यवस्था की मुख्य विशेषता है, और कालान्तर में जब वह लाचार होकर पतनोन्मुख हुआ तब भी उसमें गोत्र-संघटन का कुछ अंश ज़रूर बाक़ी रहा, जो दलित जनता के हाथ में एक अस्त्र बन गया और जिसका वह आधुनिक काल में भी प्रयोग करती है।

गोत्र में रक्त-सम्बन्ध के महत्त्व के तेज़ी से ख़तम होने का कारण यह था कि क़बीले में तथा पूरी जाति में भी विजय के फलस्वरूप गोत्र-निकायों का ह्रास हो गया। हम जानते हैं कि पराधीन जनों पर शासन करना गोत्र-व्यवस्था से मेल नहीं खाता। यहां यह बात बहुत बड़े पैमाने पर दिखायी पड़ती है। जर्मन लोग अब रोमन प्रांतों के मालिक थे। उनके लिए अपनी विजय को संगठित रूप देना आवश्यक था। परन्तु रोमवासियों के विशाल जन-समुदाय को न तो गोत्र-संघटन के निकायों में सम्मिलित किया जा सकता था, और न इन निकायों की सहायता से उन पर शासन किया जा सकता था। रोमवासियों की स्थानीय प्रशासन-संस्थाएं शुरू में जर्मन विजय के बाद भी काम करती रही थीं, पर यह आवश्यक था कि उनके ऊपर कोई ऐसा संगठन हो जो रोमन राज्य का स्थान ले सके और यह दूसरा राज्य ही हो सकता था। इसलिए गोत्र-संघटन के निकायों को राज्य के निकायों में बदलना पड़ा और परिस्थितियों के दबाव के कारण यह काम बहुत जल्दी में करना पड़ा। परन्तु विजेता जाति का पहला प्रतिनिधि सेनानायक था। जीते हुए प्रदेश की घरेलू और बाहरी सुरक्षा का तक़ाज़ा था कि उसके अधिकारों को बढ़ाया जाये। सैनिक नेतृत्व को बादशाही में बदल देने का समय आ गया था। यह कर भी दिया गया।

फ़्रैंक लोगों के राज्य को लीजिए। यहां न केवल रोमन राज्य के विशाल इलाक़े विजयी सालियन जाति को एकछत्र अधिकार में मिल गये थे, बल्कि ऐसे भी सभी बड़े भूखंड, विशेषकर सभी बड़े जंगल, उनके हाथ में आ गये थे, जो बड़े या छोटे gau (ज़िला) अथवा मार्क-समुदायों के बीच नहीं बांटे गये थे। फ़्रैंक लोगों के राजा ने, जो साधारण सेनानायक से वास्तविक राजा में परिवर्तित हो गया था, पहला काम यह किया कि जनता की इस सम्पत्ति को शाही सम्पत्ति बना डाला, इस ज़मीन को जनता से चुरा लिया और अपने निजी सैन्य दल को इनाम या भेंट के तौर पर दे दिया। उसके निजी सैन्य दल की, जिस में पहले केवल निजी सैन्य अनुचर तथा सेना के बाक़ी तमाम उपनायक हुआ करते थे, बाद में संख्या बहुत बढ़ गयी। उनमें न केवल रोमन लोग, यानी गाल प्रदेश के वे निवासी शामिल हो गये जो रोमन बन गये थे, और जो लिखने की कला जानने शिक्षित होने और देश के क़ानूनों के साथ-साथ बोल-चाल की रोमानी भाषा तथा साहित्यिक लैटिन की भी जानकारी रखने के कारण राजा के लिए बहुत जल्द ही नितांत आवश्यक बन गये थे; बल्कि उनमें दास, भूदास तथा मुक्त दास भी शामिल हो गये। ये सब राजा के दरबारी थे, जिनमें से वह अपने कृपापात्रों को चुनता था। इन तमाम लोगों को सार्वजनिक भूमि के खंड शुरू में इनाम के रूप में, और बाद को "बेनीफ़िस" के रूप में दे दिये गये जो आरम्भ में अधिकतर प्रायः राजा के जीवन-काल के लिए मिलते थे[149]। इस प्रकार जनता की क़ीमत पर एक नये अभिजात वर्ग का आधार तैयार हुआ।

परन्तु बात यहीं पर ख़तम नहीं हुई। उस लम्बे-चौड़े दूर-दूर तक फैले साम्राज्य पर पुराने गोत्र-विधान द्वारा शासन नहीं किया जा सकता था। मुखियाओं की परिषद्, यदि वह बहुत दिन पहले ही लुप्तप्रयोग नहीं हो गयी हो, तो भी, अब नहीं बैठ सकती थी, और शीघ्र ही राजा के स्थायी परिजनों ने उसका स्थान ले लिया। पुरानी जन-सभा को दिखावे के लिए क़ायम रखा गया, पर वह अधिकाधिक महज़ सेना के उपनायकों तथा नये पनप रहे अभिजात वर्ग के लोगों की सभा में बदलती गयी। जिस तरह रोम के किसान गणराज्य के अन्तिम काल में बरबाद हो गये थे, ठीक उसी तरह लगातार गृह-युद्धों और विजयाभियानों के कारण – कार्ल महान् के काल में ख़ास तौर पर विजयाभियानों के कारण – अपनी भूमि के मालिक

स्वतंत्र किसान, यानी फ़्रैंक जाति की अधिकांश जनता चुस और छीज गयी थी और घोर दरिद्रता की स्थिति में पहुंच गयी थी। शुरू में, पूरी सेना केवल इन किसानों की हुआ करती थी; फ़्रैंक प्रदेशों की विजय के बाद भी सेना का केंद्र भाग इन किसानों का ही हुआ करता था, परन्तु नवीं शताब्दी के आरम्भ तक ये किसान इतने ज़्यादा ग़रीब हो गये थे कि पांच में से मुश्किल से एक आदमी जंग का सामान मुहैया कर पाता था। पहले स्वतंत्र किसानों की सेना थी जो सीधे राजा के आह्वान पर इकट्ठा हो जाया करती थी। अब उसकी जगह नवोदित धनिकों के ख़िदमतगारों की सेना ने ले ली। इन ख़िदमतगारों में वे भूदास भी थे जो उन किसानों के वंशज थे जो पहले राजा के सिवा और किसी को अपना स्वामी नहीं मानते थे, और जो उसके भी कुछ पहले किसी को, राजा तक को भी, अपना स्वामी नहीं मानते थे। कार्ल महान् के उत्तराधिकारियों के शासन-काल में इतने गृह-युद्ध हुए, राजा की शक्ति इतनी क्षीण हो गयी, और उसके साथ-साथ नये धनिकों ने, जिनमें अब कार्ल महान् द्वारा बनाये गये ज़िलों के वे काउंट (Gaugrafen)[150] भी शामिल हो गये थे जो अपने पद को पुश्तैनी बनाने की कोशिश कर रहे थे, इतनी ज़्यादा ताक़त हड़प ली कि फ़्रैंक किसानों की बरबादी और भी बहुत ज़्यादा बढ़ गयी। नौर्मन लोगों के आक्रमण ने बाक़ी कसर भी पूरी कर दी। कार्ल महान् की मृत्यु के पचास वर्ष बाद फ़्रैंक साम्राज्य नौर्मन आक्रमणकारियों के चरणों पर उसी निस्सहाय अवस्था में पड़ा था, जैसे कि उसके चार सौ वर्ष पहले रोमन साम्राज्य फ़्रैंक लोगों के क़दमों पर पड़ा था।

फ़्रैंक साम्राज्य इस समय न केवल बाहरी दुश्मनों के सामने निस्सहाय था, बल्कि समाज की अंदरूनी व्यवस्था, या शायद उसे अव्यवस्था कहना ज़्यादा सही होगा, भी उसी निस्सहाय स्थिति में थी। स्वतंत्र फ़्रैंक किसान अब उसी स्थिति में थे, जो उनके पूर्ववर्ती रोम के colon की स्थिति हो गयी थी। युद्धों तथा लूट-मार से बरबाद होकर वे नये धनिकों अथवा गिरजाघर का संरक्षण पाने की चेष्टा करने के लिए मजबूर थे, क्योंकि शाही शक्ति इतनी नहीं थी कि उनकी रक्षा कर सके। पर इस संरक्षण के लिए उन्हें बहुत महंगा दाम चुकाना पड़ा। जैसा कि पहले गाल के किसानों को करना पड़ा था, वैसा ही अब इन लोगों को करना पड़ा। उन्हें अपनी भूमि अपने संरक्षकों के नाम अंतरित कर देनी पड़ी, और फिर उसी ज़मीन को किसी न किसी रूप में काश्तकार बनकर जोतना पड़ा। ये रूप कितने भी भिन्न क्यों

न हों, परन्तु एक बात सब में थी—यह कि काश्तकार को अब अपने नये मालिक को बेगार और लगान देना पड़ता था। एक बार इस प्रकार की अधीनता में फंस जाने के बाद वे धीरे-धीरे अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता भी खो बैठे। चंद पीढ़ियों के बाद उनमें से अधिकतर भूदास बन गये। स्वतंत्र किसानों का पतन कितनी तेज़ी से हुआ, इसका परिचय हमें सेंट-जर्मे-दे-प्रेस के मठ की भूमि सम्बन्धी इर्मिनोन की खतौनी से मिल सकता है। पहले यह मठ पेरिस के नज़दीक था, आजकल पेरिस में है। कार्ल महान् के जीवन-काल में भी, इस मठ की जागीर में, जो आस-पास के इलाक़े में दूर तक फैली हुई थी, २७८८ कुटुम्ब रहते थे, जो लगभग सब के सब फ़्रैंक थे और जिनके नाम जर्मन थे। उनमें से २०८० coloni थे, ३५ liti, २२० दास और केवल ८ स्वतंत्र किसानों के कुटुम्ब थे! जिस प्रथा के अनुसार किसान की ज़मीन को संरक्षक अपनी बना लेता था और किसान को केवल जीवन भर उसे उपयोग करने का अधिकार देता था, जिस प्रथा को सालवियेनस ने ईश्वर-विरोधी प्रथा कहा था, वही अब हर जगह किसानों के साथ व्यवहार में गिरजाघर की प्रिय प्रथा बन गयी थी। सामन्ती भूदासता का चलन अधिकाधिक बढ़ रहा था। वह जिस हद तक रोमन angariae, अर्थात् सरकारी बेगार के नमूने पर ढाली थी[151], उसी हद तक वह जर्मन मार्क के सदस्यों से पुल और सड़क बनाने के तथा अन्य सार्वजनिक काम लेने की प्रथा पर आधारित थी। इस प्रकार ऐसा लगता था कि चार सौ वर्ष के बाद आम लोग फिर वहीं पहुंच गये जहां से वे चले थे।

लेकिन इससे केवल दो बातें साबित होती थीं। एक तो यह कि पतनोन्मुख रोमन साम्राज्य में सामाजिक स्तरीकरण और सम्पत्ति का वितरण, उस काल में खेती तथा उद्योग के उत्पादन के स्तर के पूर्णतः अनुरूप था, और इसलिए वह अपरिहार्य था; दूसरे यह कि उस काल के बाद आनेवाले चार सौ वर्षों में उत्पादन का वह स्तर न तो ख़ास ऊपर उठा और न नीचे गिरा, और इसलिए उससे लाज़िमी तौर से उसी पुराने ढंग का सम्पत्ति-वितरण तथा आबादी का वर्ग-विभाजन पैदा हुआ। रोमन साम्राज्य की अन्तिम शताब्दियों में शहर का देहात पर प्रभुत्व नहीं रह गया था और वह जर्मन शासन की प्रारम्भिक शताब्दियों में भी फिर से क़ायम नहीं हो पाया। इसका अर्थ यह है कि इस पूरे अरसे में खेती तथा उद्योग, दोनों का स्तर बहुत नीचे था। सामान्यतः ऐसी हालत होने पर और उसके फलस्वरूप शासक

बड़े-बड़े ज़मींदारों और पराधीन छोटे-छोटे किसानों का होना लाज़िमी है। ऐसे समाज में न तो दास-श्रम के सहारे चलनेवाली बड़ी-बड़ी जागीरों की रोमन अर्थ-व्यवस्था की, और न भूदास-श्रम की सहायता से चलनेवाली बड़े पैमाने की नयी खेती की क़लम लगायी जा सकती थी। इस बात का सबसे अच्छा प्रमाण यह है कि कार्ल महान् ने अपने मशहूर शाही ख़ास महाल में खेती के जो विस्तृत प्रयोग किये थे, उनका बाद में चिह्न तक न बचा। केवल मठों ने इन प्रयोगों को जारी रखा और केवल उन्हीं के लिए वे लाभप्रद सिद्ध हुए। परन्तु ये मठ असाधारण ढंग के सामाजिक निकाय थे जिनकी नींव ब्रह्मचर्य पर रखी गयी थी। वे ऐसा काम करते थे जो अपवाद होता था और इसलिए वे स्वयं अपवाद ही रह सकते थे।

फिर भी, इन चार सौ वर्षों में प्रगति हुई। भले ही इस काल के अंत में हमें फिर वे ही मुख्य वर्ग दिखायी पड़ते हों जो आरम्भ में दिखायी पड़े थे, पर जिन लोगों को लेकर ये वर्ग बने थे उनमें ज़रूर परिवर्तन हो गया था। प्राचीन काल की दास-प्रथा मिट गयी थी। वे तबाह और बरबाद स्वतंत्र नागरिक भी नहीं रह गये थे जो मेहनत करना अपनी शान के ख़िलाफ़ समझते थे। रोमन colonus और नये भूदासों के बीच स्वतंत्र फ़्रैंक किसान का आविर्भाव हुआ था। मरणोन्मुख रोमवाद की "निरर्थक स्मृतियां और निरुद्देश्य संघर्ष" अब मर चुके थे और दफ़ना भी दिये गये थे। नवीं सदी के सामाजिक वर्गों का जन्म एक पतनोन्मुख सभ्यता के दलदल में नहीं, बल्कि एक नयी सभ्यता के जच्चाघर में हुआ था। नयी नस्ल, जिसमें मालिक और नौकर दोनों ही थे, अपने रोमन पूर्ववर्तियों के मुक़ाबले में मनुष्यों की नस्ल थी। प्रबल ज़मींदारों तथा पराधीन किसानों के सम्बन्ध, जो रोमनों के प्राचीन जगत् के पतन के निराशापूर्ण रूप थे, नयी नस्ल के लिए एक नये विकास का प्रारम्भिक बिन्दु बन गये। इसके अलावा, ये चार सौ वर्ष वैसे भले ही अनुत्पादक प्रतीत हों, पर वे एक बड़ी उपज छोड़ गये, और वह है आधुनिक जातियां। यानी वे पश्चिमी यूरोप की मानवजाति को नये रूप में ढालकर और उसका नया विभाजन करके आगामी इतिहास के लिए उसे तैयार कर गये। दर असल जर्मनों ने यूरोप में नया जीवन फूंक दिया था। और यही कारण है कि जर्मन-काल में राज्यों के भंग होने के परिणामस्वरूप नौर्स-सैरेसेन आधिपत्य नहीं क़ायम हुआ, बल्कि "बेनीफ़िस" और सरपरस्ती (commendation)[152] की प्रथा ने बढ़कर सामन्तवाद का

रूप धारण किया और जनसंख्या में इतनी तेज़ी से वृद्धि हुई कि इसके मुश्किल से दो सदी बाद धर्मयुद्धों – क्रूसेडों – में जो बेतहाशा ख़ून बहा, उसे भी समाज बिना हानि उठाये बर्दाश्त कर सका।

मरणासन्न यूरोप में जर्मनों ने किस गुप्त मंत्र बल से नया जीवन फूंका था? क्या वह जर्मन नस्ल के अंदर छिपी हुई कोई जादूई ताक़त थी, जैसा कि हमारे अंधराष्ट्रवादी इतिहासकार कहना पसंद करेंगे? हरगिज़ नहीं। इसमें शक नहीं कि जर्मन लोग एक बहुत प्रतिभाशाली आर्य क़बीले के थे, जो उस वक़्त ख़ास तौर पर पूरी तेज़ी से विकास कर रहा था। परन्तु जिस चीज़ ने यूरोप में नयी जान डाली, वह उनका विशिष्ट जातीय गुण नहीं, बल्कि उनकी बर्बरता, उनकी गोत्र-व्यवस्था थी।

उनकी व्यक्तिगत योग्यता और वीरता, उनका स्वातंत्र्य-प्रेम, सभी सार्वजनिक कामों को अपना समझने की उनकी जनवादी प्रवृत्ति – संक्षेप में, वे तमाम गुण जिन्हें रोम के लोग खो चुके थे और जिनके बिना रोमन संसार की कीचड़ में से नये राज्यों का निर्माण और नयी जातियों का पैदा होना असम्भव था – वे यदि बर्बर युग की उन्नत अवस्था की विशेषताएं और गोत्र-व्यवस्था के फल नहीं, तो और क्या थे?

यदि जर्मनों ने एकनिष्ठ विवाह के प्राचीन रूप को बदल डाला, परिवार के अंदर पुरुष के शासन को ढीला किया, और स्त्री को इतना ऊंचा स्थान दिया जितना प्राचीन संसार में कभी नहीं था, तो जर्मनों में यह सब करने की शक्ति इसके सिवा और कहां से आयी कि वे विकास के बर्बर युग में थे, उनमें गोत्र-समाज के रीति-रिवाज थे, और मातृ-सत्ता के काल की विरासत उनमें अब भी जीवित थी?

कम से कम तीन सबसे महत्त्वपूर्ण देशों में – जर्मनी, उत्तरी फ़्रांस, और इंगलैंड में – यदि वे मार्क-समुदायों के रूप में गोत्र-व्यवस्था का एक अंश अक्षुण्ण रखने और उसे सामन्ती राज्य के अंदर समाविष्ट करने में सफल हुए और इस प्रकार उत्पीड़ित वर्ग को, किसानों को, मध्ययुगीन भूदास-प्रथा की कठिनतम परिस्थितियों में भी स्थानीय ऐक्य और प्रतिरोध का एक साधन प्रदान कर सके, जो साधन न तो प्राचीन काल के दासों को तैयार मिला था और न आधुनिक सर्वहारा को मिला है – तो इसका श्रेय उनकी बर्बर अवस्था को, गोत्रों में बसने की उनकी शुद्ध बर्बर प्रथा को नहीं, तो और किस बात को है?

और अन्त में, वे दास-प्रथा के उस नरम रूप को विकसित करके उसे सार्वत्रिक बनाने में सफल हुए, जो पहले उनके देश में प्रचलित था और बाद को जिसने अधिकाधिक रोमन साम्राज्य में भी दासता का स्थान ले लिया, और जिसने, जैसा कि फ़ूरिये ने पहली बार ज़ोर देकर कहा था, उत्पीड़ितों को **एक वर्ग के रूप में** अपने को धीरे-धीरे मुक्त कर लेने का एक साधन दिया था (fournit aux cultivateurs des moyens d'affranchissement *collectif et progressif**) और इस कारण वह दास-प्रथा से कहीं श्रेष्ठ था, क्योंकि जहां दास-प्रथा में दास की केवल वैयक्तिक मुक्ति हो सकती थी और बीच की कोई अवस्था सम्भव न थी (प्राचीन काल में कभी सफल विद्रोह के द्वारा दास-प्रथा का अंत नहीं हुआ), वहां मध्य युग के भूदासों ने धीरे-धीरे और एक वर्ग के रूप में अपने को मुक्त कर लिया था। यदि जर्मन यह सब कर सके, तो इसका कारण इसके सिवा और क्या था कि वे बर्बर अवस्था में थे, जिसकी वजह से वे प्राचीन काल की श्रम-दासता, या प्राच्य घरेलू दासता, किसी भी प्रकार की पूर्ण दास-प्रथा पर नहीं पहुंच पाये?

जर्मनों ने रोमन संसार को जो कुछ दिया, उसके सारे सशक्त और जीवनदायक तत्त्व बर्बर अवस्था की उपज थे। सच तो यह है कि केवल बर्बर लोगों में ही ऐसी शक्ति थी जो दम तोड़ती हुई सभ्यता के मृत्युपाश में जकड़ी दुनिया में नयी जान डाल पाती। और बर्बर युग की उन्नत अवस्था, जिसको जर्मन लोगों ने जातियों के प्रव्रजन के समय तक प्राप्त किया और जिसमें रहते हुए प्रगति की, वह इस प्रक्रिया के लिए सबसे अधिक उपयुक्त थी। इससे हर बात साफ़ हो जाती है।

---

* काश्तकारों को **सामूहिक रूप से धीरे-धीरे** मुक्ति पाने के साधन प्रदान करता है।—सं०

६

बर्बर युग और सभ्यता का युग

यूनानी, रोमन और जर्मन – हम इन तीन बड़े उदाहरणों के रूप में इस बात का अध्ययन कर चुके हैं कि गोत्र-व्यवस्था का विनाश किस प्रकार हुआ। अब हम अंत में, उन आम आर्थिक परिस्थितियों का अध्ययन करेंगे जिन्होंने बर्बर युग की उन्नत अवस्था में समाज की गोत्र-व्यवस्था की नींव खोद डाली थी और जिनके कारण सभ्यता के युग का आरम्भ होते-होते गोत्र-व्यवस्था बिलकुल ख़त्म हो गयी। इस अध्ययन के लिए मार्क्स की 'पूंजी' उतनी ही आवश्यक है जितनी मौर्गन की पुस्तक।

जांगल युग की मध्यम अवस्था में पैदा होकर तथा उसकी उन्नत अवस्था में और विकास करने के बाद गोत्र-व्यवस्था, जहां तक हम अपनी मूल सामग्री से किसी निष्कर्ष पर पहुंच सकते हैं, बर्बर युग की निम्न अवस्था में पूर्ण उत्कर्ष पर पहुंच गयी थी। अतएव हम अपना अध्ययन इस अवस्था से ही शुरू करेंगे।

इस अवस्था में, जिसका उदाहरण अमरीकी इंडियन प्रस्तुत करते हैं, हम गोत्र-व्यवस्था को पूर्ण विकसित रूप में पाते हैं। हर क़बीला कई गोत्रों में, बहुधा दो गोत्रों में, बंटा होता था। आबादी बढ़ जाने पर ये आदिम गोत्र फिर कई संतति-गोत्रों में बंट जाते थे, और उनके सम्बन्ध में मातृ-गोत्र बिरादरी के रूप में प्रगट होता था। खुद क़बीला भी कई क़बीलों में बंट जाता था, जिनमें से हर एक में प्रायः वे ही पुराने गोत्र होते थे। कम से कम कुछ स्थानों में एक दूसरे से सम्बन्धित क़बीले मिलकर एक महासंघ बना लेते थे। यह सरल संगठन उन सामाजिक परिस्थितियों के लिए पूर्ण रूप से पर्याप्त था जिनसे वह उत्पन्न हुआ था। वह एक प्रकार के विशिष्ट प्राकृतिक समूह से अधिक कुछ न था और वह इस रूप में संगठित समाज में जो आंतरिक संघर्ष उठ सकते थे, उनका निपटारा करने में समर्थ था। बाह्य क्षेत्र में संघर्ष युद्ध के द्वारा तय किये जाते थे, जिसका अंत किसी क़बीले के मिट

जाने में हो सकता था, लेकिन उसकी अधीनता में कभी नहीं। गोत्र-व्यवस्था में शासकों और शासितों के लिए कोई स्थान न था—इसी बात में गोत्र-व्यवस्था की महानता और उसकी परिमितता दोनों हैं। आंतरिक क्षेत्र में, अभी अधिकारों और कर्त्तव्यों में विभेद न हुआ था; किसी अमरीकी इंडियन के सामने यह सवाल कभी नहीं उठता था कि सार्वजनिक मामलों में भाग लेना, रक्त-प्रतिशोध लेना, या क्षतिपूर्ति करना उसका अधिकार है अथवा कर्त्तव्य। यह सवाल उसको उतना ही बेमानी लगता जितना यह कि खाना, सोना या शिकार करना उसका कर्त्तव्य है अथवा अधिकार। न ही कोई क़बीला या गोत्र भिन्न-भिन्न वर्गों में बंट सकता था। इसलिए अब हमें देखना चाहिए कि इस व्यवस्था का आर्थिक आधार क्या था?

आबादी बहुत ही छितरी हुई थी। वह केवल क़बीले के निवास-स्थान में ही घनी होती थी, जिसके चारों ओर क़बीले के लिए शिकार के वास्ते एक लम्बा-चौड़ा जंगली इलाक़ा होता था, और उसके भी आगे वह तटस्थ संरक्षक वन-भूमि होती थी जो उस क़बीले को दूसरे क़बीलों से अलग करती थी और उसकी रक्षा करती थी। क़बीले के अंदर पाया जाने वाला श्रम-विभाजन बस प्रकृति की उपज था, यानी केवल नारी और पुरुष के बीच श्रम-विभाजन पाया जाता था। पुरुष युद्ध में भाग लेते थे, शिकार करते थे, मछली मारते थे, आहार की सामग्री जुटाते थे, और इन तमाम कामों के लिए आवश्यक औज़ार तैयार करते थे। स्त्रियां घर की देखभाल करती थीं और खाना-कपड़ा तैयार करती थीं। वे खाना पकाती थीं, बुनती थीं और सीती थीं। प्रत्येक अपने-अपने कार्यक्षेत्र का स्वामी था: पुरुषों का जंगल में प्राधान्य था, तो स्त्रियों का घर में, प्रत्येक उन औज़ारों का मालिक था जिन्हें उसने बनाया था और जिन्हें वह इस्तेमाल करता था: हथियार और शिकार करने तथा मछली मारने के औज़ार पुरुषों की सम्पत्ति थे और घर के सरोसामान तथा बर्तन-भांडे स्त्रियों की सम्पत्ति थे। कुटुम्ब सामुदायिक प्रकार का था और एक कुटुम्बघर में कई, और अक्सर बहुत से परिवार एकसाथ रहते थे*। जो कुछ

* विशेषकर अमरीका के उत्तरी-पश्चिमी तट पर; देखिए बैंक्रोफ़्ट। रानी शर्लोत द्वीपों के निवासी हैडास लोगों में तो कुछ घरों में सात-सात सौ व्यक्ति एकसाथ रहते हैं। नूत्का लोगों में पूरा का पूरा क़बीला एक घर में रहता था। (एंगेल्स का नोट।)

साथ मिलकर तैयार किया और इस्तेमाल किया जाता था – जैसे घर, बागीचा, लम्बी नाव – वह सब की सामूहिक सम्पत्ति होता था। अतएव, वह "कमायी हुई सम्पत्ति" यहां और सिर्फ़ यहीं मिलती है, जिसे न्यायशास्त्री और अर्थशास्त्री झूठमूठ के लिए सभ्य समाज की विशेषता बताते हैं, और जो आधुनिक पूंजीवादी सम्पत्ति का अन्तिम झूठा क़ानूनी आधार बनी हुई है।

परन्तु मनुष्य हर जगह इसी अवस्था में नहीं रहा। एशिया में उसे ऐसे पशु मिल गये जिन्हें पालतू बनाया जा सकता था; उन्हें बाड़े में रखकर उनकी नस्ल बढ़ायी जा सकती थी। जंगली भैंस का शिकार करना पड़ता था, पालतू गाय हर साल एक बछड़ा और उसके ऊपर दूध देती थी। कई सबसे उन्नत क़बीलों ने – जैसे आर्यों, सामी लोगों, और शायद तूरानियों ने भी – पशुओं को पालतू बनाया, और बाद में पशुपालन व पशुप्रजनन को अपना मुख्य पेशा बना लिया। पशुपालक क़बीले बर्बर लोगों के साधारण जन-समुदाय से अलग हो गये। यह पहला बड़ा सामाजिक श्रम-विभाजन था। ये पशुपालक क़बीले, दूसरे बर्बर क़बीलों से न सिर्फ़ ज्यादा खाने-पीने का सामान तैयार करते थे, बल्कि अधिक विविधतापूर्ण सामान तैयार करते थे। उनके पास न केवल दूध, दूध से बनायी वस्तुएं, और गोश्त दूसरे क़बीलों की तुलना में अधिक मात्रा में होता था, बल्कि उनके पास ख़ालें, ऊन, बकरियों के बाल, और ऊन कातकर और बुनकर बनाये गये कपड़े भी थे, जिनका इस्तेमाल, कच्चे माल की मात्रा में दिनोंदिन होनेवाली बढ़ती के साथ-साथ, लगातार बढ़ रहा था। इससे पहली बार नियमित रूप से विनिमय सम्भव हुआ। इसके पहले वाली अवस्थाओं में केवल कभी-कभी ही विनिमय सम्भव था; कुछ लोगों की हथियारों व औज़ारों के बनाने में विशेष निपुणता क्षणिक श्रम-विभाजन को संभव बना सकती थी। उदाहरण के लिए, बहुत-सी जगहों में नवीन प्रस्तर युग के पत्थर के औज़ार बनानेवाले कारख़ानों के अवशेष मिले हैं, जिनके बारे में किसी प्रकार के संदेह की गुंजाइश नहीं है। इन कारख़ानों में जो कारीगर अपनी क्षमता का विकास किया करते थे, बहुत सम्भव है कि वे पूरे समुदाय के लिए काम करते थे, जैसा कि भारत की गोत्र-व्यवस्था वाले समुदायों के स्थायी दस्तकार आजकल भी करते हैं। हर हालत में, उस अवस्था में क़बीले के अंदर विनिमय के अलावा किसी और प्रकार के विनिमय के आरम्भ होने की सम्भावना नहीं थी और वह विनिमय भी बस अपवादस्वरूप ही था। परन्तु जब पशुपालक क़बीलों ने

स्पष्ट आकार ग्रहण किया, तो भिन्न-भिन्न क़बीलों के सदस्यों के बीच विनिमय के आरम्भ होने और विकास करने तथा एक नियमित सामाजिक प्रथा के रूप में समाज में जड़ जमा लेने के लिए सभी अनुकूल परिस्थितियां पैदा हो गयीं। शुरू में एक क़बीला दूसरे क़बीले के साथ अपने-अपने गोत्र-मुखियाओं के ज़रिए विनिमय करता था, परन्तु जैसे-जैसे पशुओं के रेवड लोगों की पृथक् सम्पत्ति बनते गये, वैसे-वैसे व्यक्तियों के बीच होनेवाले विनिमय का अधिकाधिक प्राधान्य होता गया, यहां तक कि अंत में वही विनिमय का एकमात्र रूप हो गया। पशुपालक क़बीले जो मुख्य चीज़ दूसरे क़बीलों को विनिमय में देते थे, वह थी पशुधन। अतएव पशुधन वह माल बन गया जिसके द्वारा दूसरे सभी मालों का मूल्य मापा जाता था, और जिसे हर जगह लोग ख़ुशी से दूसरे मालों के बदले में लेने को तैयार रहते थे, सारांश यह कि पशुधन ने मुद्रा का कार्य ग्रहण कर लिया और इस अवस्था में वह मुद्रा का काम देने भी लगा था। माल के विनिमय के आरम्भ में ही एक विशेष माल – मुद्रा – की ज़रूरत अनिवार्य रूप से तेज़ी से महसूस होने लगी।

बर्बर युग की निम्न अवस्था के एशियाई लोगों को शायद बाग़बानी का ज्ञान नहीं था, पर अधिक से अधिक बर्बर युग की मध्यम अवस्था तक तो वह ज़रूर ही इन लोगों में खेती के पूर्ववर्ती के रूप में शुरू हो गयी होगी। तूरान की पहाड़ियों की जलवायु ऐसी न थी कि बिना लंबे और कड़ाके के जाड़े के दिनों के लिए चारे का इन्तज़ाम किये वहां पशुपालकों का जीवन बिताया जा सके। इसलिए यहां चारे और अनाज की खेती के बिना काम न चल सकता था। काले सागर के उत्तर में जो स्तेपी प्रदेश हैं, वहां भी यही हालत थी। और जब एक बार जानवरों के लिए अनाज बोया जाने लगा, तो शीघ्र ही वह मनुष्यों का भी भोजन बन गया। खेती की ज़मीन अब भी क़बीले की सम्पत्ति बनी रही और वह पहले गोत्रों के बीच बांट दी जाती थी, गोत्र उसे सामुदायिक कुटुम्बों में और अन्त में अलग-अलग व्यक्तियों के बीच इस्तेमाल के लिए बांट देता था। उन्हें शायद ज़मीन पर क़ब्ज़े का कुछ अधिकार मिला हुआ था, पर उससे अधिक कुछ नहीं।

इस अवस्था की औद्योगिक उपलब्धियों में दो विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण हैं। एक है करघा, दूसरा है खनिज धातुओं को गलाने व साफ़ करने तथा धातुओं से काम की चीज़ें बनाने की कला। उनमें तांबे, टिन, और उन्हें मिलाकर बनाये जानेवाले कांसे का सबसे अधिक महत्त्व था। कांसे से बड़े

काम के औज़ार और हथियार बनते थे, पर वे पत्थर के औज़ारों की ज़रूरत को ख़त्म नहीं कर सकते थे। यह काम तो सिर्फ़ लोहा ही कर सकता था, परन्तु उसका उत्पादन अभी तक अज्ञात था। सोना और चांदी ज़ेवर बनाने और सजावट के काम में आने लगे थे, और वे उस समय भी तांबे और कांसे से कहीं अधिक मूल्यवान् समझे जाने लगे होंगे।

अब पशु-पालन, खेती, घरेलू दस्तकारी – सभी शाखाओं में उत्पादन का विकास हुआ तो मानव श्रम-शक्ति जितना उसके पोषण में ख़र्च होता था, उससे अधिक पैदा करने लगी। साथ ही गोत्र के या सामुदायिक कुटुम्ब के, अथवा अलग-अलग परिवारों के प्रत्येक सदस्य के ज़िम्मे रोज़ाना पहले से कहीं ज़्यादा काम आ पड़ा। इसलिए ज़रूरत महसूस हुई कि कहीं से और श्रम-शक्ति लायी जाये। वह युद्ध से मिली। युद्ध में जो लोग बन्दी हो जाते थे, अब उनको दास बनाया जाने लगा। उस समय की सामान्य ऐतिहासिक परिस्थितियों में जो पहला बड़ा सामाजिक श्रम-विभाजन हुआ, वह श्रम की उत्पादन-क्षमता को बढ़ाकर, अर्थात् धन में वृद्धि करके, और उत्पादन के क्षेत्र को विस्तार देकर समाज में अपने पीछे लाज़िमी तौर पर दास-प्रथा को ले आया। पहले बड़े सामाजिक श्रम-विभाजन के परिणामस्वरूप ख़ुद समाज के पहले बड़े विभाजन का उदय हुआ, समाज दो वर्गों में बंट गया: एक ओर दासों के मालिक हो गये और दूसरी ओर दास, एक ओर शोषक हो गये और दूसरी ओर शोषित।

जानवरों के रेवड़ और ग़ल्ले कब और कैसे क़बीले अथवा गोत्र की सामूहिक सम्पत्ति से अलग-अलग परिवारों के मुखियाओं की सम्पत्ति बन गये, यह हम आज तक नहीं जान सके हैं। परन्तु मुख्यतः यह परिवर्तन इसी अवस्था में हुआ होगा। जानवरों के रेवड़ों तथा अन्य सम्पदाओं के कारण परिवार के अन्दर क्रांति हो गयी। जीविका कमाना सदा पुरुष का काम रहा था, वह जीविका कमाने के साधनों का उत्पादन करता था और उनका स्वामी होता था। अब जानवरों के रेवड़ जीविका कमाने का नया साधन बन गये थे; शुरू में जंगली जानवरों को पकड़कर पालतू बनाना और फिर उनका पालन-पोषण करना – यह पुरुष का ही काम था। इसलिए वह जानवरों का मालिक होता था और उनके बदले में मिलनेवाले तरह-तरह के माल और दासों का भी मालिक होता था। इसलिए उत्पादन से जो अतिरिक्त पैदावार होती थी, वह पुरुष की सम्पत्ति होती थी; नारी उसके उपभोग में हिस्सा बंटाती

थी, परन्तु उसके स्वामित्व में नारी का कोई भाग नहीं होता था। "जांगल" योद्धा और शिकारी घर में नारी को प्रमुख स्थान देकर ख़ुद गौण स्थान से ही संतुष्ट था। "सीधे-सादे" गड़रिये ने अपनी दौलत के ज़ोर से मुख्य स्थान पर ख़ुद अधिकार कर लिया और नारी को गौण स्थान में ढकेल दिया। और नारी कोई शिकायत न कर सकती थी। पति और पत्नी के बीच सम्पति का विभाजन परिवार के अंदर श्रम के विभाजन द्वारा नियमित होता था। श्रम का विभाजन पहले जैसा ही था, फिर भी अब उसने घर के अंदर के सम्बन्ध को एकदम उलट-पलट दिया था, क्योंकि परिवार के बाहर श्रम का विभाजन बदल गया था। जिस कारण से पहले घर में नारी सर्वेसर्वा थी—यानी उसका घरेलू काम-काज तक ही सीमित रहना—उसी ने अब घर में पुरुष का आधिपत्य सुनिश्चित बना दिया। जीविका कमाने के पुरुष के काम की तुलना में नारी के घरेलू काम का महत्त्व जाता रहा। अब पुरुष का काम सब कुछ बन गया और नारी का काम एक महत्त्वहीन योगदान मात्र रह गया। यहां हम अभी से ही यह बात साफ़-साफ़ देख सकते हैं कि जब तक स्त्रियों को सामाजिक उत्पादन के काम से अलग और केवल घर के कामों तक ही, जो व्यक्तिगत होते हैं, सीमित रखा जायेगा, तब तक स्त्रियों का स्वतंत्रता प्राप्त करना और पुरुषों के साथ बराबरी का हक़ पाना असम्भव है, और असम्भव ही बना रहेगा। स्त्रियों की स्वतंत्रता केवल उसी समय सम्भव होती है जब वे बड़े पैमाने पर, सामाजिक पैमाने पर, उत्पादन में भाग लेने में समर्थ हो पाती हैं, और जब घरेलू काम उनके न्यूनतम ध्यान का तक़ाज़ा करते हैं। और यह केवल बड़े पैमाने के आधुनिक उद्योग के परिणामस्वरूप ही सम्भव हुआ है, जो न केवल स्त्रियों के लिए यह मुमकिन बना देता है कि वे बड़ी संख्या में उत्पादन में भाग ले सकें, बल्कि जिसके लिए स्त्रियों को उत्पादन में खींचना भी ज़रूरी होता है, और इसके अलावा जिसमें घर के निजी काम-काज को भी एक सार्वजनिक उद्योग बना देने की प्रवृत्ति होती है।

जब घर के अंदर पुरुष की सचमुच प्रभुता क़ायम हो गयी, तो उसकी तानाशाही क़ायम होने के रास्ते में जो आख़िरी बाधा थी, वह भी ख़त्म हो गयी। मातृ-सत्ता के नाश, पितृ-सत्ता की स्थापना और युग्म-परिवार के धीरे-धीरे एकनिष्ठ विवाह की प्रथा में संक्रमण से इस तानाशाही की परिपुष्टि हुई और वह स्थायी बनी। इससे पुरानी गोत्र-व्यवस्था में दरार

पड़ गयी। एकनिष्ठ परिवार एक ताक़त बन गया और गोत्र के अस्तित्व के लिए एक ख़तरा बन गया।

अगला क़दम हमें बर्बर युग की उन्नत अवस्था में ले आता है। यह वह अवस्था है जिसमें सभी सभ्य जातियां अपने वीर-काल से गुज़री हैं। यह लोहे की तलवार का युग है, पर साथ ही लोहे की फालवाले हल तथा लोहे की कुल्हाड़ी का भी युग है, जब लोहा मनुष्य का सेवक बन गया था। यदि हम आलू को छोड़ दें, तो लोहा उन सभी कच्चे मालों में अन्तिम और सबसे महत्त्वपूर्ण है जिन्होंने इतिहास में क्रान्तिकारी भूमिका अदा की है। लोहे के कारण पहले से बड़े पैमाने पर खेत बनाकर फ़सल उगाना और लम्बे-चौड़े जंगली इलाक़ों को खेती के लिए साफ़ करना सम्भव हो गया। उससे दस्तकारों को इतने सख़्त और तेज़ औज़ार मिल गये जिनके सामने न कोई पत्थर ठहर सकता था और न कोई अन्य ज्ञात धातु ही ठहर सकती थी। परन्तु यह सब धीरे-धीरे ही हुआ, शुरू में जो लोहा तैयार हुआ था वह तो अक्सर कांसे से भी नरम होता था। इस प्रकार पत्थर के बने औज़ार धीरे-धीरे ही ग़ायब हुए। हम न केवल 'हिल्डेब्रांड के गीत' में पत्थर की कुल्हाड़ियों को युद्ध में इस्तेमाल होते सुनते हैं, बल्कि हेस्टिंग्स की लड़ाई में भी, जो १०६६ में हुई थी[153], उनका प्रयोग होते देखते हैं। परन्तु अब प्रगति की धारा अबाध हो गयी, रुकावटें पहले से कम हो गयीं और गति पहले से तेज़ हो गयी। क़बीले का या क़बीलों के महासंघ का केन्द्रीय स्थान शहर बन गया, जिसकी बुर्जदार और मोखेदार चहारदीवारी के घेरे में पत्थर या ईंटों के बने मकान होते थे। यह शहर जहां वास्तुकला में प्रगति का सूचक था, वहीं वह पहले से बढ़े हुए ख़तरे और उससे बचाव के इन्तज़ाम की ज़रूरत का द्योतक भी। धन-दौलत तेज़ी से बढ़ रही थी, पर यह अलग-अलग व्यक्तियों की धन-दौलत थी। बुनाई, धातु-कर्म और दूसरी दस्तकारियों का, हर एक का अपना अलग विशिष्ट रूप होता जा रहा था, और उनके मालों में अधिकाधिक सफ़ाई, ख़ूबसूरती और विविधता आती जा रही थी। खेती से अब न केवल अनाज, दालें और फल मिलते थे, बल्कि तेल और शराब भी मिलती थीं—अब लोगों ने तेल निकालने और शराब बनाने की कला सीख ली थी। अब कोई एक व्यक्ति इतने भिन्न प्रकार के काम नहीं कर सकता था; इसलिए अब **दूसरा बड़ा श्रम-विभाजन** हुआ: दस्तकारियां खेती से अलग हो गयीं। उत्पादन में जो लगातार वृद्धि हो रही थी, और उसके

साथ-साथ श्रम की उत्पादन-क्षमता में जो बढ़ती हो गयी थी, उसने मानव श्रम-शक्ति का मूल्य बढ़ा दिया। दास-प्रथा, जो पिछली मंज़िल में अंकुरित हो रही थी और केवल कहीं-कहीं पायी जाती थी, अब समाज-व्यवस्था का एक आवश्यक अंग बन गयी। दास अब महज़ सहायक नहीं रह गये, बल्कि उन्हें बीसियों की संख्या में खेतों और कारख़ानों में काम करने के लिए हांका जाने लगा। उत्पादन के खेती तथा दस्तकारी, इन दो बड़ी शाखाओं में बंट जाने के कारण अब विनिमय के लिए उत्पादन, माल का उत्पादन होने लगा। और उसके साथ-साथ न सिर्फ़ अपने इलाक़े के अंदर, न सिर्फ़ विभिन्न क़बीलों के इलाक़ों की सीमाओं पर, बल्कि समुद्र पार भी व्यापार होने लगा। इस सब का अभी बहुत कम विकास हुआ था; सार्वजनिक मुद्रा का काम करनेवाले माल के रूप में बहुमूल्य धातुओं का पहले से अधिक प्रयोग होने लगा था, परन्तु अभी वे सिक्कों के रूप में नहीं ढाली जाती थीं, और केवल तौल कर उनका विनिमय होता था।

अब स्वतंत्र लोगों तथा दासों के भेद के साथ-साथ अमीर और ग़रीब का भेद भी जुड़ गया था। नये श्रम-विभाजन के साथ समाज नये सिरे से वर्गों में बंट गया था। जहां कहीं पुराने आदिम सामुदायिक कुटुम्ब अभी तक क़ायम थे, वहां वे विभिन्न परिवारों के अलग-अलग मुखियाओं के पास कम-ज़्यादा धन होने के कारण टूट गये और इससे पूरे समुदाय की तरफ़ से मिलकर खेती करने की प्रथा ख़तम हो गयी। खेती की ज़मीन अलग-अलग परिवारों में इस्तेमाल के लिए बांट दी गयी—पहले वह एक निश्चित अवधि के लिए बांटी जाती थी, फिर सदा के लिए बांट दी गयी। पूरी तरह निजी सम्पत्ति में संक्रमण धीरे-धीरे और युग्म-परिवार के एकनिष्ठ विवाह में संक्रमण के साथ-साथ हुआ। व्यक्तिगत परिवार समाज की आर्थिक इकाई बनने लगा।

आबादी के पहले से ज़्यादा घनी होने की वजह से यह ज़रूरी हो गया कि वह आन्तरिक तथा बाह्य रूप से अधिक एकताबद्ध हो। हर जगह एक दूसरे से रिश्ते से जुड़े क़बीलों को मिलाकर महासंघ बनाना और उसके कुछ समय बाद उनका विलयन आवश्यक हो गया और तब अलग-अलग क़बीलों के इलाक़े मिलकर एक जाति का एक इलाक़ा बन गये। सेनानायक—rex, basileus, thiudans—स्थायी अधिकारी बन गया जिसके बिना काम नहीं चल सकता था। जहां कहीं अभी तक जन-सभा नहीं थी, वहां वह क़ायम कर दी गयी। गोत्र-समाज ने जिस सैनिक लोकतंत्र के रूप में विकास किया था, उसके

मुख्य अंग थे सेनानायक, परिषद् और जन-सभा। सैनिक लोकतंत्र इसलिए कि युद्ध करना, और युद्ध के लिए संगठन करना जाति के जीवन का एक नियमित अंग बन गया था। एक जाति अपनी पड़ोसी जाति की दौलत देखकर लालच करने लगती थी। दौलत हासिल करना इन जातियों के लिए जीवन का एक मुख्य उद्देश्य बन गया था। ये बर्बर लोग थे: उन्हें उत्पादक काम से लूट-मार करना अधिक आसान, यहां तक कि अधिक सम्मानप्रद लगता था। एक जमाना था जब केवल आक्रमण का बदला लेने के लिए या अपने नाकाफ़ी इलाक़े को बढ़ाने के लिए युद्ध किया जाता था, पर अब केवल लूट-मार के लिए युद्ध होने लगा, और युद्ध करना एक नियमित पेशा बन गया। नये क़िलाबंद शहरों के चारों ओर ऊंची-ऊंची दीवारें अकारण नहीं बनायी गयी थीं—उनकी गहरी खाइयां गोत्र-व्यवस्था की क़ब्र बन गयी थीं और उनकी मीनारें अभी से सभ्यता के युग को छूने लगी थीं। अन्दरूनी मामलों में भी इसी तरह का परिवर्तन हो गया। लूट-मार के लिए होनेवाले युद्धों ने सर्वोच्च सेनानायक की और उप-सेनानायकों की शक्ति बढ़ा दी। पहले, आम तौर पर एक ही परिवार से लोगों के उत्तराधिकारी चुने जाने की प्रथा थी, अब, विशेषकर पितृ-सत्ता क़ायम हो जाने के बाद, वह धीरे-धीरे वंशगत उत्तराधिकार के नियम में बदल गयी। शुरू में इसे लोग छूट देते थे, बाद में इसका दावा किया जाने लगा और अन्त में यह जबर्दस्ती क़ायम कर लिया गया। इस प्रकार वंशगत बादशाही और वंशगत अभिजात्य की नींव पड़ गयी। इस तरह धीरे-धीरे गोत्र-व्यवस्था की संस्थाओं की जड़ें जनता के बीच से, गोत्रों, बिरादरियों और क़बीलों में से उखाड़ दी गयीं, और पूरी गोत्र-व्यवस्था अपने से एक बिलकुल उल्टी चीज़ में बदल गयी। अपने मामलों की स्वतंत्र रूप से ख़ुद व्यवस्था करने वाले क़बीलों के संगठन से अब वह एक ऐसा संगठन बन गया जो पड़ोसियों को लूटने और सताने के लिए था। और तदनुरूप ही उसके निकाय जनता की इच्छा को कार्यान्वित करने का साधन नहीं रह गये, बल्कि ख़ुद अपनी जनता पर शासन करने और अत्याचार करनेवाले स्वतंत्र निकाय बन गये। यह कभी न होता यदि धन का लालच गोत्र के सदस्यों को अमीरों और ग़रीबों में न बांट देता, यदि "गोत्र के भीतर सम्पत्ति के भेद हितों की एकता को गोत्र के सदस्यों के आपसी विरोध में न बदल देते" (मार्क्स), और यदि दास-प्रथा की वृद्धि

के कारण जीविका कमाने के लिए मेहनत करना ग़ुलामों का और लूट-मार से भी ज़्यादा शर्मनाक काम न समझा जाने लगता।

* * *

अब हम सभ्यता के द्वार पर पहुंच जाते हैं। श्रम-विभाजन में और भी नयी प्रगति के साथ इस युग का श्रीगणेश होता है। बर्बर युग की निम्नतम अवस्था में मनुष्य केवल सीधे-सीधे अपनी ज़रूरतों के लिए पैदा करता था, विनिमय केवल कहीं-कहीं पर होता था जहां कि अचानक अतिरिक्त पैदावार हो जाती थी। बर्बर युग की मध्यम अवस्था में हम पाते हैं कि पशुपालक क़बीलों के पास पशुधन के रूप में एक ऐसी सम्पत्ति हो जाती है, जो काफ़ी बड़ा रेवड़ या गल्ला होने पर नियमित रूप से उनकी ज़रूरतों से ज़्यादा पैदावार उन्हें देती है। साथ ही हम यह भी पाते हैं कि पशुपालक क़बीलों तथा उन पिछड़े हुए क़बीलों के बीच, जिनके पास पशुओं के रेवड़ नहीं होते, श्रम का विभाजन हो जाता है। इस तरह उत्पादन की दो भिन्न अवस्थाएं साथ-साथ चलती हैं, जिससे नियमित रूप से विनिमय होने के लिए परिस्थितियां तैयार हो जाती हैं। बर्बर युग की उन्नत अवस्था आने पर श्रम का एक और विभाजन हो गया – खेती तथा दस्तकारी के बीच विभाजन, जिससे अधिकाधिक बढ़ते हुए परिमाण में, विशेष रूप से विनिमय करने के लिए, मालों का उत्पादन होने लगा। इस तरह अलग-अलग उत्पादकों के बीच विनिमय उस अवस्था में पहुंच गया जहां वह समाज के लिए नितान्त आवश्यक बन गया। सभ्यता के युग ने पहले से स्थापित श्रम के विभाजनों को और सुदृढ़ किया तथा आगे बढ़ाया, ख़ास तौर पर शहर तथा देहात के अन्तर को और भी गहरा करके (या तो प्राचीन काल की तरह शहर का देहात पर आर्थिक आधिपत्य रहता था, या मध्य युग की तरह शहर पर देहात का आर्थिक प्रभुत्व क़ायम हो जाता था); और एक तीसरा श्रम-विभाजन भी जोड़ दिया जो सभ्यता के युग की अपनी विशेषता है और निर्णायक महत्त्व रखती है: उसने एक ऐसा वर्ग उत्पन्न किया जो उत्पादन में कोई भाग नहीं लेता था और केवल पैदावार के विनिमय का काम करता था। यह व्यापारियों का वर्ग था। इसके पहले वर्गों के सभी प्रारम्भिक एवं अविकसित रूपों का केवल उत्पादन से सम्बन्ध था। उत्पादन में लगे हुए लोगों को उत्पादन का प्रबंध करनेवालों और कार्य करनेवालों में या बड़े पैमाने

पर उत्पादन करनेवालों और छोटे पैमाने पर उत्पादन करनेवालों में, बांट दिया गया था। लेकिन यहां पहली बार एक ऐसा वर्ग सामने आता है जो उत्पादन में बिना कोई भाग लिये ही उसके पूरे प्रबंध पर अधिकार जमा लेता है और उत्पादकों को आर्थिक दृष्टि से अपने अधीन कर लेता है। हर दो प्रकार के उत्पादकों के बीच वह एक ऐसा बिचवइया बन जाता है जिसके बिना उनका काम नहीं चलता, और फिर वह उन दोनों का शोषण करता है। इस बहाने से कि उत्पादकों को विनिमय की परेशानी और जोखिम न उठानी पड़े, उनकी पैदावार के लिए दूर-दूर के बाज़ार खोज लिये जायें, और इस प्रकार समाज का सबसे उपयोगी वर्ग बनने के बहाने से वास्तव में परोपजीवियों का एक वर्ग उत्पन्न होता है—ये असली माने में सामाजिक पराश्रयी हैं जो वस्तुतः नगण्य सेवाओं के पुरस्कार के रूप में देश और विदेश के उत्पादन की सारी मलाई चट कर जाते हैं, देखते-देखते बेशुमार दौलत जमा कर लेते हैं, उसके अनुरूप समाज में असर जमा लेते हैं, और इसी कारण उन्हें सभ्यता के युग में नित नया सम्मान प्राप्त होता है और उनका उत्पादन पर अधिकाधिक नियंत्रण होता जाता है, यहां तक कि अन्त में वे ख़ुद अपनी एक उपज लेकर उपस्थित होते हैं, और वह है, एक निश्चित अवधि के बाद बार-बार आनेवाला अर्थ-संकट।

विकास की जिस अवस्था की हम चर्चा कर रहे हैं, उसमें नवोत्पन्न व्यापारी वर्ग को अभी इस बात का कोई आभास न मिला था कि उसके भाग्य में कितनी बड़ी-बड़ी बातें लिखी हैं। लेकिन वह उदित हुआ और अपने को समाज के लिए अपरिहार्य बना लिया—इतना ही काफ़ी था। परन्तु इसके साथ-साथ **धातु-मुद्रा**, धातु के बने सिक्के काम में आने लगे और एक ऐसा नया साधन तैयार हो गया जिसके द्वारा पैदा न करनेवाला, पैदा करनेवालों तथा उनकी पैदावार पर शासन कर सकता था। मालों के उस माल का पता लग गया जो अपने अन्दर अन्य सभी मालों को छिपाये रहता है, वह जादू की पुड़िया मिल गयी जिसे इच्छा होते ही हर उस चीज़ में बदला जा सकता है जो इच्छित हो, या जिसकी इच्छा की जाये। वह जिसके पास होती थी, उत्पादन के संसार में उसी का बोलबाला होता था। और सबसे ज़्यादा वह किसके पास होती थी? व्यापारी के पास। मुद्रा-पूजा उसके हाथों में सुरक्षित थी। उसने ख़ूब अच्छी तरह साफ़ कर दिया था कि मुद्रा के सामने सभी मालों को, और इसलिए माल के सभी उत्पादकों को, नाक रगड़नी पड़ेगी।

उसने व्यवहार में सिद्ध कर दिखाया कि इस साक्षात् मूर्तिमान धन के सामने धन के अन्य सभी रूप केवल दिखावा मात्र हैं। मुद्रा की शक्ति फिर कभी उस आदिम भोंड़े एवं हिंसक रूप में प्रकट नहीं हुई जिस रूप में वह अपने शैशव में प्रगट हुई थी। मुद्रा के बदले में मालों की बिक्री होने लगने के बाद मुद्रा उधार देना और उस पर व्याज लेना व सूदख़ोरी शुरू हुई। और प्राचीन एथेंस तथा रोम के क़ानूनों ने क़र्ज़दार को जिस तरह निर्ममता से और लाचार हालत में सूदख़ोर महाजनों के चरणों में डाल दिया था, बाद के किसी काल के क़ानूनों ने वैसा नहीं किया। और एथेंस तथा रोम, इन दोनों जगहों के क़ानून अपने-आप उत्पन्न हो गये थे, वे सामान्य क़ानून थे, और उनके पीछे आर्थिक कारणों के अलावा और किसी तरह का ज़ोर न था।

तरह-तरह के मालों तथा दासों के रूप में और मुद्रा के रूप में तो धन था ही, उसके अलावा ज़मीन के रूप में भी धन का आविर्भाव हुआ। अलग-अलग व्यक्तियों को ज़मीन के जो टुकड़े शुरू में अपने गोत्रों या क़बीलों से मिले थे, अब उन पर उनका अधिकार इतना पक्का हो गया था कि ये टुकड़े उनकी वंशगत सम्पत्ति बन गये। इसके पहले वे जिस चीज़ की सबसे ज़्यादा कोशिश कर रहे थे, वह यह थी कि ज़मीन के उनके टुकड़ों पर गोत्र-समुदाय का जो दावा था, किसी तरह उससे छुटकारा मिल जाये, क्योंकि वह उनके लिए एक बंधन बन गया था। वे इस बंधन से मुक्त हो गये। पर उसके कुछ समय बाद उन्हें अपनी नयी भू-सम्पत्ति से भी मुक्ति मिल गयी। ज़मीन पर व्यक्तियों का पूर्ण व स्वतंत्र स्वामित्व होने का अर्थ केवल यही नहीं था कि भूमि पर उनका अबाधित और असीमित क़ब्ज़ा था बल्कि उसका अर्थ यह भी था कि वे अपनी ज़मीन का अन्य-संक्रामण कर सकते थे। जब तक भूमि गोत्र की सम्पत्ति थी, इस बात की सम्भावना न हो सकती थी। पर जब ज़मीन के नये मालिक ने गोत्र और क़बीले के सर्वोच्च अधिकार के बंधनों को तोड़कर फेंक दिया, तो उसके साथ-साथ उसने उस नाते को भी तोड़ डाला जो अभी तक उसे ज़मीन से अटूट रूप में बांधे हुए था। इसका क्या मतलब था, यह उसके सामने मुद्रा ने साफ़ कर दिया, जिसका आविष्कार ज़मीन पर निजी स्वामित्व क़ायम होने के साथ-साथ हुआ था। अब ज़मीन का बिकाऊ माल बन जाना सम्भव हो गया; अब उसे बेचा जा सकता था और रेहन किया जा सकता था। ज़मीन पर निजी स्वामित्व का क़ायम होना था कि रेहन रखने की प्रथा का भी आविष्कार हो गया (देखिए एथेंस का

उदाहरण)। जिस प्रकार एकनिष्ठ विवाह के साथ हैटेरिज़्म ग्रौर वेश्यावृत्ति जुड़ी रहीं, उसी प्रकार ग्रब ज़मीन पर निजी स्वामित्व के साथ रेहन-प्रथा जुड़ गयी। तुम ज़मीन का पूर्ण, स्वतंत्र ग्रौर संक्राम्य स्वामित्व चाहते थे। एवमस्तु! जो चाहा वही मिला! – tu l'as voulu, George Dandin!*

व्यापार का विस्तार, मुद्रा का चलन, सूदख़ोरी, ज़मीन पर निजी स्वामित्व ग्रौर रेहन की प्रथा – इन सब चीज़ों के साथ यदि एक तरफ़ एक छोटे से वर्ग के हाथ में बड़ी तेज़ी से धन एकत्रित तथा केन्द्रित होने लगा, तो दूसरी तरफ़ ग्राम लोगों की ग़रीबी बढ़ने लगी तथा तबाह ग्रौर दिवालिया लोगों की संख्या तेज़ी से बढ़ने लगी। धनिकों के इस नये ग्रभिजात वर्ग ने, जिस हद तक वह क़बीलों के पुराने कुलीनों से भिन्न था, पुराने कुलीनों को स्थायी रूप से पृष्ठभूमि में ढकेल दिया (एथेंस में, रोम में ग्रौर जर्मनों में यही हुग्रा)। ग्रौर धन के ग्राधार पर स्वतंत्र मनुष्यों के भिन्न-भिन्न वर्गों में इस तरह बंट जाने के साथ ही साथ, यूनान में ख़ास तौर पर दासों की संख्या में बड़ी भारी वृद्धि हो गयी**, जिनकी बेगार पर पूरे समाज का ऊपरी ढांचा खड़ा किया गया था।

ग्राइए, ग्रब हम यह देखें कि इस सामाजिक क्रांति के फलस्वरूप गोत्र-व्यवस्था का क्या हुग्रा। वह उन नये तत्त्वों के सामने बिलकुल निस्सहाय थी जो बिना उसकी मदद के ही विकसित हो गये थे। उसका ग्रस्तित्व इस बात पर निर्भर था कि गोत्र के, या यों कहिए कि क़बीले के सदस्य सब एक इलाक़े में साथ-साथ रहें ग्रौर दूसरे लोग उस इलाक़े में न रहें। पर यह परिस्थिति तो बहुत दिनों से नहीं रह गयी थी। हर जगह गोत्र ग्रौर क़बीले घुल-मिल कर खिचड़ी हो गये थे; हर जगह स्वतन्त्र नागरिकों के बीच दास, ग्राश्रित लोग ग्रौर विदेशी लोग भी रह रहे थे। यायावर की जगह स्थावर

---

* "तुम यही चाहते थे, जार्ज दांदीं!" (मोलियेर, 'जार्ज दांदीं')। – सं०

** एथेंस में दासों की संख्या क्या थी, यह जानने के लिए पृष्ठ ११७ देखिये (प्रस्तुत खण्ड में पृष्ठ २८२। – सं०)। कोरिन्थ नगर में, जब वह उत्कर्ष के शिखर पर था, दासों की संख्या ४,६०,००० ग्रौर ईजिना में ४,७०,००० थी। दोनों नगरों में दासों की संख्या स्वतंत्र नागरिकों की दस-गुनी थी। (**एंगेल्स का नोट।**)

जीवन-अवस्था बर्बर युग के मध्यम चरण के अंत में ही प्राप्त की गयी थी, अब लोगों की गतिशीलता तथा निवास-स्थान परिवर्तन से उसमें बार बार व्याघात पड़ने लगा। यह चलनशीलता व्यापार के दबाव, पेशों के बदलते रहने तथा भूमि के अन्य-संक्रामण के कारण लाज़िमी हो गयी थी। अब गोत्र-संगठन के सदस्यों के लिए सम्भव न था कि वे अपने सामूहिक मामलों को निपटाने के लिए एक जगह जमा हो सकें। अब केवल गौण महत्त्व के काम, उदाहरण के लिये धार्मिक अनुष्ठान आदि, ही मिलकर किये जाते थे, और वह भी आधे मन से। गोत्र-समाज की संस्थाएं जिन ज़रूरतों और हितों की देखभाल के लिए स्थापित की गयी थीं और जिनकी देखभाल करने के वे योग्य थीं, उनके अलावा जीविकोपार्जन की अवस्थाओं में क्रांति तथा उसके फलस्वरूप समाज के ढांचे में परिवर्तन से अब कुछ नयी ज़रूरतें और नये हित भी पैदा हो गये थे, जो पुरानी गोत्र-व्यवस्था के लिए न केवल एक पराये तत्त्व थे, बल्कि उसके रास्ते में हर तरह की रुकावट डालते थे। श्रम-विभाजन से दस्तकारों के जो नये समूह पैदा हो गये थे, उनके हितों, और देहात के मुक़ाबले में शहरों के विशिष्ट हितों के लिए नये निकायों की आवश्यकता थी। परन्तु इनमें से प्रत्येक समूह में विभिन्न गोत्रों, बिरादरियों और क़बीलों के लोग शामिल थे। यही नहीं, उनमें विदेशी लोग भी शामिल थे। इसलिए नये निकायों का निर्माण लाज़िमी तौर पर गोत्र-संघटन के बाहर, उसके समानांतर, और इसलिए उसके विरोध में हुआ। और गोत्र-समाज के प्रत्येक संगठन के भीतर हितों की टक्कर होने लगी, जो अमीरों और ग़रीबों के, सूदखोरों और क़र्ज़दारों के, एक ही गोत्र और क़बीले के अंदर साथ-साथ रहने से अपनी चरम सीमा पर पहुंच गयी। फिर नये बाशिन्दों का विशाल जन-समुदाय था जो गोत्र-व्यवस्था के संगठनों से सर्वथा अपरिचित था, और जो, जैसा कि रोम में हुआ, देश में एक प्रभुताशाली शक्ति बन सकता था। इन लोगों की संख्या बहुत बड़ी होने के कारण यह असम्भव था कि रक्तसम्बद्ध गोत्र और क़बीले उनको धीरे-धीरे अपने अन्दर जज़्ब कर लें। इस विशाल जन-समुदाय की नज़रों में गोत्र-व्यवस्था के संगठन विशिष्ट, ऐसे संगठन थे जिन्हें विशेषाधिकार प्राप्त थे और जो बाहर के लोगों को अपने यहां घुसने नहीं देते थे। जो आरम्भ में प्राकृतिक विकास से उत्पन्न लोकतंत्र था, वही अब एक घृणित अभिजाततंत्र बन गया था। अन्तिम बात यह है कि गोत्र-व्यवस्था एक ऐसे समाज के गर्भ से पैदा हुई थी जिसमें

किसी तरह के अन्दरूनी विरोध नहीं थे, और वह केवल ऐसे समाज के ही योग्य थी। जनमत के सिवा उसके पास दबाव डालने का कोई साधन न था। परन्तु अब एक नया समाज पैदा हो गया था, जिसे स्वयं उसके अस्तित्व की तमाम आर्थिक परिस्थितियों ने अनिवार्यतः स्वतंत्र नागरिकों और दासों में, शोषक धनिकों और शोषित ग़रीबों में बांट दिया था, और जो न केवल इन विरोधों में सामंजस्य लाने में असमर्थ था, बल्कि जो अनिवार्यतः उन्हें अधिकाधिक पराकाष्ठा पर पहुंचा रहा था। ऐसा समाज या तो इस हालत में जीवित रह सकता था कि ये वर्ग बराबर एक दूसरे के ख़िलाफ़ खुला संघर्ष चलाते रहें, और या इस हालत में कि एक तीसरी शक्ति का शासन हो जो देखने में, आपस में लड़नेवाले वर्गों के ऊपर मालूम पड़े, उनके खुले संघर्ष को न चलने दे और जो ज़्यादा से ज़्यादा उन्हें केवल आर्थिक क्षेत्र में और तथाकथित क़ानूनी ढंग से वर्ग-संघर्ष चलाने की इजाज़त दे। गोत्र-व्यवस्था की उपयोगिता समाप्त हो चुकी थी। श्रम-विभाजन तथा उसके परिणामस्वरूप समाज के वर्गों में बंट जाने से वह ध्वस्त हो गयी। उसका स्थान राज्य ने ले लिया।

* * *

ऊपर हमने उन तीनों रूपों की अलग-अलग चर्चा की है, जिनमें गोत्र-व्यवस्था के ध्वंसावशेषों पर राज्य का निर्माण हुआ। एथेंस सबसे शुद्ध, सबसे क्लासिकीय रूप का प्रतिनिधित्व करता है। वहां राज्य सीधे-सीधे और प्रधानतया उन वर्ग-विरोधों से उत्पन्न हुआ जो गोत्र-समाज के भीतर पैदा हो गये थे। रोम में गोत्र-समाज बहुसंख्यक प्लेबियनों – निम्न जनों – के बीच, जो इस समाज के बाहर थे और जिन्हें कोई अधिकार प्राप्त न था, और जिनपर केवल कुछ कर्त्तव्यों का भार था, एक अन्यन्य अभिजातीय समाज बन गया था; प्लेबियनों की विजय से पुराना गोत्र-संघटन नष्ट हो गया और उसके खंडहरों पर राज्य का निर्माण किया गया जिसमें जल्द ही गोत्र-समाज के कुलीन लोग और प्लेबियन दोनों समा गये। अन्तिम उदाहरण जर्मनों का है, जिन्होंने रोमन साम्राज्य को धराशायी किया था। उनके बीच बड़े-बड़े विदेशी इलाक़ों को जीतने के प्रत्यक्ष परिणाम के रूप में राज्य का जन्म हुआ था, क्योंकि गोत्र-संघटन उनपर शासन करने का कोई साधन प्रस्तुत न कर सकता था। पर चूंकि इन इलाक़ों को जीतने में वहां की पुरानी

आबादी के साथ किसी गम्भीर संघर्ष की या पहले से अधिक उन्नत श्रम-विभाजन की आवश्यकता नहीं पड़ी थी, और चूंकि विजेता और विजित लोग दोनों आर्थिक विकास के लगभग एक से स्तर पर थे और इस प्रकार समाज का आर्थिक आधार विदेशियों की जीत के बाद भी पहले जैसा ही बना रहा था, इसलिए गोत्र-संघटन एक बदले हुए, प्रादेशिक रूप में, मार्क-संघटन की शक्ल में, इसके बाद भी सदियों तक जीवित रह सका। बल्कि बाद के वर्षों के अभिजात और कुलीन परिवारों के रूप में, यहां तक कि किसान परिवारों के रूप में भी – जैसे डिथमार्शेन में* – वह कुछ समय के लिए मंद रूप में सही, अपना कायाकल्प करने में भी सफल हो सका।

इसलिए, राज्य कोई ऐसी शक्ति नहीं है जो बाहर से लाकर समाज पर लादी गयी हो; और न वह "किसी नैतिक विचार का मूर्त्त रूप", या "विवेक का मूर्त्त और वास्तविक रूप" है, जैसा कि हेगेल कहते हैं[155]। बल्कि कहना चाहिए कि वह समाज की उपज है, जो विकास की एक निश्चित अवस्था में पैदा होती है, वह इस बात की स्वीकारोक्ति है कि यह समाज हल न होने वाले अन्तर्विरोधों में फंस गया है, वह ऐसे विरोधों से विदीर्ण हो गया है, जिनका समाधान नहीं किया जा सकता, और जिन्हें दूर करना उसकी सामर्थ्य के बाहर है। परन्तु ये विरोध, परस्पर विरोधी आर्थिक हितों वाले ये वर्ग, व्यर्थ के संघर्ष में अपने को और पूरे समाज को नष्ट न कर डालें, इसलिए एक ऐसी शक्ति, जो मालूम पड़े कि समाज से ऊपर खड़ी है, आवश्यक बन गयी, ताकि इस संघर्ष को हल्का किया जा सके, उसे "व्यवस्था" की सीमाओं के भीतर रखा जा सके। यही शक्ति, जो समाज से पैदा होती है, पर जो समाजोपरि स्थान ग्रहण कर लेती है, और उससे अधिकाधिक अलग होती जाती है, राज्य है।

पुराने गोत्र-संघटन से भिन्न, राज्य पहले तो अपनी प्रजा को प्रदेश के अनुसार बांट देता है। जैसा कि हम देख चुके हैं, रक्त-सम्बन्ध के आधार पर बनी और संयुक्त गोत्र-संस्थाएं अधिकतर अपर्याप्त हो गयी थीं क्योंकि वे यह

---

*निबूहर पहले इतिहासकार थे जिन्हें डिथमार्शेन[154] के परिवारों के बारे में अपनी जानकारी की बदौलत, गोत्र के स्वरूप का कम से कम कुछ आभास था। हालांकि यांत्रिक रूप से उनकी नक़ल करने के कारण उन्होंने कुछ ग़लतियां भी कर डालीं। (एंगेल्स का नोट।)

मानकर चलती थीं कि उनके सदस्य एक विशेष प्रदेश से बंधे हैं, गोकि यह नाता बहुत दिन हुए टूट गया था। प्रदेश अब भी था, पर लोग गतिशील हो गये थे। इसलिए पहला क़दम जो उठाया गया वह था प्रदेशानुसार विभाजन और नागरिकों को, गोत्र और क़बीले का लिहाज़ किये बिना – जहां कहीं वे बसे हों वहीं – अपने सार्वजनिक कर्त्तव्यों व अधिकारों का प्रयोग करने की इजाज़त दे दी गयी। नागरिकों का यह प्रदेशानुसार संगठन एक ऐसी विशेषता है जो सभी राज्यों में समान रूप से पायी जाती है। इसी लिए वह हमें स्वाभाविक मालूम पड़ता है; परन्तु हम देख चुके हैं कि एथेंस और रोम में कितने लम्बे और कठिन संघर्ष के बाद वह गोत्रों पर आधारित पुराने संगठन का स्थान ले सका था।

दूसरा विभेदक लक्षण यह है कि एक **सार्वजनिक सत्ता** की स्थापना की जाती है, जो एक सशस्त्र शक्ति के रूप में अपने को स्वयं संगठित करने वाली जनता की सीधे-सीधे सम्पाती नहीं होती। यह विशिष्ट सार्वजनिक सत्ता इसलिए आवश्यक हो जाती है कि समाज के वर्गों में बंट जाने के बाद आबादी का स्वतःकार्यकारी सशस्त्र संगठन असम्भव हो जाता है। दास भी आबादी के एक भाग थे; एथेंस के ९०,००० नागरिक ३,६५,००० दासों के मुक़ाबले में एक विशेषाधिकारप्राप्त वर्ग मात्र थे। एथेंस के लोकतंत्र की जन-सेना वास्तव में दासों के विरुद्ध अभिजात वर्ग की सार्वजनिक सत्ता थी, जो दासों को नियंत्रण में रखती थी। लेकिन उसके साथ-साथ, जैसा कि हम ऊपर बता चुके हैं, नागरिकों को नियंत्रण में रखने के लिए पुलिस भी आवश्यक हो गयी थी। यह सार्वजनिक सत्ता हर राज्य में होती है। उसमें केवल हथियारबन्द लोग ही नहीं, बल्कि जेलख़ाने तथा विभिन्न प्रकार की दमनकारी संस्थाएं, आदि भौतिक साधन भी शामिल होते हैं, जिनका गोत्र-समाज में निशान तक न था। जिन समाजों में वर्ग-विरोध अभी बहुत अविकसित अवस्था में हैं, और जो बहुत दूर कहीं कोने में बसे हैं, उनमें यह सार्वजनिक सत्ता बहुत महत्त्वहीन और नहीं के बराबर हो सकती है। संयुक्त राज्य अमरीका के कुछ हिस्सों में किसी समय ऐसी ही हालत पायी जाती थी। परन्तु जैसे-जैसे राज्य के अंदर वर्ग-विरोध उग्र होते जाते हैं, और जैसे-जैसे पड़ोस के राज्य विशाल होते जाते हैं और उनकी आबादी बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे यह सार्वजनिक सत्ता भी मज़बूत होती जाती है। इसके लिए हमारे वर्तमान काल के यूरोप पर एक नज़र डाल लेना काफ़ी है, जहां

वर्ग-संघर्ष तथा देश-विजय की होड़ ने इस सार्वजनिक सत्ता को ऐसा विराट रूप दे डाला है कि वह पूरे समाज को और स्वयं राज्य को निगल जाना चाहती है।

इस सार्वजनिक सत्ता को क़ायम रखने के लिए नागरिकों से पैसा—कर वसूल करना आवश्यक हो जाता है। गोत्र-समाज करों से सर्वथा अपरिचित था, परन्तु हमारा उनसे आज काफ़ी परिचय हो चुका है। जैसे-जैसे सभ्यता आगे बढ़ती जाती है, वैसे-वैसे ये कर नाकाफ़ी होते जाते हैं, तब राज्य भविष्य को दांव पर लगाता है, उधार लेता है। इस तरह सार्वजनिक क़र्ज़ों का श्रीगणेश हुआ। बूढ़ा यूरोप इनके बारे में भी एक पूरी कहानी सुना सकता है।

सार्वजनिक सत्ता तथा कर लगाने और वसूल करने के अधिकार को अपने हाथ में लेकर राज्याधिकारी अब समाज के अवयव के रूप में, समाज के ऊपर हो जाते हैं। गोत्र-संघटन के अधिकारियों को स्वेच्छा से और स्वतन्त्र रूप से जो सम्मान दिया जाता था, वह इन अधिकारियों को मिल भी जाता, तो वे उससे संतुष्ट नहीं होते। एक ऐसी सत्ता के वाहक होने के नाते, जो समाज के लिए परायी है, यह जरूरी हो जाता है कि असाधारण क़ानून बनाकर जो उनको एक विशेष प्रकार की पवित्रता और अलंघ्यता प्रदान करते हों, लोगों को उनका सम्मान करने के लिए मजबूर किया जाये। सभ्य राज्य के अदना से अदना पुलिस कर्मचारी को जितनी "सत्ता" मिली होती है, उतनी गोत्र-समाज की तमाम संस्थाओं को मिलाकर नहीं मिली थी। परन्तु गोत्र-समाज के छोटे से छोटे मुखिया को बिना किसी दबाव के और निर्विवाद रूप से जो सम्मान मिलता था, उस पर सभ्यता के युग के सबसे अधिक शक्तिशाली राजा और बड़े से बड़े राजनीतिज्ञ या सेनापति ईर्ष्या कर सकते हैं। एक समाज के बीच रहता है, दूसरा अपने को समाज से बाहर और समाज से ऊपर दिखाने की कोशिश करने के लिए बाध्य है।

राज्य चूंकि वर्ग-विरोध पर अंकुश रखने के लिए पैदा हुआ था, और साथ ही चूंकि वह इन वर्गों के संघर्ष के बीच पैदा हुआ था, इसलिए वह निरपवाद रूप से सबसे अधिक शक्तिशाली, आर्थिक क्षेत्र में प्रभुत्वशील वर्ग का राज्य होता है। यह वर्ग राज्य के ज़रिए, राजनीतिक क्षेत्र में भी प्रभुत्वशील हो जाता है और इस प्रकार उसे उत्पीड़ित वर्ग को दबाकर रखने

तथा उसका शोषण करने के लिए नया साधन मिल जाता है। इस प्रकार प्राचीन काल का राज्य सर्वोपरि दास-स्वामियों का राज्य था जिसका उद्देश्य दासों को दबाकर रखना था, इसी प्रकार, सामन्ती राज्य अभिजात वर्ग का निकाय था, ज़िसका उद्देश्य भूदास किसानों तथा बंधुओं को दबाकर रखना था और आधुनिक प्रतिनिधिक राज्य पूंजी द्वारा उजरती श्रम के शोषण का साधन है। परन्तु अपवाद रूप में कुछ ऐसे काल भी आते हैं जब संघर्षरत वर्गों का शक्ति-संतुलन इतना बराबर हो जाता है कि राज्य-सत्ता एक दिखावटी पंच के रूप में, उस समय के लिए, कुछ मात्रा में दोनों वर्गों से स्वतंत्र हो जाती है। सत्रहवीं और अठारहवीं सदियों का निरंकुश राजतंत्र ऐसा ही था, जो अभिजात वर्ग तथा बर्गर वर्ग के बीच संतुलन क़ायम रखता था। पहले की, और उससे भी अधिक दूसरे फ़्रांसीसी साम्राज्य की बोनापार्तशाही भी ऐसी ही थी, जो सर्वहारा और पूंजीपति वर्ग के बीच वन्दर-बांट का खेल खेलती रहती थी। इस प्रकार का सबसे नया उदाहरण, जिसमें शासक और शासित समान रूप से हास्यास्पद नज़र आते हैं, बिस्मार्क के राष्ट्र का नया जर्मन साम्राज्य है। यहां पूंजीपतियों और मज़दूरों के बीच संतुलन रखा जाता है और दोनों को समान रूप से धोखा देकर प्रशा के दिवालिया ज़मींदारों का उल्लू सीधा किया जाता है।

इसके अलावा, इतिहास में अभी तक जितने राज्य हुए हैं, उनमें से अधिकतर में नागरिकों को उनकी दौलत के अनुसार कम या ज़्यादा अधिकार दिये गये हैं, जिससे यह बात सीधी तौर पर ज़ाहिर हो जाती है कि राज्य मिल्की वर्गों का एक संगठन है जिसका मक़सद ग़ैर-मिल्की वर्गों से उनकी हिफ़ाज़त करना है। एथेंस और रोम में ऐसा ही था, जहां नागरिकों का वर्गीकरण मिल्कीयत के अनुसार किया जाता था। मध्ययुगीन सामन्ती राज्य में भी यही हालत थी जहां जिसके पास जितनी ज़मीन होती थी, उसके हाथ में उतनी ही राजनीतिक ताक़त होती थी। और आधुनिक प्रतिनिधिक राज्यों में जो मताधिकार-अर्हता पायी जाती है, उसमें भी यह बात साफ़ दिखायी देती है। तिस पर भी सम्पत्ति के भेदों की राजनीतिक मान्यता अनिवार्य किसी भी प्रकार नहीं है। इसके विपरीत, वह राज्य के विकास के निम्न स्तर की द्योतक है। राज्य का सबसे ऊंचा रूप, यानी जनवादी जनतंत्र, जो समाज की आधुनिक परिस्थितियों में अनिवार्यतः आवश्यक बनता जा रहा है और जो राज्य का वह एकमात्र रूप है जिसमें ही सर्वहारा तथा

पूंजीपति वर्ग का अन्तिम और निर्णायक संघर्ष लड़ा जा सकता है – यह जनवादी जनतंत्र औपचारिक रूप से सम्पत्ति के अंतर का कोई ख़याल नहीं करता। उसमें दौलत अप्रत्यक्ष रूप से, पर और भी ज्यादा कारगर ढंग से, अपना असर डालती है। एक तो दौलत सीधे-सीधे राज्य के अधिकारियों को भ्रष्ट करती है, जिसका सबसे अच्छा उदाहरण अमरीका है। दूसरे, सरकार तथा स्टॉक एक्सचेंज के बीच गठबंधन हो जाता है। जितना ही राज्य का सार्वजनिक क़र्ज़ा बढ़ता जाता है, और जितनी ही अधिक ज्वाइंट स्टॉक कम्पनियां स्टॉक एक्सचेंज को अपने केन्द्र के रूप में इस्तेमाल करते हुए न केवल यातायात को, बल्कि उत्पादन को भी अपने हाथ में केन्द्रित करती जाती हैं, उतनी ही अधिक आसानी से यह गठबंधन होता जाता है। अमरीका और उसी तरह नवीनतम फ़्रांसीसी जनतंत्र इसके ज्वलंत उदाहरण हैं और किसी ज़माने में स्विट्ज़रलैंड ने भी इस क्षेत्र में काफ़ी मार्के की कामयाबी हासिल की है। परन्तु सरकार तथा स्टॉक एक्सचेंज में यह बंधुत्वपूर्ण गठबंधन स्थापित करने के लिए जनवादी जनतंत्र आवश्यक नहीं है। इसके प्रमाण में इंगलैंड और नवीन जर्मन साम्राज्य की मिसाल दी जा सकती है, जहां कोई नहीं कह सकता कि सार्विक मताधिकार लागू करने से किसका स्थान अधिक ऊंचा हुआ है – बिस्मार्क का या ब्लाइख़रोडर का। अन्तिम बात यह है कि मिल्की वर्ग सार्विक मताधिकार के द्वारा सीधे शासन करता है। जब तक कि उत्पीड़ित वर्ग, यानी आजकल सर्वहारा वर्ग, इतना परिपक्व नहीं हो जाता कि अपने को स्वतंत्र करने के योग्य हो जाये, तब तक उसका अधिकांश भाग वर्तमान सामाजिक व्यवस्था को ही एकमात्र सम्भव व्यवस्था समझता रहेगा, और इसलिए वह राजनीतिक रूप से पूंजीपति वर्ग का दुमछल्ला, उसका उग्र वाम पक्ष बना रहेगा। लेकिन जिस हद तक यह वर्ग परिपक्व होकर स्वयं अपने को मुक्त करने के योग्य बनता जाता है, उसी हद तक वह अपने को ख़ुद अपनी पार्टी के रूप में संगठित करता है, और पूंजीपतियों के नहीं, बल्कि ख़ुद अपने प्रतिनिधि चुनता है। अतएव, सार्विक मताधिकार मज़दूर वर्ग की परिपक्वता की कसौटी है। वर्तमान राज्य में वह इससे अधिक कुछ नहीं है और न कभी हो सकता है; परन्तु इतना काफ़ी है। जिस दिन सार्विक मताधिकार का थर्मामीटर यह सूचना देगा कि मज़दूरों में उबाल आनेवाला है, उस दिन मज़दूर तथा पंजीपति दोनों जान जायेंगे कि उन्हें क्या करना है।

अतएव, राज्य अनादि काल से नहीं चला आ रहा है। ऐसे समाज भी हुए हैं जिन्होंने बिना राज्य के अपना काम चलाया, और जिन्हें राज्य और राज्य-सत्ता की कोई धारणा न थी। आर्थिक विकास की एक निश्चित अवस्था में, जो समाज के वर्गों में बंट जाने के साथ अनिवार्य रूप से जुड़ा हुआ था, इस बंटवारे के कारण राज्य अनिवार्य बन गया। अब हम उत्पादन के विकास की ऐसी अवस्था की ओर तेज़ी से बढ़ रहे हैं, जिसमें इन वर्गों का अस्तित्व न केवल आवश्यक नहीं रहेगा, बल्कि उत्पादन के लिए निश्चित रूप से एक बाधा बन जायेगा। तब इन वर्गों का उतने ही अवश्यम्भावी ढंग से विनाश हो जायेगा जितने अवश्यम्भावी ढंग से एक पहले वाली अवस्था में उनका जन्म हुआ था। उनके साथ-साथ राज्य भी अनिवार्य रूप से मिट जायेगा। जो समाज उत्पादकों के स्वतंत्र तथा समान सहयोग की बुनियाद पर उत्पादन का संगठन करेगा, वह समाज राज्य के पूरे यंत्र को उठाकर उस स्थान में रख देगा जो उस समय उसके लिए सबसे उपयुक्त होगा: यानी वह राज्य को हाथ के चर्खे और कांसे की कुल्हाड़ी के साथ-साथ प्राचीन वस्तुओं के अजायबघर में रख देगा।

civilisation

* * *

इस प्रकार, उपरोक्त विश्लेषण यह बताता है कि सभ्यता समाज के विकास की वह अवस्था है, जिसमें श्रम-विभाजन, उसके परिणामस्वरूप व्यक्तियों के बीच होनेवाला विनिमय और इन दोनों चीज़ों को मिलानेवाला माल-उत्पादन अपने पूर्ण विकास पर पहुंच जाते हैं और पहले से चलते आये पूरे समाज को क्रान्तिकारी रूप से बदल डालते हैं।

समाज की पहलेवाली सभी अवस्थाओं में उत्पादन मूलभूत रूप से सामूहिक था और इसलिये उसे उपभोग के लिए, छोटे या बड़े आदिम सामुदायिक कुटुम्बों में, सीधे-सीधे बांट लिया जाता था। यह साझे का उत्पादन अत्यन्त संकुचित सीमाओं के भीतर होता था, परन्तु साथ ही उसमें उत्पादकगण उत्पादन की क्रिया के और अपनी पैदावार के ख़ुद मालिक रहते थे। वे जानते थे कि उनकी पैदावार का क्या होता है। वे उसका उपभोग करते थे, वह उनके हाथ में ही रहती थी। जब तक इस आधार पर उत्पादन चलता रहा, तब तक वह उत्पादकों के नियंत्रण से बाहर नहीं निकल पाया और उनके खिलाफ़ वैसी अजीब, प्रेत शक्तियों को नहीं खड़ा कर सका, जैसी कि

सभ्यता के युग में नियमित और अवश्यम्भावी रूप से खड़ी होती रहती हैं।

परन्तु धीरे-धीरे उत्पादन की इस क्रिया में श्रम-विभाजन घुस आया। उसने उत्पादन तथा हस्तगतकरण के सामूहिक रूप की नींव खोद डाली। उसने अलग अलग व्यक्तियों द्वारा हस्तगतकरण को मुख्यतया प्रचलित नियम बना दिया और इस प्रकार व्यक्तियों के बीच विनिमय का श्रीगणेश किया। यह सब कैसे हुआ, यह हम ऊपर देख चुके हैं। धीरे-धीरे माल-उत्पादन मुख्य रूप बन गया।

माल-उत्पादन शुरू होने पर जब उत्पादन ख़ुद उत्पादक के उपयोग के लिए नहीं, बल्कि विनिमय के लिए होता है, तब पैदावार का एक हाथ से दूसरे हाथ में जाना अनिवार्य हो जाता है। विनिमय के दौरान उत्पादक के हाथ से उसकी पैदावार निकल जाती है। अब वह नहीं जानता कि उसकी पैदावार का क्या हुआ। और जैसे ही मुद्रा तथा उसके साथ व्यापारी आकर उत्पादकों के बीच बिचवइये के रूप में खड़े हो जाते हैं, वैसे ही विनिमय की क्रिया और भी अधिक जटिल हो जाती है, और पैदावार का अन्त में क्या होगा, यह बात और भी अनिश्चित बन जाती है। व्यापारियों की संख्या बहुत बड़ी होती है और एक व्यापारी यह नहीं जानता कि दूसरा क्या कर रहा है। अब माल एक हाथ से निकलकर दूसरे हाथ में ही नहीं जाता है, बल्कि वह एक बाज़ार से दूसरे बाज़ार में भी घूमता रहता है। अब उत्पादकों का अपने जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं के कुल उत्पादन पर नियंत्रण नहीं रह गया है और व्यापारियों के हाथ में भी यह नियंत्रण नहीं आया है। उपज और उत्पादन संयोग के अधीन हो जाते हैं।

किन्तु संयोग अन्तर्सम्बन्ध का छोर है, जिसका दूसरा छोर आवश्यकता कहलाता है। प्रकृति में भी संयोग का राज मालूम पड़ता है, परन्तु हम बहुत दिन हुए उसके हर क्षेत्र में यह दिखा चुके हैं कि इस संयोग के आवरण में अंतर्निहित आवश्यकता और नियमितता काम करती हैं। पर जो प्रकृति के लिए सत्य है, वही समाज के लिए भी सत्य है। किसी सामाजिक क्रिया पर, या सामाजिक क्रियाओं के किसी क्रम पर मनुष्यों का सचेत नियंत्रण रखना जितना ही अधिक कठिन बनता जाता है, जितनी ही ये क्रियाएं मनुष्यों के नियंत्रण के बाहर निकलती जाती हैं, उतना ही अधिक यह मालूम पड़ता है कि ये क्रियायें केवल संयोगवश घटित होती हैं, और उतना ही अधिक इन में निहित विशिष्ट नियम इस संयोग के रूप में प्रकट

होते हैं, मानो ये क्रियाएं स्वाभाविक आवश्यकता के कारण हो रही हों। माल-उत्पादन तथा विनिमय में जो सांयोगिकता दिखायी देती है, वह भी ऐसे ही नियमों के अधीन है। अलग-अलग उत्पादकों और विनिमय कर्त्ताओं को ये नियम एक विचित्र, और आरम्भ में अज्ञात शक्ति मालूम पड़ते हैं, जिसकी असलियत का पता लगाने के लिए पहले बड़ी मेहनत के साथ खोज और छान-बीन करना आवश्यक होता है। माल-उत्पादन के आर्थिक नियम, उत्पादन के इस रूप के विकास की प्रत्येक अवस्था में थोड़ा बहुत बदल जाते हैं। लेकिन मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि सभ्यता के पूरे युग में ये नियम हावी रहे हैं। आज भी उपज उत्पादक के ऊपर हावी है; आज भी समाज का कुल उत्पादन किसी ऐसी योजना के अनुसार नहीं होता जिसे सामूहिक रूप से सोच-विचार कर तैयार किया गया हो, बल्कि वह अंधे नियमों द्वारा नियमित होता है जो प्राकृतिक शक्तियों की तरह काम करते हैं और अन्त में जाकर समय-समय पर आनेवाले व्यापारिक संकटों के तूफ़ानों के रूप में प्रगट होते हैं।

हम ऊपर देख चुके हैं कि किस प्रकार उत्पादन के विकास की अपेक्षाकृत आरम्भ की ही एक अवस्था में मानव श्रम-शक्ति इस योग्य बन गयी थी कि उत्पादक के जीवन-निर्वाह के लिए जितना ज़रूरी था, उससे काफ़ी ज़्यादा पैदा कर सके, और किस प्रकार, प्रधानतया इसी अवस्था में, श्रम-विभाजन और अलग-अलग व्यक्तियों के बीच विनिमय समाज में पहली बार प्रगट हुआ था। अस्तु इसके कुछ ही समय के बाद इस महान् "सत्य" का भी आविष्कार हो गया कि स्वयं मनुष्य भी बिकाऊ माल हो सकता है, मनुष्य को दास बनाकर मानव-शक्ति का भी विनिमय और उपयोग किया जा सकता है। मनुष्यों ने विनिमय करना आरम्भ ही किया था कि ख़ुद उनका भी विनिमय होना शुरू हो गया। इंसान ने यह चाहा हो या न चाहा हो, पर हुआ यही कि जो पहले साधक था वह अब साधन बन गया।

दास-प्रथा के साथ-साथ, जो सभ्यता के युग में अपने विकास के शिखर पर पहुंची थी, समाज का पहली बार शोषक और शोषित वर्गों में बड़ा विभाजन हुआ। यह विभाजन सभ्यता के पूरे युग में बराबर क़ायम रहा है। शोषण का पहला रूप दास-प्रथा था, जो प्राचीन काल के लिए विशिष्ट था। उसके बाद मध्य युग में भूदास-प्रथा और आधुनिक काल में उजरती श्रम की प्रथा आयी। सभ्यता के तीन बड़े युगों की विशेषताओं के रूप में

अधीनता के ये तीन बड़े रूप रहे हैं; खुली, और बाद में छिपी हुई दासता, बराबर उनके साथ-साथ चलती आयी है।

सभ्यता का युग माल-उत्पादन की जिस अवस्था से आरम्भ हुआ था, उसकी आर्थिक विशेषताएं ये थीं: (१) धातु से बनी मुद्रा इस्तेमाल होने लगी थी, और इस प्रकार मुद्रा के रूप में पूंजी, सूद तथा सूदखोरी का चलन हो गया था; (२) उत्पादकों के बीच में बिचवई करनेवाले व्यापारी आकर खड़े हो गये थे; (३) ज़मीन पर निजी स्वामित्व क़ायम हो गया था और रेहन की प्रथा जारी हो गयी; (४) उत्पादन का मुख्य रूप दास-श्रम का उत्पादन बन गया था। सभ्यता के युग के अनुरूप परिवार का रूप, जो इस युग में निश्चित तौर पर प्रचलित रूप बन गया, वह एकनिष्ठ विवाह है, पुरुष का स्त्री पर प्रभुत्व रहता है और हर अलग-अलग परिवार समाज की आर्थिक इकाई होता है। सभ्य समाज की संलागी शक्ति राज्य है, जो सामान्य कालों में केवल शासक वर्ग का राज्य होता है और जो बुनियादी तौर पर सदा उत्पीड़ित एवं शोषित वर्ग को दबाकर रखने के यंत्र का काम करता है। सभ्यता की अन्य विशेषताएं ये हैं: एक ओर तो पूरे सामाजिक श्रम-विभाजन के आधार के रूप में शहर व देहात के बीच स्थायी विरोध क़ायम हो जाता है; दूसरी ओर वसीयत की प्रथा जारी हो जाती है, जिसके ज़रिए सम्पत्ति का मालिक अपनी मृत्यु के बाद भी अपनी जायदाद का जैसे चाहे निपटारा कर सकता है। यह प्रथा जो पुराने गोत्र-संघटन पर सीधे-सीधे प्रहार करती थी, सोलन के समय तक एथेंस में अज्ञात थी। रोम में वह प्रारंभिक काल में ही जारी हो गयी थी, पर हम ठीक-ठीक नहीं कह सकते कि कब हुई थी*; जर्मनों में वसीयतनामे की प्रथा पादरियों ने

* लासाल की पुस्तक 'अर्जित अधिकारों की व्यवस्था' के दूसरे भाग का आधार मुख्यतया यह प्रस्थापना है कि रोम में वसीयत की प्रथा उतनी ही पुरानी है जितना पुराना ख़ुद रोम है, कि रोम के इतिहास में "ऐसा कोई समय नहीं रहा है जब वसीयतनामे न होते रहे हों", बल्कि सच बात तो यह है कि वसीयत की प्रथा पूर्वरोमन काल में मृतात्माओं की पूजा से उत्पन्न हुई थी। पुराने ढंग के कट्टर हेगेलवादी होने के नाते लासाल ने रोमन क़ानून की व्यवस्थाओं का स्रोत रोमवासियों की सामाजिक अवस्थाओं को नहीं, बल्कि इच्छा की "परिकल्पी अवधारणा को" माना और इसलिए इस सर्वथा

जारी की थी, ताकि नेकी और सचाई की राह पर चलनेवाले जर्मन बिना किसी बाधा के अपनी सम्पत्ति गिरजाघर के नाम कर सकें।

इस विधान को अपनी नींव बनाकर सभ्यता ने ऐसे-ऐसे काम कर दिखाये हैं, जो पुराने गोत्र-समाज की सामर्थ्य के बिलकुल बाहर थे। परन्तु ये काम उसने किये मनुष्य की सबसे नीच अन्तर्वृत्तियों और आवेगों को उभाड़कर और उन्हें इस प्रकार विकसित कर कि उसकी अन्य सभी क्षमतायें दब जायें। सभ्यता के अस्तित्व के पहले दिन से लेकर आज तक नग्न लोभ ही उसकी मूल प्रेरणा रहा है। धन कमाओ, और धन कमाओ और जितना बन सके उतना कमाओ! समाज का धन नहीं, एक अकेले क्षुद्र व्यक्ति का धन – बस यही सभ्यता का एकमात्र और निर्णायक उद्देश्य रहा है। यदि इस उद्देश्य को पूरा करने की कोशिशों के दौरान विज्ञान का अधिकाधिक विकास होता गया और समय-समय पर कला के पूर्णतम विकास के युग भी बार-बार आते रहे, तो इसका कारण केवल यह था कि धन बटोरने में आज जो भारी सफलतायें प्राप्त हुई हैं, वे विज्ञान और कला की इन उपलब्धियों के बिना प्राप्त नहीं की जा सकती थीं।

सभ्यता का आधार चूंकि एक वर्ग का दूसरे वर्ग द्वारा शोषण है, इसलिए उसका सम्पूर्ण विकास सदा अविरत अंतर्विरोध के अविच्छिन्न क्रम में होता रहा है। उत्पादन में हर प्रगति साथ ही साथ उत्पीड़ित वर्ग की, यानी समाज के बहुसंख्यक भाग की अवस्था में पश्चादगति भी होती है। एक के लिए जो वरदान है, वह दूसरे के लिए आवश्यक रूप से अभिशाप बन जाता है। जब भी किसी वर्ग को नयी स्वतंत्रता मिलती है, तो वह किसी दूसरे वर्ग के लिए नये उत्पीड़न का कारण बन जाती है। इसकी सबसे अच्छी मिसाल मशीनों के प्रयोग के रूप में हमें मिलती है, जिसके परिणामों से आज सभी लोग

ग़ैर-ऐतिहासिक निष्कर्ष पर पहुंचे। पर जिस किताब में इसी परिकल्पी अवधारणा के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला गया हो कि सम्पत्ति के हस्तांतरण का रोमन उत्तराधिकार प्रथा में केवल एक गौण स्थान था, उसमें यदि यह बात लिखी गयी हो तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है। लासाल न केवल रोमन न्यायशास्त्रियों की, विशेषकर पहले के काल के न्यायशास्त्रियों की, भ्रान्त धारणाओं में विश्वास करते हैं, बल्कि इस मामले में उनसे भी आगे निकल जाते हैं। (एंगेल्स का नोट।)

अच्छी तरह परिचित हैं। और जहां, जैसा कि हम देख चके हैं, बर्बर लोगों में अधिकारों और कर्त्तव्यों के बीच भेद की कोई रेखा नहीं खींची जा सकती थी, वहीं सभ्यता एक वर्ग को लगभग सारे अधिकार देकर और दूसरे वर्ग पर लगभग सारे कर्त्तव्यों का बोझ लादकर अधिकारों और कर्त्तव्यों के भेद एवं विरोध को इतना स्पष्ट कर देती है कि मूर्ख से मूर्ख आदमी भी उन्हें समझ सकता है।

लेकिन ऐसा होना नहीं चाहिए। जो शासक वर्ग के लिए कल्याणकारी है, उसे पूरे समाज के लिए कल्याणकारी होना चाहिए, जिससे शासक वर्ग अपने को अभिन्न समझता है। अतएव, सभ्यता जैसे-जैसे प्रगति करती है, वैसे-वैसे उसे उन बुराइयों पर जिन्हें वह आवश्यक रूप से पैदा करती है, प्रेम का परदा डालना पड़ता है, उन पर क़लई करनी होती है, या फिर उनके अस्तित्व से इनकार करना पड़ता है। संक्षेप में, सभ्यता को ढोंग व मिथ्याचार का चलन आरम्भ करना पड़ता है, जो पुरानी सामाजिक व्यवस्थाओं में, और यहां तक कि सभ्यता की प्रारम्भिक अवस्थाओं में भी, अज्ञात था और जिसकी परिणति इस घोषणा में होती है: शोषक वर्ग शोषित वर्ग का शोषण केवल और सर्वथा स्वयं शोषितों के कल्याण के लिए करता है, और यदि शोषित वर्ग इस सत्य को नहीं देख पाता और विद्रोही तक बन जाता है, तो इस तरह वह अपने हितैषियों के, शोषकों के, प्रति हद दर्जे की कृतघ्नता का ही परिचय देता है। *

और अब अन्त में मैं सभ्यता के बारे में मौर्गन का निर्णय उद्धृत कर दूं:

---

* शुरू में मेरा इरादा यह था कि सभ्यता की जो अद्भुत समीक्षा शार्ल फ़ूरिये की रचनाओं में बिखरी हुई मिलती है, उसे मौर्गन की तथा अपनी आलोचना के साथ-साथ पेश करूं। पर दुर्भाग्यवश इसके लिए समय निकालना असम्भव है। मैं केवल यही कहना चाहता हूं कि फ़ूरिये ने एकनिष्ठ विवाह तथा भूमि पर निजी स्वामित्व को सभ्यता की मुख्य विशेषताएं माना था और उसे ग़रीबों के ख़िलाफ़ धनिकों का युद्ध कहा था। इसके अलावा उनकी रचनाओं में इस सत्य की भी गहरी समझ प्रकट होती है कि इस तरह के सभी समाजों में, जो अपरिपूर्ण हैं और जो परस्पर विरोधी हितों से विदीर्ण हैं, अलग-अलग परिवार (les familles incohérentes) समाज की आर्थिक इकाई होते हैं। (एंगेल्स का नोट।)

"सभ्यता के आने के बाद से सम्पत्ति इतने विशाल पैमाने पर बढ़ी है, उसके इतने विविध रूप हो गये हैं, उसके इस्तेमाल के ढंग इतने अधिक हो गये हैं, और उसका प्रबंध उसके मालिक अपने हित में इतनी बुद्धिमानी से करने लगे हैं कि वह जनता के लिए एक **दुर्द्धर्ष शक्ति बन गयी है। ख़ुद अपनी कृति के सामने आज मानव मस्तिष्क हतबुद्धि-सा खड़ा है।** परन्तु एक दिन वह समय आयेगा जब मानव बुद्धि सम्पत्ति को अपने वश में करने में सफल होगी, और जिस सम्पत्ति की राज्य रक्षा करता है, उसके साथ राज्य के सम्बन्ध को निरूपित करने में तथा उसके मालिकों के कर्त्तव्यों को और उनके अधिकारों की सीमाओं को निश्चित करने में कामयाब होगी। समाज के हित व्यक्ति के हितों से ऊंचे हैं, और इन दोनों के बीच न्यायोचित एवं सामंजस्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना आवश्यक है। यदि भूत काल की तरह भविष्य काल का भी नियम प्रगति का होना है, तो केवल साम्पत्तिक जीवन ही मानव-जाति का अन्तिम भविष्य नहीं हो सकता। जब से सभ्यता आरम्भ हुई है, तब से जो समय गुज़रा है, वह मनुष्य के पिछले इतिहास का एक छोटा-सा टुकड़ा भर है और वह आनेवाले युगों का भी एक छोटा-सा टुकड़ा ही है। सम्पत्ति बटोरना ही जिस जीवन का लक्ष्य और ध्येय है, उसका अन्त समाज के विघटन में होना सम्भाव्य है, क्योंकि ऐसा जीवन अपने विनाश के तत्त्वों को अपने अंदर छिपाये रहता है। शासन में लोकतंत्र, समाज में भ्रातृत्व, समान अधिकार तथा सार्वजनिक शिक्षा समाज की अगली, उच्चतर अवस्था के पूर्वसूचक हैं, जिसकी ओर अनुभव, बुद्धि और ज्ञान लगातार ले जा रहे हैं। यह प्राचीन गोत्रों की स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व का पहले से उच्चतर रूप में पुनर्जन्म होगा।" (मौर्गन, 'प्राचीन समाज', पृष्ठ ५५२।)

मार्च के अंत – २६ मई, १८८४, में लिखित। अलग किताब के रूप में १८८४ में ज़ूरिच से प्रकाशित। हस्ताक्षर: **फ़्रेडरिक एंगेल्स**

१८९१ के चौथे जर्मन संस्करण के मूलपाठ के अनुसार मुद्रित।

टिप्पणियां

[1] इस लेख के बारे में मूल योजना यह थी कि वह एक वृहत्तर ग्रंथ (जिसका शीर्षक होता: 'दासता के तीन मुख्य रूप') की भूमिका होता। परंतु यह योजना पूरी न हो सकी और अंत में एंगेल्स ने प्रस्तावित ग्रंथ की भूमिका को यह शीर्षक दिया: 'वानर के नर बनने की प्रक्रिया में श्रम की भूमिका'। इस लेख में एंगेल्स ने मानव के शारीरिक प्ररूप की रचना तथा मानव समाज के सृजन में श्रम की तथा औज़ारों के उत्पादन की महत्त्वपूर्ण भूमिका का विश्लेषण किया है। उन्होंने दिखाया है कि किस प्रकार एक लंबी ऐतिहासिक प्रक्रिया के फलस्वरूप वानर का एक नये, गुणात्मक रूप से भिन्न जीव – मानव – में रूपांतरण हुआ। – पृ० ७

[2] देखिये चार्ल्स डार्विन, «*The Descent of Man and Selection in Relation to Sex*», लंदन, १८७१। – पृ० ७

[3] यहां इशारा १८७३ के विश्व आर्थिक संकट की ओर है। जर्मनी में यह संकट मई १८७३ में "भयंकर गिरावट" के साथ शुरू हुआ, जो वस्तुतः एक लंबे अरसे तक – आठवें दशक के अंत तक – चलने वाले संकट की भूमिका था। – पृ० २२

[4] «*Rheinische Zeitung für Politik, Handel und Gewerbe*» ('राजनीति, व्यापार तथा उद्योग के प्रश्नों के बारे में राइनी समाचारपत्र') – एक दैनिक समाचारपत्र, जो कोलोन से १ जनवरी, १८४२ से ३१ मार्च १८४३ तक निकलता रहा। अप्रैल १८४२ के बाद से मार्क्स ने इस पत्र के लिए लेख लिखे और उसी वर्ष अक्तूबर में उसके एक सम्पादक बन गये। – पृ० २३

[5] «*Kölnische Zeitung*» ('कोलोन का समाचारपत्र') – जर्मन दैनिक समाचारपत्र जो १८०२ में कोलोन नगर से निकलना शुरू हुआ। १८४८ – १८४९ की क्रान्ति में, तत्पश्चात् प्रतिक्रिया काल में इस पत्र ने प्रशा के उदारतावादी पूंजीपति वर्ग की कायरतापूर्ण तथा विश्वासघातपूर्ण नीति को

प्रतिबिंबित किया। १९वीं शताब्दी के अन्तिम चरण में वह राष्ट्रीय-उदारतावादी पार्टी के साथ था।–पृ० २३

[6] *«Deutsch-Fransözische Jahrbücher»* ('जर्मन-फ़्रांसीसी वार्षिकी')– जर्मन भाषा में पेरिस से प्रकाशित पत्रिका; इसके सम्पादक कार्ल मार्क्स तथा आर्नोल्ड रूगे थे। इस पत्रिका का केवल एक अंक–दोहरा अंक–फ़रवरी १८४४ में निकला था। इसमें मार्क्स और एंगेल्स की जो रचनायें प्रकाशित हुई थीं वे मार्क्स तथा एंगेल्स द्वारा भौतिकवाद तथा कम्युनिज़्म के दृष्टिकोण के अंतिम रूप से ग्रहण किये जाने की परिचायक हैं। पत्रिका का प्रकाशन बंद होने का मुख्य कारण मार्क्स तथा पूंजीवादी उग्रवादी रूगे के बीच मतभेद था।–पृ० २४

[7] प्रशा की सरकार के दबाव में आकर फ़्रांसीसी सरकार ने मार्क्स को फ़्रांस से निर्वासित करने का आदेश १६ जनवरी १८४५ को जारी किया था।–पृ० २४

[8] **जर्मन मज़दूर समाज**–मार्क्स और एंगेल्स ने अगस्त १८४७ के अंत में ब्रसेल्स में इस समाज की स्थापना की ताकि बेलजियम में रहने वाले जर्मन मज़दूरों की राजनीतिक चेतना का विकास किया जा सके और उनके बीच वैज्ञानिक कम्युनिज़्म के विचारों को फैलाया जा सके। मार्क्स तथा एंगेल्स और उनके सहयोगियों द्वारा निर्देशित यह समाज बेलजियम में क्रांतिकारी जर्मन मज़दूरों को एकजुट करने वाला एक क़ानूनी केंद्र बन गया। समाज के प्रमुख सदस्य कम्युनिस्ट लीग की ब्रसेल्स की शाखा के भी सदस्य थे। फ़्रांस में फ़रवरी १८४८ की पूंजीवादी क्रांति के थोड़े दिनों के बाद ही, बेलजियम की पुलिस द्वारा जर्मन मज़दूर समाज के सदस्यों की गिरफ़्तारियों तथा देशनिकाले के कारण ब्रसेल्स में जर्मन मज़दूर समाज की गतिविधियां ख़त्म हो गयी।–पृ० २४

[9] *«Deutsche-Brüsseler Zeitung»* ('ब्रसेल्स का जर्मन अख़बार')– इस अख़बार को ब्रसेल्स के जर्मन राजनीतिक उत्प्रवासियों ने निकाला था और यह जनवरी १८४७ से फ़रवरी १८४८ तक प्रकाशित होता रहा। सितंबर १८४७ से मार्क्स और एंगेल्स ने इसके लिए बराबर लेखादि लिखे और इसकी संपादकीय

नीति को प्रबल रूप से प्रभावित किया। उनके निर्देशन में यह कम्युनिस्ट लीग का मुखपत्र बन गया। —पृ० २५

10 *«Neue Rheinische Zeitung. Organ der Demokratie»* ('नया राइनी समाचारपत्र। जनवाद का मुखपत्र')—एक दैनिक समाचारपत्र जो कोलोन से १ जून १८४८ से १९ मई १८४९ तक निकलता रहा। मार्क्स इसके प्रधान संपादक थे और एंगेल्स संपादक-मंडल के सदस्य। —पृ० २६

11 यहां इशारा पेरिस के मज़दूरों के २३—२६ जून, १८४८ के वीरत्वपूर्ण विद्रोह की ओर है, जिसका फ़्रांसीसी पूंजीपति वर्ग ने घोर पाशविकता के साथ दमन किया। यह विद्रोह सर्वहारा तथा पूंजीपति वर्ग के बीच पहला गृह-युद्ध था। —पृ० २६

12 *«Kreuz-Zeitung»* ('सलीब का अख़बार')—जर्मन दैनिक, *«Neue Preußische Zeitung»* ('नया प्रशियाई अख़बार') का तिरस्कारसूचक नाम जो इसे इसलिए दिया गया कि उसके शीर्ष पर सलीब का निशान छपा करता था। यह अख़बार, जो बर्लिन में जून १८४८ से १९३९ तक प्रकाशित होता रहा, प्रतिक्रांतिकारी दरबारी गुट और प्रशियाई ज़मींदारों का मुखपत्र था। —पृ० २६

13 *«Neue Rheinische Zeitung. Politisch-Ökonomische Revue»* ('नया राइनी समाचारपत्र। राजनीतिक-आर्थिक समीक्षा')— मार्क्स और एंगेल्स द्वारा स्थापित कम्युनिस्ट लीग का सैद्धांतिक मुखपत्र, जो दिसम्बर, १८४९ से नवम्बर १८५० तक निकला। कुल मिला कर इसके छः अंक निकले थे। —पृ० २६

14 एक सप्ताह के घोर संघर्ष के बाद १ नवंबर १८४८ को आस्ट्रिया की शाही फ़ौज ने वियेना के जन-विद्रोह को कुचल दिया और शहर पर क़ब्ज़ा कर लिया।

नवंबर और दिसंबर १८४८ में प्रशा में प्रतिक्रियावादियों ने राज्य-पर्युत्क्षेपण किया; १ नवंबर को खुल्लम-खुल्ला प्रतिक्रांतिकारी सरकार सत्तारूढ़ हुई; ९ नवंबर को प्रशा की राष्ट्रीय सभा को बर्लिन से स्थानांतरित कर दिया गया और उसका अधिवेशन ब्राण्डनबुर्ग में होने लगा। राष्ट्रीय सभा का बहुमत बर्लिन में ही अपना अधिवेशन करता रहा, जिसे १५ नवंबर को

सैनिकों ने बलपूर्वक भंग कर दिया। राज्य-पर्युत्क्षेपण की परिणति ५ दिसंबर को राष्ट्रीय सभा के विसर्जन तथा एक प्रतिक्रियावादी संविधान की घोषणा में हुई।–पृ० २७

[15] यहां इशारा साम्राज्य के संविधान के पक्ष में मई–जून, १८४९, में जर्मनी में भड़क उठे जन-विद्रोह की ओर है (हालांकि २८ मार्च, १८४९ को फ़्रैंकफ़ुर्ट की राष्ट्रीय सभा ने उसे स्वीकार कर लिया था परन्तु कुछ जर्मन राज्यों ने उसे रद्द कर दिया था)। विद्रोह को एकता तथा संगठन के अभाव के कारण १८४९ के जुलाई के मध्य में कुचल दिया गया।–पृ० २७

[16] फ़्रांसीसी सेना को क्रांति का दमन करने के लिए इटली भेजने के ख़िलाफ़ प्रतिवाद प्रगट करने के लिए निम्न-पूंजीवादी पर्वत-दल ने **१३ जून १८४९** को पेरिस में एक शांतिपूर्ण प्रदर्शन संगठित किया। प्रदर्शन सैनिकों द्वारा तितर-बितर कर दिया गया। पर्वत-दल के बहुत से नेता गिरफ़्तार हुए और निर्वासित किये गये या उन्हें फ़्रांस छोड़ने के लिए बाध्य होना पड़ा।–पृ० २७

[17] **कोलोन में कम्युनिस्टों पर मुक़दमा** (४ अक्तूबर–१२ नवंबर १८५२)–प्रशा की सरकार द्वारा कम्युनिस्ट लीग के ११ सदस्यों पर चलाया गया झूठा मुक़दमा। इन पर जाली दस्तावेज़ों तथा झूठे सबूतों के आधार पर राज्यद्रोह का अभियोग लगाया गया, और हिरासत में लिए गये ग्यारह में से सात अभियुक्तों को तीन वर्ष से लेकर छः वर्ष तक के कठोर दुर्ग-कारावास का दंड दिया गया। मार्क्स और एंगेल्स ने अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर आंदोलन के ख़िलाफ़ प्रशियाई पुलिस राज्य के इस घृणित उकसावे की क़लई खोल कर रख दी।–पृ० २७

[18] «*New-York Daily Tribune*»–प्रगतिशील पूंजीवादी समाचारपत्र जो १८४१ से १९२४ तक निकलता रहा, और जिसके लिये मार्क्स और एंगेल्स ने अगस्त १८५१ से मार्च १८६२ तक लेख लिखे थे।–पृ० २७

[19] **संयुक्त राज्य अमरीका में गृह-युद्ध** (१८६१–१८६५) उत्तर के औद्योगिक राज्यों तथा दक्षिण के विद्रोही दास-स्वामियों के राज्यों के बीच चला था। इंगलैंड के मज़दूर वर्ग ने अपने पूंजीपति वर्ग की दास-स्वामियों का

समर्थन करने की नीति का विरोध किया और अमरीकी गृह-युद्ध में इंगलैंड का हस्तक्षेप नहीं होने दिया। – पृ० २७

[20] **इतालवी युद्ध** – १८५९ में आस्ट्रिया के ख़िलाफ़ फ़्रांस और प्येमां का युद्ध, जिसे नेपोलियन तृतीय ने प्रगटतः इटली की स्वतंत्रता को निकट लाने के लिए छेड़ा। दरअसल उसने देशविजय तथा फ़्रांस में बोनापार्ती शासन को सुदृढ़ करने की आकांक्षा से प्रेरित होकर ऐसा किया। परंतु वह इटली में राष्ट्रीय स्वातंत्र्य आंदोलन की बराबर बढ़ती हुई लहर से घबरा गया और उसने इटली के राजनीतिक विभाजन को बरक़रार रखने के लिए आस्ट्रिया के साथ पृथक् शांति-संधि कर ली। इस संधि के अंतर्गत सैवोय और नाइस के इलाक़े फ़्रांस में मिला दिये गये, लोम्बार्डी को सार्डीनिया के हवाले किया गया और वेनिस आस्ट्रिया के ही शासन में रहा। – पृ० २८

[21] *«Das Volk»* ('जनता') – जर्मन भाषा का एक साप्ताहिक समाचार जो लंदन में ७ मई १८५९ से २० अगस्त १८५९ तक प्रकाशित होता रहा। इसके प्रकाशन में मार्क्स ने सीधे सीधे हिस्सा लिया था। वास्तव में जुलाई में वह इसके संपादक बन गये। – पृ० २८

[22] यहां इशारा पेरिस में स्थित तूलरी प्रासाद की ओर है जो नेपोलियन तृतीय का निवासस्थान था। – पृ० २८

[23] ४ सितंबर, १८७० के जन-क्रांतिकारी विद्रोह के फलस्वरूप द्वितीय साम्राज्य का तख़्ता उलट दिया गया, जनतंत्र की घोषणा की गयी और एक अस्थायी सरकार – तथाकथित राष्ट्रीय प्रतिरक्षा की सरकार – स्थापित की गयी, जिसमें नरम जनतंत्रवादी और राजतंत्रवादी, दोनों ही शामिल थे। यह सरकार जिसका अध्यक्ष पेरिस का गवर्नर-जनरल त्रोशू था और जिसका प्रेरक वास्तव में थियेर था, राष्ट्रीय हितों के प्रति विश्वासघात करने और शत्रु के साथ विश्वासघातपूर्ण समझौते करने पर तुली हुई थी। – पृ० २८

[24] **हेग कांग्रेस** – अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ की हेग कांग्रेस २ सितंबर १८७२ से ७ सितंबर १८७२ तक हुई। कांग्रेस में मार्क्स और एंगेल्स समेत (जिन्होंने कांग्रेस के समूचे कार्य का संचालन किया) १५ राष्ट्रीय संगठनों के ६५ प्रतिनिधियों ने भाग लिया। मार्क्स, एंगेल्स और उनके अनुयायिओं

ने अनेक वर्षों से मज़दूर आंदोलन में हर प्रकार के निम्न-पूंजीवादी संकीर्णतावाद के ख़िलाफ़ जो संघर्ष चलाया था, उसकी परिणति हेग कांग्रेस में हुई। अराजकतावादियों के संकीर्णतावादी क्रियाकलाप की निंदा की गयी और उनके नेताओं को इंटरनेशनल से निकाल दिया गया। हेग कांग्रेस के निर्णयों ने विभिन्न देशों में मजदूर वर्ग की स्वतंत्र राजनीतिक पार्टियों की स्थापना के लिए मार्ग प्रशस्त किया।—पृ० २६

[25] **१८७१ का पेरिस कम्यून**—मज़दूर वर्ग की क्रांतिकारी सरकार, जो २८ मार्च १८७१ से २८ मई १८७१ तक सत्तारूढ़ रही। १८ मार्च, १८७१ की असली सर्वहारा क्रांति तथा इसके बाद के सर्वहारा अधिनायकत्व के काल के लिए भी पेरिस कम्यून का शिथिल अर्थ में उपयोग किया जाता है। कार्ल मार्क्स द्वारा लिखित 'फ़्रांस में गृह-युद्ध' में पेरिस कम्यून का इतिहास तथा उसकी सारभूत विशेषताओं का विश्लेषण दिया गया है (देखिये प्रस्तुत संकलन, भाग २)।—पृ० २६

[26] एंगेल्स की कृति, '**समाजवाद: काल्पनिक तथा वैज्ञानिक**' उनके 'ड्यूहरिंग मत-खंडन' के तीन अध्यायों का समाहार है, जिन्हें एंगेल्स ने स्पष्टत: इस उद्देश्य से लेकर दोबारा लिखा कि एक पूर्ण, अखंड विश्व-दृष्टिकोण के रूप में मार्क्सवादी शिक्षा की लोकगम्य व्याख्या दी जा सके। इसमें एंगेल्स ने मार्क्सवाद के तीन संघटक अंगों का वर्णन किया और यह दिखाया कि द्वंद्वात्मक तथा ऐतिहासिक भौतिकवाद का आविर्भाव किस प्रकार हुआ। उन्होंने यह प्रमाणित कर दिया कि मार्क्स की दो महान् खोजों—इतिहास की भौतिकवादी अवधारणा का विकास तथा अतिरिक्त मूल्य के सिद्धांत की स्थापना—की बदौलत ही समाजवाद को वैज्ञानिक आधार प्राप्त हुआ।—पृ० ३६

[27] **गोथा कांग्रेस** १८७५ में २२ मई से २७ मई तक हुई, और उसमें जर्मन मज़दूर आंदोलन की दोनों धारायें—समाजवादी-जनवादी मज़दूर पार्टी (आयज़ेनाख़पंथी), जिसके नेता अगस्त बेबेल और विल्हेल्म लीब्कनेख़्त थे और लासालपंथी आम जर्मन मज़दूर संघ—एक हो गयीं और उन्हें मिला कर जर्मनी की समाजवादी मज़दूर पार्टी की स्थापना की गई। इस प्रकार जर्मन मज़दूर वर्ग की फूट का अंत हुआ। संयुक्त पार्टी के कार्यक्रम का

मसौविदा, जिसकी मार्क्स और एंगेल्स ने कठोर आलोचना की, कांग्रेस द्वारा कुछ मामूली महत्त्वहीन संशोधनों के साथ स्वीकृत कर लिया गया।–पृ० ३६

[28] **द्विधातुवाद**–वह पद्धति जिसमें मुद्रा के काम के लिए एक साथ दो धातुओं–सोना और चांदी–का उपयोग होता है।–पृ० ३७

[29] *«Vorwärts»* ('आगे बढ़ो!')–जर्मनी की समाजवादी मज़दूर पार्टी का मुखपत्र जो लाइप्ज़िग में १ अक्तूबर १८७६ से २७ अक्तूबर १८७८ तक प्रकाशित होता रहा। एंगेल्स का 'ड्यूहरिंग मत-खंडन' इसमें ३ जनवरी १८७७ से ७ जुलाई १८७८ तक प्रकाशित हुआ था।–पृ० ३७

[30] **मार्क**–जर्मनी का प्राचीन गांव-समुदाय। इस शीर्षक से एंगेल्स ने प्राचीन काल से आधुनिक युग तक जर्मन किसानों के इतिहास की रूप-रेखा प्रकाशित की, जो 'समाजवाद: काल्पनिक तथा वैज्ञानिक' के पहले जर्मन संस्करण में परिशिष्ट के रूप में छपी थी।–पृ० ३८

[31] यहां एंगेल्स का इशारा म० म० कोवालेव्स्की की दो कृतियों की ओर है, जिनमें एक, *«Tableau des origines et de l'évolution de la famille et de la proprieté»* ('परिवार और सम्पत्ति की उत्पत्ति तथा विकास पर निबंध'), स्टॉकहोम में १८९० में प्रकाशित हुई और दूसरी 'आदिम क़ानून। भाग १, गोत्र', मास्को में १८८६ में प्रकाशित हुई।–पृ० ३९

[32] **अज्ञेयवाद**–एक भाववादी सिद्धांत, जिसके अनुसार संसार अज्ञेय है, मनुष्य की बुद्धि परिसीमित है और वह मानव-संवेदनाओं से परे कुछ भी बोध करने में असमर्थ है। कुछ अज्ञेयवादी भौतिक जगत् के वस्तुनिष्ठ अस्तित्व को स्वीकार करते हैं परंतु इसके संज्ञान की संभावना को नहीं मानते। अन्य अज्ञेयवादी भौतिक जगत् के अस्तित्व को भी नहीं मानते, कारण यह कि उनके अनुसार मनुष्य यह जानने में असमर्थ है कि इसकी संवेदनाओं के परे कुछ है भी या नहीं।–पृ० ४०

[33] **वितंडावादी**–धर्मवितंडावाद (scholasticism) का पक्षपोषक–मध्ययुगीन धार्मिक वितंडावादी दर्शन जीवन्त वास्तविकता से सर्वथा विछिन्न, अपनी घोर अमूर्त्त तर्कना के लिए प्रसिद्ध था; वह तरह तरह के तार्किक वाक्छल द्वारा ईसाई चर्च के जड़सूत्रों को उचित ठहराने की कोशिश करता था।–पृ० ४०

[34] **धर्मदर्शन** – धार्मिक नैतिकता, जड़सूत्रों तथा पंथों को एक व्यवस्था का रूप देने तथा उन्हें "वैज्ञानिक" आधार पर प्रतिष्ठित करने के प्रयास में धर्म ने दर्शन का बाना ओढ़ा। – पृ० ४०

[35] **नामवादी** – मध्ययुगीन दर्शन की एक धारा के प्रतिनिधि, जिसके अनुसार सामान्य अवधारणाएं विशेष वस्तुओं के नाम भर हैं। मध्ययुगीन यथार्थवादियों के विपरीत नामवादी अवधारणाओं की स्वतंत्र सत्ता को अस्वीकार करते थे; वे यह नहीं मानते थे कि बिंबों की पृथक् स्थिति है और वस्तुओं का मूल विचारों में है। मतलब यह कि उनकी नज़र में वस्तुएं प्राथमिक और अवधारणाएं द्वितीयक थीं। दूसरे शब्दों में मध्ययुग में नामवाद ही भौतिकवाद की प्रारंभिक अभिव्यक्ति था। – पृ० ४०

[36] Homoiomeriae – सूक्ष्मतम तथा निश्चित गुण सम्पन्न भौतिक कण, जिनका अंतहीन विभाजन हो सकता है। अनाक्सागोरस के अनुसार ये कण ही समस्त अस्तित्व के मूलाधार हैं और उनके विविध संयोजनों से ही वस्तुओं का वैविध्य उत्पन्न होता है। – पृ० ४०

[37] यहां इशारा जान लाक की कृति («*An Essay concerning Human Understanding*» की ओर है जो सबसे पहले लंदन में १६९० में प्रकाशित हुई थी। – पृ० ४२

[38] **सगुणवाद** एक धार्मिक अंधमत है, जो सृष्टि के सृजनकर्त्ता के रूप में सगुण ब्रह्म की सत्ता को स्वीकार करता है। – पृ० ४२

[39] **संवेदनावाद** – दर्शन की एक धारा जिसके अनुसार संवेदन तत्त्व ही (अर्थात् संवेदनाएं, प्रत्यक्ष ज्ञान, इच्छाएं, आदि), समस्त ज्ञान तथा मनुष्य की सभी मन:शक्तियों का अनन्य आधार तथा मूल है। – पृ० ४२

[40] **निर्गुणवाद** – एक धार्मिक-दार्शनिक मत, जो ईश्वर को नैर्वैयक्तिक सत्ता और संसार का चिद्स्वरूप आदिकारण मानता है, परंतु प्रकृति और मानव जीवन में ईश्वरीय हस्तक्षेप को नहीं मानता। – पृ० ४२

[41] **लंदन की औद्योगिक प्रदर्शनी** – पहली विश्व व्यापारिक-औद्योगिक प्रदर्शनी जो मई – अक्तूबर, १८५१, में हुई थी। – पृ० ४३

[42] **बैप्टिस्ट सम्प्रदाय** – एक अति प्रचलित ईसाई पंथ जिसके मतानुयायी चेतन रूप से ईसा मसीह में आस्था रखने वाले वयस्कों के लिए ही दीक्षास्नान द्वारा ईसाई धर्म में दीक्षित करने (बपतिस्मा देने) की प्रथा का अनुमोदन करते हैं। वे चर्च की अधिकांश धर्म विधियों और संस्कारों को अस्वीकार करते हैं और बैप्टिस्ट समुदाय के सदस्यों के पवित्र धार्मिक रचनाओं की व्याख्या करने के अधिकार का समर्थन करते हैं। पहले बैप्टिस्ट समुदाय १७वीं शताब्दी में इंगलैंड में और इंगलैंड के अमरीकी उपनिवेशों में स्थापित किये गये थे।

"**मोक्ष-सेना**" (सैल्वेशन आर्मी) – एक प्रतिक्रियावादी धार्मिक तथा लोकोपकारक संगठन, जो इंगलैंड में १८६५ में स्थापित किया गया और १८८० में सैनिक तर्ज़ पर पुन:संगठित किया गया (जिसके कारण उसका नाम मोक्ष-सेना पड़ा)। पूंजीपति वर्ग की प्रचुर सहायता के बल पर इस संगठन ने अनेक देशों में लोकोपकारक संस्थाओं का एक जाल सा बिछा दिया, ताकि मेहनतकश जनता को शोषक-विरोधी संघर्ष से विरत किया जा सके। – पृ० ४३

[43] **आध्यात्मवाद** – एक भाववादी दर्शन जिसके अनुसार आध्यात्म-तत्त्व ही संसार का मूलाधार है। आध्यात्मवादियों का विश्वास है कि आत्मा शरीर से पृथक् तथा स्वतंत्र रूप में अस्तित्व रखती है। – पृ० ४६

[44] इसका अर्थ है भिन्न मतावलम्बी; मध्ययुग में चर्च में विच्छेद और फूट की व्यंजना के लिए धार्मिक तथा ऐतिहासिक साहित्य में इस शब्द का प्रयोग किया गया। – पृ० ४८

[45] इंगलैंड की १६८८ की क्रांति ब्रिटिश पूंजीवादी इतिहास लेखन में "**गौरवपूर्ण क्रांति**" कही गई है। १६८८ के राज्य-पर्युत्क्षेपण के फलस्वरूप स्टूअर्ट राजवंश को राजगद्दी से उतार दिया गया और ओरांवंशी विलियम को सिंहासन पर बैठाकर (१६८९) वैधानिक राजतंत्र स्थापित किया गया। यह राजतंत्र सामन्ती अभिजात वर्ग तथा पूंजीपति वर्ग के मूर्द्धन्य अंग के बीच समझौते का द्योतक था। – पृ० ५०

[46] **गुलाबों की लड़ाई** – इंगलैंड में राजवंशीय संघर्ष (१४५५ – १४८५)। यह संघर्ष लंकास्टर तथा यार्क के सामन्ती घरानों के बीच हुआ और चूंकि

इन घरानों के चिह्न लाल तथा सफ़ेद गुलाब थे, इसलिए उसे गुलाबों की लड़ाई कहा गया। यार्क घराने को देश के दक्षिणी, आर्थिक दृष्टि से अधिक उन्नत भाग के बड़े बड़े ज़मींदारों का और साथ ही नाइटों और शहरी लोगों का भी समर्थन प्राप्त था; उधर लंकास्टर घराने को सामन्ती अभिजात वर्ग तथा उत्तरी ज़िलों का समर्थन प्राप्त था। इन लड़ाइयों का नतीजा यह हुआ कि प्राचीन सामन्ती घराने लगभग पूरी तरह मर-मिट गये और एक नये राजवंश – ट्यूडर राजवंश – का उदय हुआ, जिसने देश में निरंकुश राजतंत्र की स्थापना की। – पृ० ५१

[47] **देकार्तवाद** – १७वीं शताब्दी के फ़्रांसीसी दार्शनिक रेने देकार्त के अनुयायियों द्वारा प्रतिपादित एक मत। इन लोगों ने देकार्त की दार्शनिक व्यवस्था से भौतिकवादी निष्कर्ष निकाले। – पृ० ५३

[48] **'मनुष्य के अधिकारों का घोषणापत्र'** – १७८९ में फ़्रांस की संविधान सभा द्वारा स्वीकृत घोषणापत्र जिसमें नई पूंजीवादी व्यवस्था के राजनीतिक सिद्धांतों को सूत्रबद्ध किया गया था और जिसे १७९१ के फ़्रांसीसी संविधान में समाविष्ट किया गया। १७९३ में जब जैकोबिन दल 'मनुष्य के अधिकारों का घोषणापत्र' का अपना पाठान्तर लिपिबद्ध कर रहा था, तब उसने इस संविधान को नमूने के तौर पर इस्तेमाल किया। राष्ट्रीय कन्वेन्शन ने १७९३ के जनतंत्रीय संविधान में भूमिका के रूप में इस घोषणापत्र का समावेश किया। – पृ० ५३

[49] यहां तथा पश्चाद्वर्त्ती स्थलों में **'नेपोलियनी संहिता'** का उल्लेख करने में एंगेल्स का अभिप्राय पूंजीवादी क़ानून की समूची व्यवस्था से है, जैसा कि वह नेपोलियन बोनापार्त के तहत १८०४ – १८१० के काल में जारी की गई पांच संहिताओं (दीवानी क़ानून, दीवानी प्रक्रिया, तिजारती, फ़ौजदारी और फ़ौजदारी प्रक्रिया की संहितायें) के रूप में देखी जाती हैं। ये संहितायें नेपोलियनी फ़्रांस द्वारा अधिकृत जर्मनी के पश्चिमी तथा दक्षिण-पश्चिमी भागों में लागू की गईं और जब १८१५ में राइनलैंड प्रशा के हवाले कर दिया गया उसके बाद भी ये संहितायें वहां जारी रहीं। – पृ० ५३

[50] **आतंक-राज** – जैकोबिन दल द्वारा क्रांतिकारी-जनवादी अधिनायकत्व का काल (जून १७९३ से जुलाई १७९४ तक)। – पृ० ५५

[51] इशारा इंगलैंड में चुनाव-क़ानून में सुधार के लिए होने वाले आंदोलन की ओर है। १८३१ में जनता के दबाव के कारण हाउस ऑफ़ कामन्स ने इस सुधार को स्वीकार कर लिया और अंततः जून १८३२ में हाउस ऑफ़ लार्ड्स ने उसका अनुमोदन किया। यह सुधार-क़ानून सामंती तथा वित्तीय महाप्रभुओं के एकछत्र शासन पर प्रहार करता था और उसने संसद का द्वार औद्योगिक पूंजीपति वर्ग के प्रतिनिधियों के लिए उन्मुक्त कर दिया। परंतु सर्वहारा तथा निम्न-पूंजीपति वर्ग, जो सुधार आंदोलन की मुख्य शक्ति थे, उदार पूंजीपति वर्ग द्वारा ठगे गये, और निर्वाचन अधिकारों से वंचित ही रहे।–पृ० ५५

[52] १८२४ में जनसाधारण के दबाव के कारण इंगलैंड की पार्लमिंट ने ट्रेड-यूनियनों पर लगे प्रतिबंध को रद्द कर दिया।–पृ० ५६

[53] **पीपुल्स चार्टर**–यह चार्टर, जिसमें चार्टिस्टों की मांगें सूत्रबद्ध थीं, ८ मई १८३८ को पार्लमिंट में पेश किये जाने वाले एक विधेयक के रूप में प्रकाशित किया गया था। उस में ये छः धारायें थीं: सार्विक मताधिकार (२१ वर्ष से ऊपर की अवस्था के पुरुषों के लिए), पार्लमिंट के लिए वार्षिक चुनाव, गुप्त मतदान, समान निर्वाचन-क्षेत्र, पार्लमिंट के चुनाव में खड़े होने वाले उम्मीदवारों के लिए संपत्ति की शर्त का अंत और पार्लमिंट के मेम्बरों के लिए तनख़ाहें। चार्टिस्टों ने पार्लमिंट को इस आशय की तीन अर्ज़ियां दीं परंतु उन्हें १८३९, १८४२ तथा १८४८ में ठुकरा दिया गया।–पृ० ५६

[54] **अनाज-क़ानून विरोधी लीग**–अंग्रेज़ी औद्योगिक पूंजीपतियों का एक संगठन। १८३८ में मैंचेस्टर के कारख़ानेदार कावडेन और ब्राइट ने अनाज-क़ानून विरोधी लीग की स्थापना की जिसने मुक्त व्यापार की मांग को पेश किया। लीग ने मज़दूरों की तनख़ाहें घटाने और सामन्ती अभिजात वर्ग की आर्थिक तथा राजनीतिक स्थिति को कमज़ोर करने की ग़रज़ से अनाज-क़ानून के उन्मूलन के लिए संघर्ष किया। इस संघर्ष के फलस्वरूप १८४६ में अनाज-क़ानून रद्द कर दिये गये; इसका अर्थ यह था कि औद्योगिक पूंजीपति वर्ग ने सामन्ती अभिजात वर्ग पर विजय पायी।–पृ० ५६

[55] **चार्टिज़्म**–ब्रिटिश मज़दूरों का राजनीतिक आंदोलन, जो उनकी आर्थिक दुरवस्था तथा राजनीतिक अधिकारों के अभाव के कारण उत्पन्न हुआ और

उन्नीसवीं शताब्दी के चौथे दशक से लेकर छठे दशक के मध्य तक चला। पीपुल्स चार्टर की मांगों की पूर्त्ति के लिए संघर्ष करो – यही इस ग्रांदोलन का मूलमंत्र था। चार्टर में सर्वमताधिकार की मांग शामिल थी ग्रौर उसमें कई उपबंध भी रखे गये थे जिनसे मज़दूरों के लिए इस ग्रधिकार की ज़मानत होती थी। व्ला० इ० लेनिन के शब्दों में चार्टिज़्म "पहला व्यापक, राजनीतिक रूप से संगठित, सच्चा सर्वहारा क्रांतिकारी जन-ग्रांदोलन था"। – पृ० ५६

56 चार्टिस्टों ने पीपुल्स चार्टर स्वीकृत करवाने के विचार से पार्लमिंट को ग्रर्ज़ी देने के लिए लंदन में १० ग्रप्रैल १८४८ को जो जन-प्रदर्शन संगठित करने की योजना बनायी थी वह संगठनकर्त्ताग्रों के ग्रसमंजस ग्रौर दुविधा के कारण हो न पाया। ग्रसफलता से फ़ायदा उठा कर प्रतिक्रियावादियों ने मज़दूरों पर हमला बोल दिया ग्रौर चार्टिस्टों का दमन करना शुरू किया। – पृ० ५६

57 फ़्रांस में २ दिसंबर १८५१ को लूई बोनापार्त तथा उसके ग्रनुयायिग्रों ने प्रतिक्रांतिकारी राज्य-पर्युत्क्षेपण कर सत्ता पर क़ब्ज़ा कर लिया। – पृ० ५६

58 **भाई जोनाथन** – इंगलैंड के ग्रमरीकी उपनिवेशों के स्वातन्त्र्य-युद्ध (१७७५ – १७८३) के दौरान ग्रंग्रेज़ों ने उत्तर ग्रमरीकियों को मज़ाक़ में "भाई जोनाथन" कहना शुरू किया।

पुनरुत्थानवाद – प्रोटेस्टेंट मतावलंबियों का एक ग्रांदोलन, जो १८वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में इंगलैंड में शुरू हुग्रा ग्रौर फिर उत्तरी ग्रमरीका में फैल गया। पुनरुत्थानवादी धार्मिक प्रवचनों तथा व्याख्यानों द्वारा ग्रौर धर्मानुयायिग्रों के नये समुदाय संगठित कर ईसाई धर्म के प्रभाव को दृढ़ तथा व्यापक बनाना चाहते थे। – पृ० ५७

59 **द्वितीय संसदीय सुधार** – इंगलैंड में इस सुधार के लिए ग्रांदोलन १८६७ तक चलता रहा, जब मजदूर ग्रांदोलन के जन-दबाव के कारण उसे लागू किया गया। पहले इंटरनेशनल की जनरल कौंसिल ने इस सुधार ग्रांदोलन में सक्रिय भाग लिया था। इस सुधार के फलस्वरूप मतदाताग्रों की संख्या दुगुनी हो गयी ग्रौर कुशल मज़दूरों के एक भाग को मताधिकार प्राप्त हुग्रा। – पृ० ५८

[60] **व्हिग** – इंगलैंड की एक राजनीतिक पार्टी, जो १७वीं शताब्दी के नवें दशक के आरंभ में स्थापित हुई थी, शाही सत्ता को सीमित करने के लिए सचेष्ट पूंजीवादी अभिजातों तथा बड़े बड़े व्यापारी तथा वित्तीय पूंजीपतियों के हितों को अभिव्यक्त करती थी। १६ वीं दशाब्दी के छठे दशक में, जब पूंजीपति वर्ग के अन्य दलों के साथ मिल कर व्हिगों ने एक नयी पार्टी, लिबरल पार्टी, बनायी, तो पृथक् पार्टी के रूप में व्हिग पार्टी का अस्तित्व समाप्त हो गया। – पृ० ५६

[61] **टोरी** – इंगलैंड की एक राजनीतिक पार्टी, जिसकी स्थापना १७वीं शताब्दी के अंत में की गई थी। यह पार्टी अभिजातीय सामंतों तथा चर्च के उच्चाधिकारियों के हितों के लिये लड़ती थी, पुरानी सामन्तीं परम्पराओं का समर्थन करती थी और उदारतावादी तथा प्रगतिशील मांगों का विरोध करती थी। १६वीं शताब्दी के मध्य काल में इसी पार्टी से कंज़रवेटिव पार्टी का विकास हुआ। – पृ० ६०

[62] Katheder-Socialism (प्रोफ़ेसरी समाजवाद) – उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम तीन दशकों में पूंजीवादी विचारधारा की एक प्रवृत्ति, जिसके प्रतिनिधि, अधिकांशतः जर्मन युनिवर्सिटियों के प्रोफ़ेसर, अपने आसनों (काथेडर) से समाजवाद के वेश में पूंजीवादी सुधारवाद का प्रचार किया करते थे (इसी लिए इस प्रवृत्ति को व्यंग्य से "काथेडर समाजवाद" कहा गया)। ए० वैगनर, जी० श्मोलर, एल० ब्रेन्तानो, डब्ल्यू० ज़ोम्बार्त आदि का दावा था कि राज्य एक वर्गोपरि संस्था है, जो विरोधी वर्गों को संयोजित कर सकती है और पूंजीपतियों के स्वार्थों पर आघात किये बिना धीरे धीरे समाजवाद की स्थापना कर सकती है। इन लोगों का उद्देश्य यह था कि बीमारी और दुर्घटना के बीमे की व्यवस्था कर और फ़ैक्टरी क़ानूनों को पास कराके ग़रीबों की हालत को सुधारा जाये। काथेडर-समाजवादियों की राय थी कि सुसंगठित ट्रेड-यूनियन होने पर मज़दूर वर्ग के राजनीतिक संघर्ष और उसकी राजनीतिक पार्टी की कोई ज़रूरत नहीं रहती। यह प्रवृत्ति विचारधारा के क्षेत्र में संशोधनवाद की पूर्वगामी थी। – पृ० ६०

[63] **कर्मकांड** – आंग्ल चर्च में कर्मकांड की प्रवृत्ति सबसे पहले १६वीं शताब्दी के चौथे दशक में उभरी। कर्मकांडियों ने आंग्ल चर्च में कैथोलिक

कर्मकांड तथा कतिपय कैथोलिक जड़सूत्रों को पुन:स्थापित करने के लिए आंदोलन किया।—पृ० ६०

[64] यहां इशारा लंदन के पूर्वी भाग की ओर है, जहां मज़दूर तथा ग़रीब लोग रहते हैं।—पृ० ६२

[65] एंगेल्स ने यह निष्कर्ष कि समुन्नत पूंजीवादी देशों में सर्वहारा क्रांति की एकसाथ विजय संभव है और फलत: अकेले एक देश में सर्वहारा क्रांति की विजय असंभव है, सबसे पहले १८४७ में अपनी रचना, 'कम्युनिज़्म के सिद्धांत' में सूत्रबद्ध किया था। यह निष्कर्ष इजारेदार पूंजीवाद के पहले के समूचे युग के लिए वैध था। इजारेदार पूंजीवाद के युग की नई ऐतिहासिक अवस्थाओं में, लेनिन ने इस नियम के आधार पर कि साम्राज्यवाद के युग में पूंजीवाद का आर्थिक तथा राजनीतिक विकास असम रूप से होता है (उन्होंने इस नियम को पहले ही सूत्रबद्ध कर लिया था), एक नया निष्कर्ष स्थापित किया। वह यह कि समाजवादी क्रांति कतिपय देशों में एकसाथ एक ही समय में, अथवा अकेले एक देश में भी बख़ूबी विजयी हो सकती है, कि सभी देशों में या बहुसंख्यक देशों में समाजवादी क्रांति की समकालिक विजय असंभव है। लेनिन ने यह निष्कर्ष पहले पहल अपने लेख 'यूरोप के संयुक्त राज्य का नारा' (१९१५) में सूत्रबद्ध किया था।—पृ० ६३

[66] जर्मनी में **समाजवादियों के विरुद्ध असाधारण क़ानून** २१ अक्तूबर १८७८ को लागू किया गया था। इस क़ानून द्वारा समाजवादी-जनवादी पार्टी के सभी संगठनों, मज़दूरों के जन-संगठनों और प्रकाशनों पर रोक लगा दी गई, समाजवादी प्रकाशनों को ग़ैर-क़ानूनी क़रार दिया गया और समाजवादी-जनवादियों का दमन किया गया। मज़दूर जन-आन्दोलन के दबाव के कारण १ अक्तूबर १८९० को यह क़ानून रद्द कर दिया गया।—पृ० ६५

[67] अपने प्रसिद्ध ग्रंथ *«Du Contract social»* ('सामाजिक समझौता') में रूसो ने जो सिद्धांत प्रतिपादित किया उसके अनुसार आदिम समाज में लोग नैसर्गिक अवस्था में रहते थे और उनके बीच असमानता न थी। निजी सम्पत्ति के आविर्भाव तथा भौतिक असमानता की वृद्धि के कारण लोगों ने नैसर्गिक अवस्था से नागरिक अवस्था में संक्रमण किया; इसी के कारण सामाजिक समझौते पर आधारित राज्य की स्थापना हुई। परंतु

वाद में राजनीतिक असमानता की और अधिक वृद्धि के कारण यह सामाजिक समझौता टूट गया और एक नये अधिकारहीन वर्ग का आविर्भाव हुआ। रूसो का तर्क था कि यह अवस्था एक नये सामाजिक समझौते पर आधारित युक्तिसंगत राज्य द्वारा ही उन्मूलित की जा सकती है। –पृ० ६६

68 **अनैबैप्टिस्ट** – एक ईसाई सम्प्रदाय के सदस्य जिनका मत था कि बपतिस्मा वयस्कों को ही दी जा सकती है, इसलिये जिन लोगों को बपतिस्मा शैशवकाल में दी गयी है उनको दोबारा बपतिस्मा दी जानी चाहिये। –पृ० ६६

69 यहां एंगेल्स का इशारा "सच्चे लैवेलर्सों" (समकारियों) अथवा "डीग्गेरों (खननकारियों) की ओर है, जो उग्र वामपंथी शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते थे। ये लोग १७वीं शताब्दी में अंग्रेज़ी क्रांति के काल में सक्रिय थे और शहर तथा गांव की जनता के ग़रीब तबक़ों के हितों को व्यक्त करते थे। उन्होंने भूमि के निजी स्वामित्व के उन्मूलन की मांग की और आदिम समतामूलक कम्युनिज़्म के विचारों का प्रचार किया तथा साझे की ज़मीनों पर सामूहिक खेती के द्वारा उन्हें कार्यान्वित करने की कोशिश की। –पृ० ६६

70 यहां एंगेल्स का इशारा काल्पनिक कम्युनिज़्म के प्रमुख प्रतिनिधियों की रचनाओं की ओर है; ये हैं टामस मोर की रचना 'यूटोपिया' और टोमासो कैम्पानेला की 'सूर्यलोक'। –पृ० ६६

71 **डाइरेक्टरेट** – १७९५ – १७९९ का फ़्रांसीसी निर्देशक मण्डल। इस मूर्द्धन्य कार्यकारी निकाय में पांच निर्देशक (डाइरेक्टर) होते थे, जिनमें से एक का प्रति वर्ष पुनर्निर्वाचन होता था। यह संस्था जनवादी आंदोलन का विरोध करती थी, उसके ख़िलाफ़ आतंक और डंडाराज का समर्थन करती थी तथा बड़े पूंजीपति वर्ग के हितों की हिमायत करती थी। –पृ० ६८

72 यहां इशारा १८वीं शताब्दी की फ़्रांसीसी क्रांति के मशहूर नारे, "स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व" की ओर है। –पृ० ६८

73 न्यू लेनार्क (New Lanark) – स्काटलैंड के लेनार्क नामक नगर के निकट एक सूती कताई मिल, जिसे एक छोटी-सी बस्ती के साथ १७८४ में खड़ा किया गया था। –पृ० ६९

[74] **तृतीय श्रेणी** – सामन्ती फ़्रांस में विशेषाधिकारहीन वर्ग जिनपर टैक्स लगाये जा सकते थे (किसान, व्यापारी, दस्तकार, और बाद में पूंजीपति)। इस तृतीय श्रेणी की अवधारणा ने फ़्रांसीसी क्रांति के पूर्व विशेष महत्त्व प्राप्त कर लिया, क्योंकि पूंजीपति वर्ग को जनता के समर्थन की अपेक्षा थी और उसने विशेषाधिकारसम्पन्न श्रेणियों, अर्थात् अभिजात वर्ग और पादरियों के ख़िलाफ़ एक अभिन्न "तृतीय श्रेणी" स्थापित करने के लिए अपने गिर्द जनता को एकजुट किया। – पृ० ७०

[75] **शतवासरीय काल** – ऐल्बा द्वीप में निर्वासन से २० मार्च १८१५ को पेरिस लौटने के दिन से उसी वर्ष २२ जून को दूसरी बार राज्यत्याग तक की संक्षिप्त अवधि, जब नेपोलियन का साम्राज्य अस्थायी रूप से पुनःस्थापित हुआ था। – पृ० ७३

[76] **वाटरलू** – ब्रसेल्स के निकट एक स्थान जहां १८१५ में नेपोलियन वेलिंगटन की कमान में आंग्ल-डच सेनाओं तथा ब्लूहर की कमान में प्रशियाई सेना द्वारा अंतिम रूप से पराजित हुआ। – पृ० ७३

[77] **ग्रेट ब्रिटेन और आयरलैंड के कारख़ानों का विशाल, राष्ट्रीय संयोजित संघ** – यह संघ लंदन में अक्तूबर १८३३ में रॉबर्ट ओवेन की अध्यक्षता में हुई सहकारी समितियों तथा ट्रेड-यूनियनों की एक कांग्रेस में औपचारिक रूप से स्थापित किया गया। पूंजीवादी राज्य तथा समाज के प्रबल विरोध के कारण अगस्त १८३४ में संघ को भंग कर दिया गया। – पृ० ७९

[78] यहां एंगेल्स का इशारा इंगलैंड के विभिन्न नगरों में ओवेनपंथी सहकारी समितियों द्वारा स्थापित उन बाज़ारों की ओर है जो श्रम की उपज के उचित विनिमय के लिए बाज़ार कहे जाते थे। इन बाज़ारों में श्रम की उपजों के एवज़ में काग़ज़ी मुद्रा दी जाती थी, जिसका यूनिट श्रम-काल के एक घंटे के मानक द्वारा निश्चित होता था। परंतु ये बाज़ार बहुत जल्द दिवालिया हो गये। – पृ० ७९

[79] १८४८-१८४९ की क्रांति के दौरान प्रूदों ने एक ऐसे विशेष बैंक को स्थापित करने की कोशिश की, जो मुद्रा के माध्यम के बिना छोटे उत्पादकों के मालों का विनिमय संपन्न कर सके और मज़दूरों को निर्बाध उधार दे सके। यह बैंक, Banque du peuple (जनता का बैंक) ३१ जनवरी

१८४६ को पेरिस में स्थापित हुआ और क़रीब दो महीने चला। शुरू अप्रैल १८४६ में वह बंद कर दिया गया। चालू होने के पहले से ही उसकी असफलता अवश्यंभावी थी। – पृ० ७६

[80] यहां इशारा तीसरी शताब्दी ई० पू० से लेकर ईसवी सन् की सातवीं शताब्दी तक के काल की ओर है जो इतिहास में मिस्र के शहर अलेक्ज़ेन्ड्रिया, जो उस समय अंतर्राष्ट्रीय व्यापार का एक बड़ा केंद्र था, के नाम पर अलेक्ज़ेन्ड्रियाई काल कहलाया। इस काल में गणित, यांत्रिकी, भूगोल, खगोल विज्ञान तथा शरीर-रचना विज्ञान जैसे कितने ही विज्ञानों के क्षेत्र में द्रुत प्रगति हुई। – पृ० ८२

[81] यहां इशारा उन महान् खोजों की ओर है जो १५ वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से लेकर १७ वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक के काल में हुईं और जिनमें सबसे महत्त्वपूर्ण अमरीका और आस्ट्रेलिया की खोज और अफ़्रीका से घूम कर भारत पहुंचने के समुद्री मार्ग की खोज थी। इन महान् भौगोलिक खोजों ने सामंतवाद के पतन में योगदान किया और पश्चिमी यूरोप में पूंजीवादी संबंधों के आविर्भाव को त्वरित किया। – पृ० ६८

[82] यहां इशारा उन युद्धों की ओर है जो १७वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध से १८वीं शताब्दी के आरंभ तक के काल में लड़े गये, और जिनमें एक ओर फ़्रांस के नेतृत्व में यूरोपीय शक्तियों के संश्रयों और दूसरी ओर हालैंड तथा बाद में इंगलैंड ने भाग लिया। इन युद्धों का आधारभूत कारण प्रादेशिक विस्तार और यूरोप में राजनीतिक तथा आर्थिक नेतृत्व स्थापित करने की पूंजीपति वर्ग तथा अभिजात वर्ग की, विशेषतः फ़्रांस के इन वर्गों की, चेष्टा थी। इस काल में "व्यापारिक युद्धों" का जो सिलसिला चला उसकी परिणति स्पेनी उत्तराधिकार युद्ध (१७०१–१७१४) में हुई। इस युद्ध में फ़्रांस की पराजय हुई, उसकी आर्थिक और सैनिक स्थिति अत्यंत दुर्बल हो गयी और वह अपने विस्तृत औपनिवेशिक प्रदेशों से हाथ धो बैठा। – पृ० ६८

[83] Seehandlung (समुद्री व्यापार) – प्रशा की एक व्यापार और ऋण संस्था जो १७७२ में स्थापित की गयी थी। इसे महत्त्वपूर्ण सरकारी विशेषाधिकार प्राप्त थे और यह प्रशा की सरकार को बड़ी बड़ी रक़में बतौर क़र्ज़े के देती थी। – पृ० १०५

[84] «*Vorwärts*» ('आगे बढ़ो!') – एक जर्मन अर्द्ध-साप्ताहिक समाचारपत्र जो जनवरी १८४४ से दिसंबर १८४४ तक निकलता रहा और जिसके लिए मार्क्स और एंगेल्स लिखा करते थे। – पृ० ११७

[85] **अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ** (पहला इन्टरनेशनल) – सर्वहारा वर्ग का पहला अंतर्राष्ट्रीय संगठन (१८६४–१८७६), जिसका निर्देशन मार्क्स और एंगेल्स करते थे। इसने प्रमुख पूंजीवादी देशों के आगे बढ़े हुए मज़दूरों के बीच वैज्ञानिक समाजवाद के विचारों का प्रचार किया और "पूंजी पर क्रांतिकारी प्रहार की तैयारी के लिये मज़दूरों के एक अंतर्राष्ट्रीय संगठन की बुनियाद रखी" (व्ला० इ० लेनिन)। – पृ० ११७

[86] एंगेल्स ने अपना लेख 'कम्युनिस्ट लीग के इतिहास के विषय में' मार्क्स के पैंफ़लेट 'कोलोन के कम्युनिस्ट मुक़दमे के बारे में रहस्योद्घाटन' के जर्मन संस्करण (१८८५) की भूमिका के रूप में लिखा था। जिस काल में असाधारण क़ानून जारी था, उसमें जर्मनी के मज़दूर वर्ग के लिए यह ज़रूरी था कि वह १८४६–१८५२ में प्रतिक्रिया के हमले के दौरान प्राप्त क्रांतिकारी अनुभव से परिचित हो। इसी कारण एंगेल्स ने मार्क्स के पैंफ़लेट को फिर से छपवाना ज़रूरी समझा।

इस लेख में एंगेल्स ने अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर आंदोलन में पहले अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर संगठन की, जिसने इतिहास में पहली बार वैज्ञानिक कम्युनिज़्म को इस आंदोलन का सैद्धांतिक लक्ष्य घोषित किया, ऐतिहासिक भूमिका और स्थान को स्पष्ट किया। सर्वहारा पार्टी की स्थापना के संघर्ष में एक महत्त्वपूर्ण मंजिल की परिचायक कम्युनिस्ट लीग के उदाहरण को अपना आधार बनाते हुए एंगेल्स ने यह प्रमाणित किया कि विभिन्न संकीर्णतावादी प्रवृत्तियों के ऊपर मार्क्सवाद की विजय का कारण यह है कि वह शुरू से ही सर्वहारा के क्रांतिकारी संघर्ष की सभी आवश्यकताओं को प्रतिबिंबित करने में समर्थ रहा है और यह भी कि यह सिद्धांत क्रांतिकारी संघर्ष का अविभाज्य अंग है। – पृ० ११६

[87] **बाब्योफ़वाद** – कल्पनावादी, समतावादी कम्युनिज़्म का सिद्धांत, जिसे १८वीं शताब्दी के फ़्रांसीसी क्रांतिकारी ग्राक्ख बाब्योफ़ और उनके अनुयायिओं ने प्रतिपादित किया था। – पृ० १२०

[88] Société des Saisons (ऋतु-समाज) – एक जनतंत्रवादी, समाजवादी षड्यंत्रकारी संगठन, जो ब्लांकी तथा ए० बार्बी के नेतृत्व में १८३७ से १८३९ तक चलता रहा।

पेरिस में १२ मई १८३९ का विद्रोह, जिसमें क्रांतिकारी मजदूरों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की, इस समाज द्वारा ही संगठित किया गया था। विद्रोह को जनसाधारण का समर्थन प्राप्त नहीं हुआ और उसे सरकारी सेना तथा राष्ट्रीय गार्ड ने परास्त कर दिया। – पृ० १२०

[89] यहां इशारा जर्मन जनवादियों के घरेलू मोर्चे पर प्रतिक्रिया के ख़िलाफ़ संघर्ष की एक घटना की ओर है। ३ अप्रैल १८३३ को उग्रवादियों के एक दल ने सत्ता पर अधिकार करने तथा जर्मनी में जनतंत्र की घोषणा करने के प्रयत्न में फ़्रैंकफ़ुर्ट-ऑन-मेन में संघीय सभा के ख़िलाफ़ प्रदर्शन किया, जो ठीक से संगठित न होने के कारण जर्मन सेना द्वारा कुचल दिया गया। – पृ० १२१

[90] फ़रवरी १८३४ में इटली के पूंजीवादी-जनवादी नेता जुज़ेप्पे माज़्ज़िनी ने, १८३१ में अपने द्वारा संस्थापित "तरुण इटली" नामक संस्था के तथा क्रांतिकारी उत्प्रवासियों के कई दलों के समर्थन से स्विट्ज़रलैंड से सैवोय तक एक अभियान-मार्च संगठित किया। इन लोगों का उद्देश्य इटली की एकता के नाम पर जन-विद्रोह शुरू करना और स्वतंत्र पूंजीवादी जनतंत्र की घोषणा करना था। सैवोय में दाख़िल हुई टुकड़ी प्येमां के सैनिकों द्वारा छिन्न-भिन्न कर दी गई। – पृ० १२१

[91] "डिमागोग" (नारेबाज) – जर्मनी में १९वीं शताब्दी के तीसरे दशक में यह शब्द जर्मन बुद्धिजीवियों के बीच विरोध आंदोलन में भाग लेने वालों के लिये प्रयुक्त हुआ। इन लोगों ने जर्मन राज्यों की प्रतिक्रियावादी राजनीतिक व्यवस्था का खुलकर विरोध तथा जर्मनी के एकीकरण का समर्थन किया। अधिकारियों ने "नारेबाज़ों" का निर्मम दमन किया। – पृ० १२१

[92] यहां इशारा "जर्मन मजदूरों के लंदन शिक्षा संघ" की ओर है, जिसे कार्ल शापर, जोज़ेफ़ मोल तथा "न्यायप्रियों की लीग" के अन्य नेताओं ने १८४० में स्थापित किया था। १८४९ – १८५० में मार्क्स और एंगेल्स ने इस संघ के क्रियाकलाप में सक्रिय भाग लिया। परंतु १७ सितंबर १८५० को मार्क्स, एंगेल्स और उनके अनुयायिओं ने समाज से संबंध-विच्छेद कर

लिया, क्योंकि उसके सदस्यों की एक बड़ी संख्या ने विलिख़-शापर के संकीर्णतावादी तथा जोखोंबाज़ दल का पक्ष लिया था। १८६४ में इंटरनेशनल की स्थापना होने पर यह संघ लंदन में अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर संघ की जर्मन शाखा बन गया। लंदन शिक्षा संघ का अस्तित्व १६१८ तक क़ायम रहा जब उसे ब्रिटिश सरकार ने बंद कर दिया।–पृ० १२२

[93] यहां इशारा फ़्रांस की १८४८ की फ़रवरी क्रांति की ओर है।–पृ० १२७

[94] «*The Northern Star*»–१८३७ में स्थापित एक अंग्रेज़ी साप्ताहिक, जो चार्टिस्ट आंदोलन का मुखपत्र था। १८४४ तक वह लीड्स से निकलता रहा और फिर नवम्बर १८४४ से १८५२ तक लंदन से। एफ़० ओ'कोनर उसके संस्थापक तथा संपादक थे। हार्नी भी इस पत्र के कर्मचारियों में थे। १८४३ और १८५० के बीच इसमें एंगेल्स के लेख निकला करते थे।–पृ० १२७

[95] **जनवादी समाज**–१८४७ की पतझड़ में ब्रसेल्स में स्थापित इस समाज के सदस्य सर्वहारा क्रांतिकारियों, मुख्यतः जर्मनी के सर्वहारा क्रांतिकारी उत्प्रवासियों, और पूंजीवादी तथा निम्न-पूंजीवादी जनवादियों की प्रगतिशील श्रेणियों के बीच से आते थे। मार्क्स और एंगेल्स ने इस समाज की स्थापना में सक्रिय भाग लिया था। १५ नवंबर १८४७ को मार्क्स इसके उपाध्यक्ष चुने गये; इसके अध्यक्ष बेलजियम के जनवादी एल० जोट्रान थे। मार्क्स के क्रियाकलाप के फलस्वरूप ब्रसेल्स जनवादी समाज अंतर्राष्ट्रीय जनवादी आंदोलन का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र बन गया। शुरू मार्च १८४८ में मार्क्स के बेलजियम से निर्वासित होने तथा बेलजियाई अधिकारियों द्वारा समाज के सबसे क्रांतिकारी तत्त्वों का दमन किये जाने के बाद, इसके क्रियाकलाप का स्वरूप अधिक सीमित, शुद्धतः स्थानीय रह गया और १८४६ में इसका अस्तित्व ही समाप्त हो गया।–पृ० १२७

[96] यहां इशारा उन निम्न-पूंजीवादी जनतंत्रवादी जनवादियों तथा निम्न-पूंजीवादी समाजवादियों की ओर है, जो फ़्रांसीसी समाचारपत्र, «*La Réforme*» ('सुधार') की नीति पर चलते थे। ये लोग जनतंत्र की स्थापना का तथा जनवादी और सामाजिक सुधारों का समर्थन करते थे।–पृ० १२७

[97] «*Der Volks-Tribun*» ('जन-प्रवक्ता') – जर्मन "सच्चे समाजवादियों" द्वारा स्थापित न्यूयार्क का एक साप्ताहिक, जो ५ जनवरी १८४६ से ३१ दिसंबर १८४६ तक निकलता रहा। – पृ० १२८

[98] **'जर्मनी में कम्युनिस्ट पार्टी की मांगें'** – मार्क्स और एंगेल्स द्वारा पेरिस में २१ मार्च और २९ मार्च १८४८ के बीच लिखा गया एक परचा, जो जर्मन क्रांति में कम्युनिस्ट लीग का राजनीतिक कार्यक्रम था। लीग के जो सदस्य स्वदेश लौट रहे थे उनके हाथ में यह नीति संबंधी दस्तावेज़ दे दी गयी। क्रांति के दौरान मार्क्स, एंगेल्स और उनके समर्थकों ने इस दस्तावेज़ का जनता के बीच प्रचार किया। – पृ० १३२

[99] यहां इशारा जर्मन मज़दूर क्लब की ओर है जो पेरिस में कम्युनिस्ट लीग की पेशक़दमी पर ८-९ मार्च १८४८ को खोला गया। इस क्लब में मार्क्स ने नेतृत्वकारी भूमिका अदा की। क्लब का उद्देश्य पेरिस में उत्प्रवासी जर्मन मज़दूरों की सफ़ों को एकजुट और सुदृढ़ करना और उन्हें यह समझाना था कि आसन्न पूंजीवादी-जनवादी क्रांति में सर्वहारा वर्ग की कार्यनीति क्या होनी चाहिए। – पृ० १३४

[100] यहां इशारा अखिल जर्मन राष्ट्रीय सभा के उग्र वाम पक्ष की ओर है जो मुख्यत: निम्न-पूंजीपति वर्ग के हितों का प्रतिनिधित्व करता था, परन्तु जिसे जर्मन मज़दूरों के एक भाग का भी समर्थन प्राप्त था। १८४८-१८४९ की क्रांति के दौरान राष्ट्रीय सभा का अधिवेशन फ़्रैंकफ़ुर्ट-ऑन-मेन में होता रहा। राष्ट्रीय सभा का मुख्य काम जर्मनी की राजनीतिक विच्छिन्नता को दूर करके एक सामान्य संविधान तैयार करना था। परन्तु अपने उदारतावादी बहुमत की बुज़दिली और ढुलमुलपन की वजह से राष्ट्रीय सभा सत्ता-सूत्र अपने हाथों में न ले सकी और जर्मन क्रान्ति के प्रमुख प्रश्नों के संबंध में दृढ़ स्थिति ग्रहण करने में असमर्थ रही। ३० मई १८४९ को राष्ट्रीय सभा को स्टुटगार्ट में स्थानान्तरित होना पड़ा। १८ जून १८४९ को वह सैन्य बल द्वारा भंग कर दी गई। – पृ० १३५

[101] मार्क्स की रचना 'कोलोन के कम्युनिस्ट मुक़दमे के बारे में रहस्योद्घाटन' के १८८५ के संस्करण में, जिसमें एंगेल्स का प्रस्तुत लेख भूमिका के रूप में दिया गया है, उन्होंने पूरक सामग्री के रूप में कुछ परिशिष्ट भी शामिल किये,

जिनमें कम्युनिस्ट लीग के नाम केन्द्रीय समिति की मार्च और जून १८५० की चिट्ठियां भी थीं। – पृ० १३७

[102] **प्रगतिवादी** – जून १८६१ में स्थापित प्रशा की पूंजीवादी प्रगतिवादी पार्टी के प्रतिनिधि। इस पार्टी की मांग थी कि जर्मनी प्रशा के नेतृत्व में एकताबद्ध किया जाये, एक अखिल जर्मन संसद बुलायी जाये और प्रतिनिधि सदन के प्रति उत्तरदायी एक प्रबल उदारतावादी मंत्रिमंडल स्थापित किया जाये। १८६६ में पार्टी का दक्षिण पक्ष उससे अलग हो गया, उसने राष्ट्रीय उदारतावादी पार्टी की स्थापना की और उसने बिस्मार्क के आगे आत्मसमर्पण कर दिया। राष्ट्रीय उदारतावादियों के विपरीत, प्रगतिवादी १८७१ में जर्मनी के एकीकरण के बाद भी विरोध पक्ष की भूमिका अदा करते रहे, परंतु यह भूमिका ज़बानी जमाख़र्च से आगे न जा सकी। मज़दूर वर्ग के भय तथा समाजवादी आंदोलन के प्रति शत्रुतावश प्रगतिवादी पार्टी ने जर्मनी की अर्द्ध-निरंकुश अवस्थाओं में प्रशियाई ज़मींदारों के शासन के साथ सुलह-मसालहत कर ली। पार्टी के नेताओं का ढुलमुल रवैया यह ज़ाहिर करता था कि जिस व्यापारी पूंजीपति वर्ग, छोटे उद्योगपतियों और दस्तकारों का उन्होंने भरोसा किया था वे कितने नापाएदार थे। १८८४ में प्रगतिवादियों ने राष्ट्रीय उदारतावादियों के वामपक्ष के साथ मिलकर जर्मन आज़ादख़याल पार्टी की स्थापना की। – पृ० १४०

[103] Sonderbund (पृथक् संघ) – एक विद्रुपात्मक नाम जो मार्क्स और एंगेल्स ने विलिख़ – शापर के संकीर्णतावादी तथा जोखोंबाज़ दल को दिया। यह नाम उन्हें १९वीं शताब्दी के पांचवें दशक में स्विट्ज़रलैंड के प्रतिक्रियावादी कैथोलिक कैंटनों (ज़िलों) के पृथक् संघ के नमूने पर दिया गया था। इस दल ने, जो फूट पड़ने के बाद कम्युनिस्ट लीग से अलग हो गया, अपना अलग संगठन बनाया जिसकी अपनी केंद्रीय समिति थी। अपने क्रियाकलाप के सिलसिले में उसने प्रशा की पुलिस को जर्मनी में कम्युनिस्ट लीग की ग़ैरक़ानूनी शाखाओं का सुराग़ लगाने में मदद पहुंचायी और १८५२ में कोलोन में कम्युनिस्ट लीग के प्रमुख नेताओं पर चलाये गये मुक़दमे में उनके ख़िलाफ़ सबूत गढ़ने के लिए उसे मसाला दिया। – पृ० १४१

[104] **'परिवार, निजी संपत्ति और राज्य की उत्पत्ति'** – मार्क्सवाद का एक आधारभूत ग्रंथ, जो मानव-विकास की प्रारंभिक अवस्थाओं में मानवजाति के

इतिहास का विश्लेषण करता है, आदिम सामुदायिक व्यवस्था के विघटन की तथा निजी संपत्ति पर आधारित वर्ग-समाज की स्थापना की प्रक्रिया को उद्घाटित करता है, इस वर्ग-समाज के सामान्य लक्षणों की रूपरेखा प्रस्तुत करता है, भिन्न भिन्न सामाजिक-आर्थिक व्यवस्थाओं में पारिवारिक संबंधों की विशेषताओं की व्याख्या करता है, राज्य के मूल तथा सारतत्त्व को प्रत्यक्ष करता है और वर्गहीन कम्युनिस्ट समाज की अंतिम विजय के साथ उसके विलोपन की ऐतिहासिक अनिवार्यता को प्रमाणित करता है।

एंगेल्स ने यह पुस्तक १८८४ में मार्च के अंत से लेकर मई के अंत तक दो महीनों में लिखी थी। मार्क्स के पांडुलेखों को छांटने के सिलसिले में एंगेल्स को ल्यूईस मौर्गन की पुस्तक, 'प्राचीन समाज' का मार्क्स का विस्तृत सारांश मिला, जो उन्होंने १८८०–१८८१ में लिखा था। इस में मार्क्स की बहुत सी आलोचनात्मक टिप्पणियां थीं, उनके अपने विश्लेषण के सूत्र थे तथा अन्य स्रोतों से ली गयी अतिरिक्त सामग्री भी थी। प्रगतिशील अमरीकी विद्वान की रचना के मार्क्स द्वारा प्रस्तुत इस सारांश का अध्ययन कर और यह अनुभव कर कि मौर्गन की पुस्तक उनकी और मार्क्स की इतिहास की भौतिकवादी समझ तथा आदिम समाज के उनके विश्लेषण की पुष्टि करती है, एंगेल्स ने इस विषय पर एक विशेष पुस्तक की रचना करना आवश्यक समझा। उन्होंने मार्क्स की टिप्पणियों और उनकी प्रस्थापनाओं का तथा मौर्गन की पुस्तक से प्राप्त तथ्य-सामग्री का व्यापक रूप से उपयोग किया। एंगेल्स की दृष्टि में उनकी यह रचना मार्क्स की अंतिम इच्छा और वसीयत की आंशिक पूर्ति थी। मौर्गन की पुस्तक पर कार्य करते समय एंगेल्स ने बहुत सी अतिरिक्त सामग्री का इस्तेमाल किया जो उन्हें यूनान और रोम, प्राचीन आयरलैंड, प्राचीन जर्मन लोगों आदि के इतिहास के अपने अध्ययन (देखिये एंगेल्स की रचनाएं, 'प्राचीन जर्मन लोगों का इतिहास', 'मार्क-समुदाय', 'फ़्रैंक काल') से प्राप्त हुई थी।

१८९० में आदिम समाज के बारे में प्रचुर सामग्री एकत्र कर लेने के बाद, एंगेल्स ने पुस्तक का नया, चतुर्थ संस्करण निकालने की तैयारी की। इस तैयारी के सिलसिले में अनुसंधान करते हुए उन्होंने आधुनिकतम साहित्य का, विशेषत: रूसी वैज्ञानिक म० म० कोवालेव्स्की की कृतियों का अध्ययन किया और पुस्तक के मूलपाठ में बहुत से परिवर्तन और संशोधन किये तथा काफ़ी नयी सामग्री जोड़ी, ख़ासकर परिवार वाले अध्याय में।

एंगेल्स की पुस्तक का चौथा संशोधित संस्करण स्टुटगार्ट में १८९१ के अंत के क़रीब निकला और फिर उसमें कोई तबदीलियां नहीं की गईं। – पृ० १४३

105 «Contemporanul» ('समकालीन') – समाजवादी प्रवृत्ति रखने वाली एक रूमानियाई पत्रिका जो यास्सी नगर से १८८१ – १८९० के काल में निकलती रही। – पृ० १४७

106 मगर – एक पुराना क़बीला, जो इस समय पश्चिमी नेपाल में बसनेवाली एक जाति है। – पृ० १५३

107 एंगेल्स ने संयुक्त राज्य अमरीका और कनाडा की यात्रा अगस्त – सितम्बर १८८८ में की थी। – पृ० १६०

108 **पुएब्लो** – उत्तरी अमरीका के इंडियन क़बीलों का एक समूह ; ये क़बीले, जिनका इतिहास एक और जिनकी संस्कृति भी एक रही है, न्यू-मैक्सिको (इस समय संयुक्त राज्य अमरीका का दक्षिण-पश्चिमी भाग तथा उत्तर मैक्सिको) में बसते थे। इस प्रदेश में आनेवाले स्पेनी आबादकारों ने इन इंडियनों और उनके गांवों को "पुएब्लो" कहना शुरू किया (जिसका अर्थ स्पेनी भाषा में जाति, समुदाय, गांव है), और इस तरह उनका नाम "पुएब्लो" पड़ गया। पुएब्लो लोग बड़े बड़े पांच-छः मंज़िला सामुदायिक घरों में रहा करते थे। हर घर छोटी-मोटी गढ़ी जैसा होता था और उसमें लगभग एक हज़ार आदमी – पूरा का पूरा समुदाय – रहते थे। – पृ० १६७

109 यहां इशारा मध्य एशिया की नदियों – आमू-दरिया और सीर-दरिया – के प्राचीन नामों की ओर है। – पृ० १६७

110 **नौर्मन** – उत्तरी यूरोप में बसने वाले स्कैंडिनेवियाई क़बीले। मध्य युग के प्रारंभिक काल में यह नाम सामान्यतः उन क़बीलों के लिए प्रयुक्त होता था जो आजकल की नार्वेई, स्वीडेनी और डेन जातियों के पूर्वगामी थे।

वाइकिंग – स्कैंडिनेवियाई समुद्री डाकू और समुद्र यात्री, जो यूरोपीय देशों के तटवर्त्ती प्रदेशों पर लूटमार के लिए छापा मारा करते थे और ८वीं से ११वीं शताब्दी तक के काल में उत्तरी अटलांटिक महासागर पार कर अमरीका तक भी धावा मारते थे। – पृ० १६९

111 **कैरीबियन** – दक्षिणी अमरीका के उत्तरी भाग में – उत्तरी तथा मध्य ब्राज़िल, और वेनेजुएला, गाइना तथा कोलम्बिया के साथ लगे हुए इलाक़ों में – बसने वाले इंडियन क़बीलों का एक समूह। – पृ० १८०

112 मार्क्स का यह पत्र नष्ट हो गया है। एंगेल्स ने कार्ल काउत्स्की के नाम ११ अप्रैल, १८८४ के अपने पत्र में मार्क्स के इस पत्र का उल्लेख किया था। – पृ० १८२

113 यहां आर० वैगनर द्वारा रचित गीतिनाट्य 'निबेलुंगेनरिंग' के पाठ की ओर संकेत है। इस नाट्यमाला का विषय स्कैंडिनेवियाई महाकाव्य 'एड्डा' तथा जर्मन महाकाव्य 'निबेलुंगेनलीड' से लिया गया था। – पृ० १८२

114 **'एड्डा'** और **'ओगिस्द्रेका'** – स्कैंडिनेवियाई जनों की पुराणकथाओं और वीर-गाथाओं का एक संग्रह। – पृ० १८२

115 **"आसा"** और **"वाना"** – स्कैंडिनेवियाई पुराणकथाओं में देवताओं के दो समूह।

'इंगलिंग वीर-गाथा' – आइसलैंड के मध्ययुगीन कवि तथा वृत्तकार स्नोरी स्टुरलुसन की प्राचीन काल से लेकर १२वीं शताब्दी तक के नार्वेई राजाओं के बारे में लिखी पुस्तक की पहली गाथा। – पृ० १८२

116 यहां इशारा आस्ट्रेलिया के अधिकांश आदिवासी क़बीलों में पाये जानेवाले दो विशेष समूहों की ओर है, जिन में प्रत्येक के पुरुष एक निश्चित समूह की स्त्रियों के साथ विवाह कर सकते थे। हर क़बीले में ऐसे समूहों की संख्या चार से लेकर आठ तक होती थी। – पृ० १८७

117 **"शनि-महोत्सव"** – प्राचीन रोम में मध्य दिसंबर में लौनी के अवसर पर मनाया जानेवाला शनि-महोत्सव; महोत्सव में लोगों को यौन-संबंध तथा संभोग की पूर्ण स्वतंत्रता होती थी। अब यह शब्द स्वच्छंद रंगरेलियों और बदमस्तियों की व्यंजना के लिए प्रयुक्त होता है। – पृ० १९८

118 L. H. Morgan, *«Ancient Society»*, London, 1877 p.465—466. – पृ० २०६

[110] उपरोक्त पुस्तक, पृष्ठ ४७०। – पृ० २०७

[120] यहां इशारा म० म० कोवालेव्स्की की पुस्तक 'आदिम क़ानून, भाग १, गोत्र' (मास्को, १८८६) की ओर है। लेखक ने रूस में कुटुंब-समुदाय के बारे में ओर्शान्स्की द्वारा १८७५ में और येफ़िमेन्को द्वारा १८७८ में संग्रहीत तथ्य-सामग्री दी है। – पृ० २०८

[121] यारोस्लाव का **'प्राव्दा'** – प्राचीन रूस की विधि-संहिता, 'रूसी प्राव्दा' के पुराने पाठ में संहिता का पहला भाग। यह संहिता ११वीं और १२वीं शताब्दियों में उन परंपरागत नियमों के आधार पर तैयार की गयी थी जो अभी भी प्रचलित थे और जो तद्कालीन समाज के सामाजिक-आर्थिक संबंधों को प्रतिबिंबित करते थे।

डाल्मेशियन क़ानून – ये क़ानून पालिट्ज़ (डाल्मेशिया का एक भाग) में १५ वीं से १७ वीं शताब्दियों तक लागू रहे और पालिट्ज़-संविधि के नाम से जाने जाते थे। – पृ० २०९

[122] Calpullis – स्पेन द्वारा मैक्सिको-विजय के समय मैक्सिको के इंडियनों के कुटुंब-समुदाय, जिनके सदस्य एक ही पूर्वज के वंशज होते थे। हर समुदाय (calpulli) के पास अपनी सामूहिक ज़मीन होती थी, जो हस्तान्तरित या वारिसों के बीच बांटी न जा सकती थी। – पृ० २०९

[123] *«Das Ausland»* ('इतर देश') – एक जर्मन पत्रिका, जिसका विषय भूगोल, मानवजाति-वर्णना, और प्रकृतिविज्ञान था। वह १८२८ से १८९३ तक (१८७३ से स्टुटगार्ट से) प्रकाशित होती रही। – पृ० २०९

[124] यहां इशारा दीवानी क़ानून की धारा २३० की ओर है (देखिये टिप्पणी ४९)। – पृ० २१२

[125] **स्पार्टियेट**-प्राचीन स्पार्टा में नागरिकों का एक वर्ग जिसे पूरे नागरिक अधिकार प्राप्त थे।

हीलोट – प्राचीन स्पार्टा के अधिकारहीन निवासियों का एक वर्ग। ये लोग भूदास थे, जो भूमि के साथ संलग्न थे और स्पार्टा के ज़मींदारों को बेगार देने के लिए बाध्य थे। – पृ० २१४

[126] **एरिस्टोफ़ेनस** 'थेस्मोफ़ोरिया में स्त्रियां'। – पृ० २१४

[127] **हायरोड्यूलें** – प्राचीन यूनान तथा यूनानी उपनिवेशों की देवदासियां। अनेक स्थानों में, जैसे एशिया माइनर तथा कोरिन्थ में ये देवदासियां वेश्या-जीवन व्यतीत करती थीं। – पृ० २१७

[128] **टाइफ़ाली** – गोथों से मिलता-जुलता एक जर्मनीय क़बीला, जो तीसरी शताब्दी तक काला सागर के उत्तरी तट पर बस गया था और जिसे चौथी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हूणों ने वहां से निकाल दिया।

हेरुली – एक जर्मनीय क़बीला जो ईसवी सन् के पहले स्कैंडिनेवियाई प्रायद्वीप में बस गया था। तीसरी शताब्दी में इस क़बीले का एक भाग काला सागर के उत्तरी तट पर बस गया, परंतु बाद में उसे हूणों के आक्रमण के कारण वहां से भागना पड़ा। – पृ० २२१

[129] **'गुडरुन'** – १३वीं शताब्दी का जर्मन महाकाव्य। – पृ० २३१

[130] यहां इशारा १५१९ – १५२१ में स्पेनी उपनिवेशकों द्वारा मैक्सिको की विजय की ओर है। – पृ० २४७

[131] L.H. Morgan, «*Ancient Society*», London, 1877, p. 115. – पृ० २४८

[132] **"तटस्थ जातियां"** – एक सैनिक संश्रय, जिसे १७वीं शताब्दी में कुछ इंडियन क़बीलों ने स्थापित किया था। ये क़बीले इरोक्वा लोगों से मिलते-जुलते थे और इरी झील के उत्तरी तट पर रहते थे। फ़्रांसीसी उपनिवेशकों ने उनके लिए इस नाम का प्रयोग इसलिए किया कि ये लोग असली इरोक्वा क़बीले और हूरोन लोगों के बीच होने वाली लड़ाइयों में तटस्थ रहे। – पृ० २५५

[133] यहां इशारा १८७९–१८८७ के काल में ब्रिटिश उपनिवेशकों के ख़िलाफ़ ज़ुलू लोगों के राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष की ओर है।

सूडान की नुबियाई, अरब तथा अन्य जातियों ने १८८१ से १८८४ तक चलने वाले राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष में भाग लिया। मुसलमान उपदेशक और प्रचारक मुहम्मद अहमद के नेतृत्व में चलने वाले उनके विद्रोह की परिणति एक स्वतंत्र केंद्रीकृत राज्य की स्थापना में हुई। ब्रिटिश उपनिवेशकों ने १८९९ में ही कहीं जाकर सूडान पर क़ब्ज़ा किया। – पृ० २५५

134 यहां इशारा तथाकथित "मेटोइकाग्रों" या विदेशियों से है जो ऐतिका राज्य में स्थायी रूप से बस गये थे। वे ग़ुलाम तो न थे पर उन्हें एथेनी नागरिकों के पूर्ण अधिकार प्राप्त न थे। ये लोग मुख्यतः दस्तकारी का धंधा करते थे और उन्हें जिज़िया जैसा एक विशेष कर देना पड़ता था तथा विशेषाधिकारसंपन्न नागरिकों में किन्हीं को अपना "संरक्षक" मानना पड़ता था; इन "संरक्षकों" की मारफ़त ही वे सरकार से कोई दरख़ास्त कर सकते थे।–पृ० २८०

135 "**बारह पट्टिकाओं वाले क़ानून**" – रोमन विधि-संहिता, जो पेट्रीशियनों के ख़िलाफ़ प्लेबियनों के संघर्ष के फलस्वरूप पांचवीं शताब्दी ई० पू० के मध्य में सूत्रबद्ध की गयी थी। इस संहिता में हमें रोमन समाज का संपत्ति के अनुसार स्तरीकरण, दास-प्रथा के विकास तथा दासस्वामी-राज्य की स्थापना का एक प्रतिबिंब मिलता है। चूंकि यह संहिता बारह पट्टिकाओं पर खुदी हुई थी, इसलिए वह "बारह पट्टिकाओं वाले क़ानून" के नाम से जानी जाती है। –पृ० २८५

136 **प्युनिक युद्ध** – पश्चिमी भूमध्यसागर के क्षेत्र में प्रभुत्व तथा नये प्रदेशों और ग़ुलामों पर अधिकार के लिए दो सबसे बड़े दासस्वामी-राज्यों – रोम और कार्थेज के – बीच हुए युद्ध। दूसरे प्युनिक युद्ध (२१८–२०१ ई० पू०) की परिणति कार्थेज की घोर पराजय में हुई।–पृ० २८६

137 अंग्रेज़ों ने अंततः १२८३ में वेल्स को जीत लिया परंतु फिर भी उसने अपनी स्वायत्तता सुरक्षित रखी। वह १६वीं शताब्दी के मध्य में ही पूरी तरह इंगलैंड के अधीन हुआ।–पृ० २९७

138 १८६९–१८७० में एंगेल्स आयरलैंड के इतिहास के बारे में एक ग्रंथ की रचना कर रहे थे, परंतु वह उसे पूरा न कर सके। कैल्ट जाति के इतिहास के अध्ययन के सिलसिले में एंगेल्स ने वेल्स के प्राचीन क़ानूनों का विश्लेषण किया था।–पृ० २९८

139 एंगेल्स ने यह अंश «*Ancient Laws and Institutes of Wales*» शीर्षक पुस्तक से उद्धृत किया है। (खंड १, १८४१, पृ० ९३)।–पृ० २९९

140 एंगेल्स ने स्काटलैंड और आयरलैंड का दौरा सितम्बर १८९१ में किया था।—पृ० ३०१

141 १७४५–१७४६ में स्काटलैंड के पहाड़ी क़बीलों ने इंगलैंड और स्काटलैंड के सामंतों और पूंजीपतियों के ज़ोर-ज़ुल्म और बेदख़लियों से आजिज़ आ कर विद्रोह कर दिया। पहाड़ियों ने समाज की परंपरागत क़बायली व्यवस्था को क़ायम रखने के लिए संघर्ष किया। विद्रोह कुचल दिया गया और स्काटलैंड के पहाड़ी इलाक़ों की क़बायली व्यवस्था छिन्न-भिन्न कर दी गयी तथा भूमि के क़बायली स्वामित्व के अवशेष निश्चिह्न कर दिये गये। स्काटलैंड के किसान अधिकाधिक संख्या में अपनी ज़मीनों से बेदख़ल किये जाने लगे। क़बायली अदालती पंचायतें भंग कर दी गयीं और कई क़बायली रिवाजों पर रोक लगा दी गयी।—पृ० ३०१

142 L. H. Morgan, «*Ancient Society*», London, 1877, p. 357—358. —पृ० ३०२

143 **'एलामान्नी क़ानून'**—एलामान्नों के जर्मनीय क़बायली संघ के पंचायती क़ानून। ये क़बीले पांचवीं शताब्दी में आजकल के अल्सास, पूर्वी स्विट्ज़रलैंड और दक्षिण-पश्चिमी जर्मनी के इलाक़े में बस गये थे। एलामान्नी क़ानून की रचना छठी शताब्दी के अंत, सातवीं के आरंभ में तथा आठवीं शताब्दी में हुई थी। यहां एंगेल्स का इशारा 'एलामान्नी क़ानून' की ८१वीं (८४वीं) धारा की ओर है।—पृ० ३०३

144 **'हिल्डेब्रांड का गीत'**—एक वीरगाथा, जो आठवीं शताब्दी के प्राचीन जर्मनीय वीरकाव्य का एक नमूना है, जिसके कुछ छिटफुट अंश ही अवशिष्ट रह गये हैं।—पृ० ३०४

145 रोम के आधिपत्य के ख़िलाफ़ जर्मनीय और गालीय क़बीलों का विद्रोह ६९–७० ई० में (कुछ सूत्रों के अनुसार ६९–७१ ई० में) हुआ था। सिविलिस के नेतृत्व में यह विद्रोह रोमन साम्राज्य के गालीय और जर्मनीय क्षेत्रों के एक बड़े भाग में फैल गया और उसने यह ख़तरा पैदा कर दिया कि रोमन साम्राज्य इन इलाक़ों से हाथ धो बैठेगा। परंतु विद्रोहियों की हार हुई और उन्हें रोम के साथ समझौता करने पर विवश होना पड़ा।—पृ० ३०७

146 «Codex Laureshamensis» – लार्श मठ के अधिकार-पत्रों का एक संग्रह, जो १२ वीं शताब्दी में तैयार किया गया था। यह एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ है जिससे ८ वीं – ६ वीं शताब्दियों में किसानी और सामंती भूमि-संपत्ति व्यवस्था पर प्रकाश पड़ता है। – पृ० ३११

147 **आइबीरियन लोग** – प्राचीन काल में पिरेनियाई प्रायद्वीप के एक भाग, भूमध्य सागर के समीपस्थ द्वीपों और आधुनिक फ़्रांस के दक्षिण-पूर्वी भाग में बस जानेवाले क़बीलों का एक समूह।

लाइगुरियन लोग – प्राचीन काल में अपेन्निनियाई प्रायद्वीप के अधिकांश भाग में बसनेवाले क़बीलों का समूह। छठी शताब्दी ई० पू० में उन्हें प्रायद्वीप के उत्तर-पश्चिमी भाग में और गाल प्रदेश के तटवर्ती दक्षिण-पूर्वी भाग में खदेड़ दिया गया।

नौरिक लोग – ये प्राचीन रोमन साम्राज्य के नौरिक प्रांत (आज के स्टिरिया का और कारिन्थिया के एक भाग का क्षेत्र) के इलाक़े में बस गये थे। – पृ० ३१८

148 यहां इशारा **जर्मन राष्ट्र के पवित्र रोमन साम्राज्य** की ओर है। यह ६६२ ई० में स्थापित एक मध्ययुगीन साम्राज्य था, जिसमें जर्मनी का प्रदेश और इटली का भी एक भाग शामिल था। बाद में इसमें कुछ फ़्रांसीसी इलाक़े, बोहीमिया, आस्ट्रिया, नीदरलैंड, स्विट्ज़रलैंड तथा अन्य प्रदेश भी शामिल कर लिये गये। साम्राज्य केन्द्रीकृत राज्य न होकर सामंती रियासतों और स्वतंत्र नगरों का, जो सम्राट की सर्वोच्च सत्ता को मानते थे, एक शिथिल संघ था। १८०६ में, जब फ़्रांस के ख़िलाफ़ युद्ध में पराजय होने के बाद, हैब्सबर्ग राजवंश को पवित्र रोमन साम्राज्य के सम्राट के पद का परित्याग करना पड़ा, तो यह साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया। – पृ० ३२१

149 **"बेनीफ़िस"** – वे ज़मीनें जो किसी सेवा के पुरस्कार में दी जाती थीं। पुरस्कार की यह प्रथा फ़्रैंक राज्य में ८वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में आम तौर पर प्रचलित थी। किसी सेवा के लिए, विशेष रूप से सैनिक सेवा के लिए, ज़मीनें (जिनके साथ भूदास भी होते थे) बतौर बेनीफ़िस के ज़िंदगी भर के लिए बख़्श दी जाती थीं। बेनीफ़िस की इस प्रथा ने सामंती वर्ग के, मुख्यतः छोटे और बिचले दर्जे के सामंतों के आविर्भाव को, किसानों के भूदासों में

रूपांतरण को और आश्रय-उपाश्रय के संबंधों तथा सामंती पदसोपान के विकास को बल दिया। बाद में ये बेनीफ़िसें पुश्तैनी जागीरें बना दी गयीं।—पृ० ३२४

[150] **ज़िलों के काउंट** (Gaugrafen)—फ़्रैंक राज्य में काउंटियों—ज़िलों—के प्रशासन के लिए नियुक्त शाही अफ़सर, जिन्हें मुक़दमे का फ़ैसला करने का अधिकार दिया गया था। ये लोग टैक्स वसूल करते थे और सैनिक अभियानों में सैनिक टुकड़ियों की कमान भी इनके हाथ में रहती थी। उन्हें अपनी सेवाओं के लिए ज़िले में वसूल हुई शाही आमदनी का एक-तिहाई भाग दिया जाता था और इनाम में जागीरें भी बख़्शी जाती थीं। विशेष रूप से ८७७ के बाद, जब इस पद को उत्तराधिकार द्वारा हस्तांतरणीय बना दिया गया, ये काउंट धीरे-धीरे शक्तिशाली मौरूसी ज़मींदार बनते गये।—पृ० ३२५

[151] Angariae—रोमन साम्राज्य के निवासियों द्वारा की जानेवाली अनिवार्य सेवायें। उन्हें राजकीय कार्यों के लिए घोड़ा, गाड़ी आदि की सप्लाई करनी पड़ती थी। कालांतर में ये सेवायें वृहत्तर पैमाने पर इस्तेमाल की जाने लगीं और जनता के लिए बोझ बन गयीं।—पृ० ३२६

[152] **सरपरस्ती** (commendation)—किसान या छोटे ज़मींदार का अपने को रक्षार्थ किसी प्रभुताशाली ज़मींदार के हाथों में सौंपना। सरपरस्ती निश्चित नियमों के अनुसार की जाती थी (जैसे सैनिक सेवा अर्पित करके, ठेके की जोत के बदले अपनी ज़मीन को हस्तांतरित करके)। किसानों के लिए, जो अक्सर ज़ोर-ज़बरदस्ती के ज़रिए ऐसा करने के लिए मजबूर किये जाते थे, इसका अर्थ था अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता को खो बैठना; छोटे ज़मींदारों के लिए इसका अर्थ था बलशाली सामंती प्रभुओं का आश्रित हो जाना। सरपरस्ती की प्रथा, जो यूरोप में ८वीं और ९वीं शताब्दियों से खूब प्रचलित हुई, सामंती संबंधों के सुदृढ़ीकरण में सहायक सिद्ध हुई।—पृ० ३२७

[153] **हेस्टिंग्स**—वह स्थान जहां, १४ अक्तूबर १०६६ को नार्मंडी के ड्यूक विलियम ने आंग्ल-सैक्सन राजा हैरोल्ड को हराया था। आंग्ल-सैक्सन सैनिक संगठन में प्राचीन गोत्र-व्यवस्था के अवशेष मौजूद थे और उसके शस्त्रास्त्र भी पुराने-धराने ही थे। इस विजय के फलस्वरूप विलियम इंगलैंड का राजा बन गया और विलियम प्रथम विजेता कहलाया।—पृ० ३३६

[154] **डिथमार्शेन** – आजकल के श्लेज़विग-होल्स्टिन प्रदेश का दक्षिणी-पश्चिमी भाग, जहां प्राचीन काल में सैक्सन लोग रहा करते थे। आठवीं शताब्दी में उस पर कार्ल महान् ने क़ब्ज़ा कर लिया। बाद में वह विभिन्न धर्माधिकारियों और धर्मेतर सामंतों के हाथों में रहा। १२वीं शताब्दी के मध्य में डिथमार्शेन की जनता, जिसमें अधिकांश भूमिधर किसान थे, स्वतंत्रता प्राप्त करने लगी। १३वीं और १६वीं शताब्दियों के मध्य काल में वह वस्तुतः स्वतंत्रता का उपभोग करती थी। इस काल में डिथमार्शेन का समाज स्वशासी किसान समुदायों का, जो पुराने किसान-कुटुंबों पर आधारित थे, एक पुंज था। १४वीं शताब्दी तक सर्वोच्च सत्ता सभी स्वतंत्र भूमिधरों की एक सभा के हाथ में थी, बाद में वह तीन निर्वाचित मंडलों के हाथ में अंतरित हो गयी। १५५९ में डेन राजा फ़ेडरिक द्वितीय तथा होल्स्टिन के ड्यूक जोहान और अदोल्फ़ की सेनाओं ने डिथमार्शेन की जनता के प्रतिरोध को चूर कर दिया और यह प्रदेश विजेताओं के बीच बांट दिया गया। फिर भी यहां पंचायती राज और आंशिक स्वशासन १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक चलता रहा। – पृ० ३४५

[155]देखिये, हेगेल, «*Grundlinien der Philosophie des Rechts*» ('न्याय-दर्शन'), अनुच्छेद २५७ तथा ३६०। – पृ० ३४५

नाम-निर्देशिका

(जन्म १८२०) – जर्मन वाणिज्य-लिपिक, कम्युनिस्ट लीग के सदस्य, कोलोन के कम्युनिस्ट मुक़दमे (१८५२) में फंसाये जाने वाले लोगों में एक। – १४१।

एवरबेक, अगस्त हर्मन (Everbeck, August Hermann) (१८१६–१८६०) – जर्मन चिकित्सक तथा लेखक, न्याय-संघ की पेरिस की शाखाओं के नेता; बाद में कम्युनिस्ट लीग के सदस्य, जिसे उन्होंने १८५० में छोड़ दिया। – १२८, १४०।

एशनबाख़ (Eschenbach) – देखिये **वोल्फ़ाम फ़ॉन एशनबाख़** (Wolfram von Eschenbach)।

एस्पिनास, अल्फ़ेड विक्तोर (Espinas, Alfred Victor) (१८४४–१६२२) – फ़्रांस के पूंजीवादी दार्शनिक तथा समाजशास्त्री, विकासवाद के समर्थक। – १७७, १७८।

ओ

ओटो, कार्ल वुनीबाल्ड (Otto, Karl Wunibald) (जन्म लगभग १८०६) – जर्मन रसायन विज्ञानी, कोलोन के लेबर लीग के सदस्य (१८४८–१८४६) तथा कम्युनिस्ट लीग के सदस्य; कोलोन के कम्युनिस्ट मुक़दमे (१८५२) में फंसाये गये लोगों में एक। – १४०

ओडोआसर (Odoacer) (लगभग ४३४–४६३) – जर्मन दस्तों के एक नेता; ४७६ ई० में रोमन सम्राट का तख़्ता उलट कर इटली के पहले "बर्बर" राज्य के राजा बन गये। – ३१४।

ओवेन, रॉबर्ट (Owen, Robert) (१७७१–१८५८) – ब्रिटेन के विख्यात कल्पनावादी समाजवादी। – ४३, ६७, ६६, ७५, ७६, ७७, ७८, ७६।

औ

औगस्तस (Augustus) (६३ ई० पू० – १४ ई०) – रोम के सम्राट (२७ ई० पू० – १४ ई०)। – २८५, २८७, ३१७।

क

कांट, इमैनुएल (Kant, Immanuel) (१७२४ – १८०४) – क्लासिकीय जर्मन दर्शन के पिता, भाववादी। – ४५, ७४, ८५।

काबडेन, रिचर्ड (Cobden, Richard) (१८०४–१८६५) – अंग्रेज़ पूंजीवादी राजनीतिज्ञ तथा उद्योगपति, मुक्त व्यापार के समर्थकों के नेता; अन्न-क़ानून विरोधी संघ

यियों के बीच धार्मिक शब्दावली की आड़ में "सच्चे समाजवाद" का प्रचार किया। – १२६।

कूनोव, हेनरिक विल्हेल्म कार्ल (Cunow, Heinrich Wilhelm Karl) (१८६२–१९३६) – जर्मन समाज-वादी-जनवादी, इतिहासकार, समाज-शास्त्री तथा मानवजाति-विज्ञानी; १९ वीं शताब्दी के नवें दशक में मार्क्सवादी, बाद में संशोधनवादी। – २०६।

कै, जॉन विलियम (Kaye, John William) (१८१४–१८७६) – अंग्रेज़ औपनिवेशिक अधिकारी, भारतीय इतिहास तथा भारतीय जातियों के विषय में अनेक ग्रंथों के तथा अफ़गानिस्तान और भारत में ब्रिटिश औपनिवेशिक युद्धों के इतिहास के भी रचयिता। – १८७।

कोलम्बस, क्रिस्टोफ़र (Columbus, Christopher) (१४५१–१५०६) – महान् नाविक जिन्होंने अमरीका की खोज की। – २०।

कोवालेव्स्की, मक्सिम मक्सिमोविच (Kovalevsky, Maxim Maximovich) (१८५१–१९१६) – रूसी समाज-शास्त्री, इतिहासकार तथा राजनीतिज्ञ, पूंजीवादी उदारतावादी, आदिम सामुदायिक व्यवस्था के इतिहास के बारे में कई पुस्तकों के रचयिता। – ३८,३९, २०३, २०७, २०९, २१०, २९७, ३०३, ३०९, ३१०।

कोशुथ, लायोश (लुडविग) (Kossuth Lajos [Ludwig]) (१८०२–१८९४) – हंगेरियन राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के नेता, १८४८–१८४९ की क्रांति में पूंजीवादी-जनवादी शक्तियों का नेतृत्व ग्रहण किया, हंगरी की क्रांतिकारी सरकार के अध्यक्ष बने; क्रांति की पराजय के बाद विदेश में उत्प्रवासी। – १३९।

क्रीगे, हर्मन (Kriege, Hermann) (१८२०–१८५०) – जर्मन पत्रकार, "सच्चे समाजवाद" के प्रतिनिधि, पांचवें दशक में न्यूयार्क में "सच्चे समाजवादियों" के एक दल का नेतृत्व किया। – १२८, १२९।

क्लाइस्थीनीज़ (Cleisthenes) – एथेन्स के राजनीतिज्ञ; ५१०–५०७ ई० पू० में उन सुधारों को संपन्न किया, जिनका उद्देश्य क़बायली व्यवस्था के अवशेषों को मिटाना तथा दास-स्वामित्व के आधार पर जनवाद की स्थापना करना था। – २८०।

क्लैन, जोहान जैकब (Klein, Johann Jakob) (जन्म १८१८ ई०) – कोलोन

ग

त

थ

न

प

फ़्लोकोन, फ़र्दीनांद (Flocon, Ferdinand) (१८००–१८६६) – फ़्रांसीसी राजनीतिज्ञ तथा पत्रकार, निम्न-पूंजीवादी-जनवादी, *«Réforme»* ('सुधार') पत्र के संपादक, अस्थायी सरकार के सदस्य (१८४८)। – २५, १३४।

ब

बकलैंड, विलियम (Buckland, William) (१७८४–१८५६) – अंग्रेज़ भूविज्ञानी और पादरी, जिन्होंने अपनी कृतियों में भूवैज्ञानिक तथ्यों और इंजील की कल्पनाओं के बीच संगति बैठाने की कोशिश की। – ४३।

बर्गर्स, हेनरिक (Bürgers, Heinrich) (१८२०–१८७८) – जर्मन उग्रवादी पत्रकार; १८४२–१८४३ में *«Rheinische Zeitung»* ('राइनी समाचारपत्र') के लिए लिखा, *«Neue Rheinische Zeitung»* ('नया राइनी समाचारपत्र') का संपादन किया; १८५० से कम्युनिस्ट लीग की केंद्रीय समिति के सदस्य, १८५२ में कोलोन के कम्युनिस्ट मुक़दमे में अभियुक्त; बाद में प्रगतिवादी। – १४०।

बर्न्सटीन, अर्नोल्ड बर्नहार्द कार्ल (Börnstein, Arnold Bernhard Karl) (१८०८–१८४९) – जर्मन निम्न-पूंजीवादी-जनवादी, पेरिस में जर्मन उत्प्रवासियों के वालंटियर कोर के एक नेता, जिस ने अप्रैल १८४८ में बेडेन के विद्रोह में भाग लिया। – १३४।

बाख़ोफ़ेन, जोहान जैकब (Bachofen, Johann Jacob) (१८१५–१८८७) – स्विट्ज़रलैंड के मशहूर इतिहासकार और वकील, 'मातृ-सत्ता' पुस्तक के रचयिता। – १४६, १४८, १४९, १५०, १५१, १५४, १५७, १६०, १७५, १८६, १८७, १९६, १९८, २०१, २०५, २३६।

बाब्योफ़, ग्राक्ख (फ़्रांसुआ नायल) (Babeuf, Gracchus [François Noël]) (१७६०–१७९७) – फ़्रांस के क्रांतिकारी कल्पनावादी कम्युनिस्ट, "बराबरों" की साज़िश के एक संगठनकर्त्ता। – ६६।

बार्बी, आर्मांद (Barbès, Armand) (१८०९–१८७०) – फ़्रांस के निम्न-पूंजीवादी क्रांतिकारी जनवादी, जिन्होंने १८४८ की क्रांति में सक्रिय भाग लिया। १५ मई १८४८ की घटनाओं में भाग लेने के लिए उन्हें आजीवन कारावास का दंड दिया और फिर १८५४ में माफ़ी दी गयी। – १२०।

बावेर, ब्रूनो (Bauer, Bruno) (१८०९–१८८२)–जर्मनी के भाववादी दार्शनिक, विख्यात "तरुण हेगेलपंथी"; पूंजीवादी उग्रवादी; १८६६ के बाद राष्ट्रीय उदारतावादी।–२४।

बावेर, हेनरिक (Bauer, Heinrich) –जर्मन मज़दूर आंदोलन के मशहूर नेता; न्याय-संघ के नेता, कम्युनिस्ट लीग की केन्द्रीय समिति के सदस्य। १८५१ में आस्ट्रेलिया में उत्प्रवासी हुए।–१२१, १३३, १३७, १४०।

बिस्मार्क, ओटो, प्रिंस (Bismark, Otto, Prince) (१८१५–१८९८)–प्रशियाई कूटनीतिज्ञ तथा राजनीतिज्ञ, प्रशा के युंकरों के हितों के पक्षधर, प्रशा के मिनिस्टर-प्रेज़िडेंट (१८६२–१८७१), जर्मन साम्राज्य के राइख़-चैंसलर (१८७१–१८९०)।–१०५, १४१, २१३, ३४८, ३४९।

बुख़नर गेओर्ग (Büchner, Georg) (१८१३–१८३७)–जर्मन लेखक, क्रांतिकारी जनवादी, १८३४ में हेसन में मानव-अधिकार समाज नामक गुप्त संस्था के एक संगठनकर्त्ता तथा 'हेसन के किसानों के नाम अपील' के रचयिता, इस अपील का मूलमंत्र था: "झुग्गी-झोंपड़ियों के लिए शांति, महलों के ख़िलाफ़ लड़ाई!"–१२१।

बुग्गे, सोफ़स (Bugge, Sophus) (१८३३–१९०७)–नार्वे के भाषाविज्ञानी, प्राचीन स्कैंडिनेवियाई साहित्य तथा पुराण संबंधी कृतियों के रचयिता।–३०६।

बेकन दे वेरुलम, फ्रेंसिस (Bacon de Verulam, Francis) (१५६१–१६२६)–महान अंग्रेज़ दार्शनिक, अंग्रेज़ी भौतिकवाद के जन्मदाता।–४०, ४१, ४२, ८२।

बेकर, अगस्त (Becker, August) (१८१४–१८७१)–जर्मन लेखक और पत्रकार, वाइटलिंग के समर्थक; स्विट्ज़रलैंड में न्याय-संघ के सदस्य; जर्मनी में १८४८–१८४९ की क्रांति में भाग लिया; १९ वीं शताब्दी के छठे दशक के आरंभ में अमरीका में उत्प्रवासी हुए और वहां जनवादी समाचारपत्रों के लिए लेख लिखे। १२३।

बेकर, विल्हेल्म अदोल्फ़ (Becker, Wilhelm Adolf) (१७९६–१८४६)–जर्मन इतिहासकार, प्राचीन इतिहास संबंधी ग्रंथों के रचयिता।–२६०।

बेकर, हर्मन हेनरिक (Becker Hermann Heinrich) (१८२०–१८८५)–जर्मन वकील और पत्रकार, १८५०

से कम्युनिस्ट लीग के सदस्य; १८५२ में कोलोन के कम्युनिस्ट मुक़दमे में अभियुक्त, बाद में राष्ट्रीय-उदारतावादी। – १४०, २६०।

बेडे, श्रद्धेय (Bede, the Venerable) (लगभग ६७३–७३५) – अंग्रेज़ भिक्षु पादरी, विद्वान तथा इतिहासकार। – ३०२।

बेहमे, जैकब (Böhme, Jacob) (१५७५–१६२४) – जर्मन हस्तशिल्पी; रहस्यवादी दार्शनिक। – ४०।

बैंक्रोफ़्ट, ह्यूबर्ट होवे (Bancroft, Hubert Howe) (१८३२–१९१८) – अमरीका के पूंजीवादी इतिहासकार, इतिहास तथा मानवजाति वर्णना संबंधी अनेक ग्रंथों के प्रणेता। – १८०, १९७, २००, ३३१।

बैंग, अन्तोन क्रिस्टियन (Bang, Anton Christian) (१८४०–१९१३) – नार्वे के एक धर्मशास्त्री, स्कैंडिनेवियाई पुराण के बारे में तथा नार्वे में ईसाई धर्म के इतिहास के बारे में अनेक ग्रंथों के रचयिता। – ३०६।

बैक, अलेक्ज़ेंडर (Beck, Alexander) – एक दर्ज़ी, न्याय-संघ के सदस्य, जिन्हें इस सिलसिले में १८४६ में गिरफ़्तार कर लिया गया, कोलोन के कम्युनिस्ट मुक़दमे में (१८५२) बहैसियत गवाह के मौजूद थे। – १२३।

बोनापार्त – देखिये **नेपोलियन तृतीय**।

बोनापार्त, नेपोलियन जोज़ेफ़ शार्ल पोल (Bonaparte, Napoléon Joseph Charles Paul) (१८८२–१८९१) – जेरोम बोनापार्त के पुत्र, लूई बोनापार्त के चचेरे भाई; दूसरे जनतंत्र के काल में संविधान सभा तथा विधान सभा के सदस्य। – २८।

बोन्ये, शार्ल (Bonnier, Charles) (जन्म १८६३) – फ़्रांसीसी समाजवादी, पत्रकार। – १८२।

बोर्न, स्टीफ़न (असली नाम – बटरमिल्क) (Born, Stephan [Buttermilch]) (१८२४–१८९८) – जर्मन मज़दूर, कम्युनिस्ट लीग के सदस्य; जर्मनी में १८४८–१८४९ की क्रांति के दौरान, जर्मन मज़दूर आंदोलन में सुधारवाद के सबसे पहले प्रतिनिधियों में एक। – १३५, १३६।

बोर्नस्टेड, एडेलबर्ट (Bornsted, Adalbert) (१८०८–१८५१) – जर्मनी के निम्न-पूंजीवादी-जनवादी, १८४७–१८४८ में «*Deutsche-Brüsseler Zeitung*» नामक पत्र का संस्थापन तथा संपादन किया; मार्च १८४८ तक

कम्युनिस्ट लीग के सदस्य, इसके बाद लीग से निष्कासित; पेरिस में जर्मन उत्प्रवासियों के वालंटियर कोर के एक संगठनकर्त्ता। अप्रैल १८४८ में इस कोर ने बेडेन के विद्रोह में भाग लिया। – १३४।

बोलिंगब्रोक, हेनरी (Bolingbroke, Henry) (१६७८–१७५१) – अंग्रेज़ निर्गुणपंथी दार्शनिक तथा राजनीतिज्ञ; टोरी पार्टी के नेता। – ५२।

ब्राइट, जॉन (Bright, John) (१८११–१८८९) – अंग्रेज़ उद्योगपति, मुक्त व्यापार के समर्थक, अन्न-क़ानून विरोधी लीग के एक संस्थापक; १९ वीं शताब्दी के सातवें दशक के अंत से लिबरल पार्टी के एक नेता, अनेक लिबरल मंत्रिमंडलों में मंत्री। – ५९।

ब्रेंतानो, लूइयो (Brentano, Lujo) (१८४४–१९३१) – जर्मनी के कुत्सित पूंजीवादी अर्थशास्त्र के एक प्रतिनिधि, काथेडर-समाजवाद के एक प्रमुख प्रतिनिधि। – ६२।

ब्लां, लूई (Blanc, Louis) (१८११–१८८२) – फ़्रांस के निम्न-पूंजीवादी-समाजवादी, इतिहासकार; १८४८ में अस्थायी सरकार के सदस्य तथा लुक्ज़ेमबर्ग आयोग के अध्यक्ष; अगस्त १८४८ से लंदन में निम्न-पूंजीवादी उत्प्रवासियों के एक नेता। – १३५, १३६।

ब्लांकी, लूई ओग्यूस्त (Blanqui, Louis Auguste) (१८०५–१८८१) – फ़्रांसीसी क्रान्तिकारी, कल्पनावादी कम्युनिस्ट; १८४८ की क्रान्ति में फ़्रांस के जनवादी तथा सर्वहारा आंदोलन के उग्र वामपक्ष का समर्थन किया; कई बार गिरफ़्तार किये गये। – १२०।

ब्लाइख़रोडर, गेर्सन (Bleichröder, Gerson) (१८२२–१८९३) – जर्मन थैलीशाह, बिस्मार्क के निजी बैंकर, वित्तीय मामलों में उनके ग़ैरसरकारी सलाहकार और कई दुरभिसंधियों में उनके वकील। – ३४९।

म

माज्जिनी, जुज़ेप्पे (Mazzini, Giuseppe) (१८०५–१८७२) – इटली के क्रान्तिकारी, पूंजीवादी-जनवादी, इटली के राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के नेता; रोमन जनतन्त्र की अस्थायी सरकार के अध्यक्ष (१८४९); १८५० में लंदन में यूरोपीय जनवाद की केन्द्रीय समिति के संगठनकर्त्ता; जब पहला इंटरनेशनल स्थापित किया जा रहा था, उन्होंने उसको अपने

मुक़दमे (१८५२) में फंसाये गये लोगों में एक। – १४०।

रोज़र, पीटर गेर्हार्ड (Röser, Peter Gerhardt) (१८१४–१८६५)–जर्मनी के मज़दूर आंदोलन में सक्रिय रहे, कोलोन लेबर लीग के उपाध्यक्ष (१८४८–१८४९); कम्युनिस्ट लीग के सदस्य, कोलोन के कम्युनिस्ट मुक़दमे (१८५२) में फंसाये गये लोगों में एक; बाद में लासाल-पंथियों से मिल गये। – १४०।

ल

लफ़ार्ग, पोल (Lafargue, Paul) (१८४२ – १९११) – अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर आंदोलन के जाने-माने नेता, मार्क्सवाद के प्रचारक, इंटरनेशनल की जनरल कौंसिल के सदस्य, स्पेन के लिए संवादी मंत्री (१८६६ – १८६९), इंटरनेशनल की शाखाओं को फ़्रांस (१८६९–१८७०), स्पेन और पुर्तगाल (१८७१– १८७२) में संगठित करने में भाग लिया, हेग कांग्रेस (१८७२) में प्रतिनिधि, फ़्रांस में मज़दूर पार्टी के एक संस्थापक; मार्क्स तथा एंगेल्स के शिष्य तथा सहकर्मी। – ३८।

लांगस (Longus) (जीवनकाल : दूसरी शताब्दी का अंत – तीसरी का आरंभ) – प्राचीन यूनान के लेखक। – २२९।

लांगे, क्रिस्टियन कोनराद लुडविग (Lange, Christian Konrad Ludwig) (१८२५–१८८५) – जर्मन भाषा-विज्ञानी, प्राचीन रोम के इतिहास के बारे में अनेक ग्रंथों के रचयिता। – २९१।

लाक, जॉन (Locke, John) (१६३२–१७०४) – इंगलैंड के महान द्वैतवादी दार्शनिक, संवेदनावादी। – ४२, ८२।

लाप्लास, पियेर साइमन (Laplace, Pierre Simon) (१७४९–१८२७) – महान फ़्रांसीसी ज्योतिर्विज्ञानी, गणितज्ञ तथा भौतिकविज्ञानी; कांट से स्वतन्त्र रूप में वाष्प-नीहारिका से सौर-मण्डल की उत्पत्ति के प्रमेय को विकसित तथा गणितीय रूप से पुष्ट किया। – ४४, ८५।

लामार्तीन, अल्फ़ोंस (Lamartine, Alphonse) (१७९० – १८६९) – फ़्रांसीसी कवि, इतिहासकार तथा राजनीतिज्ञ; १८४८ में विदेश-मन्त्री और वस्तुतः अस्थायी सरकार के अध्यक्ष। – २६, १३४।

लासाल, फ़र्दीनांद (Lassalle, Ferdinand) (१८२५–१८६४) – जर्मन निम्न-पूंजीवादी पत्रकार तथा वकील;

लंदन में भारतीय संग्रहालय के निर्देशक (१८५८–१८७६), भारत के बारे में अनेक पुस्तकों के रचयिता। – १८७।

वारस (पुब्लियस क्विंटीलियस) (Varus, Publius Quintilius) (लगभग ५३ ई० पू० – ९ ई०) – रोम के सार्वजनिक नेता तथा सैनिक, जर्मनी के गवर्नर (७–६ ई०); ट्यूटोवर्गर वाल्ड में विद्रोही जर्मन क़बीलों के साथ लड़ाई में मारे गये। – २८५।

विक्टोरिया (Victoria) (१८१६–१६०१) – ब्रिटेन की महारानी (१८३०–१६०१)। – ७७।

विलिख़, अगस्त (Willich, August) (१८१०–१८७८) – प्रशा के एक अधिकारी, कम्युनिस्ट लीग के सदस्य, १८४६ में बेडेन-फाल्ज़ विद्रोह में भाग लिया; १८५० में जो संकीर्णतावादी जोखोंबाज़ दल कम्युनिस्ट लीग से अलग हुआ था, उसके एक नेता; १८५८ में अमरीका में बस गये, अमरीकी गृह-युद्ध में उत्तर की ओर से भाग लिया। – १३७, १३६, १४०, १४१।

वेट्ज़, गेओर्ग (Waitz, Georg) (१८१३–१८८६) – जर्मनी के पूंजीवादी इतिहासकार, जर्मनी के मध्ययुगीन इतिहास के बारे में कई पुस्तकों के रचयिता। – ३१०।

वेनेदे, जैकब (Veneday, Jacob) (१८०५–१८७१) – जर्मनी के उग्र-वादी पत्रकार, १८४८–१८४६ में फ़्रैंकफ़ुर्ट की राष्ट्रीय सभा के सदस्य, वामपंथी, वाद में उदार-तावादी। – १२०।

वेर्मुथ (Wermuth) – हैनोवर के पुलिस डायरेक्टर, कोलोन के कम्युनिस्ट मुक़दमे (१८५२) में गवाह; श्तीबर के साथ 'उन्नीसवीं शताब्दी के कम्युनिस्ट षड्यंत्र' के लेखक। – ११६, १३१।

वेलेडा (Veleda) (ईसवी सन् की पहली शताब्दी) – ब्रक्टेरिया नामक जर्मन क़बीले की पुजारिन तथा ईशदूतिका; रोम के आधिपत्य के ख़िलाफ़ विद्रोह में सक्रिय भाग लिया (६६–७० या ६६–७१ ई०)। – ३०७।

वेस्टरमार्क, एडवर्ड अलेक्ज़ेंडर (Westermarck, Edward Alexander (१८६२ – १६३६) – फ़िनलैंड के पूंजीवादी मानवजाति-विज्ञानी तथा समाजशास्त्री। – १७६, १७८, १८१, १८८।

वेस्तफ़ालेन, फ़र्दीनांद, फ़ॉन (Westphalen, Ferdinand, von) (१७६६–१८७६) –प्रशा के प्रतिक्रियावादी राजनीतिज्ञ, गृहमंत्री (१८५०–१८५८), जेनी मार्क्स के सौतेले भाई। – २४।

वैगनर, रिहर्ड (Wagner, Richard) (१८१३ – १८८३) – महान् जर्मन संगीतकार। – १८२, १८३।

वोल्फ़, विल्हेल्म (Wolff, Wilhelm) (१८०६–१८६४) – जर्मनी के सर्वहारा क्रांतिकारी, कम्युनिस्ट लीग की केन्द्रीय समिति के सदस्य, १८४८–१८४६ में «*Neue Rheinische Zeitung*» ('नया राइनी समाचार-पत्र') के एक संपादक, फ़्रैंकफ़ुर्ट की राष्ट्रीय सभा के सदस्य, बाद में इंगलैंड चले गये और वहीं रहने लगे; मार्क्स और एंगेल्स के सहयोगी। – १३१, १३३, १३५।

वोल्फ़ाम फ़ॉन एशनबाख़ (Wolfram von Eschenbach) (अनुमानतः ११७०–१२२०) – मध्ययुग के जर्मन कवि।–२२२।

श

शापर, कार्ल (Schapper, Karl) (१८१२ – १८७०) – जर्मन तथा अंतर्राष्ट्रीय मज़दूर आंदोलन के विख्यात कार्यकर्त्ता, न्याय-संघ के नेता, कम्युनिस्ट लीग की केन्द्रीय समिति के सदस्य, जर्मनी में १८४८ – १८४६ की क्रांति में भाग लिया; १८५० में कम्युनिस्ट लीग में फूट पड़ने के दौरान संकीर्णतावादी जोखोंबाज़ दल के एक नेता; १८५६ में पुनः मार्क्स के सहयोगी; पहले इंटरनेशनल की जनरल कौंसिल के सदस्य। – १२१, १२८, १३३, १३६, १३६, १४१।

शुर्ज़, कार्ल (Schurz, Karl) (१८२६–१६०६) – जर्मन निम्न-पूंजीवादी जनवादी, १८४६ के वेडेन-फाल्ज़ विद्रोह में भाग लिया, स्विट्ज़रलैंड में उत्प्रवासी; बाद में संयुक्त राज्य अमरीका के राजनीतिज्ञ। – १३८।

शेमान, गेओर्ग फ़्रेडरिक (Schömann, Georg Friedrich) (१७६३–१८७६) – जर्मन भाषाशास्त्री तथा इतिहासकार, प्राचीन यूनान के इतिहास के वारे में कई कृतियों के रचयिता। – २१३, २६५।

शैफ़्ट्सबरी, एन्टनी, काउंट (Shaftesbury, Anthony, Count) (१६७१–१७१३) – अंग्रेज़ दार्शनिक, नीतिशास्त्री, निर्गुणवाद के प्रमुख निरूपक तथा व्याख्याकार; व्हिग दल के राजनीतिज्ञ। – ५२।

साहित्यिक और पौराणिक पात्रों की सूची

में परम साहसी वीर; होमर के महाकाव्य "इलियाड" का नायक; एकिलीज़ की दाहिनी एड़ी – उसके शरीर के एकमात्र भेद्य अंग – में तीर लगने से उसे सांघातिक चोट पहुंची। – २१२, २६७।

एगामेम्नोन (Agamemnon) (यूनानी पुराण) – एर्गोलिस का राजा, होमर के महाकाव्य 'इलियाड' का नायक, त्रोय युद्ध के समय यूनानियों का नेता, ईस्खिलस के नाटक 'एगामेम्नोन' का नायक। – १४९, २१२, २६३, २६६, २६७।

एगीस्थस (Aegisthus) (यूनानी पुराण) – क्लितेम्नेस्त्रा का प्रेमी, एगामेम्नोन की हत्या में शरीक; ईस्खिलस के दुःखांत नाटक, 'एगामेम्नोन' तथा 'कोएफ़ोरो' ('ओरेस्तिया' नामक नाटकत्रयी का पहला तथा दूसरा भाग) का नायक। – १४९।

एटज़ेल (Etzel) – प्राचीन जर्मन जातीय वीर-काव्य तथा मध्ययुगीन जर्मन काव्य «*Nibelungenlied*» का नायक; हूणों का राजा। – २३१।

एथेना पोलास (Athene Pollas) (यूनानी पुराण) – एक प्रधान देवी, युद्ध की देवी, बुद्धि और प्रज्ञा की साक्षात् मूर्ति, एथेन्स राज्य की संरक्षिका-देवी। – १४९, १५०।

एपोलो (Apollo) (यूनानी पुराण) – प्रकाश तथा सूर्य देवता, कला-रक्षक। – १४९, १५०।

एफ़्रोडाइट (Aphrodite) (यूनानी पुराण) – प्रेम तथा सौंदर्य की देवी। – २१७।

एरिनी (Erinys) (यूनानी पुराण) – प्रतिशोध की देवी; ईस्खिलस के नाटक 'कोएफ़ोरो' तथा 'यूमेनिडेस' (नाटकत्रयी 'ओरेस्तिया' का दूसरा तथा तीसरा भाग) की नायिका। – १४९, १५०।

ओ

ओडीसियस (Odysseus) – होमर के महाकाव्य 'इलियाड' और 'ओडीसी' का एक नायक, इथाका का पुराण-चर्चित राजा, जो त्रोय-युद्ध में यूनानी सेना का एक नेता था और अपनी वीरता, कौशल तथा वक्तृता-शक्ति के लिए विख्यात था। – २६७।

ओरेस्तस (Orestes) (यूनानी पुराण) – एगामेम्नोन तथा क्लितेम्नेस्त्रा का पुत्र, जिसने अपनी मां और एगीस्थस से अपने पिता की हत्या का बदला लिया। ईस्खिलस के नाटक, 'कोएफ़ोरो' और

'यूमेनिडेस' (नाटकत्रयी 'ओरेस्तिया' का दूसरा तथा तीसरा भाग) का नायक। – १४६, १५०।

क

कसांड्रा (Cassandra) (यूनानी पुराण) – त्रोय के राजा प्रियम की कन्या, ईशदूतिका, जिसे त्रोय के ऊपर विजय के बाद एगामेम्नोन दासी के रूप में अपने साथ लेता गया; ईस्खिलस के नाटक 'एगामेम्नोन' की एक नायिका। – २१२।

क्राइमहिल्ड (Kriemhild) – प्राचीन जर्मन जातीय वीर-काव्य तथा मध्ययुगीन जर्मन काव्य «*Nibelungenlied*» की नायिका, बर्गंडी के राजा गुंथर की बहन; सिगफ़्राइड की मंगेतर और बाद में पत्नी; सिगफ़्राइड की मृत्यु के पश्चात् हूण राजा एटज़ेल की पत्नी। – २३१।

क्लितेम्नेस्त्रा (Clytaemnestra) (यूनानी पुराण) – एगामेम्नोन की पत्नी, जिसने त्रोय-युद्ध से अपने पति के लौट आने पर उसको मार डाला; ईस्खिलस के नाटक, 'ओरेस्तिया' की नायिका। – १४६।

क्लियोपैट्रा (Cleopatra) (यूनानी पुराण) – उत्तरी पवन-देव, बोरियस, की पुत्री। – ३०५।

क्लोए (Chloë) – प्राचीन यूनान (दूसरी तीसरी शताब्दी) में लांगस के उपन्यास 'डाफ़निस और क्लोए' नामक उपन्यास की नायिका, प्रेमाविष्ट गड़ेरिन। – २२६।

ग

गुंथर (Gunther) – प्राचीन जर्मन जातीय वीर-काव्य तथा मध्ययुगीन जर्मन काव्य 'निबेलुंगेनलीड' का नायक, बर्गंडी का राजा। – २३१।

गुडरुन (कुडरुन) (Gudrun [Kudrun]) – प्राचीन जर्मन जातीय वीर-काव्य तथा १३ वीं शताब्दी के जर्मन काव्य 'गुडरुन' की नायिका; हेगेलिन्गन के राजा हेटेल तथा आयलैंड की हिल्डा की बेटी, हेरविग (ज़ीलैंड के राजा) की दुलहन; हार्टमुट (नार्मंडी के राजा) ने उसे चुरा लिया और उसके साथ विवाह करने से इनकार करने के कारण उसे १३ वर्ष कारागार में रखा; अंत में हेरविग के हाथों मुक्ति पाकर गुडरुन ने उसके साथ विवाह कर लिया। – २३१।

गैनीमीड (Ganymede) (यूनानी पुराण) – ख़ूबसूरत नौजवान, जिसे चुरा कर देवगण ओलिम्पस पर्वत ले आये, जहां वह ज़ीयस देवता का प्रेमी और साक़ी बन गया। – २१५।

ज

जार्ज दांदीं (Georges Dandin) – मोलियेर के नाटक 'जार्ज दांदीं' का पात्र; एक धनी पर मूर्ख किसान, जो कुलीन लेकिन निर्धन स्त्री से विवाह करता है और उसके द्वारा बेवकूफ़ बनाया जाता है। – ३४२।

ज़ीयस (Zeus) (यूनानी पुराण) – देवताओं का राजा। – २६७।

ट

टेलेमाकस (Telemachus) – होमर के महाकाव्य 'ओडीसी' का नायक, ओडीसियस (इथाका के राजा) का पुत्र। – २१२।

ड

डाफ़निस (Daphnis) – प्राचीन यूनान में लांगस (दूसरी-तीसरी शताब्दी) के 'डाफ़निस और क्लोए' नामक नाटक का नायक, जिसमें हमें प्रेमाविष्ट गड़ेरिये का चित्र मिलता है। – २२६।

डेमोडोकस (Demodocus) – होमर के महाकाव्य 'ओडीसी' का एक पात्र; एल्किनूस (फ़ेशियनों के पुराणचर्चित राजा) के राजदरबार का अंधा गवैया। – २६७।

त

तेलामोन (Telamon) (यूनानी पुराण) – त्रोय-युद्ध में भाग लेने वाला एक वीर। – २१२।

त्यूक्रोस (Teukros) – होमर के 'इलियाड' का एक पात्र, त्रोय-युद्ध में भाग लेने वाला वीर। – २१२।

थ

थीसियस (Theseus) (यूनानी पुराण) – पुराण कथा के अनुसार एथेंस का राजा जिसने एथेंस की बुनियाद डाली थी, प्रमुख वीरों में एक। – २७१, २७२।

थेस्टियस (Thestius) (यूनानी पुराण) – एथोलिया में प्ल्यूरोन का पुराणचर्चित राजा। – ३०५।

न

नेस्टर (Nestor) (यूनानी पुराण) – त्रोय-युद्ध में भाग लेने वाले यूनानी वीरों में सबसे बड़ा और बुद्धिमान। – २६३।

न्योर्द (Njord) (स्कैंडिनेवियाई पुराण) – उर्वरता का देवता, प्राचीन स्कैंडिनेविया के जातीय वीर-काव्य «*Elder Edda*» का नायक। – १८२।

प

पोलीनाइसीज़ (Polynieces) (यूनानी पुराण)–थीबीस के राजा ईडीपस का एक पुत्र; सत्ता के लिए संघर्ष में उसने अपने भाई एटिओक्लस को मार डाला और इस लड़ाई में ख़ुद भी मारा गया; यह कथा ईस्खिलस के नाटक 'थीबीस के विरुद्ध सात' का आधार है।–२६५।

प्रोमीथियस (Prometheus) (यूनानी पुराण)–अतिमानवों में एक, जिसने देवताओं से अग्नि चुरायी और उसे जनसाधारण को दिया, जिसके लिए उसे भीषण दंड दिया गया, उसे जंजीर से एक चट्टान के साथ बांध दिया गया, जहां हर रोज़ एक गिद्ध आकर उसकी बोटी नोचता था।–१००।

फ

फ़िनियस (Phineus) (यूनानी पुराण)–अंधापैग़म्बर; अपनी दूसरी पत्नी के भड़कावे में आकर उसने अपनी पहली पत्नी के बच्चों को, विशेषतः क्लियोपैट्रा (बोरियस की लड़की) के बच्चों को यन्त्रणा दी, जिसके लिए देवताओं ने उसे दंड दिया।–३०५।

फ़्रिया (Freya) (स्कैंडिनेवियाई पुराण)–प्रेम तथा उर्वरता की देवी, प्राचीन स्कैंडिनेवियाई जातीय वीर-काव्य «*Elder Edda*» की नायिका, अपने भाई, फ़्रैर देवता की पत्नी।–१८२।

ब

बोरियेड (Boreades) (यूनानी पुराण)–उत्तरी पवन-देव, बोरियस तथा एथेन्स की महारानी ओरीथिया की संतान।–३०५।

ब्रुनहिल्ड (Brunhild)–प्राचीन जर्मन जातीय वीर-काव्य तथा जर्मन मध्य-युगीन काव्य «*Nibelungenlied*» की नायिका, आइसलैंड की रानी, बाद में बर्गण्डी के राजा गुंथर की पत्नी।–२३१।

म

मिलिटा (Mylita)–बैबिलोनिया की पुराण कथाओं में प्रेम तथा उर्वरता की देवी इश्तार (Ishtar) का यूनानी नाम।–१६८।

मीलियागेर (Meleager) (यूनानी पुराण)–कैलीडन के पुराण-चर्चित राजा ईनीयस तथा अपनी मां के भाइयों का वध करनेवाली अल्थिया का पुत्र।–३०५।

मुलिग्रोस (Mulios) – होमर के महाकाव्य 'ग्रोडीसी' का पात्र।– २६७।

मूसा (Moses) (इंजील) – पैग़म्बर, क़ानून बनानेवाले, जिन्होंने यहूदियों को मिस्रियों की क़ैद से रिहा किया और उनके लिए क़ानून बनाये। – १४७, २०२।

मेफ़िस्टोफ़ीलीस (Mephistopheles) – गेटे के दु:खांत नाटक 'फ़ाउस्ट' का पात्र।– ६०, १८२।

र

रोमुलस (Romulus) – पुराण कथाओं के अनुसार प्राचीन रोम का संस्थापक और पहला राजा। – २८६, २९३।

ल

लोकी (Loki) (स्कैंडिनेवियाई पुराण) – दुष्ट राक्षस, अगियाबैताल, प्राचीन स्कैंडिनेवियाई वीर-काव्य «*Elder Edda*» का खेल-नायक।– १८२।

व

वलकन (Vulkan [Hephaestas]) (यूनानी पुराण) – अग्नि देवता, लोहारों का संरक्षक देव।– १००।

स

सिंड्रेला (Cinderella) – अनेक ज्ञातियों के बीच प्रचलित एक परी कहानी की नायिका, जो सलज्ज, उद्यमी लड़की के चरित्र का मूर्तिमान रूप है।– १२३।

सिगफ़ाइड (Siegfried) – प्राचीन जर्मन जातीय वीर-काव्य तथा मध्ययुगीन जर्मन काव्य «*Nibelungenlied*» का नायक।– २३१।

सिगफ़ाइड, मोरलैंड का (Siegfried of Morland) – प्राचीन जर्मन जातीय वीर-काव्य तथा १३ वीं शताब्दी के मध्ययुगीन जर्मन काव्य 'गुडरुन' का नायक; गुडरुन का मंगेतर जिसे तिरस्कृत कर दिया गया था।– २३१।

सिगबांट, आयरलैंड का (Sigebant of Ireland) – प्राचीन जर्मन जातीय वीर-काव्य तथा १३वीं शताब्दी के मध्ययुगीन जर्मन काव्य 'गुडरुन' का नायक, आयरलैंड का राजा। – २३१।

सिफ़ (Sif) (स्कैंडिनेवियाई पुराण) – थोर (मेघराज) देवता की पत्नी, प्राचीन स्कैंडिनेवियन जातीय वीर-काव्य «*Elder Edda*» की एक नायिका।– ३०४।

ह

हाडुब्रांड़ (Hadubrand) – प्राचीन जर्मन वीर-काव्य, 'हिल्डेब्रांड का गीत' का पात्र, कथा-नायक हिल्डेब्रांड का पुत्र। – ३०४।

हार्टमुट (Hartmut) – प्राचीन जर्मन जातीय वीर-काव्य तथा १३ वीं शताब्दी के जर्मन काव्य 'गुडरुन' का पात्र, ओर्मेनी के राजा का पुत्र, गुडरुन के तिरस्कृत मंगेतरों में एक। – २३१।

हिल्डा (Hilde) – प्राचीन जर्मन जातीय वीर-काव्य तथा १३ वीं शताब्दी की जर्मन गाथा 'गुडरुन' की पात्री, वीरांगना, आयर्लैंड के राज्य की बेटी, हेगेलिन्गेन के राजा हेटेल की पत्नी। – २३१।

हिल्डेब्रांड (Hildebrand) – प्राचीन जर्मन वीर-काव्य, 'हिल्डेब्रांड का गीत' का प्रधान नायक। – ३०४, ३३६।

हेकेटा (Hecate) (यूनानी पुराण) – चंद्रकिरणों की देवी, जिसके तीन सिर और तीन शरीर थे, पाताल लोक के पिशाचों और राक्षसों की स्वामिनी, अनिष्ट और जादू-टोने की देवी। – २६३।

हेटेल (Hettel) – प्राचीन जर्मन जातीय वीर-काव्य तथा १३ वीं शताब्दी की जर्मन गाथा 'गुडरुन' का नायक, हेगेलिन्गेन का राजा। – २३१।

हेरक्लीज़ (हेरकुलीज़) (Heracles [Hercules]) (यूनानी पुराण) – लोकप्रिय वीर-नायक, जो अपने पौरुष तथा अतिमानवीय पराक्रम के लिये प्रसिद्ध है। – ३०५।

हेरविग (Herwig) – प्राचीन जर्मन जातीय वीर-काव्य और १३ वीं शताब्दी के जर्मन काव्य 'गुडरुन' का पात्र, ज़ीलैंड का राजा, गुडरुन का वरदत्त और फिर पति। – २३१।

पाठकों से

प्रगति प्रकाशन इस पुस्तक के अनुवाद और डिज़ाइन के बारे में आपके विचार जानकर अनुगृहीत होगा। आपके अन्य सुझाव प्राप्त करके भी हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। हमारा पता है:

प्रगति प्रकाशन,
२१, ज़ूबोव्स्की बुलवार,
मास्को, सोवियत संघ।